श्री

धवला-टीका-समन्वितः

षट्खंडागमः

वेदनाखण्ड-कृतिअनुयोगद्वार

खंड ४ भाग १

पुस्तक ९

सम्पादक

हीरालाल जैन

श्री-भगवत्-पुष्पदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-धवला-टीका-समन्वितः

तस्य

चतुर्थखंडे वेदनानामधेये

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मकटिप्पण-प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः सम्पादितं

कृतिअनुयोगद्वारम्

सम्पादकः

नागपुरस्थ-नागपुरमहाविद्यालय-संस्कृताध्यापकः एम्. ए., एल्. एल्. बी., डी. लिट्. इत्युपाधिधारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादकौ

पं. फूलचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री * पं. बालचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री

संशोधने सहायकौ

न्या. वा., सा. सू., पं. देवकीनन्दनः सिद्धान्तशास्त्री * डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः उपाध्यायः एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालयः

अमरावती (बरार)

वि. सं. २००६] वीर-निर्वाण-संवत् २४७६ [ई. स. १९४९

मूल्यं रूप्यक-दशकम्

प्रकाशक-

श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय

अमरावती (बरार)

मुद्रक-

टी. एम्. पाटील,

मॅनेजर

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती (बरार)

THE
ṢAṬKHAṆḌĀGAMA
OF
PUṢPADANTA AND BHŪTABALĪ
WITH
THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VIRASENA

VOL. IX
KṚTI-ANUYOGADWĀRA
Edited
with introduction, translation, notes and indexes
BY

Dr. HIRALAL JAIN, M. A., LL. B., D. Litt.
Nagpur-Mahavidyalaya, Nagpur.

Assisted by

Pandit Phoolchandra,
Siddhānta Shāstrī.

Pandit Balchandra,
Siddhānta Shāstrī.

With the cooperation of

Pandit Devakinandan
Siddhānta Shāstrī

Dr. A. N. Upadhye,
M. A., D. Litt.

Published by
Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sāhitya Uddhārak Fund Karyalaya,
AMRAOTI (Berar).

1949

Price rupees ten only.

विषय-सूची

प्राक् कथन

षट्खंडागम आठवें भागके प्रकाशित होनेके दो वर्षसे कुछ अधिक काल पश्चात् यह नौवां भाग पाठकोंके हाथोंमें पहुंच रहा है। इस समय मुद्रण संबंधी कार्यमें सुविधा उत्पन्न न होकर कठिनाइयां उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई हैं, जिनके कारण हम जितने वेगसे प्रकाशन कार्य चलाना चाहते हैं वह संभव नहीं हो पाता। किन्तु हम यही अपना बड़ा सौभाग्य समझते हैं कि कठिनाइयोंके होते हुए भी कार्यको कभी स्थगित करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी, भले ही वह मंदगतिसे चला हो। इस निरन्तर कार्यप्रगतिका श्रेय हमारी इस ग्रंथमालाके संस्थापक श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचंदजी तथा हमारी पंचकमेटीके अन्य सदस्यों एवं मेरे सहयोगी पं. बालचन्द्र जी शास्त्री तथा सरस्वती प्रेसके मैनेजर श्री टी. एम्. पाटीलको है। इस भागके संशोधनमें पूर्ववत् अमरावतीकी हस्तलिखित प्रतिके अतिरिक्त कारंजा महावीराश्रम तथा जैन सिद्धान्त-भवन आराकी प्रतियोंका उपयोग किया गया है। अतएव हम उक्त संस्थाओंके अधिकारियोंके बहुत कृतज्ञ हैं। हमें यह प्रकट करते हर्ष होता है कि इस भागके ४१ वें फार्मसे संशोधन कार्यमें हमें पं. फूलचन्द्रजी शास्त्रीका सहयोग पुनः प्राप्त हो गया है। उन्होंने ४१ वें फार्मसे पूर्वके मुद्रित अंशमें भी अनेक संशोधन सुझाये हैं जिनका समावेश शुद्धि-पत्रमें कर लिया गया है। इस कार्यमें पंडित फूलचन्द्रजीको वीर-सेवा-मंदिर सरसावाकी हस्तलिखित प्रतिका सदुपयोग भी प्राप्त हो गया है। अतएव हम पंडितजी एवं वीर-सेवा-मंदिरके अधिकारियोंके आभारी हैं।

श्री पं. रतनचंदजी मुख्तारने जैनसन्देश भाग ११ संख्या ३७-३८ में पुस्तक ८ के मुद्रित पाठोंमें गंभीर अध्ययन पूर्वक अनेक उपयोगी संशोधन प्रस्तुत किये हैं जिनको हम साभार शुद्धि-पत्रमें सम्मिलित कर रहे हैं। कागज आदिकी व्यवस्थामें हमें सदैव ही श्रद्धेय पं. नाथूरामजी प्रेमीसे बहुमूल्य साहाय्य प्राप्त होता रहा है, अतएव हम उनके बहुत कृतज्ञ हैं।

नागपुर महाविद्यालय, नागपुर. }
१०-१२-१९४९ }

हीरालाल जैन

प्रस्तावना

INTRODUCTION.

The present volume contains the first section, namely *Kriti Anuyogadvāra*, out of the twenty-four sections included in the last three *Khandas*, namely, *Vedanā, Vargaṇā* and *Mahābandha* of *Bhutabali* as well as the *Culikā* of Virasena, as has already been shown in the introduction to part 1 of this series. The *Kriti* and *Vedanā* Anuyogadvāras constitute the *Vedanā Khanda* which is so named because of the importance of the second Anuyogadvāra as shown by the long space devoted to its treatment.

The word *Kriti* means action, and the present section which goes by that name deals with the formation and dissolution of the corporeal matter in the five kinds of bodies, namely, *Audārika, Vaikriyika, Ahāraka, Taijasa* and *Kārmana* possessed by the living beings, under the usual eight categories i. e. *Sat, Sankhyā, Kshetra, Sparshana, Kāla, Antara, Bhāva* and *Alpa-bahutva.*

One noteworthy feature of this part of Ṣaṭkhaṇḍāgama is that it contains forty-four benedictory Sūtras, the authorship of which is attributed by the commentator Vīrasena to Gautama the chief disciple of Tīrthamkara Mahāvīra himself. The same Sūtras are also found included in the *Yoni-prābhrita*, a work of Mantra Vidyā, traditionally attributed to Dharasena the teacher of Pushpadanta and Bhūtabali. The Sūtras, thus, lend support to the tradition regarding the authorship of Yoni-prābhrita.

Inspite of the presence of the benedictory Sūtras at the beginning of the work, the *Vedanā Khanda* has been called by Vīrasena as '*Anibaddha-Mangala*' because the author Bhūtabali has not himself composed the Mangala. But the *Jivatthāna Khanda* has been called '*Nibaddha Mangala*', which shows that, according to Virasena, the *Namokāra formula* which forms the Mangala of Jivaṭṭhāṇa was originally composed by Pushpadanta himself. This was fully discussed by me in the introduction to Vol. II and the position taken by me there remains so far unaltered.

The historical survey of the Jaina Sangha and its scriptures found in this section is for the most part a repetition of what had already been said in the introductory part of Vol. I. There are, however, a few more interesting details regarding the life of Lord Mahāvira.

विषय-परिचय ।

षट्खण्डागमके चतुर्थ खण्डका नाम वेदना है । इस खण्डकी उत्पत्तिका कुछ परिचय पुस्तक १ की प्रस्तावनाके पृ. ६५ व ७२ पर कराया जा चुका है व इसकी खण्डव्यवस्थाके सम्बन्धमें जो शंकायें उत्पन्न हुई थीं उनका निराकरण पुस्तक २ की प्रस्तावना पृ. १५ आदि पर किया जा चुका है । इस खण्डमें अग्रायणीय पूर्वकी पांचवीं वस्तु चयनलब्धिके चतुर्थ प्राभृत कर्मप्रकृतिके चौबीस अनुयोगद्वारोंमेंसे प्रथम दो अर्थात् कृति और वेदना अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा की गई है, एवं वेदना अधिकारका अधिक विस्तार होनेके कारण सम्पूर्ण खण्डका नाम ही वेदना रखा गया है ।

प्रस्तुत पुस्तकमें कृतिअनुयोगद्वारकी प्ररूपणा है । इसके प्रारम्भमें सूत्रकार भगवन्त भूतबलि द्वारा ' णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं ' इत्यादि ४४ सूत्रोंसे मंगल किया गया है । ठीक यही मंगल ' योनिप्राभृत ' ग्रन्थमें गणधरवलय मंत्रके रूपमें पाया जाता है । यह ग्रन्थ धरसेनाचार्य द्वारा उनके शिष्य पुष्पदन्त और भूतबलिके निमित्त रचा गया माना जाता है । इसका विशेष परिचय प्रथम पुस्तककी प्रस्तावनाके पृ. २९ आदि पर कराया गया है । (देखिये Comparative and Critical Study of Mantrashastra by M. B. Jhaveri Appendix A.) । इन मंगलसूत्रोंकी टीकामें आचार्य वीरसेन स्वामीने देशावधि, परमावधि, सर्वावधि, ऋजुमति व विपुलमति मनःपर्यय, केवलज्ञान एवं मतिज्ञानके अन्तर्गत कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारिणी और संभिन्नश्रोतृबुद्धिकी विशद प्ररूपणा की है । उक्त बुद्धि ऋद्धिके साथ ही यहां अन्य सभी ऋद्धियोंका मननीय विवेचन किया गया है । इन मंगलसूत्रोंमें अन्तिम सूत्र ' णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स ' है । इसकी टीकामें धवलाकारने विस्तारसे विवेचन करके उक्त मंगलको अनिबद्ध मंगल सिद्ध किया है, क्योंकि, वह प्रस्तुत ग्रन्थकारकी रचना न होकर गौतम स्वामी द्वारा रचित है । धवलाकार जीवस्थान खण्डके आदिमें किये गये पंचणमोकार मंत्र रूप मंगलको निबद्ध मंगल कह आये हैं । इस भेदके आधारसे धवलाकारका यह स्पष्ट अभिप्राय जाना जाता है कि वे भगवान् पुष्पदन्ताचार्यको ही णमोकारमंत्रके आदिकर्ता स्वीकार करते हैं । इसका सविस्तर विवेचन पुस्तक २ की प्रस्तावनाके पृ. ३३ आदि पर किया जा चुका है । उस समय पत्र-पत्रिकाओंमें इस विषयकी चर्चा भी चली और णमोकारमंत्रके अनादित्वपर जोर दिया गया । किन्तु विद्वानोंने धवलाकारके अभिप्रायको समझने व उसपर गम्भीरतासे विचार करनेका प्रयत्न नहीं किया ।

टीकाकारने इस मंगलदण्डकको देशामर्शक मानकर निमित्त, हेतु, परिमाण व नामका भी निर्देश कर द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावकी अपेक्षा कर्ताका विस्तृत वर्णन किया है, जो जीवस्थानके व विशेषकर जयधवला (कषायप्राभृत) के प्रारम्भिक कथनके ही समान है।

सूत्र ४५ में बतलाया है कि अग्रायणीय पूर्वकी पंचम वस्तुके चतुर्थ प्राभृतका नाम कमप्रकृति है। उसमें कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति आदि २४ अनुयोगद्वार हैं। इनमें प्रथम कृतिअनुयोगद्वार प्रकृत है। इस सूत्रकी टीका करते हुए वीरसेन स्वामीने उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नयकी उसी प्रकार पुनः विस्तारपूर्वक प्ररूपणा की है जैसे कि जीवस्थानके प्रारम्भमें एक वार की जा चुकी है।

सूत्र ४६ में नामकृति, स्थापनाकृति, द्रव्यकृति, गणनकृति, ग्रन्थकृति, करणकृति और भावकृति, ये कृतिके सात भेद बतलाये हैं। इनकी संक्षिप्त प्ररूपणा इस प्रकार है—

१ एक व अनेक जीव एवं अजीवमेंसे किसीका ' कृति ' ऐसा नाम रखना नामकृति है।

२ काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पोत्तकर्म, लेप्यकर्म, लयनकर्म, शैलकर्म, गृहकर्म, भित्तिकर्म, दन्तकर्म व भेंडकर्ममें सद्भावस्थापना रूप तथा अक्ष एवं वराटक आदिमें असद्भावस्थापना रूप ' यह कृति है ' ऐसा अभेदात्मक आरोप करना स्थापनाकृति कहलाती है।

३ द्रव्यकृति आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। इनमें आगमद्रव्यकृतिके स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम, ये नौ अधिकार हैं। यहां वाचनोपगत अधिकारकी प्ररूपणामें व्याख्याताओं एवं श्रोताओंको द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव रूप शुद्धि करनेका विधान बतलाया गया है। आगे चलकर स्थित व जित आदि उपर्युक्त नौ अधिकारों विषयक वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति व धमकथा आदि रूप उपयोगोंकी प्ररूपणा है।

नोआगमद्रव्यकृति ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है। इनमेंसे ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यकृतिके भी आगमद्रव्यकृतिके ही समान स्थित-जित आदि उपर्युक्त नौ अधिकार कहे गये हैं। कृतिप्राभृतके जानकार जीवका च्युत, च्यावित एवं त्यक्त शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्यकृति कहा गया है। जो जीव भविष्यत् कालमें कृतिअनुयोगद्वारोंके उपादान कारण स्वरूपसे स्थित है, परन्तु उसे करता नहीं है; वह भावी नोआगमद्रव्यकृति है। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकृति ग्रन्थिम, वाइम, वेदिम, पूरिम, संघातिम, अहोदिम, निक्खोदिम, ओवेल्लिम, उद्वेल्लिम, वर्ण, चूर्ण और गन्धविलेपन आदिके भेदसे अनेक प्रकार है।

४ गणनकृति नोकृति, अवक्तव्यकृति और कृतिके भेदसे तीन भेद रूप अथवा कृति-गत संख्यात, असंख्यात व अनन्त भेदोंसे अनेक प्रकार भी है। इनमेंसे 'एक' संख्या नोकृति, 'दो' संख्या अवक्तव्यकृति और 'तीन' को आदि लेकर संख्यात असंख्यात व अनन्त तक संख्या कृति कहलाती है। संकलना, वर्ग, वर्गावर्ग, घन व घनाघन राशियोंकी उत्पत्तिमें निमित्त-भूत गुणकार, कलासवर्ण तक भेदप्रकीर्णक जातियां, त्रैराशिक व पंचराशिक इत्यादि सब धनगणित है। व्युत्कलना व भागहार आदि ऋणगणित कहलाते हैं। गतिनिवृत्तिगणित और कुट्टिकार आदि धन-ऋणगणितके अन्तर्गत हैं। यहां कृति, नोकृति और अवक्तव्यकृतिके उदाहरणार्थ ओघानुगम, प्रथमानुगम, चरमानुगम और संचयानुगम, ये चार अनुयोगद्वार कहे गये हैं। इनमें संचयानुगमकी प्ररूपणा सत्-संख्या आदि आठ अनुयोगद्वारोंके द्वारा विस्तारपूर्वक की गई है।

५ लोक, वेद अथवा समयमें शब्दसन्दर्भ रूप अक्षरकाव्यादिकोंके द्वारा जो ग्रन्थ-रचना की जाती है वह ग्रन्थकृति कहलाती है। इसके नाम, स्थापना, द्रव्य व भावके भेदसे चार भेद करके उनकी पृथक् पृथक् प्ररूपणा की गई है।

६ करणकृति मूलकरणकृति और उत्तरकरणकृतिके भेदसे दो प्रकार है। इनमें औदारिकादि शरीर रूप मूलकरणके पांच भेद होनेसे उसकी कृति रूप मूलकरणकृति भी पांच प्रकार निर्दिष्ट की गई है। औदारिकशरीरमूलकरणकृति, वैक्रियिकशरीरमूलकरणकृति और आहारकशरीरमूलकरणकृति, इनमेंसे प्रत्येक संघातन, परिशातन और संघातन-परिशातन स्वरूपसे तीन तीन प्रकार हैं। किन्तु तैजस और कार्मणशरीरमूलकरणकृतिमेंसे प्रत्येक संघातनसे रहित शेष दो भेद रूप ही हैं।

विवक्षित शरीरके परमाणुओंका निर्जराके विना जो एक मात्र संचय होता है वह संघा-तनकृति है। यह यथासम्भव देव व मनुष्यादिकोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, क्योंकि, उस समय विवक्षित शरीरके पुद्गलस्कन्धोंका केवल आगमन ही होता है, निर्जरा नहीं होती।

विवक्षित शरीर सम्बन्धी पुद्गलस्कन्धोंकी आगमनपूर्वक होनेवाली निर्जरा संघातन-परि-शातनकृति कहलाती है। वह यथासम्भव देव-मनुष्यादिकोंके उत्पन्न होनेके द्वितीयादिक समयोंमें होती है, क्योंकि, उस समय अभव्य राशिसे अनन्तगुणे और सिद्ध राशिसे अनन्तगुणे हीन औदारिकादि शरीर रूप पुद्गलस्कन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों ही पाये जाते हैं।

उक्त विवक्षित शरीरके पुद्गलस्कन्धोंकी संचयके विना होनेवाली एक मात्र निर्जराका नाम परिशातनकृति है। यह यथासम्भव देव-मनुष्यादिकोंके उत्तर शरीरके उत्पन्न करनेपर होती है, क्योंकि, उस समय उक्त शरीरके पुद्गलस्कन्धोंका आगमन नहीं होता।

तैजस और कार्मण इन दोनों शरीरोंकी अयोगकेवलीके परिशातनकृति होती है, कारण कि उनके योगोंका अभाव हो जानेसे बन्धका भी अभाव हो चुका है। अयोगकेवलीको छोड़ शेष सभी संसारी जीवोंके इन दोनों शरीरोंकी एक संघातन-परिशातनकृति ही है, क्योंकि, सर्वत्र उनके पुद्गलस्कन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों ही पाये जाते हैं। उक्त दोनों शरीरोंकीसंघातनकृति सम्भव नहीं है। कारण इसका यह है कि वह संसारी प्राणियोंके तो हो नहीं सकती, क्योंकि, उनके उक्त दोनों शरीरोंके पुद्गलस्कन्धोंका जैसे आगमन होता है वैसे ही उसीके साथ निर्जरा भी होती है। अब रहे सिद्ध जीव सो उनके भी वह सम्भव नहीं है, क्योंकि, उनके बन्धकारणोंका पूर्णतया अभाव हो चुका है।

आगे जाकर उपर्युक्त पांचों मूलकरणकृतियोंकी प्ररूपणा पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, इन तीन अधिकारों द्वारा तथा सत्-संख्या आदि आठ अनुयोगद्वारोंके भी द्वारा विस्तार-पूर्वक की गई है।

असि, वासि, परशु, कुदारी, चक्र, दण्ड, वेम व नालिका आदि उत्तर करण अनेक माने जाते हैं। अत एव उत्तर करणोंके अनेक होनेसे उनकी कृति रूप उत्तरकरणकृति भी अनेक प्रकार कही गई है।

७ कृतिप्राभृतका जानकार उपयोग युक्त जीव भावकृति कहा जाता है। उपर्युक्त सातों कृतियोंमें यहां गणनकृतिको प्रकृत बतलाया है, कारण कि गणनाके विना अन्य अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा असम्भव हो जाती है।

विषय-सूची

शुद्धि-पत्र

[पुस्तक ८]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११३	१२	चदुदंसणावरणीय-वेउव्विय-तेजा-	चदुदंसणावरणीय-तेजा- [प्रतियोंमें वेउब्विय पद है, पर वह होना नहीं चाहिये]
"	२६	चार दर्शनावरण, वैक्रियिक, तैजस	चार दर्शनावरण, तैजस
११६	९	सुभ-सुस्सर	सुभग-सुस्सर [प्रतियोंमें सुभके स्थानमें सुभग होना चाहिये]
"	२७	शुभ, सुस्वर	सुभग, सुस्वर
१३१	५	देवगइसंजुत्तं मणुसगइ-संजुत्तं च	देवगइसंजुत्तं च [मणुसगइसंजुत्तं पद प्रतियोंमें है, पर होना नहीं चाहिये]
"	२१	मनुष्यगतिसे संयुक्त	× × ×
१३२	१०	मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी	[मणुसगइ-] मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी
"	२४	मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	[मनुष्यगति] मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी
१६५	९	जसकित्ति-उच्चागोदाणं	जसकित्ति-[अजसकित्ति-] उच्चागोदाणं
"	२४	यशकीर्ति और उच्चगोत्र	यशकीर्ति, [अयशकीर्ति] और उच्चगोत्र
१९२	४	पज्जत्तापज्जत्ताणं च	पज्जत्तापज्जत्ताणं [तसअपज्जत्ताणं]
"	१६	अपर्याप्त जीवोंकी	अपर्याप्त [व त्रस अपर्याप्त] जीवोंकी
१९७	९	पंचणाणावरणीय-मिच्छत्त	पंचणाणावरणीय- [णवदंसणावरणीय-] मिच्छत्त
"	२५	पांच ज्ञानावरणीय, मिथ्यात्व	पांच ज्ञानावरणीय, [नौ दर्शनावरणीय] मिथ्यात्व
२०४	१०	[ओरालियसरीरंगोवंग-]	[ओरालियसरीरंगोवंग-मणुसगइ-]
"	२७	[औदारिकशरीरांगोपांग]	[औदारिकशरीरांगोपांग, मनुष्यगति]
२०६	४	जसकित्ति-णिमिण	जसकित्ति- [अजसकित्ति-] णिमिण
२०६	१६	यशकीर्ति, निर्माण	यशकीर्ति, [अयशकीर्ति], निर्माण
२०९	२१	तिर्यग्गति,	तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३१	९	दुस्सराणं	सुस्सराणं [प्रतियोंमें दुस्सराणं पद ही है, पर सुस्सराणं होना चाहिये]
,,	२३	दुस्वरका	सुस्वरका
२८१	५	णीचागोदाणं	णीचुच्चागोदाणं [प्रतियोंमें णीचागोदाणं पाठ ही है]
,,	१७	नीच गोत्रका	नीच व ऊंच गोत्रका
२९१	७	धुवोदयत्तादो'	अद्धुवोदयत्तादो'
,,	२१	ध्रुवोदयी	अध्रुवोदयी
२९३	५	देवगइपाओग्गाणुपुव्वी	[देवगइ-] देवगइपाओग्गाणुपुव्वी
,,	१८	देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	[देवगति], देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी
३००	६	अित्थि,' णवुंसय-	अित्थि, इत्थि'-णवुंसय-
,,	१७	नपुंसकवेद	स्त्री व नपुंसक वेद
३२२	५	णिरंतरो	सांतर-णिरंतरो
,,	१६	निरन्तर	सान्तर-निरन्तर
३३१	४	वेउव्वियमिस्स-कम्मइय	वेउव्वियमिस्स-[ओरालियमिस्स-]कम्मइय
,,	१६	वैक्रियिकमिश्र और कार्मण	वैक्रियिकमिश्र, [औदारिकमिश्र] और कार्मण
३३४	३०	देवगति,	देवगतिद्विक,
३३५	४	तिरिक्खेसु	तिरिक्ख-मणुस्सेसु [प्रतियोंमें तिरिक्खेसु ही पाठ है]
३३५	५	बंधाभावादो। पुरिसवेदस्स	बंधाभावादो। [समचउरससंठाण-पसत्थविहायगदि-सुभग-सुस्सर-आदेज्जाणं मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठीसु सांतर-णिरंतरो, तिरिक्ख-मणुस्सेसु निरंतर-बंधुवलंभादो। उवरि णिरंतरो, पडिवक्ख-पयडीणं बंधाभावादो।] पुरिसवेदस्स
,,	१९	तिर्यंचों और	तिर्यंचों, मनुष्यों और
३३५	२०	बन्धका अभाव है। पुरुषवेदका	बन्धका अभाव है। [समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका मिथ्यादृष्टि व सासादन गुणस्थानमें सान्तर-निरन्तर बन्ध होता है, क्योंकि, तिर्यंच व मनुष्योंमें उनका निरन्तर बन्ध पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बन्ध होता है, क्योंकि,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			यहां प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है ।] पुरुषवेदका
३३७	२६	स्वोदय-परोदय	परोदय
३३८	१	सोदय-परोदओ	परोदओ [प्रतियोंमें सोदय पद है, पर वह होना नहीं चाहिये]
३३९	१०	सोदओ	परोदओ [प्रतियोंमें सोदओ ही पाठ है]
,,	२६	स्वोदय	परोदय
३५७	२	तहोवलंभादो। एदासिं सव्वासिं	तहोवलंभादो । [थीणगिद्धितिय-अणंताणुबंधिचउक्काणं बंधो सोदय-परोदओ ।] सेसाणं सव्वासिं'
३५७	७	सुक्कलेस्साए एदासिं	सुक्कलेस्साए तिरिक्ख-मणुस्सेसु एदासिं
,,	१४	जाता है । इन सब	जाता है । [स्त्यानगृद्धि आदि तीन और अनन्तानुबन्धिचतुष्कका स्वोदय-परोदय और] शेष सब
,,	२१	शुक्ललेश्यामें इन	शुक्ललेश्यामें तिर्यंच व मनुष्योंके इन
,,	२९	×××	१ प्रतिषु ' एदासिं ' सव्वासिं इति पाठः ।
३६०	७	वेउव्वियसरीरंगोवगाणं	[वेउव्वियसरीर-] वेउव्वियसरीरंगोवंगाणं
,,	२२	नरकगत्यानुपूर्वी और	नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और
३६६	२२	बन्धका	उदयका
३८८	२	तिरिक्खगईणं	[तिरिक्खाउ-] तिरिक्खगईणं
,,	१२	पंचिंदियजादि	पंचजादि [प्रतियोंमें पंचिंदियजादि ही पाठ है]
,,	१६	अन्तराय और	अन्तराय, [तिर्यंचआयु] और
,,	३०	पंचेन्द्रिय जाति	पांच जातियां

[पुस्तक ९]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	३	कज्जुप्यायणे	कज्जुप्पायणे
५	२०	विघ्नोंसे उत्पन्न	विघ्नोंके कारणभूत
,,	२१	,,	,,
८	२१	स्थापनाकी अपेक्षा	स्थापनाको
११	७	-मुप्पण्णंसमाणत्तुव-	मुप्पण्णसमाणत्तुव-
१६	२	परमाणूण खंधा	परमाणूणखंधा
,,	११	परमाणुओंके स्कन्ध	परमाणुओंसे न्यून स्कन्ध

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	४	पज्जत्तसस्स	पज्जत्तयस्स
२४	८	पोग्गक्खंध	पोग्गलक्खंध
२५	१	पुण हत्थो	घणहत्थो
,,	९	एक हाथ	एक घनहाथ
२७	९	क्खमं, तहो-	क्खमं, आगमे तहो-
,,	२४	क्योंकि, वैसे	क्योंकि, आगममें वैसे
२८	२१	भावका जिन	भावका द्वितीय विकल्प लानेके लिये जिन
२९	३	॥ १२ ॥	॥ १३ ॥
३१	१२	-मणुप्पत्ति	-मणुप्पत्ति
३४	१०	मूलसेत्ता	मूलमेत्ता
३५	११	तप्पाओग्गसंखेज्ज	तप्पाओग्गासंखेज्ज
,,	२७	संख्यात	असंख्यात
३६	६	कम्मपदेसु	कम्मपदेसेसु
४८	६	वियप्पाद्दो	वियप्पत्तादो
,,	९	-पदुप्पणेण	पदुप्पण्णेण
,,	१०	खेत्तपरूवणा	खेत्तपमाणपरूवणा
,,	२६	क्षेत्रकी प्ररूपणा	क्षेत्रके प्रमाणकी प्ररूपणा
५३	२०	अर्धधारण	अर्धधारण
५४	४	किदियकम्म	किदियम्म
५५	१	गोमद्द	गोदम
५५	५	मग्गगूजा	मग्गपूजा
५८	१०	उप्पण	उप्पण्ण
६२	९	यथार्थ-	यथार्थ
६३	४	णाणस्स	णाणिस्स
,,	१४	मन:पर्ययज्ञानका	मन:पर्ययज्ञानीका
६४	३	सण्णहत्तादो	सण्हत्तादो
६५	१	दोण्णि	दो-तिण्णि
,,	९	दो भवग्रहणोंको	दो, तीन भवग्रहणोंको
६७	२४	एक आकाशश्रेणीमें	आकाशकी एक श्रेणीके क्रमसे
६८	५	खओवसमाभावादो	खओवसमाभावो
,,	९	पडिघाडा-	पडिघादा-
,,	११	पणदालीसलक्ख	पणदालीसजोयणलक्ख

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	२०	क्षयोपशमका अभाव होनेसे उसकी उत्पत्ति न हो	क्षयोपशमका अभाव कारण हो
६९	८	सत्तसय-	अंगुट्ठपसेणादिसत्तसय-
,,	१९	होनेपर सात	होनेपर अंगुष्ठप्रसेनादि सात
७२	२	-मट्ठअंगाणि	-मट्ठ अंगाणि
,,	५	य राहणिज्जा	यराहणिज्जा
,,	५	॥ १९ ॥	॥ १९ ॥ इदि
,,	१५	तिर्यंचोंके वात	तिर्यंचोंके सत्त्व, स्वभाव, वात
,,	१६	शुक्र सत्व स्वभाव रूप, तथा	शुक्र, तथा
,,	२८	' तिलयाणंग- ' इति पाठः	' तिलयाणंग- ', मप्रतौ स्वीकृतपाठः
७९	६	सायराणंतो	सायराणमंतो
८०	६	गमिणो	गामिणो
८२	६	॥ २२ ॥	॥ २२ ॥ इदि
८२	८	-स्सुप्पण्णा वेणइया	-स्सुप्पण्णा पण्णा वेणइया
८९	४	परिसी	तवोबलेण परिसी
,,	१८	ऐसी	तपके बलसे ऐसी
९०	८	वग्गम्मदे	वगम्मदे
,,	,,	तवाणं मण	तवाणं जिणाणं मण
,,	२३	ऋद्धिधारकों	ऋद्धिधारक जिनोंको
९१	१	तप्ततपः । जोसिं	तप्ततपः । तप्तं तपो येषां ते तप्ततपसः । जोसिं
,,	३	सहियाणं जिणाणं	सहियाणं तत्ततवाणं जिणाणं
,,	११	है । जिनके	है । तप्त तप जिनके पाया जाता है वे तप्त-तपवाले ऋषि हैं । जिनके
,,	१३	सहित जिनोंको	सहित तप्ततपवाले जिनोंको
९२	५	जुदायेण	जुदोयण
,,	९	बारसव्विहत्तउ	बारसविहतउ
९४	६	घोरबंभ	घोरगुणबंभ
,,	७	अघोरबंभ	अघोरगुणबंभ
,,	१९	अघोरब्रह्म-	अघोरगुणब्रह्म-
,,	२१	,,	,,
९५	५	छब्वे	छब्च

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९६	२	विहाणमो-	विहाणमामो-
,,	१०	प्रकारके औषधि-	प्रकारके आमर्षौषधि
१०१	२०	जिसके	जिसको
,,	,,	स्वयं परोस लेनेके	परोस देनेके
१०६	५	दुहाभावादो'	तण्हाभावादो'
,,	१८	अत्यन्त दुखका अभाव होनेसे	अत्यन्त तृष्णाका सद्भाव होनेसे
१०८	५	कम्मामावं	कम्माभावं
,,	७	भावं । अधवा	भावं । णिरामिसत्तेण सगपुट्ठीए च जाणाविदभुक्खा-तिसाभावं । अधवा
,,	२४	ज्ञापक है । अथवा	ज्ञापक है । भोजन रहित होनेसे और अपनी पुष्टि होनेसे जिनके भूख व प्यासका अभाव जाना जाता है । अथवा
१११	१२	चन्द्र-अब्ज-मयूर	चन्द्र-मयूर
,,	२१	संुयुक्त	संयुक्त
,,	२२	सिद्धप्रतिमाओंसे दीप्त सिद्धार्थ	जहां सिद्धप्रतिमायें स्थित हैं और जो अपनी वृद्धिसे समृद्ध हैं ऐसे सिद्धार्थ
११२	२	फलिहघडिय	'फलिहासिलाघडिय
,,	१३	स्फटिकसे	स्फटिकमणिसे
११४	६	ण जीवो	ण ताव जीवो
११८	५	प्पसंगादो । तदो	प्पसंगादो । ण च दव्वस्स अभावो, तिहुवणाभावप्पसंगादो । तदो
,,	११	॥ २२ ॥	॥ २६ ॥ [इससे आगेके गाथांकोंमें इसी प्रकार चार अंकोंकी वृद्धि कर लेना चाहिये]
,,	१९	आवेगा । इस	आवेगा । और द्रव्यका अभाव तो माना नहीं जा सकता, क्योंकि, ऐसा माननेपर त्रिभुवनके अभावका प्रसंग आवेगा । इस
१२१	९	तेरसीए उत्तरा-	तेरसीए रत्तीए उत्तरा-
,,	२४	दिन उत्तरा-	दिन रात्रिमें उत्तरा-
१२९	१०	दिट्ठिवादाणं सामाइय	दिट्ठिवादाणं बारहंगाणं सामाइय
१३४	५-९	पयडी णाम ॥४५॥ तत्थ इमाणि × × × अप्पाबहुगं च । सव्वत्थ	पयडी णाम । तत्थ इमाणि ××× अप्पाबहुगं च सव्वत्थ ॥४६॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३४	१७-२१	है ॥ ४६ ॥ उसमें ये ××× और अल्पबहुत्व । सर्वत्र	है । उसमें × × × और सर्वत्र अल्प-बहुत्व ॥ ४५ ॥
१३५	८	छत्ती	दंडी छत्ती
,,	१९	छत्री	दण्डी, छत्री
१३७	२	-चिदणिबंध	-चिदवयवणिबंध
,,	४	ऐरावओ	अइरावओ
१४१	९	-नुगमः ।	-नुगमः प्रमाणम् ।
,,	२२	अनुगम कहलाता	अनुगम अर्थात् प्रमाण कहलाता
१४२	९	युगपद्विभासम्	युगपदवभासम्
,,	३०	× × ×	२ प्रतिषु ' युगपद्विभासम् ' इति पाठः ।
१५१	७	कठिनोष्म	कठिनोष्ण
,,	२०	ऊष्म	उष्ण
१५२	२०	'गायके समान गवय होता है'	× × ×
१५५	५	अनिसृत	अनिःसृत
१६१	४	-भेदाच्च आद्य-	-भेदाच्चक्षुरादिविषयाच्च आद्य-
,,	१५	जब वर्ण, पद × × × स्कन्धसे संकेत युक्त	जब आद्य श्रुतविषयताको प्राप्त हुए अविना-भावी वर्ण, पद, वाक्य आदि भेदोंको धारण करनेवाले शब्दपरिणत पुद्गलस्कन्धसे और चक्षु आदिके विषयसे संकेत युक्त
१६२	१६	तादात्मसे	तादात्म्यसे
१६७	५	सभन्तमद्र	समन्तभद्र
१६८	७	बुध्यवसितः	बुद्ध्यध्यवसितः
,,	२२	क्योंकि, इनकी	क्योंकि, अन्यकारणत्वकी अपेक्षा इनकी
१७५	५	प्रथमलक्षण	प्रथमक्षण
१८०	४	द्वैविध्ये	द्वैविध्ये
१८१	२	पर्यायार्थिनय	पर्यायार्थिकनय
,,	३	पर्यार्थिक	पर्यायार्थिक
,,	४	द्वंदजः	द्वंद्वजः
,,	१५	द्वंदज	द्वंद्वज
१८४	५	पुंव्वमिदि	पुव्वमिदि-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८५	१	दव्वत्तस्स	दव्वस्स
१८६	९	अत्थम्हि[1]	अतम्हि[2]
,,	२७	अर्थका उसके द्वारा ग्रहण	जो वस्तु अतद्रूप है उसका तद्रूपसे ग्रहण
,,	२८	अप्रतौ ' अतम्हि ',	× × ×
१८८	३	जाई आभोगिय	जाई च आभोगिय
१९८	६	छक्क-	छक्का-
२०४	४	ट्ठिदिवादो	दिट्ठिवादो
२०३	६	विधानं च	विधानं तद्गतिविशेष-ग्रह-छाया-काल-राश्युदयविधानं च
,,	१७	प्रच्छादकविधि, इस	प्रच्छादकविधि, उनकी गतिविशेष, ग्रहोंकी छाया, कालमान और उदयविधि, इस
२०९	७	अइक्खुवाणं	अ इक्खुवाणं
,,	१०	रूपाकाशभेदेन	रूपाकाशगतभेदेन
,,	११	सहस्रेका	सहस्रैका
,,	२१	आकाशके	आकाशगताके
२१०	१	तंत्रविशेषा	तंत्र-तपोविशेषा
,,	११	मंत्र व तंत्रविशेषोंका	मंत्र, तंत्र व तपविशेषोंका
२१२	९	छद्मस्थनां	छद्मस्थानां
२१३	७	कल्याणादिरूपेण	कल्याणादिघटरूपेण
२१३	१९	सुवर्णादि रूपसे	सुवर्णादिघट रूपसे
२१४	१	रुपघट	रूपघट
,,	५	घटनामपि	घटानामपि
२१६	७	मृषामिधानं	मृषाभिधानं
२२२	४	निर्दिश्यन्त	निर्दिश्यन्ते
२२६	१०	तीदाणगय	तीदाणागय
२३२	२	-पढम-चरिमम्मि	-पढम-चरिमाचरिमम्मि
,,	१३	अप्रथम और चरम	अप्रथम, चरम और अचरम
२३४	८	-अद्धाट्ठिदि	अधाट्ठिदि[1]
,,	२३	कालस्थिति	अधःस्थिति
,,	२९	× × ×	२ प्रतिषु ' अद्धाट्ठिदि ' इति पाठः।
२३९	४	-कारणादो	-करणादो
२४०	२	अणवगट्ठे	अणवगयट्ठे

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४५	१५	इस नयकी अपेक्षा संकल्पके	एक तो संकल्पके
"	१६	कारण कि सादृश्य	दूसरे सादृश्य
२४६	९-११	अजीवाणं च ॥५१॥ जस्स णाम × × × णामकदी णाम।	अजीवाणं च जस्स णाम ××× णामकदी णाम ॥ ५१ ॥
"	२१-२२	बहुत अजीवोंके होती है ॥५१॥ जिसका ××× है।	बहुत अजीवोंमें जिसका ××× है ॥ ५१ ॥
२४८	७	पतस्स	पदस्स
२४९	९	(द्रव्य व भाव)	(पश्चादानुपूर्वी और यथा-तथानुपूर्वी)
२५१	९	घोससमं । एवं णव अहियारा आगमस्स होंति ॥ ५४ ॥	घोससमं ॥ ५४ ॥ एवं णव अहियारा आगमस्स होंति।
"	१७	कृतिकी	द्रव्यकृतिकी
"	२०	घोषसम । इस प्रकार आगमके नौ अधिकार हैं ॥ ५४ ॥	घोससम ॥ ५४ ॥ इस प्रकार आगमके नौ अधिकार हैं।
२५२	२	नैसर्ग	नैसंग्य
"	६	नन्दा।	नन्दा। तत्र
"	१२	स्वाभाविक प्रवृत्तिका	नैसंग्य वृत्तिका
२५३	२	विट्	विण्
२५५	४	दावाग्नि-	दवाग्नि-
२५६	१७	मनुष	धनुष
२५९	६	-मिच्युते	-मित्युच्यते
२६२	४	वा वा	वा
"	११	नये	गये
२६४	४	-गमादो। अणुव-	गमादो णयमस्सिदूण अणुव-
"	१७	अनुपयुक्त	नयकी अपेक्षा अनुपयुक्त
२७५	३	गणिज्जणाणे	गणिज्जमाणे
२७८	११	चक्खुदंसणी-तेउ-	चक्खुदंसणी-ओहिदंसणी-केवलदंसणी-तेउ-
"	२७	चक्षुदर्शनी	चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, केवलदर्शनी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८३	५	संचए आणिदे	संचए च आणिदे
२८३	२१	कालमें पूर्वके	कालको और पूर्वके
२९२	१५	जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे	जघन्यसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व योनिमती तिर्यंच अन्तर्मुहूर्त काल रहते हैं। उत्कर्षसे
२९८	२	पुढवीणं अट्ठ-	पुढवीणं होदि अट्ठ-
,,	२०	यह है।	यह है
,,	२१	सागरोपम]	सागरोपम]।
३४८	४	चव	चेव
३६२	२	[संघादण]	× × ×
,,	१४	[संघातन व]	× × ×
३८३	१२	एजजीवं	एगजीवं
३९३	३	ओरालियसंघादण-परिसादण-कदी	ओरालियसंघादण- [संघादण-] परि-सादणकदी
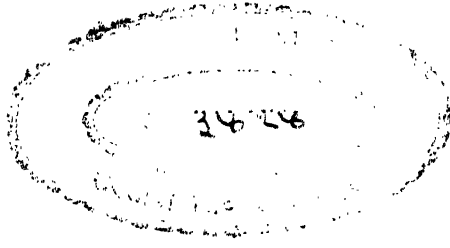
सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स चउत्थे खंडे वेयणाए

कदिअणियोगद्दारं

सिद्धा दद्धट्ठमला विसुद्धबुद्धी य लद्धसव्वत्था ।
तिहुवणसिरसेहरया पसियंतु भडारया सव्वे ॥ १ ॥

तिहुवणभवणप्पसरियपच्चक्खवबोहकिरणपरिवेढो ।
उइओ वि अणत्थवणो अरहंत-दिवायरो जयऊ ॥ २ ॥

आठ कर्मरूपी मलको जला देनेवाले, विशुद्ध बुद्धिसे संयुक्त, समस्त पदार्थोंको जाननेवाले, तथा तीन लोकके शिखरपर स्थित ऐसे सब सिद्ध भट्टारक प्रसन्न होवें ॥ १ ॥

जिसका प्रत्यक्ष ज्ञानरूपी किरणोंका मण्डल त्रिभुवनरूप भवनमें फैला हुआ है, तथा जो उदित होता हुआ भी अस्त होनेसे रहित है, ऐसा अरहन्तरूपी सूर्य जयवन्त होवे ॥ २ ॥

तिरयण-खग्गणिहाएणुत्तारियमोहसेण्णसिरणिवहो ।
आइरियराउ पसियउ परिवालियभवियजियलोओ ॥ ३ ॥

अण्णाण-यंधयारे अणोरपोरे भमंतभवियाणं ।
उज्जोओ जेहि कओ पसियंतु सया उवज्झाया ॥ ४ ॥

दुह-तिव्वतिसा-विणडिय-तिहुवणभवियाण सुट्ठुराएण ।
परिठविया धम्म-पवा सुअ-जलवाण-प्पयाणेण ॥ ५ ॥

संधारियसीलहरा उत्तारियचिरपमाददुस्सीलभरा ।
साहू जयंतु सव्वे सिव-सुह-पह-संठिया हु णिग्गलियभया ॥ ६ ॥

णमो जिणाणं ॥ १ ॥

किमट्ठमिदं वुच्चदे ? मगलट्ठं । किं मंगलं ? पुव्वसंचियकम्मविणासो । जदि एवं तो

रत्नत्रयरूप खड्गके आघातसे मोहकी सैन्यके शिरसमूहको उतारकर भव्य जीव-लोकका पालन करनेवाला आचार्यरूपी राजा प्रसन्न होवे ॥ ३ ॥

वे उपाध्याय परमेष्ठी सदा प्रसन्न होवें जिन्होंने आर-पार रहित अज्ञानरूप अन्धकारमें भटकनेवाले भव्य-जीवोंको प्रकाश दिया है, तथा जिन्होंने दुखरूपी तीव्र तृषासे व्याकुल हुए तीन लोकके भव्य जीवोंको श्रुतरूपी जलपान प्रदान करनेके हेतुसे अतिशय राग अर्थात् अनुकम्पासे धर्मरूपी प्याऊको स्थापित किया है ॥ ४-५ ॥

जिन्होंने चिरकालीन प्रमादरूपी कुशीलके भारको उतारकर शीलके भारको धारण किया है, जो शिवसुखके मार्गमें स्थित हैं, एवं भयसे रहित हैं ऐसे सर्व साधु जयवन्त होवे ॥ ६ ॥

जिनोंको नमस्कार हो ॥ १ ॥

शंका—यह सूत्र किस लिये कहा जाता है ?

समाधान—यह मंगलके लिये कहा जाता है ।

शंका—मंगल किसे कहते हैं ?

समाधान—पूर्व संचित कर्मोंके विनाशको मंगल कहते हैं ।

शंका—यदि ऐसा है तो ' जिन सूत्रोंका अर्थ जिन भगवान्के मुखसे निकला

जिणवयणविणिग्गयत्थादो अविसंवादेण केवलणाणसमाणादो उसहसेणादिगणहरदेवेहि विरइय-सद्दरयणादो दव्वसुत्तादो तप्पढणं[1]-गुणणकिरियावावदाणं सव्वजीवाणं पडिसमयमसंखेज्जगुणसेढीए पुव्वसंचिदकम्मणिज्जरा होदि त्ति णिप्फलमिदं सुत्तमिदि। अह सफलमिदं, णिप्फलं सुत्त-ज्झयणं; तत्तो समुवजायमाणकम्मक्खयस्स एत्थेवोवलंभो त्ति? ण एस दोसो, सुत्तज्झयणेण सामण्णकम्मणिज्जरा कीरदे; एदेण पुण सुत्तज्झयणविग्घफलकम्मविणासो कीरदि त्ति भिण्ण-विसयत्तादो। सुत्तज्झयणविग्घफलकम्मविणासो सामण्णकम्मविरोहि[2]सुत्तब्भासादो चेव होदि त्ति मंगलसुत्तारंभो अणत्थओ किण्ण जायदे? ण, सुत्तत्थावगमब्भासविग्घफलकम्मे अविणट्ठे संते तदवगमब्भासाणमसंभवादो। ण च कारणपुव्वकालभावि कज्जमत्थि, अणुवलंभादो। जदि जिणिंदणमोक्कारो सुत्तज्झयणविग्घफलकम्ममेत्तविणासओ तो ण सो जीविदावसाणे कायव्वो,

....

हुआ है, जो विसंवाद रहित होनेके कारण केवलज्ञानके समान हैं, तथा वृषभसेनादि गणधर देवों द्वारा जिनकी शब्दरचना की गई है, ऐसे द्रव्य सूत्रोंसे उनके पढ़ने और मनन करने रूप क्रियामें प्रवृत्त हुए सब जीवोंके प्रति समय असंख्यात गुणित श्रेणीसे पूर्व संचित कर्मोंकी निर्जरा होती है ' इस प्रकार विधान होनेसे यह जिननमस्कारात्मक सूत्र व्यर्थ पड़ता है। अथवा, यदि यह सूत्र सफल है तो सूत्रोंका अध्ययन व्यर्थ होगा, क्योंकि, उससे होनेवाला कर्मक्षय इस जिननमस्कारात्मक सूत्रमें ही पाया जाता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सूत्राध्ययनसे तो सामान्य कर्मोंकी निर्जरा की जाती है; और मंगलसे सूत्राध्ययनमें विघ्न करनेवाले कर्मोंका विनाश किया जाता है; इस प्रकार दोनोंका विषय भिन्न है।

शंका—चूंकि सूत्राध्ययनमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले कर्मोंका विनाश सामान्य कर्मोंके विरोधी सूत्राभ्याससे ही हो जाता है, अतएव मंगलसूत्रका आरम्भ करना व्यर्थ क्यों न होगा?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, सूत्रार्थके ज्ञान और अभ्यासमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले कर्मोंका जब तक विनाश न होगा तब तक उसका ज्ञान और अभ्यास दोनों असम्भव हैं। और कारणसे पूर्व कालमें कार्य होता नहीं है, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता।

शंका—यदि जिनेंद्रनमस्कार केवल सूत्राध्ययनमें विघ्न करनेवाले कर्मों मात्रका विनाशक है तो उसे मरण समयमें नहीं करना चाहिये, क्योंकि, उसका उस समयमें

....

१ प्रतिषु ' सव्वसुत्तादो तप्पडण- ' इति पाठः। २ प्रतिषु ' विरोह- ' इति पाठः।

तस्स तत्थ फलाभावादो त्ति ? ण एस दोसो, एत्तियमेत्तं चेव विणासेदि त्ति णियमाभावादो। कधं पुण एसो जिणिंदणमोक्कारो एक्को चेव संतो अणेयकज्जकारओ ? ण, अणेयविहणाण-चरणसहेज्जस्स अणेयकज्जुप्पायणे विरोहाभावादो । उत्तं च—

एसो पंचणमोक्कारो सव्वपावप्पणासओ ।
मंगलेसु अ सव्वेसु पढमं होदि मंगलं[1] ॥ १ ॥ इदि

ण च एसो एक्कल्लओ चेव सव्वकम्मक्खयकरणसमत्थो, णाण-चरणब्भासाणं विहलत्तप्पसंगादो । तदो सव्वकज्जारंभेसु जिणिंदणमोक्कारो कायव्वो, अण्णहा पारद्धकज्ज-णिप्पत्तीए अणुववत्तीदो । उत्तं च —

आदी मंगलकरणं सिस्सा लहु पारया हवंतु त्ति ।
मज्झे अव्वोच्छित्ती विज्जा विज्जाफलं चरिमे[2] ॥ २ ॥

कोई फल नहीं है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, वह केवल सूत्राध्यायनमें विघ्न करने-वाले कर्मोंका ही विनाश करता है, ऐसा कोई नियम नहीं है ।

शंका — तो फिर यह जिनेन्द्रनमस्कार एक ही होकर अनेक कार्योंका करनेवाला कैसे होगा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि अनेक प्रकार ज्ञान व चारित्रकी सहायता युक्त होते हुए उसके अनेक कार्योंके उत्पादनमें कोई विरोध नहीं है । कहा भी है —

यह पंचनमस्कार मंत्र सर्व पापोंका नाश करनेवाला और सब मंगलोंमें प्रथम मंगल है ॥ १ ॥

और यह अकेला ही सब कर्मोंका क्षय करनेमें समर्थ है नहीं, क्योंकि, ऐसा होनेपर ज्ञान और चारित्रके अभ्यासकी विफलताका प्रसंग आवेगा । इस कारण सब कार्योंके आरम्भमें जिनेन्द्रनमस्कार करना चाहिये, क्योंकि, ऐसा करनेके विना प्रारम्भ किये हुए कार्यकी सिद्धि घटित नहीं होती । कहा भी है —

शास्त्रके आदिमें मंगल इसलिये किया जाता है कि शिष्य शीघ्र ही शास्त्रके पार-गामी हों। मध्यमें मंगल करनेसे निर्विघ्न कार्यपरिसमाप्ति और अन्तमें उसके करनेसे विद्या व विद्याके फलकी प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

---

१ मूला. ७, १३.

२ ष. खं. पु. १ पृ. ४०, २०; पढमे मंगलवयणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति। मज्झिम्मे णीविग्घं विज्जा विज्जाफलं चरिमे ॥ ति. प. १, २९.

मंगलं काऊण पारद्धकज्जाणं कहिं पि विग्घुवलंभादो तमकाऊण पारद्धकज्जाणं पि कत्थ वि विग्घाभावदंसणादो जिणिंदणमोक्कारो ण विग्घविणासओ त्ति ? ण एस दोसो, कयाकयभेसयाणं वाहीणमविणास-विणासदंसणेणावगयवियहिचारस्स वि मारिच्चादिगणस्स[1] भेसयत्तुवलंभादो। ओसहाणमोसहत्तं ण विणस्सदि[2], असज्झवाहिवदिरित्तसज्झवाहिविसए चेव तेसिं वावारब्भुवगमादो त्ति चे जदि एवं तो जिणिंदणमोक्कारो वि विग्घविणासओ, असज्झ-विग्घफलकम्ममुज्झिदूण सज्झविग्घफलकम्मविणासे वावारदंसणादो। ण च ओसहेण समाणो जिणिंदणमोक्कारो, णाण-ज्झाणसहायस्स संतस्स णिव्विग्घग्गिस्स अदज्झिंधणाण व[3] असज्झ-विग्घफलकम्माणमभावादो। णाणज्झाणप्पओ णमोक्कारो संपुण्णो, जहण्णो मंदसद्दहणाणुविद्धो बोद्धव्वो; सेसअसंखेज्जलोगभेयभिण्णा मज्झिमा। ण च ते सव्वे समाणफला, अइप्पसंगादो।

....

शंका—मंगल करके प्रारम्भ किये गये कार्योंके कहींपर विघ्न पाये जानेसे, और उसे न करके भी प्रारम्भ किये गये कार्योंके कहींपर विघ्नोंका अभाव देखे जानेसे जिनेन्द्र-नमस्कार विघ्नविनाशक नहीं है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जिन व्याधियोंकी औषध की गई है उनका अविनाश, और जिनकी औषध नहीं की गई है उनका विनाश देखे जानेसे व्यभिचार ज्ञात होनेपर भी मारिच [काली मिरच] आदि औषधि द्रव्योंमें औषधित्व गुण पाया जाता है।

यदि कहा जाय कि औषधियोंका औषधित्व [उनके सर्वत्र अचूक न होनेपर भी] इस कारण नष्ट नहीं होता क्योंकि असाध्य व्याधियोंको छोड़ करके केवल साध्य व्याधियोंके विषयमें ही उनका व्यापार माना गया है, तो जिनेन्द्र-नमस्कार भी [उसी प्रकार] विघ्न विनाशक माना जा सकता है, क्योंकि, उसका भी व्यापार असाध्य विघ्नोंसे उत्पन्न कर्मोंको छोड़कर साध्य विघ्नोंसे उत्पन्न कर्मोंके विनाशमें देखा जाता है।

दूसरी बात यह कि [सर्वथा] औषधके समान जिनेन्द्र-नमस्कार नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकार निर्विघ्न अग्निके होते हुए न जल सकने योग्य इन्धनोंका अभाव रहता है, उसी प्रकार उक्त नमस्कारके ज्ञान व ध्यानकी सहायता युक्त होनेपर असाध्य विघ्नोत्पादक कर्मोंका भी अभाव होता है। ज्ञान-ध्यानात्मक नमस्कारको सम्पूर्ण अर्थात् उत्कृष्ट, एवं मन्द श्रद्धान युक्त नमस्कारको जघन्य जानना चाहिये। शेष असंख्यात लोक प्रमाण भेदोंसे भिन्न नमस्कार मध्यम हैं। और वे सब समान फलवाले नहीं होते, क्योंकि,

....

१ अ-आप्रत्योः 'सारिचादि', काप्रतौ 'सारिवादि' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'विस्सदि' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'अदज्झिंदणाणि व' इति पाठः।

तम्हा ण पुव्वुत्तदोसाणमेत्थ संभवो त्ति सिद्धं ।

अहवा मोक्खट्ठं सुत्तब्भासो कीरदे । मोक्खो वि कम्मणिज्जरादो, सा वि णाणा-विणाभाविझाणचिंताहिंतो, ताओ वि सम्मत्तादो । ण च सम्मत्तेण विरहियाणं णाण-झाणाणम-संखेज्जगुणसेडीकम्मणिज्जराए अणिमित्ताणं णाण-झाणववएसो पारमत्थिओ अत्थि, अवगयट्ठ-सद्दहणणाणे अमोक्खट्ठुज्झमे च तव्ववएसब्भुवगमे संते अइप्पसंगादो । तम्हा सम्माइट्ठिणा सम्माइट्ठीणं चेव वक्खाणेयव्वं सुत्तमिदि जाणावणट्ठं जिणणमोक्कारो कओ ।

अवगयणिवारणमुहेण पयदत्थपरूवणट्ठं णिक्खेवो कीरदे । तं जहा— णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावभेएण चउव्विहा जिणा । जिणसद्दो णामजिणो । ठवणजिणो सब्भावासब्भावट्ठवण-भेएण दुविहो । जिणायारसंठियं दव्वं सब्भावट्ठवणजिणो । [जिणायारविरहियं पि जिणरूपेण कप्पियं दव्वं असब्भावट्ठवणजिणो ।] दव्वजिणो आगम-णोआगमभेएण दुविहो । जिण-पाहुडजाणओ अणुवजुत्तो अविणट्ठसंसकारो आगमदव्वजिणो । णोआगमदव्वजिणो जाणुय-सरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण तिविहो । तत्थ जाणुयसरीरणोआगमदव्वजिणो भविय-वट्टमाण-

---

ऐसा माननेपर अतिप्रसंग दोष आता है । इस कारण यहां पूर्वोक्त दोषोंकी सम्भावना नहीं है, यह सिद्ध हुआ ।

अथवा मोक्षके निमित्त सूत्रोंका अभ्यास किया जाता है । मोक्ष भी कर्मोंकी निर्जरासे होता है । वह कर्मनिर्जरा भी ज्ञानके अविनाभावी ध्यान और चिन्तनसे होती है । ज्ञानके अविनाभावी ध्यान और चिन्तन भी सम्यक्त्वसे होते हैं । सम्यक्त्वसे रहित ज्ञान-ध्यानके असंख्यात गुणी श्रेणीरूप कर्मनिर्जराके कारण न होनेसे 'ज्ञान-ध्यान' यह संज्ञा वास्तविक नहीं है, क्योंकि, अर्थश्रद्धानसे रहित ज्ञान और मोक्षार्थ न किये जानेवाले उद्यममें वह संज्ञा स्वीकार करनेपर अतिप्रसंग होता है । इसीलिये सम्यग्दृष्टि द्वारा सम्यग्दृष्टियोंको ही सूत्रका व्याख्यान करना चाहिये, इस वातके ज्ञापनार्थ जिननमस्कार किया गया है ।

अप्रकृतका निवारण करते हुए प्रकृत अर्थके प्ररूपणार्थ निक्षेप किया जाता है । वह इस प्रकार है— नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे जिन चार प्रकार हैं । 'जिन' शब्द नाम जिन है । स्थापना जिन सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापनाके भेदसे दो प्रकार हैं । जिन भगवान्‌के आकार रूपसे स्थित द्रव्य सद्भावस्थापना जिन है । [जिनाकारसे रहित जिस द्रव्यमें जिन भगवान्‌की कल्पना की जाय वह द्रव्य असद्भाव-स्थापना जिन है ।] द्रव्य जिन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है । जिन-प्राभृतका जानकार, अनुपयुक्त और संस्कारके विनाशसे रहित जीव आगमद्रव्य जिन है । नोआगमद्रव्य जिन ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमें

समुज्झादभेएण तिविहो । कधमेदेसिं तिण्णं सरीराणं णिच्चेयणाणं जिणव्ववएसो ? ण, धणुह-सहचारपज्जाएण तीदाणागय-वट्टमाणमणुआणं धणुहववएसो व्व जिणाहारपज्जाएण तीदाणागय-वट्टमाणसरीराणं दव्वजिणत्तं पडि विरोहाभावादो । आगमसण्णा अणुवजुत्तजीवदव्वस्सेव एत्थ किण्ण कदा, उवजोगाभावं पडि विसेसाभावादो ? ण, एत्थ आगमसंसकाराभावेण तदभावादो । भविस्सकाले जिणपज्जाएण परिणमंतओ भवियदव्वजिणो । भविस्सकाले जिण-पाहुडजाणयस्स भूदकाले णादूण विस्सरिदस्स य णोआगमभवियदव्वजिणत्तं किण्ण इच्छिज्जदे ? ण, आगमदव्वस्स आगमसंसकारपज्जायस्स आहारत्तणेण तीदाणागद-वट्टमाणस्स णोआगम-दव्वत्तविरोहादो । तव्वदिरित्तदव्वजिणो सच्चित्ताचित्त-तदुभयभेएण तिविहो । करह-हय-हत्थीणं जेदारो सचित्तदव्वजिणा । हिरण्ण-सुवण्ण-मणि-मोत्तियादीणं जेदारो अचित्तदव्वजिणा । ससुवण्णकण्णादीणं जेदारो सचित्ताचित्तदव्वजिणा । आगम-णोआगमभेएण दुविहो भावजिणो ।

ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्य जिन भव्य, वर्तमान और समुज्झितके भेदसे तीन प्रकार है ।

शंका—इन अचेतन तीन शरीरोंके ' जिन ' संज्ञा कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकार धनुषसहचाररूपपर्यायसे अतीत, अनागत और वर्तमान मनुष्योंकी ' धनुष ' संज्ञा होती है, उसी प्रकार जिनाधाररूप पर्यायसे अतीत, अनागत और वर्तमान शरीरोंके द्रव्य जिनत्वके प्रति कोई विरोध नहीं है

शंका—अनुपयुक्त जीवद्रव्यके समान यहां आगम संज्ञा क्यों नहीं की, क्योंकि, दोनोंमें उपयोगाभावकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है ?

समाधान—नहीं की, क्योंकि, यहां आगमसंस्कारका अभाव होनेसे उक्त संज्ञाका अभाव है ।

भविष्य कालमें जिन पर्यायसे परिणमन करनेवाला भावी द्रव्य जिन है ।

शंका—भविष्य कालमें जिनप्राभृतको जाननेवाले व भूत कालमें जानकर विस्मरणको प्राप्त हुए जीवके नोआगमभाविद्रव्यजिनत्व क्यों नहीं स्वीकार करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आगमसंस्कार पर्यायका आधार होनेसे अतीत, अनागत व वर्तमान आगमद्रव्यके नोआगमद्रव्यत्वका विरोध है ।

तद्व्यतिरिक्तद्रव्य जिन सचित्त, अचित्त और तदुभयके भेदसे तीन प्रकार है । ऊंट, घोड़ा और हाथियोंके विजेता सचित्तद्रव्य जिन हैं । हिरण्य, सुवर्ण, मणि और मोती आदिकोंके विजेता अचित्तद्रव्य जिन हैं । सुवर्ण सहित कन्यादिकोंके विजेता सचित्ताचित्त द्रव्य जिन हैं ।

आगम और नोआगमके भेदसे भाव जिन दो प्रकार है । जिनप्राभृतका जानकार

जिणपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावजिणो । णोआगमभावजिणो उवजुत्तो तप्परिणदो त्ति दुविहो । जिणसरूवपरिछेदिणाणपरिणदो उवजुत्तभावजिणो । जिणपज्जायपरिणदो तप्परिणय-भावजिणो ।

एदेसु जिणेसु कस्स एसो कओ णमोक्कारो ? तप्परिणयभावजिणस्स ठवणाजिणस्स य । अणंतणाण-दंसण-वीरिय-विरइ-खइयसम्मत्तादिगुणपरिणयजिणस्स णमोक्कारो कीरउ णाम, तत्थ देवत्तुवलंभादो । ण ठवणाए जिणगुणविरहियाए, तत्थ विग्घफलकम्मविणासणसत्तीए अभावादो त्ति ? तत्थेदं ताव संपहारेमो — ण ताव जिणो सगवंदणाए परिणयाणं चेव जीवाणं पावस्स पणासओ, वीयरायत्तस्साभावप्पसंगादो । ण सव्वेसिं पावमवहरइ, जिण-णमोक्कारस्स विहलत्तप्पसंगादो । परिसेसत्तणेण जिणपरिणयभावो जिणगुणपरिणामो च पाव-पणासओ त्ति इच्छियव्वो, अण्णहा कम्मक्खयाणुववत्तीदो । सो वि जिणगुणपरिणामभावो जिणिंदादो व्व अज्झारोवियाणंतणाण-दंसण-वीरिय-विरइ-सम्मत्तादिगुणाए अज्झाहारोवबलेणेव जिणेण सह एयत्तमुवगयाए ठवणाए वि समुप्पज्जइ त्ति जिणिंदणमोक्कारो व्व जिणट्ठवण-

उपयुक्त जीव आगमभाव जिन है । नोआगमभाव जिन उपयुक्त और तत्परिणतके भेदसे दो प्रकार है । जिनस्वरूपको ग्रहण करनेवाले ज्ञानसे परिणत जीव उपयुक्तभावजिन है । जिनपर्यायसे परिणत जीव तत्परिणतभावजिन है ।

शंका — इन जिनोंमें किस जिनको यह नमस्कार किया गया है ?

समाधान — तत्परिणतभाव जिन और स्थापना जिनको यह नमस्कार किया गया है ।

शंका — अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, विरति और क्षायिक सम्यक्त्वादि गुणोंसे परिणत जिनको भले ही नमस्कार किया जाय, क्योंकि, उसमें देवत्व पाया जाता है । किन्तु जिणगुणसे रहित स्थापनाकी अपेक्षा नमस्कार करना ठीक नहीं है, क्योंकि, उसमें विघ्नोत्पादक कर्मोंके विनाश करनेकी शक्तिका अभाव है ?

समाधान — उक्त शंका होनेपर यह परिहार करते हैं — जिन देव अपनी वन्दनामें परिणत जीवोंके ही पापके विनाशक नहीं हैं, क्योंकि, ऐसा होनेपर उनमें वीतरागताके अभावका प्रसंग आवेगा । न वे सब जीवोंके पापको नष्ट करते हैं, क्योंकि, ऐसा होनेपर जिननमस्कारकी विफलताका प्रसंग आता है । तब पारिशेषरूपसे जिनपरिणत भाव और जिनगुणपरिणामको पापका विनाशक स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि, इसके विना कर्मोंका क्षय घटित नहीं होता । वह भी जिणगुणपरिणाम भाव जिनेन्द्रके समान अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, विरति और सम्यक्त्वादि गुणोंके अध्यारोपसे युक्त और अध्याहारके बलसे ही जिनके साथ एकताको प्राप्त हुई स्थापनासे भी उत्पन्न होता है । इसी कारण

णमोक्कारो वि पावपणासओ त्ति किण्ण इच्छिज्जदि, विसेसाभावादो। णाम-दव्व-णोआगम-उवजुत्तभावजिणाणं णमोक्कारो किण्ण कीरदे ? ण, तेसिं जिणत्त-जिणट्ठवणत्ताभावादो। कुदो ? ण ताव जिणत्तं, अणंतणाणादिजिणणिबन्धणगुणविरहियाणं जिणत्तविरोहादो। ण तेसिं ठवणभावो वि, तत्थ जिणत्तारोवाभावादो। भावे वा ण ते णामादओ, ठवणाए तेसिमंतब्भावादो। ण चोभयवज्जिएसु णमोक्कारो पावपणासओ, अइप्पसंगादो। जदि एवं तो तिकालविसेसियमुणि-जिणसरीरुज्जंत-चंपा-पावाणयरादिणमोक्कारो णिप्फलो होदि त्ति ण संकणिज्जं, तेसिं सब्भावासब्भावट्ठवणंतब्भूदाणं णमोक्कारस्स णिप्फलत्तविरोहादो। सब्भावासब्भावट्ठवणणमोक्कारे फलवंते संते सव्वेसिं जिणट्ठवणत्तमावण्णाणं णमोक्कारो फलवंतो जायदे। उत्तं च—

जिनेन्द्रनमस्कारके समान जिनस्थापना नमस्कार भी पापका विनाशक है, ऐसा क्यों नहीं स्वीकार करते, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है।

शंका — नाम जिन, द्रव्य जिन और नोआगमउपयुक्तभाव जिनको नमस्कार क्यों नहीं करते ?

समाधान — नहीं करते, क्योंकि, उनमें जिनत्व और जिनस्थापनात्वका अभाव है। कारण कि उन तीनों जिनोंके जिनत्व तो बनता नहीं है, क्योंकि, जिनत्वके कारणभूत अनन्त ज्ञानादि गुणोंसे रहित होनेसे उनके जिनत्वका विरोध है। स्थापनापना भी उनके नहीं है, क्योंकि, उनमें जिनत्वके आरोपका अभाव है। और यदि आरोप है तो वे नामादिक जिन नहीं हो सकते, क्योंकि, ऐसी अवस्थामें उनका स्थापनामें अन्तर्भाव होता है। और जिनत्व व जिनस्थापनासे रहित अन्य जिनोंमें किया गया नमस्कार पापप्रणाशक नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा होनेमें अतिप्रसंग दोष आता है।

शंका — यदि ऐसा है तो तीन कालोंसे विशेषित मुनि व जिनका शरीर, एवं ऊर्जयन्त, चम्पापुर और पावानगर आदिको किया जानेवाला नमस्कार निष्फल होगा ?

समाधान — ऐसी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि, उनके सद्भावस्थापना या असद्भावस्थापनाके अन्तर्भूत होनेसे नमस्कारकी निष्फलताका विरोध है। सद्भावस्थापनानमस्कार और असद्भावस्थापनानमस्कारके फलवान् होनेपर जिनस्थापनात्वको प्राप्त सबोंको किया गया नमस्कार फलवान् होता है। कहा भी है—

१ प्रतिषु 'जिणत्तमणंतणाणा जिण' ' इति पाठः।

आलंबणेहि भरिओ लोगो झाइदुमणस्स खवयस्स ।
जं जं मणसा पस्सइ तं तं आलंबणं होई[1] ॥ ३ ॥

बुद्धीए जले थले आयासे वा संकप्पिओ जिणो चउव्विहेसु[2] णिक्खेवेसु कत्थ णिवददे? णोआगमभावणिक्खेवे, उवजुत्तसरूवादो । ण च एसा[3] ठवणा होदि, अण्णम्हि दव्वे जिण-गुणारोवाभावादो । तम्हा एदस्स वि णमोक्कारो फलवंतो त्ति सिद्धं ।

एदेण पंचगुरूणं तट्ठवणाणं च णमोक्कारो कदो, सव्वेसिमेत्थ संभवादो । तं जहा— जिणा दुविहा सयल-देसजिणभेएण । खवियघाइकम्मा सयलजिणा । के ते ? अरहंत-सिद्धा । अवरे आइरिय-उवज्झाय-साहू देसजिणा

ध्यानमें मन लगानेवाले क्षपकके लिये यह लोक ध्यानके आलम्बनोंसे परिपूर्ण है। ध्यानमें ध्याता जो जो मनसे देखता है वह वह आलम्बन हो जाता है ॥ ३ ॥

शंका— बुद्धिसे जलमें, स्थलमें अथवा आकाशमें संकल्पित जिन चार प्रकार निक्षेपोंमेंसे किसमें अन्तर्भूत है ?

समाधान—नोआगमभावनिक्षेपमें, क्योंकि, वह उपयुक्त स्वरूप है। यह स्थापना नहीं है, क्योंकि, अन्य द्रव्यमें जिनगुणोंके आरोपणका अभाव है। इस कारण इसको भी किया गया नमस्कार सफल है, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—काष्ठ व वस्त्रादि रूप तदाकार या अतदाकार वस्तुमें जो किसी अन्य पदार्थकी कल्पना की जाती है वह स्थापना निक्षेप कहा जाता है। इस प्रकार स्थापनामें दो पदार्थोंका होना आवश्यक है। परन्तु यहां चूंकि बुद्धिसे जल-थलादिमें की जानेवाली जिनकी कल्पनामें दो पदार्थोंका अस्तित्व है नहीं, अतः वह स्थापना नहीं कहला सकती। किन्तु जिनस्वरूपको ग्रहण करनेवाले ज्ञानसे परिणत होनेके कारण उसे उपयुक्त नोआगमभाव जिन कहना ही उचित है। (देखो पीछे पृ. ८)।

इस सूत्रके द्वारा पांच गुरुओं व उनकी स्थापनाओंको भी नमस्कार किया गया है, क्योंकि, यहां सबोंकी सम्भावना है । वह इस प्रकारसे— सकल जिन और देश जिनके भेदसे जिन दो प्रकार हैं। जो घातिया कर्मोंका क्षय कर चुके हैं, वे सकल जिन हैं। वे कौन हैं ? अरहन्त और सिद्ध। इतर आचार्य, उपाध्याय और

---

१ म. आ. १८७६. २ काप्रतौ ' चउव्विहो एसु ' इति पाठः ।
३ अ-काप्रत्योः ' एसो ' इति पाठः ।

तिव्वकसाइंदिय-मोहविजयादो । होदु णाम सयलजिणणमोक्कारो पावप्पणासओ, तत्थ सव्वगुणाणमुवलंभादो । ण देसजिणाणमेदेसु तदणुवलंभादो त्ति ? ण, सयलजिणेसु व देस-जिणेसु तिण्हं रयणाणमुवलंभादो । ण च तिरयणवदिरित्ता देवत्तणिबंधणा सयलजिणे के वि गुणा संति, अणुवलंभादो । तदो सयलजिणणमोक्कारो व्व देसजिणणमोक्कारो वि सयलकम्म-क्खयकारओ त्ति दट्ठव्वो । सयलासयलजिणट्ठियतिरयणाणं ण समाणत्तं, संपुण्णासंपुण्णाणं समाणत्तविरोहादो । संपुण्णतिरयणकज्जमसंपुण्णतिरयणाणि ण करेंति, असमाणत्तादो त्ति ण, णाण-दंसण-चरणाणमुप्पण्णसमाणत्तुवलंभादो । ण च असमाणाणं कज्जं असमाणमेव त्ति णियमो अत्थि, संपुण्णग्गिणा कीरमाणदाहकज्जस्स तदवयवे वि उवलंभादो, अमियघडसएण कीरमाण-णिव्विसीकरणादिकज्जस्स अमियस्स चुलुवे वि उवलंभादो वा । ण च तिरयणाणं देस-जिणट्ठियाणं सयलजिणट्ठिएहि भेओ, बज्झंतरंगासेसत्थपडिबद्धत्तणेण समाणत्तुवलंभादो । ण

साधु तीव्र कषाय, इन्द्रिय एवं मोहके जीत लेनेके कारण देश जिन हैं ।

शंका—सकलजिननमस्कार पापका नाशक भले ही हो, क्योंकि, उनमें सब गुण पाये जाते हैं । किन्तु देशजिनोंको किया गया नमस्कार पापप्रणाशक नहीं हो सकता, क्योंकि, इनमें वे सब गुण नहीं पाये जाते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सकल जिनोंके समान देश जिनोंमें भी तीन रत्न पाये जाते हैं । और तीन रत्नोंके सिवाय सकल जिनमें देवत्वके कारणभूत अन्य कोई भी गुण हैं नहीं, क्योंकि, वे पाये नहीं जाते । इसलिये सकल जिनोंके नमस्कारके समान देश जिनोंका नमस्कार भी सब कर्मोंका क्षयकारक है, ऐसा निश्चय करना चाहिये ।

शंका—सकल जिनों और देश जिनोंमें स्थित तीन रत्नोंके समानता नहीं हो सकती, क्योंकि, सम्पूर्ण और असम्पूर्णकी समानताका विरोध है । सम्पूर्ण रत्नत्रयका कार्य असम्पूर्ण रत्नत्रय नहीं करते, क्योंकि, वे असमान हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञान, दर्शन और चारित्रके सम्बन्धमें उत्पन्न हुई समानता उनमें पायी जाती है । और असमानोंका कार्य असमान ही हो ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, सम्पूर्ण अग्निके द्वारा किया जानेवाला दाह कार्य उसके अवयवमें भी पाया जाता है; अथवा अमृतके सैकड़ों घड़ोंसे किया जानेवाला निर्विषी-करणादि कार्य चुल्लू भर अमृतमें भी पाया जाता है । इसके अतिरिक्त देश जिनोंमें स्थित तीन रत्नोंका सकल जिनोंमें स्थित रत्नत्रयसे कोई भेद भी नहीं है, क्योंकि, बाह्य और अभ्यन्तर समस्त पदार्थोंसे संबद्ध होनेकी अपेक्षा समानता पायी जाती है । और आविर्भाव

च आविब्भावाणाविब्भावकओ विसेसो तेसिं सरूवेण समाणत्तस्स विणासओ, आविब्भूदसूरमंडलस्स अणाविब्भूदसूरमंडलस्स सूरमंडलत्तणेण समाणत्तुवलंभादो।

एवं दव्वट्ठियजणाणुग्गहट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्ताणि भणदि—

णमो ओहिजिणाणं ॥ २ ॥

ओहिसद्दो अप्पाणम्मि वट्टदे, ' ओहि त्ति आह ' इदि एत्थ अप्पाणम्मि पउत्तिदंसणादो। सब्भावासब्भावट्ठवणासु वि वट्टदे, 'एसो सो ओहि' त्ति आरोवबलेण ओहिणा एगत्तं गयदव्वाणमुवलंभादो। कत्थ वि मज्जाए वट्टदे, जहा 'माणुसखेत्तोही माणुसुत्तरसेलो', 'लोगोही तणुवायपेरंतो' त्ति। कत्थ वि णाणे वट्टदे 'ओहिणा जाणदि' त्ति। एत्थ णाणे वट्टमाणो ओहिसद्दो घेत्तव्वो। मज्जाए रूढो ओहिसद्दो कधं णाणे वट्टदे ? ण, उवयारेण असिसहिचरियस्स

व अनाविर्भावसे किया गया भेद स्वरूपसे उनकी समानताका विनाशक नहीं है, क्योंकि, आविर्भूत सूर्यमण्डल और अनाविर्भूत सूर्यमण्डलके सूर्यमण्डलत्वकी अपेक्षा समानता पायी जाती है।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक जनोंके अनुग्रहार्थ गौतम भट्टारक महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके आदिमें नमस्कार करके पर्यायार्थिकनय युक्त शिष्योंके अनुग्रहार्थ उत्तर सूत्रोंको कहते हैं—

अवधि जिनोंको नमस्कार हो ॥ २ ॥

अवधि शब्द आत्माके अर्थमें होता है, क्योंकि, ' अवधि इस प्रकार आत्मा कहा जाता है'(?) इस प्रकार यहां आत्मा अर्थमें अवधि शब्दकी प्रवृत्ति देखी जाती है। सद्भाव और असद्भाव रूप स्थापनामें भी यह अवधि शब्द रहता है, क्योंकि, ' यह वह अवधि है ' इस प्रकार आरोपके बलसे अवधिके साथ एकताको प्राप्त द्रव्य पाये जाते हैं। कहींपर मर्यादाके अर्थमें भी इस शब्दका प्रयोग होता है; जैसे, मानुषक्षेत्रकी अवधि (मर्यादा) मानुषोत्तर पर्वत है; लोककी अवधि तनुवात पर्यन्त है। कहींपर ज्ञान अर्थमें भी यह शब्द आता है; जैसे अवधि (ज्ञान) से जानता है। यहांपर अवधि शब्दको ज्ञानके अर्थमें ग्रहण करना चाहिये।

शंका—मर्यादा अर्थमें रूढ़ अवधि शब्द ज्ञानके अर्थमें कैसे रहता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकार असिसे सहचरित पुरुषके लिये उपचारसे

पुरिसस्स असित्तमिव ओहिसहचरियस्स णाणस्स ओहित्ताविरोहादो । अथवा अवाग्धानाद्-वधिरिति[1] व्युत्पत्तेर्ज्ञानस्य अवधित्वं घटते । एदेण वक्खाणेण मदि-सुदणाणाणमोहित्तमोसारिदं । पुव्विल्लवक्खाणेण मदि-सुद-मणपज्जवणाणाणमोहिसहचरिदाणमोहिववएसो किण्ण पसज्जदे ? ण, तेसु तहाविहरूढीए णिमित्ताभावादो । ओहिणाणे ओहिववहारो किण्णिमित्तो ? ओहि-णाणादो हेट्ठिमसव्वणाणाणि सावहियाणि, उवरिमकेवलणाणं णिरवहियमिदि जाणावणट्ठमोहि-

....

असि कहनेमें कोई विरोध नहीं है, उसी प्रकार अवधिसे सहचरित ज्ञानको अवधि कहनेमें भी कोई विरोध नहीं आता ।

अथवा, 'अवाग्धानात् अवधिः' अर्थात् जो अधोगत पुद्गलको अधिकतासे ग्रहण करे वह अवधि है, इस व्युत्पत्तिसे ज्ञानको अवधिपना घटित होता है । इस व्याख्यानसे मति और श्रुत ज्ञानको अवधित्वका निराकरण किया गया है ।

शंका — पूर्वोक्त व्याख्यानसे मति, श्रुत और मनःपर्यय ज्ञानको अवधिसे सहचरित होनेके कारण अवधि संज्ञाका प्रसंग क्यों न आवेगा ?

समाधान — नहीं आवेगा, क्योंकि, उन ज्ञानोंमें उस प्रकार रूढ़िका कोई निमित्त नहीं है ।

शंका — अवधि ज्ञानमें 'अवधि' शब्दके व्यवहारका क्या निमित्त है ?

समाधान — अवधिज्ञानसे नीचेके सब ज्ञान अवधि सहित और उपरिम केवलज्ञान अवधिसे रहित है, यह बतलानेके लिये 'अवधि' शब्दका व्यवहार किया गया है ।

विशेषार्थ — यहां शंका उत्पन्न होती है कि मनःपर्यय ज्ञान भी तो सावधि है । परन्तु वह अवधिज्ञानसे नीचेका ज्ञान नहीं है, किन्तु उससे ऊपरका है । अतः "अवधि-ज्ञानसे नीचेके सब ज्ञान अवधि सहित और उपरिम केवलज्ञान अवधिसे रहित है, यह बत-लानेके लिये अवधि शब्दका व्यवहार किया गया है ।" यह समाधान ठीक नहीं मालूम होता ? इस शंकाका समाधान यह है कि मनःपर्ययज्ञानका विषय चूंकि अवधिज्ञानकी अपेक्षा कम है अतः वह भी विषयकी अपेक्षा अवधिज्ञानसे नीचेका ही ज्ञान है । इसलिये उपर्युक्त समाधान संगत ही है । 'मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम्' इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्रादिमें जो मनःपर्ययज्ञानका अवधिज्ञानसे ऊपर निर्देश किया गया है उसका कारण संयमका सहचारित्व है । (देखो कसायपाहुड भा. १ पृ. १७)

....

१ अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधिः । स. सि. १, ९. अवधिशब्दोऽधःपर्यायवचनः, यथाधः-क्षेपणमवक्षेपणम्, इत्यधोगतभूयोद्रव्यविषयो ह्यवधिः । त. रा. वा. १, ९, ३. अधस्ताद्बहुतरविषयग्रहणादवधि-रुच्यते । देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तमनरकपर्यन्तं पश्यन्ति, उपरि स्तोकं पश्यन्ति निजविमानध्वजदण्डपर्यन्त-मित्यर्थः । श्रुतसागरी १, ९.

ववहारो कदो[1]। एसो दव्वट्ठियणयणिद्देसो ण होदि, पज्जवट्ठियणयाहियारादो। परम-सव्वाणंतोहीणं पि गहणं ण होदि, उवरि तेसिं पुधसुत्तदंसणादो। तदो देसोहीए एसो णिद्देसो त्ति दट्ठव्वो। कधमोहि त्ति णामेगदेसेण देसोही अवगम्मदे ? ण, सत्यहामा भामा, भीमसेणो सेणो, बलदेवो देवो इच्चाईसु णामेगदेसादो वि णामिल्लविसयणाणुप्पत्तिदंसणादो। सा च देसोही तिविहा— जहण्णा उक्कस्सा अजहण्णाणुक्कस्सा चेदि। तत्थ जहण्णदेसोहीए अण्णहापमाणपरूवणोवायाभावादो जहण्णविसयपरूवणामुहेण जहण्णोहीए पमाणपरूवणा कीरदे। तं जहा-- विसओ चउव्विहो दव्व-खेत्त-काल-भावभेएण। तत्थ जहण्णदव्वपमाणे भण्णमाणे सगविस्ससोवचयसहिदकम्मविरहिद-ओरालियसरीरदव्वे सविस्ससोवचए घणलोगेण भागे हिदे तत्थ एगभागो जहण्णोहिदव्वं होदि[2]। ओरालियसरीरं सोवचयं भज्जमाणं घणलोगो चेव

यह द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा निर्देश नहीं है, क्योंकि, पर्यायार्थिक नयका अधिकार है। यहां परमावधि, सर्वावधि और अनन्तावधिका भी ग्रहण नहीं होता, क्योंकि, आगे इनके पृथक् सूत्र देखे जाते हैं। इसी कारण यह देशावधिका निर्देश है ऐसा समझना चाहिये?

शंका—' अवधि ' इस नामके एक देशसे देशावधि कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि भामासे सत्यभामा, सेनसे भीमसेन और देवसे बलदेव, इत्यादिकोंमें नामके एक देशसे भी नामवालोंको विषय करनेवाले ज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है।

वह देशावधि तीन प्रकार है— जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्यानुत्कृष्ट। उनमें चूंकि जघन्य अवधिविषयकी प्रमाणप्ररूपणाके विना जघन्य देशावधिकी प्रमाण-प्ररूपणाका कोई उपाय है नहीं, अतः जघन्य विषयकी प्ररूपणा करते हुए जघन्य अवधिके प्रमाणकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे विषय चार प्रकार है। उनमें जघन्य द्रव्यका प्रमाण कहनेपर अपने विस्रसोपचय सहित कर्मसे रहित व अपने विस्रसोपचय सहित औदारिकशरीर (नोकर्म) द्रव्यमें घनलोकका भाग देनेपर उसमें एक भाग प्रमाण जघन्य अवधि द्रव्य होता है।

शंका—विस्रसोपचय सहित औदारिकशरीर भाज्य राशि और घनलोक ही

---

१ क. पा. भा. १ पृ. १७.

२ णोकम्मुरालसंचं मज्झिमजोगज्जियं सविस्सचयं। लोयविभत्तं जाणदि अवरोही दव्वदो णियमा ॥ गो. जी. ३७७.

भागहारो होदि त्ति कुदो णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो । ओरालियसरीरं सविस्स-सोवचयं जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तभेएण तिविहं । तत्थ किं[1] घणलोगेण छिज्जदि ? ण जहण्णं ण उक्कस्सदव्वं, किंतु तव्वदिरित्तदव्वं जिणदिट्ठभावं घणलोगेण छिज्जदि । कुदो ? खविद-गुणिदविसेसणविसिट्ठदव्वणिद्देसाभावादो । ण च संखाए चेव एस णियमो त्ति पच्चवट्ठाणं कादुं जुत्तं, एत्थ वि संखाहियारादो । जहण्णोहिणाणं किमेदमेव दव्वं जाणदि अह अण्णं पि ? जदि एदमेव जाणदि तो अप्पणो ओहिखेत्तब्भंतरे ट्ठियाणं जहण्णदव्वक्खंधादो परमाणुत्तर-दुपरमाणुत्तरादिकमेण ट्ठियखंधाणमपरिच्छेदयं होज्ज । ण च एवं, सगखेत्तब्भंतरे ट्ठियाणमणंत-भेदभिण्णखंधाणमपरिच्छित्तिविरोहादो[2] । अह परमाणुत्तरे वि खंधे जइ जाणइ णेदमेव जहण्णोहिदव्वमण्णेसिं पि जहण्णोहिदव्वाणं दंसणादो त्ति ? को एवं भणदि जहण्णोहिदव्व-

भागहार होता है, यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान - यह आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है ।

शंका — औदारिकशरीर विस्रसोपचय सहित जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमें किसे घनलोकसे भाजित किया जाता है ?

समाधान — न तो जघन्य द्रव्यको और न उत्कृष्ट द्रव्यको घनलोकसे भाजित किया जाता है, किन्तु जिन भगवान्‌से देखा गया है स्वरूप जिसका ऐसा तद्व्यतिरिक्त द्रव्य घनलोकसे भाजित किया जाता है । कारण कि क्षपित व गुणित विशेषणसे विशिष्ट द्रव्यके निर्देशका अभाव है । संख्यामें ही यह नियम है ऐसा प्रत्यवस्थान (समाधान) करना भी उचित नहीं है, क्योंकि, यहां भी संख्याका अधिकार है ।

शंका — जघन्य अवधिज्ञान क्या इसी द्रव्यको जानता है अथवा अन्यको भी ? यदि इसे ही जानता है तो अपने अवधिक्षेत्रके भीतर स्थित जघन्य द्रव्यस्कन्धसे एक परमाणु अधिक, दो परमाणु अधिक इत्यादि क्रमसे स्थित स्कन्धोंका ग्राहक न हो सकेगा । और ऐसा है नहीं, क्योंकि, अपने क्षेत्रके भीतर स्थित अनन्त भेदोंसे भिन्न स्कन्धोंके ग्रहण न होनेका विरोध है । यदि परमाणु अधिक स्कन्धोंको भी वह जानता है तो यही जघन्य अवधिद्रव्य न होगा, क्योंकि, अन्य भी जघन्य अवधिद्रव्य देखे जाते हैं ?

समाधान — ऐसा कौन कहता है कि जघन्य अवधिद्रव्य एक प्रकार है । किन्तु

१ प्रतिषु ' तं ' इति पाठः ।

२ तज्जघन्यपुद्गलस्कंधस्योपरि एक-द्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कंधान् न जानातीति न वाच्यम्, सूक्ष्म-विषयज्ञानस्य स्थूलाववोधने सुघटत्वात् । गो. जी. ३८२, जी. प्र. टीका.

मेयवियप्पमिदि, किंतु अणंतवियप्पं । तेसु अणंतवियप्पजहण्णोहिखंधेसु अइजहण्णो एसो खंधो वरूविदो । एदम्हादो एग-दो-तिण्णिआदिपरमाणूण खंधा देसोहीए जहण्णियाए अविसया, जहण्णोहिविसयदव्वक्खंधब्भाहिरे अवट्ठाणादो । जहण्णोहिविसयउक्कस्सक्खंधपमाणं किं ? जहण्णोहिखेत्तब्भंतरे जो सम्माइ पोग्गलक्खंधो सो तस्स उक्कस्सदव्वं । तत्तो एग-दो-तिण्णिआदि जाव अणंतपरमाणू सगुक्कस्सदव्वसंबद्धा वि संता ण जहण्णोहिणाणपरिच्छेज्जा, ओहिणाणुज्जोवबज्झखेत्ते अवट्ठाणादो । एवं जहण्णोहिदव्वपरूवणा कदा ।

संपहि तस्स खेत्तपरूवणा कीरदे— पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाएण उस्सेहघणंगुले भागे हिदे एगभागो देसोहिजघण्णखेत्तं । कुदो एदं णव्वदे ?

ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणिगोदजीवस्स ।
जद्देही तद्देही जहण्णिया खेत्तदो ओही[1] ॥ ४ ॥

वह अनन्त विकल्परूप है । उन अनन्त विकल्परूप जघन्य अवधिस्कन्धोंमें यह स्कन्ध अति जघन्य कहा गया है । इस स्कन्धसे एक, दो, तीन आदि परमाणुओंके स्कन्ध जघन्य देशावधिके विषय नहीं हैं, क्योंकि, वे जघन्य अवधिके विषयभूत द्रव्यस्कन्धके बाहिर अवस्थित हैं ।

शंका—जघन्य अवधिके विषयभूत उत्कृष्ट स्कन्धका प्रमाण क्या है ?

समाधान—जघन्य अवधिक्षेत्रके भीतर जो पुद्गल स्कन्ध समाता है वह उसका उत्कृष्ट द्रव्य है । उससे एक, दो, तीन आदि अनन्त परमाणु तक अपने उत्कृष्ट द्रव्यसे सम्बद्ध होते हुए भी जघन्य अवधिज्ञानके द्वारा जानने योग्य नहीं हैं, क्योंकि, वे अवधिज्ञानके उद्योतसे बाह्य क्षेत्रमें स्थित हैं । इस प्रकार जघन्य अवधिद्रव्यकी प्ररूपणा की गई है ।

अब देशावधिज्ञानकी क्षेत्रप्ररूपणा की जाती है— उत्सेध घनाङ्गुलमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण देशावधिका जघन्य क्षेत्र होता है ।

शंका— यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान— नियमसे सूक्ष्म निगोद जीवकी जितनी जघन्य अवगाहना होती है उतना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य अवधि है ॥ ४ ॥

१ सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि । अवरोगाहणमाणं जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ॥ गो. जी. ३७८. जावइया तिसमयाहारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स । ओगाहणा जहण्णा ओहीखेत्तं जहण्णं तु ॥ विशे. भा. ५९१.

त्ति वग्गणासुत्तादो णव्वदे । सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणा उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो त्ति कधं णव्वदे ? वेयणाए उवरिमभण्णमाणओगाहणप्पाबहुगादो णव्वदे । तं जहा—

“ सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तसस्स जहण्णिया ओगाहणा । सुहुमवाउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमआउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरवाउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरआउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । [णिगोदपदिट्ठिदअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा ।] बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्तयस्स

....

इस वर्गणासूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—सूक्ष्म निगोदजीवकी जघन्य अवगाहना उत्सेध घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—वेदना अनुयोगद्वारमें आगे कहे जानेवाले अवगाहनाके अल्पबहुत्वसे जाना जाता है । वह इस प्रकार है—

“ सूक्ष्म निगोदजीव अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना सबसे स्तोक है । सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । सूक्ष्म तेजकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । बादर वायुकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । बादर तेजकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । बादर अप्कायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । बादर निगोदजीव अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । [निगोदप्रतिष्ठित अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ।] बादर वनस्पति-

जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । पंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमणिगोदजीव [णिव्वत्ति-] पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । सुहुमवाउकाइयपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । सुहुमतेउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव [णिव्वत्ति-] अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव [णिव्वत्ति-] पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । सुहुमआउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । सुहुमपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव [णिव्वत्ति-] अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव [णिव्वत्ति-] पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । बादरवाउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्ति-

....

कायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । सूक्ष्म निगोद जीव निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । उसके ही अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । उसके ही पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । उसके ही अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । उसके ही पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । सूक्ष्म तेजकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । सूक्ष्म अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । बादर वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवनाहना असंख्यातगुणी है । उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी

अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरतेउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरआउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरणिगोदणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। [णिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।] बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर [णिव्वत्ति-] पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बीइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तीइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया

उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। बादर तेजकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। बादर अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। [निगोद-प्रतिष्ठित पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है।] बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी

ओगाहणा संखेज्जगुणा । पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । तीइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । पंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । तीइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । बीइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ।

सुहुमादो सुहुमस्स ओगाहणगुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सुहुमादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । बादरादो सुहुमस्स ओगाहणगुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । बादरादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । बादरादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो संखेज्जसमया त्ति[1] । ''

जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है। त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।

एक सूक्ष्म जीवसे दूसरे सूक्ष्म जीवकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है। सूक्ष्मसे बादरकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। बादरसे सूक्ष्मकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है। एक बादर जीवसे दूसरे बादर जीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। [किन्तु द्वीन्द्रिय आदि निर्वृत्त्यपर्याप्त और उन्हींके पर्याप्तकोंमें] बादरसे बादरकी अवगाहनाका गुणकार संख्यात समय है।''

---

१ वेदना क्षेत्रविधान सूत्र २९-९९ (अ-प्रति पत्र ८९२-८९५). ष. खं. पु. ४ पृ. ९४-९८. ति. प. पृ. ६१८-६४०.

सुहुमणिगोदलद्धिअपज्जत्तजहण्णोगाहणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदे संखेज्जघणंगुलमेत्ता महामच्छुक्कस्सोगाहणा होदि, एत्थ पविट्ठसव्वगुणगाररासीणमण्णोण्णब्भासे कदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तरासिसमुप्पत्तीदो। तेण णव्वदि उस्सेहघणंगुले पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे सुहुमणिगोदलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा होदि त्ति। एदेसिं सव्वगुणगाराणमण्णोण्णब्भासो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव, सूचिअंगुलमेत्तो सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तो वा ण होदि त्ति कधं णव्वदे ? सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणा पदरंगुलमेत्ता वा होदि त्ति अभणिय घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति सुत्तवयणादो णव्वदे। ण च सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणा घणंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्ता आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदघणंगुलमेत्ता वा होदि, महामच्छोगाहणाए असंखेज्जघणंगुलत्तप्पसंगादो। खेत्ताणिओगद्दारे[1] बादरेइंदियपज्जत्तयस्स वेउव्वियखेत्तं माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो असंखेज्जदिभागो संखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं वा होदि त्ति ण णव्वदे इदि

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनाको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल मात्र महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहना होती है, क्योंकि, इसमें प्रविष्ट सब गुणकार राशियोंका परस्परमें गुणा करनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र राशि उत्पन्न होती है। इससे जाना जाता है कि उत्सेध घनांगुलमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना होती है।

शंका—इन सब गुणकारोंके परस्परका गुणनफल पल्योपमका असंख्यातवां भाग ही होता है, सूच्यंगुल मात्र अथवा सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग मात्र नहीं होता; यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना प्रतरांगुल मात्र भी होती है, ऐसा न कहकर 'घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र है' इस सूत्रवचनसे जाना जाता है कि उक्त गुणकारोंका अन्योन्य गुणनफल पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र ही है। और सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भाग मात्र अथवा आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित घनांगुल मात्र नहीं हो सकती, क्योंकि, ऐसा होनेसे महामत्स्यकी अवगाहनाके असंख्यात घनांगुल प्रमाण होनेका प्रसंग होगा। अथवा, क्षेत्रानुयोगद्वारमें 'बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तका वैक्रियिकक्षेत्र मनुष्यलोकके संख्यातवें भाग, असंख्यातवें भाग, अथवा उससे संख्यातगुणा या असं-

१ पुस्तक ४, पृ. ८२-८३.

एदम्हादो वक्खाणादो वा जाणिज्जदि गुणगाराणमण्णोण्णब्भासो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव होदि त्ति। एदेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण घणंगुले भागे हिदे घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुस्सेहविक्खंभायामो आगच्छदि। एदं जहण्णोहिक्खेत्तं जहण्णोहिणाणेण विसईकदासेसखेत्तमिदि उत्तं होदि। ण च घणपदरागारेणेव सव्वाणि ओहिखेत्ताणि अवट्ठिदाणि त्ति णियमो; किंतु सुहुमणिगोदोगाहणखेत्तं व अणियदसंठाणाणि ओहिखेत्ताणि संपिंडिय घणपदरागारेण काऊण पमाणपरूवणा कीरदे, अण्णहा तदुवायाभावादो।

सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणमेत्तमेदं सव्वं हि जहण्णोहिक्खेत्तमोहिणाणिजीवस्स तेण परिच्छिज्जमाणदव्वस्स य अंतरमिदि के वि आइरिया भणंति। णेदं घडदे, सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणादो जहण्णोहिक्खेत्तस्स असंखेज्जगुणत्तप्पसंगादो। कधमसंखेज्जगुणत्तं? जहण्णोहिणाणविसयवित्थारुस्सेहेहि आयामे गुणिज्जमाणे तत्तो असंखेज्जगुणत्तसिद्धीदो। ण चासंखेज्जगुणत्तं संभवदि, जद्देही सुहुमणिगोदस्स जहण्णोगाहणा तद्देहिं चेव जहण्णोहि-

....

ख्यातगुणा है; यह जाना नहीं जाता' इस व्याख्यानसे जाना जाता है कि गुणकारोंका अन्योन्य गुणनफल पल्योपमके असंख्यातवें भाग ही है।

इस पल्योपमके असंख्यातवें भागका घनांगुलमें भाग देनेपर घनांगुलके असंख्यातवें भाग सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र उत्सेध, विष्कम्भ व आयाम रूप क्षेत्र आता है। यह जघन्य अवधिक्षेत्र अर्थात् जघन्य अवधिज्ञानसे विषय किया गया सम्पूर्ण क्षेत्र है। और घनप्रतराकारसे ही सब अवधिक्षेत्र अवस्थित हैं, ऐसा नियम नहीं है; किन्तु सूक्ष्म निगोद जीवके अवगाहनाक्षेत्रके समान अनियत आकारवाले अवधिक्षेत्रोंका समीकरण कर घनप्रतराकारसे करके प्रमाणप्ररूपणा की जाती है, क्योंकि, ऐसा करनेके विना उसका कोई उपाय नहीं है।

सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना मात्र यह सब ही जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र अवधिज्ञानी जीव और उसके द्वारा ग्रहण किये जानेवाले द्रव्यका अन्तर है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा स्वीकार करनेसे सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहनासे जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रके असंख्यातगुणे होनेका प्रसंग आवेगा।

शंका—असंख्यातगुणा कैसे होगा?

समाधान—क्योंकि, जघन्य अवधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रके विस्तार और उत्सेधसे आयामको गुणा करनेपर उससे असंख्यातगुणत्व सिद्ध होता है। और असंख्यातगुणत्व सम्भव है नहीं, क्योंकि, 'जितनी सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना है उतना ही

खेत्तमिदि भणंतेण गाहासुत्तेण सह विरोहादो। जेणोहिणाणी एगोलीए चेव जाणदि तेण ण सुत्त-विरोहो त्ति के वि भणंति। णेदं पि घडदे, चक्खिदियणाणादो वि तस्स जहण्णत्तप्पसंगादो। कुदो? चक्खिदियणाणेण संखेज्जसूचिअंगुलवित्थारुस्सेहायामखेत्तब्भंतरट्ठिदवत्थुपरिच्छेददंसणादो, एदस्स जहण्णोहिखेत्तायामस्स असंखेज्जजोयणत्तुवलंभादो च। होदु णाम असंखेज्जजोयणायामत्तमिच्छिज्जमाणत्तादो? ण, एदस्स कालादो असंखेज्जगुणअद्धमासकालेण अणुमिदअसंखेज्जगुणभरहोहिक्खेत्ते वि असंखेज्जजोयणायामाणुवलंभादो। किं च उक्कस्सदेसोहिणाणी संजदो सगुक्कस्सदव्वमादिं काऊण परमाणुत्तरादिकमेण ट्ठिदसव्वपोग्गलक्खंधे घणलोगब्भंतरट्ठिदे किमक्कमेण जाणदि ण जाणदि त्ति[2]। जदि ण जाणदि, ण तस्स ओहिक्खेत्तं लोगो होदि, एगागासोलीए ठिदपोग्गलक्खंधपरिच्छेदकरणादो। ण च एसा एगागासपंती घणलोगपमाणं, तदसंखेज्जदिभागाए घणलोगपमाणत्तविरोहादो। ण च सो

जघन्य अवधिका क्षेत्र है ' ऐसा कहनेवाले गाथासूत्रके साथ विरोध होगा।

चूंकि अवधिज्ञानी एक श्रेणीमें ही जानता है, अतएव सूत्रविरोध नहीं होगा, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। परन्तु यह भी घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर चक्षु इन्द्रिय जन्य ज्ञानकी अपेक्षा भी उसके जघन्यताका प्रसंग आवेगा। कारण कि चक्षु इन्द्रिय जन्य ज्ञानसे संख्यात सूच्यंगुल विस्तार, उत्सेध और आयाम रूप क्षेत्रके भीतर स्थित वस्तुका ग्रहण देखा जाता है। तथा वैसा माननेपर इस जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका आयाम असंख्यात योजन प्रमाण प्राप्त होगा।

शंका—यदि उक्त अवधिक्षेत्रका आयाम असंख्यातगुणा प्राप्त होता है तो होने दीजिये, क्योंकि, वह इष्ट ही है?

समाधान—ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, इसके कालसे असंख्यातगुणे अर्ध मास कालसे अनुमित असंख्यातगुणे भरत रूप अवधिक्षेत्रमें भी असंख्यात योजन प्रमाण आयाम नहीं पाया जाता। दूसरे, उत्कृष्ट देशावधिज्ञानी संयत अपने उत्कृष्ट द्रव्यको आदि करके एक परमाणु आदि अधिक क्रमसे स्थित घनलोकके भीतर रहनेवाले सब पुद्गलस्कन्धोंको क्या युगपत् जानता है या नहीं जानता? यदि नहीं जानता है तो उसका अवधिक्षेत्र लोक नहीं हो सकता, क्योंकि, वह एक आकाशश्रेणीमें स्थित पुद्गलस्कन्धोंको ग्रहण करता है। और यह एक आकाशपंक्ति घनलोक प्रमाण हो नहीं सकती, क्योंकि, घनलोकके असंख्यातवें भाग रूप उसमें घनलोकप्रमाणत्वका विरोध है। इसके अतिरिक्त वह

१ अ-आप्रत्योः ' किं चुक्कस्स ' इति पाठः।

२ अप्रतौ ' घणलोगब्भंतरट्ठिद किमक्कमेण जाणदि त्ति ', आप्रतौ ' घणलोगब्भंतरट्ठिय ण किमक्कमेण जाणदि त्ति ', काप्रतौ ' घणलोगब्भंतरट्ठिदे ण किमक्कमेण जाणदि त्ति ', मप्रतौ ' -ट्ठिद जाणदि ण जाणदि त्ति ' इति पाठः।

कुलसेल-मेरुमहीयर-भवणविमाणट्ठपुढवी-देव-विज्जाहर-सरड-सरिसवादीणि वि पेच्छइ, एदेसि-मेगागासे अवट्ठाणाभावादो। ण च तेसिमवयवं पि[1] जाणदि, अविण्णादे अवयविम्हि एदस्स एसो अवयवो त्ति णादुमसत्तीदो। जदि अक्कमेण सव्वं घणलोगं जाणदि तो सिद्धो णो पक्खो, णिप्पडिवक्खत्तादो।

सुहुमणिगोदोगाहणाए घणपदरागारेण ठइदाए एगागासवित्थाराणेगोलिं चेव जाणदि त्ति के वि भणंति। णेदं पि घडदे, जद्देहं सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणा तद्देहं जहण्णोहिक्खेत्त-मिदि भणंतेण गाहासुत्तेण सह विरोहादो। ण चाणेगोलीपरिच्छेदो छदुमत्थाणं विरुद्धो, चक्खिदियणाणेणाणेगोलिंठियपोग्गलक्खंधपरिच्छेदुवलंभादो।

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज दो वि संखेज्जा।
अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं[2] ॥ ५ ॥

कुलाचल, मेरुपर्वत, भवनविमान, आठ पृथिवियों, देव, विद्याधर, गिरगिट और सरीसृपादिकोंको भी नहीं जान सकेगा, क्योंकि, इनका एक आकाशमें अवस्थान नहीं है। और वह उनके अवयवको भी नहीं जानेगा, क्योंकि, अवयवीके अज्ञात होनेपर 'यह इसका अवयव है' इस प्रकार जाननेकी शक्ति नहीं हो सकती। यदि वह युगपत् सब घनलोकको जानता है तो हमारा पक्ष सिद्ध है, क्योंकि, वह प्रतिपक्षसे रहित है।

सूक्ष्म निगोद जीवकी अवगाहनाको घनप्रतराकारसे स्थापित करनेपर एक आकाश विस्तार रूप अनेक श्रेणीको ही जानता है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। परन्तु यह भी घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा होनेपर 'जितनी सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना है उतना ही जघन्य अवधिका क्षेत्र है', ऐसा कहनेवाले गाथासूत्रके साथ विरोध होगा। और छद्मस्थोंके अनेक श्रेणियोंका ग्रहण विरुद्ध नहीं है, क्योंकि, चक्षु इन्द्रिय जन्य ज्ञानसे अनेक श्रेणियोंमें स्थित पुद्गलस्कन्धोंका ग्रहण पाया जाता है।

देशावधिके उन्नीस काण्डकोंमेंसे प्रथम काण्डकमें जघन्य क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण और जघन्य काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी काण्डकमें उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट काल आवलीके संख्यातवें भाग प्रमाण है। द्वितीय काण्डकमें क्षेत्र घनांगुल प्रमाण और काल कुछ कम आवली प्रमाण है। तृतीय काण्डकमें क्षेत्र घनांगुलपृथक्त्व और काल पूर्ण आवली प्रमाण है ॥ ५ ॥

१ प्रतिषु 'हि' इति पाठः।

२ गो. जी. ४०४. अंगुलमावलियाणं भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा। अंगुलमावलियंतो आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥ विशे. भा. ६११ (नि. ३२). नं. सू. गा. ५०.

आवलियपुधत्तं पुण हत्थो तह गाउअं मुहुत्तंतो ।
जोयण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु[1] ॥ ६ ॥

भरहम्मि अद्धमासो साहियमासो वि जंबुदीवम्मि ।
वासं च मणुअलोए वासपुधत्तं च रुजगम्मि[2] ॥ ७ ॥

पणुवीस जोयणाणि ओही वेंतर-कुमारवग्गाणं ।
संखेज्जजोयणाणि जोइसियाणं जहण्णोही[3] ॥ ८ ॥

असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोदिसंताणं ।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सो ओहिविसओ दु[4] ॥ ९ ॥

चतुर्थ काण्डकमें काल आवलिपृथक्त्व और क्षेत्र एक हाथ प्रमाण है। पंचम काण्डकमें क्षेत्र गव्यूति अर्थात् एक कोश तथा काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। छठे काण्डकमें क्षेत्र एक योजन और काल भिन्न मुहूर्त अर्थात् एक समय कम मुहूर्त प्रमाण है। सप्तम काण्डकमें काल कुछ कम एक दिवस और क्षेत्र पच्चीस योजन प्रमाण है ॥ ६ ॥

अष्टम काण्डकमें क्षेत्र भरतक्षेत्र और काल अर्ध मास प्रमाण है। नवम काण्डकमें क्षेत्र जम्बूद्वीप और काल एक माससे कुछ अधिक है। दशवें काण्डकमें क्षेत्र मनुष्यलोक और काल एक वर्ष प्रमाण है। ग्यारहवें काण्डकमें क्षेत्र रुचकद्वीप और काल वर्षपृथक्त्व प्रमाण है ॥ ७ ॥

व्यन्तर और भवनवासी देवोंका जघन्य अवधिक्षेत्र पच्चीस योजन और ज्योतिषी देवोंका जघन्य अवधिक्षेत्र संख्यात योजन प्रमाण है ॥ ८ ॥

असुरकुमार देवोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र असंख्यात करोड़ योजन है। शेष नौ प्रकारके भवनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिषी देवोंका उत्कृष्ट अवधिक्षेत्र असंख्यात हजार योजन प्रमाण है ॥ ९ ॥

---

१ म. बं. १, पृ. २१. गो. जी. ४०५. हत्थम्मि मुहुत्तंतो दिवसंतो गाउयम्मि बोद्धव्वो। जोयणदिवस-पुहुत्तं पक्खंतो पण्णवीसाओ। विशे. भा. ६१२ (नि. ३३). नं. सू. गा. ५१.

२ म. बं. १, पृ. २१. गो. जी. ४०६. भरहम्मि अद्धमासो जंबुद्दीवम्मि साहिओ मासो। वासं च मणुयलोए वासपुहुत्तं च रुयगम्मि ॥ विशे. भा. ६१३ (नि. ३४). नं. सू. गा. ५२.

३ म. बं. १, पृ. २२. पणुवीसजोयणाइं दिवसंतं च य कुमार-भोम्माणं। संखेज्जगुणं [illegible] बहुगं कालं तु जोइसिगे ॥ गो. जी ४२६.

४ म. बं. १, पृ. २२. गो. जी. ४२७.

सक्कीसाणा पढमं दोच्चं तु सणक्कुमार-माहिंदा ।
तच्चं तु बम्ह-लंतय सुक्क-सहस्सारया चोत्थं[1] ॥ १० ॥

आणद-पाणदवासी तह आरण-अच्चुदा य जे देवा ।
पस्संति पंचमखिदिं छट्ठिं गेवज्जया जे दु[2] ॥ ११ ॥

सव्वं च लोयणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
सक्खेत्ते य सकम्मे रूवगदमणंतभागो दु[3] ॥ १२ ॥

एदाहि गाहाहि उत्तासेसोहिखेत्ताणमेसो अत्थो जहासंभवं परूवेदव्वो, अण्णहा पुव्वुत्तदोसप्पसंगादो । एवं जहण्णोहिक्खेत्तपरूवणा कदा ।

संपहि जहण्णोहिकालपमाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा— आवलियाए असंखेज्जदि-

---

सौधर्म और ईशान स्वर्गके देव प्रथम पृथिवी तक, सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके देव द्वितीय पृथिवी तक, ब्रह्म और लान्तव कल्पोंके देव तृतीय पृथिवी तक, तथा शुक्र और सहस्रार स्वर्गोंके देव चतुर्थ पृथिवी तक देखते हैं ॥ १० ॥

आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पोंमें रहनेवाले जो देव हैं वे पंचम पृथिवी तक, तथा ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुए देव छठी पृथिवी तक देखते हैं ॥ ११ ॥

नौ अनुदिश और पांच अनुत्तरोंमें जो देव हैं वे सब लोकनाली अर्थात् कुछ कम चौदह राजु लम्बी और एक राजु विस्तृत लोकनालीको देखते हैं । स्वक्षेत्र अर्थात् अपने क्षेत्रके प्रदेशसमूहमेंसे एक प्रदेश कम करके अपने अपने अवधिज्ञानावरणकर्म द्रव्यमें एक वार अनन्त अर्थात् ध्रुवहारका भाग देना चाहिये । इस प्रकार एक एक प्रदेश कम करते हुए ध्रुवहारका भाग तब तक देना चाहिये जब तक उक्त प्रदेश समूह समाप्त न हो जावे । ऐसा करनेपर जो द्रव्य प्राप्त हो वह विवक्षित अवधिका विषयभूत द्रव्य जानना चाहिये ॥ १२ ॥

इन गाथाओं द्वारा कहे गये समस्त अवधिक्षेत्रोंका यह अर्थ यथासम्भव कहना चाहिये, क्योंकि, अन्यथा पूर्वोक्त दोषोंका प्रसंग आवेगा । इस प्रकार जघन्य अवधिके क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है ।

अब जघन्य अवधिके कालकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— आवलीके

---

१ म. बं. १, पृ. २२. गो. जी. ४३०. विशे. भा. ६९८ (नि. ४८.).

२ म. बं. १, पृ. २३. गो. जी. ४३१.

३ म. बं. १, पृ. २३. गो. जी. ४३२. आणय-पाणयकप्पे देवा पासंति पंचमिं पुढविं । तं चेव आरणच्चुय ओहिण्णाणेण पासंति ॥ छट्ठिं हेट्ठिम-मज्झिमगेविज्जा सत्तमिं च उवरिल्ला । संभिण्णलोगणालिं पासंति अणुत्तरा देवा ॥ विशे. भा. ६९९–७०० (नि. ४९–५०).

भाएण आवलियाए ओवट्टिदाए जहण्णोहिकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो होदि। एत्तिएण कालेण जं भूदं जं च भविस्सदि कज्जं तं जहण्णोहिणाणी जाणदि त्ति वुत्तं होदि। एदस्स कालो एत्तिओ चेव होदि त्ति कधं णव्वदे ? 'अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जे त्ति' गाहासुत्तवयणादो णव्वदे। एवं जहण्णोहिकालपरूवणा कदा।

संपहि जहण्णोहिभावपरूवणं कस्सामो। तं जहा-- जमप्पणो जाणिददव्वं तस्स अणंतेसु वट्टमाणपज्जाएसु तत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपज्जाया जहण्णोहिणाणेण विसईकया जहण्णभावो। के वि आइरिया जहण्णदव्वस्सुवरिट्ठिदरूव-रस-गंध-फासादिसव्व-पज्जाए जाणदि त्ति भणंति। तण्ण घडदे, तेसिमाणंतियादो। ण च ओहिणाणमुक्कस्सं पि अणंतसंखावगमक्खमं, तहोवदेसाभावादो। दव्वट्ठियाणंतपज्जाए पच्चक्खेण अपरिच्छिंदंतो ओही कधं पच्चक्खेण दव्वं परिछिंदेज्ज ? ण, तस्स पज्जायावयवगयाणंतसंखं मोत्तूण असंखेज्जपज्जायावयवविसिट्ठदव्वपरिच्छेदयत्तादो। तीदाणागयपज्जायाणं किण्ण भाववएसो ?

....

असंख्यातवें भागका आवलीमें भाग देनेपर जघन्य अवधिका काल आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र होता है। इतने मात्र कालमें जो कार्य हो चुका हो और जो होनेवाला हो उसे जघन्य अवधिज्ञानी जानता है, यह उक्त कथनका अभिप्राय है।

शंका—इसका काल इतना मात्र ही है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'प्रथम काण्डकमें जघन्य क्षेत्र व काल क्रमशः घनांगुल और आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है' इस गाथासूत्रके कथनसे जाना जाता है।

इस प्रकार जघन्य अवधिके कालकी प्ररूपणा की गई है।

अब जघन्य अवधिके विषयभूत भावकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— अपना जो जाना हुआ द्रव्य है उसकी अनन्त वर्तमान पर्यायोंमेंसे जघन्य अवधिज्ञानके द्वारा विषयीकृत आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पर्यायें जघन्य भाव हैं। कितने ही आचार्य जघन्य द्रव्यके ऊपर स्थित रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श आदि रूप सब पर्यायोंको उक्त अवधिज्ञान जानता है, ऐसा कहते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, वे अनन्त हैं। और उत्कृष्ट भी अवधिज्ञान अनन्त संख्याके जाननेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि, वैसे उपदेशका अभाव है।

शंका—द्रव्यमें स्थित अनन्त पर्यायोंको प्रत्यक्षसे न जानता हुआ अवधिज्ञान प्रत्यक्षसे द्रव्यको कैसे जानेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उक्त अवधिज्ञान पर्यायोंके अवयवोंमें रहनेवाली अनन्त संख्याको छोड़कर असंख्यात पर्यायावयवोंसे विशिष्ट द्रव्यका ग्राहक है।

शंका—अतीत व अनागत पर्यायोंकी 'भाव' संज्ञा क्यों नहीं है ?

ण, तेसिं कालत्तब्भुवगमादो । एवं जहण्णभावपरूवणा कदा ।

संपधि जहण्णदव्व-खेत्त-काल-भावपरिवाडीए ठविय बिदियमोहिणाणवियप्पं भणिस्सामो । तं जहा — मणदव्ववग्गणाए अणंतिमभागं[1] देस-सव्व-परमोहिदव्वपरूवणासु मेरुमहीहरं व अवट्ठिदं विरलेदूण जहण्णदव्वं समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगरूवधरिदं दव्वस्स बिदियवियप्पो होदि[2], पुव्विल्लजहण्णदव्वं पेक्खिदूण एग-दोपरमाणुआदीहि परिहीणपोग्गलखंधपरिच्छेयणक्खमणाणणिमित्तोहिणाणावरणक्खओवसमाभावादो । कधमेदं णव्वदे ? 'ओहिणाणावरणस्स असंखेज्जलोगमेत्तीओ चेव पयडीओ ' त्ति वग्गणसुत्तादो । भावस्स जिणदिट्ठभावो असंखेज्जगुणगारो दादव्वो । खेत्त-काला जहण्णा चेव, तेसिमेत्थ वुड्ढीए अभावादो ।

समाधान — नहीं है, क्योंकि, उन्हें काल स्वीकार किया गया है ।

इस प्रकार जघन्य भावकी प्ररूपणा की गई है ।

अब जघन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको परिपाटीसे स्थापित कर द्वितीय अवधिज्ञानके विकल्पको कहते हैं । वह इस प्रकार है — देशावधि, सर्वावधि और परमावधिके द्रव्यकी प्ररूपणाओंमें मेरु पर्वतके समान अवस्थित मनोद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागका विरलन करके उसके ऊपर जघन्य द्रव्यको समखण्ड करके देनेपर उसमें एक रूपधरित खण्ड द्रव्यका द्वितीय विकल्प होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त जघन्य द्रव्यकी अपेक्षा करके एक दो परमाणु आदिकोंसे हीन पुद्गलस्कन्धके ग्रहण करनेमें समर्थ ऐसे ज्ञानके निमित्तभूत अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमका अभाव है ।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — वह ' अवधिज्ञानावरणकी असंख्यात लोक प्रमाण प्रकृतियां हैं ' इस वर्गणासूत्रसे जाना जाता है ।

भावका जिन भगवान्‌से देखा गया है स्वरूप जिसका ऐसा असंख्यात गुणकार देना चाहिये, अर्थात् भावका द्वितीय विकल्प प्रथम विकल्पसे असंख्यातगुणा है । क्षेत्र और काल जघन्य ही रहते हैं, क्योंकि यहां उनकी वृद्धिका अभाव है ।

---

१ मणदव्ववग्गणाण वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो । अवरुक्कस्सविसेसा रूवाहिया तव्वियप्पा हु ॥ गो. जी. ३८६.

२ देसोहिअवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे बिदियं । तदियादिवियप्पेसु वि असंखवारो त्ति एस कमो ॥ गो. जी. ३९५.

तेसिमेत्थ वुड्डीए अभावो कधं णव्वदे ?

काले चउण्ण वुड्ढी कालो भजियव्वो खेत्तवुड्ढीए ।
वुड्ढीए दव्व-पज्जय भजिदव्वा खेत्त-काला यं[1] ॥ १२ ॥

एदम्हादो वग्गणासुत्तादो णव्वदे । पुणो बहुरूवधरिदखंडाणि छोडिय एगरूवधरिद-बिदियवियप्पदव्वमवट्ठिदभागहारस्स रूवं पडि समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगखंडं तदिय-वियप्पदव्वं होदि । बिदियभाववियप्पं तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि गुणिदे तदियभाववियप्पो होदि । खेत्त-काला जहण्णा चेव । सेसखंडाणि अवणेदूण एगरूवधरिदं तदियवियप्पदव्व-मवट्ठिदविरलणाए समखंडं कादूण दिण्णे चउत्थवियप्पदव्वं होदि । तदियभावम्हि तप्पाओग्ग-असंखेज्जरूवेहि गुणिदे चउत्थो भाववियप्पो होदि । एवमव्वामोहेण पंचम-छट्ठ-सत्तमवियप्प-प्पहुडि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता दव्व-भाववियप्पा उप्पाएयव्वा । तदो जहण्णखेत्तस्सुवरि एगो आगासपदेसो वड्ढावेदव्वो । एवं वड्ढाविदे खेत्तस्स बिदियवियप्पो होदि । काले पुण

शंका — यहां उनकी वृद्धिका अभाव है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — कालकी वृद्धि होनेपर द्रव्यादि चारोंकी वृद्धि होती है । क्षेत्रकी वृद्धि-होनेपर कालवृद्धि भजनीय है, अर्थात् वह होती भी है और नहीं भी होती है । द्रव्य और भावकी वृद्धि होनेपर क्षेत्र और कालकी वृद्धि भजनीय है ॥ १३ ॥

इस वर्गणासूत्रसे जाना जाता है ।

पश्चात् बहुरूपधरित खण्डोंको छोड़कर एक रूपधरित द्वितीय विकल्प रूप द्रव्यको अवस्थित भागहारके प्रत्येक रूपके ऊपर समखण्ड करके देनेपर उनमें एक खण्ड तृतीय विकल्प रूप द्रव्य होता है । द्वितीय भावविकल्पको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर तृतीय भावविकल्प होता है । क्षेत्र और काल जघन्य ही रहते हैं । शेष खण्डोंको छोड़ करके एक रूपधरित तृतीय विकल्प रूप द्रव्यको अवस्थित विरलनासे समखण्ड करके देनेपर चतुर्थ विकल्प रूप द्रव्य होता है । तृतीय भावविकल्पको तत्प्रायोग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर चतुर्थ भावविकल्प होता है । इस प्रकार अभ्रान्त होकर पंचम, छठा, सातवां आदि अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य और भावके विकल्पोंको उत्पन्न करना चाहिये । तत्पश्चात् जघन्य क्षेत्रके ऊपर एक आकाशप्रदेश बढ़ाना चाहिये । इस प्रकार बढ़ानेपर क्षेत्रका द्वितीय विकल्प होता है । परन्तु काल जघन्य ही रहता है ।

१ म. बं. १, पृ. २२. गो. जी. ४१२. काले चउण्ह वुड्ढी कालो भइयव्वु खेत्तवुड्ढीए । वुड्ढीए दव्व-पज्जव भइयव्वा खित्त-काला उ ॥ विशे. भा. ६२० (नि. ३६). नं. सू. गा. ५४.

जहण्णो चेव । पुणो तदियदव्ववियप्पमवट्ठिदभागहारस्स समखंड करिय दिण्णे तत्थ एग-खंडमुवरिमदव्ववियप्पो होदि । तदियभावम्हि तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि गुणिदे उवरिमोहि-भावावियप्पो होदि । एवं पुणो पुणो कादूण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता दव्व-भाव-वियप्पा उप्पाएयव्वा । एवमुप्पादिदे बिदियखेत्तवियप्पस्सुवरि एगो हि आगासपदेसो वड्ढावे-दव्वो । तदो खेत्तस्स तदियवियप्पो होदि । कालो जहण्णो चेव । सण्णि सण्णिमव्वामोहो अणाउलो समचित्तो सोदारे संबोहेंतो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तदव्व-भाववियप्पे उप्पाइय वक्खाणाइरिओ खेत्तस्स चउत्थ-पंचम-छट्ठ-सत्तमपहुडि जाव अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते ओहिखेत्तवियप्पे उप्पाइय तदो जहण्णकालस्सुवरि एगो समओ वड्ढावेदव्वो । एवं वड्ढाविदे कालस्स बिदियवियप्पो होदि । पुणो वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तदव्व-भाववियप्पेसु गदेसु खेत्तम्हि एगो आगासपदेसो वड्ढावेदव्वो । एदेण कमेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तेसु खेत्तवियप्पेसु गदेसु कालम्मि एगसमयं वड्ढाविय कालस्स तदियवियप्पो उप्पाएदव्वो ।

एत्थ चोदगो भणदि— अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेसु खेत्तवियप्पेसु गदेसु कालम्मि एगो समओ वड्ढदि त्ति ण घडदे, एवं वड्ढाविज्जमाणे देसोहीए उक्कस्सखेत्ताणुप्पत्तीदो,

---

पश्चात् तृतीय द्रव्यविकल्पको अवस्थित भागहारके ऊपर समखण्ड करके देनेपर उनमें एक खण्ड उपरिम द्रव्यविकल्प होता है । तृतीय भावविकल्पको तत्प्रायोग्य असंख्यात रूपोंसे गुणा करनेपर अवधिका उपरिम भावविकल्प होता है । इस प्रकार पुनः पुनः करके अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य और भावके विकल्प उत्पन्न कराना चाहिये । इस प्रकार उक्त विकल्पोंको उत्पन्न करानेपर द्वितीय क्षेत्रविकल्पके ऊपर एक आकाशप्रदेशको बढ़ाना चाहिये । तब क्षेत्रका तृतीय विकल्प होता है । काल जघन्य ही रहता है । धीरे धीरे भ्रान्तिसे रहित, निराकुल, समचित्त व श्रोताओंको सम्बोधित करनेवाला व्याख्यानाचार्य अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य और भावके विकल्पोंको उत्पन्न कराके क्षेत्रके चतुर्थ, पंचम, छठे एवं सातवें आदि अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र तक अवधिके क्षेत्रविकल्पोंको उत्पन्न कराके पश्चात् जघन्य कालके ऊपर एक समय बढ़ावें । इस प्रकार बढ़ानेपर कालका द्वितीय विकल्प होता है । फिरसे भी अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य और भावके विकल्पोंके वीत जानेपर क्षेत्रमें एक आकाशप्रदेश बढ़ाना चाहिये । इस क्रमसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रविकल्पोंके वीत जानेपर कालमें एक समय बढ़ाकर कालका तृतीय विकल्प उत्पन्न कराना चाहिये ।

शंका—यहां शंकाकार कहता है कि अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्र-विकल्पोंके वीत जानेपर कालमें एक समय बढ़ता है, यह घटित नहीं होता; क्योंकि, इस प्रकार बढ़ानेपर देशावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र नहीं उत्पन्न हो सकता, व अपने उत्कृष्ट

सगुक्कस्सकालादो असंखेज्जगुणकालुप्पत्तीए च । तं जहा— देसोहीए उक्कस्सखेत्तं लोगो । उक्कस्सकालो समऊणपल्लं । तत्थ एक्कस्स समयस्स जदि अंगुलस्स असंखेज्जदि-भागमेत्तखेत्तवियप्पा लब्भंति तो आवलियाए असंखेज्जदिभागूणपल्लम्मि केवडिखेत्तवियप्पे लभामो त्ति पमाणेण इच्छागुणिदफलम्मि भागे हिदे असंखेज्जाणि घणंगुलाणि चेव वुप्पज्जंति, ण उक्कस्सदेसोहिक्खेत्तं लोगो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेसु खेत्तवियप्पेसु गदेसु जदि कालस्स एगो समओ वड्ढदि तो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागेणूणलोगम्मि केवडियसमयवुड्ढिं पेच्छामो त्ति फलगुणिदिच्छा पमाणेण जदि ओवट्टिज्जदि तो लोगस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि, ण देसोहिउक्कस्सकालो समऊणपल्लं । तम्हा आवलियाए असंखेज्जदिभागेणूण-समऊणपल्लेण जहण्णोहिखेत्तेणूणलोगे भागे हिदे लोगस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि । एत्तिएसु खेत्तवियप्पेसु गदेसु कालम्मि एगसमयवुड्ढीए होदव्वमण्णहा पुव्वुत्तदोसप्पसं-गादो त्ति ?

णेदं घडदे, एयंतेणेवमिच्छिज्जमाणे वग्गणाए गाहासुत्तउत्तखेत्ताणमणुप्पत्तिप्पसंगादो । तं जहा— कालेण आवलियाए संखेज्जदिभागं जाणंतो खेत्तेण अंगुलस्स संखेज्जदिभागं

कालसे असंख्यातगुणा काल उत्पन्न होगा । वह इस प्रकारसे— देशावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र लोक है । उत्कृष्ट काल एक समय कम पल्य है। ऐसी स्थितिमें एक समयके यदि अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रविकल्प प्राप्त होते हैं तो आवलीके असंख्यातवें भागसे कम पल्यमें कितने क्षेत्रविकल्प प्राप्त होंगे, इस प्रकार इच्छा राशिसे गुणित फल राशिमें प्रमाण राशिका भाग देनेपर असंख्यात घनांगुल ही उत्पन्न होते हैं, न कि उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोक। अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रविकल्पोंके बीत जानेपर यदि कालका एक समय बढ़ता है तो अंगुलके असंख्यातवें भागसे हीन लोकमें कितनी समयवृद्धि होगी, इस प्रकार फल राशिसे गुणित इच्छा राशिको यदि प्रमाण राशिसे अपवर्तित किया जाय तो लोकका असंख्यातवां भाग आता है, न कि देशावधिका उत्कृष्ट काल समय कम पल्य। इसलिये आवलीके असंख्यातवें भागसे हीन समय कम पल्यका जघन्य अवधिक्षेत्रसे रहित लोकमें भाग देनेपर लोकका असंख्यातवां भाग आता है । इतने क्षेत्रविकल्पोंके बीतनेपर कालमें एक समय वृद्धि होना चाहिये, क्योंकि, अन्यथा पूर्वोक्त दोषोंका प्रसंग आवेगा ?

समाधान—यह घटित नहीं होता, क्योंकि, एकान्ततः ऐसा स्वीकार करनेपर वर्गणाके गाथासूत्रोंमें कहे हुए क्षेत्रोंकी अनुत्पत्तिका प्रसंग आवेगा । वह इस प्रकारसे— कालकी अपेक्षा आवलीके संख्यातवें भागको जाननेवाला क्षेत्रसे अंगुलके संख्यातवें

जाणदि त्ति सुत्ते उत्तं। आवलियं किंचूणं कालदो जाणंतो खेत्तदो घणंगुलं जाणदि। कालदो आवलियं जाणंतो खेत्तदो अंगुलपुधत्तं जाणदि। कालदो अद्धमासं जाणंतो खेत्तदो भरहं जाणदि। कालदो साहियमासं जाणंतो खेत्तदो जंबूदीवं जाणदि। कालदो वस्सं जाणंतो खेत्तदो माणुसखेत्तं जाणदि त्ति एवमादियाणि ओहिखेत्ताणि ण उप्पज्जंति, लोगस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तखेत्तवुड्डीए कालम्मि एगसमयउड्डीए अब्भुवगमादो। ण च सुत्तविरुद्धा जुत्ती होदि, तिस्से जुत्तियाभासत्तादो।

मा घडदु णाम एदं; कधमुक्कस्स-खेत्त-कालाणमुप्पत्ती? वड्डिणियमाभावादो तेसिमुप्पत्ती घडदे। पढमं ताव अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेसु खेत्तवियप्पेसु गदेसु कालम्मि एगसमओ वड्ढदि। तं जहा— जहण्णकालं आवलियाए संखेज्जदि-भागम्मि सोहिदे अवसेसा आवलियाए संखेज्जदिभागमेत्ता कालउड्डी होदि। इमं विरलिय जहण्णोहिखेत्तेणूणअंगुलस्स संखेज्जदिभागमोहिखेत्तउड्डिं समखंडं करिय दिण्णे समयं पडि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो पावदि। एत्थ जदि अवट्ठिदा खेत्तउड्डी तो एगगरूवधरिदखेत्तेसु

भागको जानता है, इस प्रकार सूत्रमें कहा गया है। कालसे कुछ कम आवलीको जानने-वाला क्षेत्रसे घनांगुलको जानता है। कालकी अपेक्षा आवलीको जाननेवाला क्षेत्रसे अंगुलपृथक्त्वको जानता है। कालकी अपेक्षा अर्ध मासको जाननेवाला क्षेत्रकी अपेक्षा भरत क्षेत्रको जानता है। कालकी अपेक्षा साधिक एक मासको जाननेवाला क्षेत्रसे जम्बू-द्वीपको जानता है। कालकी अपेक्षा एक वर्षको जाननेवाला क्षेत्रसे मनुष्यलोकको जानता है, इस प्रकार इत्यादि क्षेत्र नहीं उत्पन्न होंगे, क्योंकि, लोकके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर कालमें एक समयकी वृद्धि स्वीकार की है। और सूत्रविरुद्ध युक्ति होती नहीं है, क्योंकि, वह युक्त्याभास रूप होगी।

शंका— यदि यह नहीं घटित होता है तो न हो। परन्तु फिर उत्कृष्ट क्षेत्र और कालकी उत्पत्ति कैसे सम्भव है?

समाधान— वृद्धिके नियमका अभाव होनेसे उनकी उत्पत्ति घटित होती है। प्रथमतः अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रविकल्पोंके वीत जानेपर कालमें एक समय बढ़ता है। वह इस प्रकार है—आवलीके संख्यातवें भागमेंसे जघन्य कालको कम कर देनेपर शेष आवलीके संख्यातवें भाग मात्र कालवृद्धि होती है। इसे विरलित कर जघन्य अवधि-क्षेत्रसे कम अंगुलके संख्यातवें भाग मात्र अवधिकी क्षेत्रवृद्धिको समखण्ड करके देनेपर प्रत्येक समयमें अंगुलका असंख्यातवां भाग प्राप्त होता है। यहां यदि अवस्थित क्षेत्रवृद्धि

वड्ढिदेसु कालम्मि वि तस्स चेव खेत्तस्स हेट्ठिमसमओ ऍगेगो वड्ढावेयव्वो । अह उड्डी अणवट्ठिदा तो वि पढमवियप्पप्पहुडि[1] अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवुड्डीए असंखेज्जा वियप्पा णेयव्वा, पढमंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेसु खेत्तवियप्पेसु गदेसु कालम्मि एगो समओ वड्ढदि त्ति गुरूवदेसादो । पुणो उवरिमंगुलस्स असंखेज्जदिभागेसु वा तस्सेव संखेज्जदिभागेसु वा खेत्तवियप्पेसु गदेसु कालम्मि एगो समओ वड्ढदि त्ति वत्तव्वं, दोहि वि पयोरेहि उड्डीए विरोहाभावादो । जहण्णकालं किंचूणावलियाए सोहिय सेसं विरलिय जहण्णखेत्तूणघणंगुलं समखंडं करिय समयं पडि दादूण अवट्ठिदाणवट्ठिदवड्ढिवियप्पेसु अंगुलस्स असंखेज्जदिभाग-संखेज्जदिभागमेत्तखेत्तवियप्पेसु गदेसु कालम्मि एगो समओ वड्ढदि त्ति पुव्वं व परूवेदव्वं । एवं गंतूण अणुत्तरविमाणवासियदेवा कालदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं खेत्तदो सव्वलोगणालिं जाणंति त्ति जहण्णकालूणपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं विरलिय जहण्णखेत्तूणजहण्णादिअद्धाणं समखंडं करिय दिण्णे रूवं पडि लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जजगपदरमेत्तो पावेदि । एत्थ एगरूवधरिदमेत्तखेत्तवियप्पेसु गदेसु कालम्मि एगो

है तो एक एक रूपधरित क्षेत्रोंके बढ़नेपर कालमें भी उस ही क्षेत्रका अधस्तन समय एक एक बढ़ाना चाहिये। अथवा, यदि अनवस्थित वृद्धि है तो भी प्रथम विकल्पसे लेकर अंगुलके असंख्यातवें भाग वृद्धिके असंख्यात विकल्प ले जाना चाहिये, क्योंकि, प्रथम अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रविकल्पोंके वीत जानेपर कालमें एक समय बढ़ता है, ऐसा गुरुका उपदेश है। पुनः उपरिम अंगुलके असंख्यातवें भाग अथवा उसके ही संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रविकल्पोंके वीतनेपर कालमें एक समय बढ़ता है, ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि, दोनों ही प्रकारोंसे वृद्धि होनेका कोई विरोध नहीं है ।

जघन्य कालको कुछ कम आवलीमेंसे कम करके शेषका विरलन कर जघन्य क्षेत्रसे हीन घनांगुलको समखण्ड करके प्रत्येक समयके ऊपर देकर अवस्थित व अनवस्थित वृद्धिके विकल्पोंमें अंगुलके असंख्यातवें भाग व संख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रविकल्पोंके वीतनेपर कालमें एक समय बढ़ता है, ऐसी पूर्वके समान प्ररूपणा करना चाहिये। इस प्रकार जाकर अनुत्तर विमानवासी देव कालकी अपेक्षा पल्योपमके असंख्यातवें भाग और क्षेत्रकी अपेक्षा समस्त लोकनालीको जानते हैं, अतएव जघन्य कालसे रहित पल्योपमके असंख्यातवें भागका विरलन कर जघन्य क्षेत्रसे हीन जघन्य आदि अध्वानको समखण्ड करके देनेपर प्रत्येक रूपके प्रति असंख्यात जगप्रतर मात्र लोकका असंख्यातवां भाग प्राप्त होता है । यहां एक रूपधरित मात्र क्षेत्रविकल्पोंके वीत जानेपर कालमें एक समय बढ़ता

---

१ अ-काप्रत्योः ' प्पभुडि ' इति पाठः ।

समओ वड्ढदि त्ति ण वत्तव्वं, हेट्ठिमखेत्त-कालाणमभावप्पसंगादो। तेण घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागे कत्थ वि घणंगुलस्स संखेज्जदिभागे कत्थ वि घणंगुले कत्थ वि घणंगुलवग्गे एवं गंतूण कत्थ वि सेडीए कत्थ वि जगपदरे कत्थ वि असंखेज्जेसु जगपदरेसु अदिक्कंतेसु एगो समओ वड्ढदि त्ति वत्तव्वं[1]। तेणुक्कस्सखेत्त-कालाणमुप्पत्ती ण विरुज्झदि त्ति सिद्धं।

संपदि एवं ताव णेदव्वं जाव दव्व-खेत्त-काल-भावाणं दुचरिमसमाणवड्ढि[2] त्ति। दुचरिमसमाणवड्ढी णाम का? जम्हि ट्ठाणे चदुण्णमक्कमेण वुड्ढी होदि तिस्से समाणवड्ढि त्ति सण्णा। तत्थ चरिमसमाणवड्ढिं मोत्तूण हेट्ठिमा दुचरिमसमाणउड्ढी णाम। तेत्तियमद्धाणं गंतूण तत्थ को वि भेदो अत्थि तं भणिस्सामो — तत्थ दुचरिमसमाणवड्ढीदो उवरि केत्तिया कालवियप्पा? एक्को समओ। खेत्तवियप्पा पुण असंखेज्जसेडीमेत्ता वा संखेज्जसेडीमेत्ता वा जगसेडीमेत्ता वा सेढीपढमवग्गमूलमेत्ता वा बिदियवग्गमूलमेत्ता वा घणंगुलमेत्ता वा घणंगुलस्स [संखेज्जदिभागमेत्ता वा घणंगुलस्स] असंखेज्जदिभागमेत्ता वा किं भवंति आहो ण भवंति त्ति

है, ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि, इस प्रकार अधस्तन क्षेत्र और कालके अभावका प्रसंग आवेगा। इसलिये घनांगुलके असंख्यातवें भाग, कहींपर घनांगुलके संख्यातवें भाग, कहीं घनांगुल, कहीं घनांगुलके वर्ग, इस प्रकार जाकर कहींपर जगश्रेणी, कहीं जगप्रतर और कहींपर असंख्यात जगप्रतरोंके वीतनेपर एक समय बढ़ता है; ऐसा कहना चाहिये। इसलिये उत्कृष्ट क्षेत्र और कालकी उत्पत्तिमें कोई विरोध नहीं है, यह सिद्ध हुआ।

अब इस प्रकार तब तक ले जाना चाहिये जब तक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी द्विचरम समान वृद्धि नहीं प्राप्त होती।

शंका — द्विचरम समानवृद्धि किसे कहते हैं?

समाधान — जिस स्थानमें चारोंकी युगपत् वृद्धि होती है उसकी समानवृद्धि ऐसी संज्ञा है। उसमें चरम समानवृद्धिको छोड़कर उससे नीचेकी वृद्धि द्विचरम समानवृद्धि है।

उतना अध्वान जाकर वहां जो कुछ भी भेद है उसे कहते हैं — वहां द्विचरम समानवृद्धिसे ऊपर कितने कालविकल्प हैं? एक समय रूप एक विकल्प। किन्तु क्षेत्रविकल्प असंख्यात श्रेणी मात्र, अथवा संख्यात श्रेणी मात्र, अथवा जगश्रेणी मात्र, अथवा श्रेणीके प्रथम वर्गमूल मात्र, अथवा द्वितीय वर्गमूल मात्र, अथवा घनांगुल मात्र, अथवा घनांगुलके [संख्यातवें भाग मात्र, अथवा घनांगुलके] असंख्यातवें भाग मात्र क्या होते हैं या नहीं

१ अंगुलअसंखभागं संखं वा अंगुलं च तस्सेव। संखमसंखं एवं सेढी-पदरस्स अद्धुवगे॥ गो. जी. ४०९.

२ प्रतिषु 'समऊणवड्ढि' इति पाठः।

पुच्छिदे अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता चेव होंति। कुदो? आइरियपरंपरागदुवदेसादो। अहवा ण णव्वदे, जुत्ति-सुत्ताणमणुवलंभादो। खेत्तवियप्पेहिंतो दव्व-भाववियप्पा पुण असंखेज्जगुणा। गुणगारो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तदव्व-भाववियप्पेसु गदेसु खेत्तम्मि एगागासपदेसवड्ढीदो। एवं दुचरिमसमाणवड्ढिपरूवणा कदा।

पुणो दुचरिमसमाणवड्ढीए ओरालियदव्वमवट्ठिदविरलणाए समखंडं करिय दिण्णे तदणंतरदव्ववियप्पो होदि। दुचरिमसमाणवड्ढीए भावे तप्पाओग्गासंखेज्जरूवेहि गुणिदे तदणंतरभाववियप्पो होदि। एवमंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेसु दव्व-भाववियप्पेसु गदेसु खेत्तम्मि एगो आगासपदेसो वड्ढदि। एवमेदेण कमेण णेदव्वं जाव दव्व-भावाणं दुचरिम-वियप्पो त्ति। पुणो चरिमदेसोहिउक्कस्सदव्वे उप्पाइज्जमाणे दुचरिमओरालियदव्वमवणेदूण एगसमयबंधपाओग्गकम्मइयवग्गणदव्वमवट्ठिदविरलणाए समखंडं करिय दिण्णे देसोहिउक्कस्स-दव्वं होदि[1]। देसोहिदुचरिमभावं तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि गुणिदे देसोहिउक्कस्सभावो होदि। खेत्तस्सुवरि एगागासपदेसे वड्ढिदे लोगो देसोहीए उक्कस्सखेत्तं होदि। कुदो?

होते, ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि वे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र ही होते हैं; कारण कि ऐसा आचार्यपरम्परागत उपदेश है। अथवा, उक्त क्षेत्रविकल्पोंके विषयमें ज्ञान नहीं है, क्योंकि, तत्सम्बन्धी युक्ति व सूत्रका अभाव है। क्षेत्रविकल्पोंसे द्रव्य और भावके विकल्प असंख्यातगुणे हैं। गुणकार अंगुलका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य और भावके विकल्पोंके वीत जानेपर क्षेत्रमें एक आकाशप्रदेशकी वृद्धि होती है। इस प्रकार द्विचरम समानवृद्धिकी प्ररूपणा की गई है।

पुनः द्विचरम समानवृद्धिके औदारिक द्रव्यको अवस्थित विरलनासे समखण्ड करके देनेपर उससे आगेका द्रव्यविकल्प होता है। द्विचरम समानवृद्धिके भावको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर तदनन्तर भावविकल्प होता है। इस प्रकार अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र द्रव्य व भावके विकल्पोंके वीत जानेपर क्षेत्रमें एक आकाशप्रदेश बढ़ता है। इस प्रकार इस क्रमसे द्रव्य और भावके द्विचरम विकल्प तक ले जाना चाहिये। पुनः अन्तिम देशावधिके उत्कृष्ट द्रव्यको उत्पन्न करते समय द्विचरम औदारिक द्रव्यको छोड़कर एक समय बन्धके योग्य कार्मण वर्गणा द्रव्यको अवस्थित विरलनासे समखण्ड करके देनेपर देशावधिका उत्कृष्ट द्रव्य होता है। देशावधिके द्विचरम भावको तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर देशावधिका उत्कृष्ट भाव होता है। क्षेत्रके ऊपर एक आकाशप्रदेश बढ़नेपर देशावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र लोक होता है, क्योंकि,

---

१ एदाहि विभज्जंते दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणयं। चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु॥ गो. जी. ३९८.

वग्गणाए 'जाव लोगो ताव पडिवादी, उवरि अप्पडिवादि'[1] त्ति वयणादो[2]। दुचरिमकालस्सुवरि एगसमए पक्खित्ते देसोहीए उक्कस्सकालो समऊणपल्लं होदि।

जो एसो अण्णाइरियाणं वक्खाणकमो परूविदो सो जुत्तीए ण घडदे। कुदो? सव्वट्ठसिद्धिदेवाणमुक्कस्सोहिदव्वादो उक्कस्सदेसोहिदव्वस्स अणंतगुणत्तप्पसंगादो। तं जहा— लोगस्स संखेज्जदिभागं सलागभूदं ठवेदूण मणदव्ववग्गणाए अणंतिमभाएण सगोहिणाणावरणकम्मपदेसु णिव्विस्सासोवचएसु समयाविरोहेण खंडिदेसु चरिमेगखंडं सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवो जाणदि, उक्कस्सदेसोहिणाणी पुण एगसमयपबद्धमेगवारखंडिदं। ण चेगणाणासमयपबद्धकओ विसेसो, एत्थ तग्गुणगारस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तस्स पहाणत्ताभावादो। एसा देवाणमुक्कस्सदव्वुप्पायणविही णासिद्धा, 'सखेत्ते य सकम्मे रूवयदमणंतभागो' त्ति सुत्तसिद्धत्तादो त्ति। तेण जहण्णदव्वादो तप्पाओग्गवियप्पेसु गदेसु ओरालियदव्वं सविस्ससोवचयमवणेदूण कम्मइयसमयपबद्धो णिविस्सासोवचओ दायव्वो, ओरालिय-

---

वर्गणामें 'जब तक लोक है तब तक प्रतिपाती है, ऊपर अप्रतिपाती है' ऐसा कथन है, अर्थात् क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कर्षसे लोकको विषय करनेवाला देशावधि प्रतिपाती और इससे आगेके परमावधि व सर्वावधि अप्रतिपाती हैं। द्विचरम कालके ऊपर एक समयका प्रक्षेप करनेपर देशावधिका उत्कृष्ट काल एक समय कम पल्य होता है।

ऐसी जो अन्य आचार्योंके व्याख्यानक्रमकी प्ररूपणा है वह युक्तिसे घटित नहीं होती, क्योंकि, वैसा माननेपर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके उत्कृष्ट अवधिद्रव्यसे उत्कृष्ट देशावधिद्रव्यके अनन्तगुणत्वका प्रसंग आवेगा। वह इस प्रकारसे— लोकके संख्यातवें भागको शलाका रूपसे स्थापित करके मनोद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागका विस्रसोपचय रहित अपने अवधिज्ञानावरणकर्मप्रदेशोंमें आगमानुसार भाग देनेपर अन्तिम एक खण्डको सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव जानता है, परन्तु उत्कृष्ट देशावधिज्ञानी एक वार खण्डित एक समयप्रबद्धको जानता है। और एक समयप्रबद्ध और नाना समयप्रबद्ध कृत भेद भी नहीं है, क्योंकि, यहां पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र उसके गुणकारकी प्रधानताका अभाव है। यह देवोंके उत्कृष्ट द्रव्यकी उत्पादनविधि असिद्ध नहीं है, क्योंकि, वह 'अपने क्षेत्रमेंसे एक प्रदेश उत्तरोत्तर कम करते हुए अपने अवधिज्ञानावरणकर्मका अनन्तवां भाग है' इस सूत्रसे सिद्ध है। इस कारण जघन्य द्रव्यसे आगे उसके योग्य विकल्पोंके बीत जानेपर विस्रसोपचय सहित औदारिक द्रव्यको छोड़कर विस्रसोपचय रहित कार्मण समयप्रबद्ध देना चाहिये, क्योंकि, औदारिक

---

१ प्रतिषु 'पडिवादि' इति पाठः।

२ उक्कस्स माणुसेसु य माणुस-तेरिच्छए जहण्णोही। उक्कस्स लोगमेत्तं पडिवादी तेण परमपडिवादी॥ ध. अ. प्र. पत्र ११९२. महाबंध १, पृ. २३. पडिवादी देसोही अप्पडिवादी हवंति सेसाओ। मिच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे॥ गो. जी. ३७५.

विस्सासोवचएहिंतो कम्मइयविस्सासोवचयाणमणंतगुणत्तादो । ण चेदमसिद्धं, ' सव्वत्थोवो ओरालियसरीरस्स विस्सासोवचयओ, वेउव्वियसरीरस्स विस्सासोवचओ अणंतगुणो, आहार-सरीरस्स विस्सासोवचओ अणंतगुणो, तेयासरीरस्स विस्सासोवचओ अणंतगुणो, कम्मइय-सरीरस्स विस्सासोवचओ अणंतगुणो ' त्ति वग्गणाए सुत्तम्मि अणंतगुणत्तसिद्धीदो त्ति । विस्सासोवचए अवणेदूण ओरालियपरमाणू चेव अवट्ठिदविरलणाए किण्ण दिज्जंति ? ण, विरलणरासीदो ते अणंतगुणहीणा इदि गुरूवदेसादो । विरलणादो कम्मइयदव्वमणंतगुणमिदि कधं णव्वदे ? आहारवग्गणाए दव्वा थोवा, तेयावग्गणाए दव्वा अणंतगुणा, भासावग्गणाए दव्वा अणंतगुणा, मणवग्गणाए दव्वा अणंतगुणा, कम्मइयवग्गणाए दव्वा अणंतगुणा त्ति वग्गणासुत्तादो णव्वदे । जदि एवं तो आदिप्पहुडि कम्मइयदव्वं चेव किमिदि मणदव्ववग्गणाए ण खंडिज्जदि ? ण,

---

विस्रसोपचयोंसे कार्मण विस्रसोपचय अनन्तगुणे हैं । और यह बात असिद्ध भी नहीं हैं, क्योंकि, " औदारिक शरीरका विस्रसोपचय सबसे स्तोक है, उससे वैक्रियिक शरीरका विस्रसोपचय अनन्तगुणा है, उससे आहार शरीरका विस्रसोपचय अनन्तगुणा है, उससे तैजस शरीरका विस्रसोपचय अनन्तगुणा है, उससे कार्मण शरीरका विस्रसोपचय अनन्तगुणा है," इस प्रकार वर्गणासूत्रसे उसे अनन्तगुणत्व सिद्ध है ।

शंका—विस्रसोपचयोंको छोड़कर औदारिक परमाणुओंको ही अवस्थित विर-लनासे क्यों नहीं देते ?

समाधान—नहीं देते, क्योंकि, वे विरलन राशिसे अनन्तगुणे हीन हैं, ऐसा गुरुका उपदेश है ।

शंका—विरलन राशिसे कार्मण द्रव्य अनन्तगुणा है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—' आहार वर्गणाके द्रव्य स्तोक हैं, तैजस वर्गणाके द्रव्य उससे अनन्तगुणे हैं, भाषा वर्गणाके द्रव्य उससे अनन्तगुणे हैं, मनो वर्गणाके द्रव्य अनन्तगुणे हैं, कार्मण वर्गणाके द्रव्य अनन्तगुणे हैं, ' इस वर्गणासूत्रसे वह जाना जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो आदिसे लेकर कार्मण द्रव्यको ही मनोद्रव्यवर्गणा द्वारा क्यों खण्डित नहीं करते ?

तेया-कम्मइयसरीरं तेयादव्वं च भासदव्वं च ।
बोद्धव्वमसंखेज्जा दीव-समुद्दा य वासा य[1] ॥ १४ ॥

इच्चेदीए सुत्तगाहाए सह विरोहादो । तेण कत्थ वि ओरालियसरीरं, कत्थ वि तेया-सरीरं, कत्थ वि कम्मइयसरीरं, कत्थ वि तेयादव्वं, कत्थ वि भासादव्वं, कत्थ वि मणदव्वं कत्थ वि कम्मइयदव्वं दादव्वमिदि ।

सेसं पुव्वं व वत्तव्वं । असंखेज्जेसु दव्व-भाववियप्पेसु पुव्वं व अदिक्कंतेसु जहण्णोहि-खेत्तमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिज्जदि, तदो खेत्तस्स बिदियवियप्पो होदि । एव-मसंखेज्जेसु खेत्तवियप्पेसु गदेसु जहण्णकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिज्जदि, तदो कालस्स बिदियवियप्पो होदि । एवं णेदव्वं जाव देसोहीए उक्कस्संते । एवं के वि आइरिया देसोहीए परूवणं कुणंति । तण्ण घडदे । कुदो ? पुव्ववक्खाणभणिदद्धाणसमाणमेव किमेदस्स

समाधान — नहीं, क्योंकि, ऐसा होनेपर [देशावधिके मध्य विकल्पोंमें जहां अवधिज्ञान] तैजस शरीर, उसके आगे कार्मण शरीर, उसके आगे तेजोद्रव्य अर्थात् विस्रसोपचय रहित तैजस वर्गणा, उसके आगे भाषा द्रव्य अर्थात् विस्रसोपचय रहित भाषा वर्गणा [और उससे आगे मनोवर्गणाको] जानता है, वहां क्षेत्र असंख्यात द्वीप-समुद्र और काल असंख्यात वर्ष प्रमाण होता है ॥ १४ ॥

इस सूत्र रूप गाथाके साथ विरोध होगा। इसलिये कहीं औदारिक शरीर, कहीं तैजस शरीर, कहीं कार्मण शरीर, कहीं तैजस द्रव्य, कहीं भाषा द्रव्य, कहीं मन द्रव्य और कहीं कार्मण द्रव्य देना चाहिये।

शेष पूर्वके समान कहना चाहिये। पूर्वके समान असंख्यात द्रव्य और भावके विकल्पोंके वीत जानेपर जब जघन्य अवधिक्षेत्रको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा किया जाता है तब क्षेत्रका द्वितीय विकल्प होता है। इसी प्रकार असंख्यात क्षेत्रविकल्पोंके वीत जानेपर जब जघन्य कालको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित किया जाता है तब कालका द्वितीय विकल्प होता है। इस प्रकार देशावधिके उत्कृष्ट विकल्प तक ले जाना चाहिये। इस प्रकार कितने ही आचार्य देशावधिका प्ररूपण करते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता है, क्योंकि, यहां हम पूछते हैं कि पूर्व व्याख्यानमें कहे हुए अध्वानके सदृश

---

१ महाबंध १, पृ. २२. देसोहिमज्झभेदे सविस्ससोवचयतेज-कम्मंगं । तेजोभास-मणाणं वग्गणयं केवलं जत्थ ॥ पस्सदि ओही तत्थ असंखेज्जाओ हवंति दीउवही । वासाणि असंखेज्जा होंति असंखेज्जगुणिदकमा ॥ गो. जी. ३९५–३९६. तेया-कम्मसरीरे तेयादव्वे य भासदव्वे य । बोद्धव्वमसंखेज्जा दीव-समुद्दा य कालो य ॥ विशे. भा. ६७६ (नि. ४३).

वक्खाणस्सद्धाणमाहो विसरिसमिदि ? ण ताव समाणपक्खो जुज्जदे, खेत्त-कालाणमसंखेज्ज-लोगत्तप्पसंगादो । तं जहा — आवलियाए असंखेज्जदिभागछेदणएहि लोगछेदणए ओवट्टिय लद्धं विरलेदूण रूवं पडि गुणगारभूदआवलियाए असंखेज्जदिभागो दादव्वो । विरलणमेत्तेसु खेत्तवियप्पेसु गदेसु ओहिखेत्तमसंखेज्जलोगमेत्तं होदि, विरलणमेत्तेसु आवलियाए असंखेज्जदि-भागेसु अण्णोण्णगुणिदेसु लोगुप्पत्तीदो । एत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागद्धाणे चेव ओहिखेत्तमसंखेज्जलोगमेत्तं जादमेदम्हादो उवरि गच्छमाणे सुतरामेव खेत्तस्स असंखेज्ज-लोगत्तं पसज्जदे । एदं च णेच्छिज्जदि, लोगमेत्तमुक्कस्सदेसोहिखेत्तमिदि अब्भुवगमादो । एवं कालस्स वि असंखेज्जलोगप्पसंगो परूवेदव्वो । ण च कालो उक्कस्सओ असंखेज्जलोगो त्ति देसोहीए इच्छिज्जदि, आइरियपरंपरागदुवदेसेण देसोहिउक्कस्सकालस्स समऊणपल्ल-पमाणत्तसिद्धीदो ।

ण बिदियपक्खो वि, पुव्विल्लद्धाणादो अहियद्धाणे अब्भुवगम्ममाणे पुव्विल्लदोस-प्पसंगादो । ण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखेत्तवियप्पब्भुवगमो वि, देसोहीए असंखेज्ज-लोगमेत्तखओवसमवियप्पाणमभावप्पसंगादो, कालस्सावलियाए असंखेज्जदिभागत्तप्पसंगादो च ।

....

ही इस व्याख्यानका अध्वान है अथवा विसदृश ? उक्त दो पक्षोंमें समान पक्ष तो युक्त है नहीं, क्योंकि ऐसा होनेपर क्षेत्र और कालको असंख्यात लोकपनेका प्रसंग होगा। वह इस प्रकारसे — आवलीके असंख्यातवें भाग अर्धच्छेदोंसे लोकके अर्धच्छेदोंको अपवर्तित करके प्राप्त राशिका विरलनकर प्रत्येक रूपके प्रति गुणकारभूत आवलीका असंख्यातवां भाग देना चाहिये। विरलन मात्र क्षेत्रविकल्पोंके वीत जानेपर अवधिका क्षेत्र असंख्यात लोक-प्रमाण होता है, क्योंकि, विरलन मात्र आवलीके असंख्यात भागोंको परस्पर गुणित करनेपर लोककी उत्पत्ति होती है । यहां पल्योपमके असंख्यातवें भाग अध्वानमें ही अवधिक्षेत्र असंख्यात लोक मात्र हो गया है। इससे ऊपर जानेपर स्वयमेव क्षेत्रको असंख्यात लोकपनेका प्रसंग आवेगा। और यह इष्ट नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोक मात्र है, ऐसा स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार कालके भी असंख्यात लोकपनेके प्रसंगकी प्ररूपणा करना चाहिये । और देशावधिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है, ऐसा अभीष्ट नहीं है, क्योंकि, आचार्यपरम्परागत उपदेशसे देशावधिका उत्कृष्ट काल एक समय कम पल्य प्रमाण सिद्ध है ।

द्वितीय (असमान) पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि, पूर्वोक्त अध्वानसे अधिक अध्वान स्वीकार करनेपर पूर्वोक्त दोषका प्रसंग आवेगा। यदि पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रविकल्पोंको स्वीकार करें तो वह भी नहीं बनता, क्योंकि, ऐसा स्वीकार करनेपर देशा-वधिके असंख्यात लोक मात्र क्षयोपशमविकल्पोंके अभावका प्रसंग होगा, तथा कालके आवलीके असंख्यातवें भागत्वका प्रसंग भी होगा। दूसरी बात यह है कि क्षेत्र और

किं च खेत्त-कालाणं खओवसमा णासंखेज्जगुणक्कमेण देसोहिम्हि अवट्टिदा,

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज दो वि संखेज्जा ।
अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥ १५ ॥

इच्चादिगाहावग्गणसुत्तेहि सह विरोहादो । एवमोही परूविदा ।

अवधयश्च ते जिनाश्च अवधिजिनाः । कधमोहिणाणस्स गुणस्स गुणित्तं जुज्जदे ? ण, गुणिव्वदिरेगेण गुणाणमभावादो । किमट्ठमोहिणा जिणा विसेसिज्जंते ? अण्णोहिजिण-पडिसेहट्ठं । के ओहिजिणा ? तिरयणसहिदोहिणाणिणो । तेसिं णमो णमोक्कारो होदि त्ति

कालके क्षयोपशम असंख्यातगुणित क्रमसे देशावधिमें अवस्थित नहीं हैं, क्योंकि,

प्रथम काण्डकमें जघन्य देशावधिका क्षेत्र अंगुलका असंख्यातवां भाग और जघन्य काल आवलीका असंख्यातवां भाग है । इसी काण्डकमें उत्कृष्ट क्षेत्र और काल क्रमशः अंगुल व आवलीके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं । द्वितीय काण्डकमें क्षेत्र घनांगुल और काल कुछ कम आवली प्रमाण है । तृतीय काण्डकमें क्षेत्र अंगुलपृथक्त्व और काल आवली प्रमाण है ॥ १५ ॥

इत्यादि वर्गणा खण्डके गाथासूत्रोंके साथ विरोध होगा । इस प्रकार अवधिज्ञानकी प्ररूपणा की गई है ।

अवधिज्ञान स्वरूप जो जिन वे अवधिजिन हैं ।

शंका—गुण स्वरूप अवधिज्ञानके गुणीपना कैसे युक्त है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, गुणीको छोड़कर गुणोंका अभाव है । अर्थात् गुण और गुणीमें भेद न होनेसे अवधिज्ञान स्वरूप जिनके कहनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—जिनोंको अवधिसे विशेषित किसलिये किया जाता है ?

समाधान—अन्य अवधिजिनोंके प्रतिषेधार्थ जिनोंको अवधिसे विशेषित किया गया है ।

शंका—अवधिजिन कौन हैं ?

समाधान—रत्नत्रय सहित अवधिज्ञानी अवधिजिन हैं ।

ऐसे अवधिजिनोंको नमः अर्थात् नमस्कार हो यह अभिप्राय है ।

---

१ काप्रतौ 'खओवसमेणा-' इति पाठः ।

वुत्तं होदि । महव्वयविरहिददोरयणहराणं ओहिणाणीणमणोहिणाणीणं च किमट्ठं णमोक्कारो ण कीरदे ? गारवगरुवेसु जीवेसु चरणाचारपयट्टावणट्ठं उत्तिमग्गविसयभत्तिपयासणट्ठं च ण कीरदे । एवं देसोहिजिणाणं णमोक्कारं काऊण परमोहिजिणाणं णमोक्कारकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

णमो परमोहिजिणाणं ॥ ३ ॥

परमो ज्येष्ठः, परमश्चासौ अवधिश्च परमावधिः । कधमेदस्स ओहिणाणस्स जेट्ठदा ? देसोहिं पेक्खिदूण महाविसयत्तादो, मणपज्जवणाणं व संजदेसु चेव समुप्पत्तीदो, सगुप्पण्णभवे चेव केवलणाणुप्पत्तिकारणत्तादो, अप्पडिवादित्तादो वा जेट्ठदा । परमावधयश्च ते जिनाश्च परमावधिजिनाः, तेभ्यो नमः । जदि देसोहिणाणादो परमोहिणाणं जेट्ठं होदि तो एदस्सेव पुव्वं

....

शंका — महाव्रतोंसे रहित दो रत्नों अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके धारक अवधिज्ञानी तथा अवधिज्ञानसे रहित जीवोंको भी क्यों नहीं नमस्कार किया जाता ?

समाधान — अहंकारसे महान् जीवोंमें चरणाचार अर्थात् सम्यक् चारित्र रूप प्रवृत्ति करानेके लिये तथा प्रवृत्तिमार्गविषयक भक्तिके प्रकाशनार्थ उन्हें नमस्कार नहीं किया जाता है ।

इस प्रकार देशावधिजिनोंको नमस्कार करके परमावधिजिनोंको नमस्कार करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

परमावधिजिनोंको नमस्कार हो ॥ ३ ॥

परम शब्दका अर्थ ज्येष्ठ है । परम ऐसा जो अवधि वह परमावधि है ।

शंका — इस अवधिज्ञानके ज्येष्ठपना कैसे है ?

समाधान — चूंकि यह परमावधि ज्ञान देशावधिकी अपेक्षा महा विषयवाला है, मनःपर्ययज्ञानके समान संयत मनुष्योंमें ही उत्पन्न होता है, अपने उत्पन्न होनेके भवमें ही केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है, और अप्रतिपाती है अर्थात् सम्यक्त्व व चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व एवं असंयमको प्राप्त होनेवाला नहीं है; इसीलिये उसके ज्येष्ठपना सम्भव है ।

परमावधि रूप ऐसे वे जिन परमावधि जिन हैं । उनके लिये नमस्कार है ।

शंका — यदि देशावधि ज्ञानसे परमावधि ज्ञान ज्येष्ठ है तो इसको ही पहिले

णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, देसोहीदो चेव परमोहिसरूवावगमो, ण अण्णहा त्ति जाणावणट्ठं देसोहीए पुव्वं णमोक्कारकरणादो, परमोहिसरूवावगमणिमित्तत्तणेण परमोहिं पेक्खिय महल्लत्तादो वा । कधं देसोहीदो परमोहिसरूवमवगम्मदे ? उच्चदे एत्थ सुत्तगाहा—

परमोहि असंखेज्जाणि लोगमेत्ताणि समयकालो दु ।
रूवगद लहइ दव्वं खेत्तोवमअगणिजीवेहिं[1] ॥ १६ ॥

एदीए गाहाए परमोहिदव्व-खेत्त-काल-भावाणं परूवणा कदा । तं जहा— परमावधिरसंख्येयानि लोकमात्राणि लोकप्रमाणानि लभते जानातीत्यर्थः । एदेण खेत्तपमाणं परूविदं ।

नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, देशावधिसे ही परमावधिके स्वरूपका ज्ञान होता है, अन्यथा नहीं होता; इस बातके ज्ञापनार्थ देशावधिको पूर्वमें नमस्कार किया है । अथवा परमावधिके स्वरूपके जाननेका निमित्त होनेसे परमावधिकी अपेक्षा चूंकि देशावधि महान् है, अतः उसे पहिले नमस्कार किया है ।

शंका — देशावधिसे परमावधिके स्वरूपका ज्ञान कैसे होता है ?

समाधान — यहां सूत्र गाथा कहते हैं—

परमावधि उत्कर्षसे क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात लोकमात्रों और कालकी अपेक्षा असंख्यात लोक मात्र समय रूप कालको जानता है । वही [शलाकाभूत] क्षेत्रोपम अग्निकायिक जीवोंसे परिच्छिन्न रूपगत द्रव्यको उत्कर्षसे विषय करता है ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—परमावधिका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात लोक प्रमाण है और उत्कृष्ट काल भी असंख्यात लोक मात्र ही है । उसीके विषयभूत उत्कृष्ट द्रव्यको जाननेके लिये निम्न प्रक्रिया है— तेजकायिक जीवकी जघन्य अवगाहनाको उसकी ही उत्कृष्ट अवगाहनामेंसे घटाकर शेषमें एक रूप मिला देनेपर जो प्राप्त हो उसे तेजकायिक राशिसे गुणा करनेपर शलाका राशि उत्पन्न होती है । अब देशावधिके उत्कृष्ट द्रव्यमें मनोवर्गणाके अनन्तवें भाग रूप ध्रुवहारका वार वार भाग देकर शलाका राशिमेंसे एक एक कम करते जाना चाहिये । इस प्रकार शलाका राशिके समाप्त होनेपर अन्तमें जो द्रव्यविकल्प प्राप्त होता है वह रूपगत है, और वही परमावधिका उत्कृष्ट विषय है । यही शलाका राशि परमावधिके विषयभूत क्षेत्र, काल एवं भावके विकल्पोंके जाननेमें भी निमित्त है ।

इस गाथा द्वारा परमावधिके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी प्ररूपणा की गई है । वह इस प्रकारसे— परमावधि असंख्यात लोक मात्र अर्थात् लोक प्रमाणोंको प्राप्त करता है, जानता है । इससे क्षेत्रप्रमाणकी प्ररूपणा की है । समय ऐसा जो काल वह समय-

---

१ महाबंध १, पृ. २२. परमोहि असंखेज्जा लोगमित्ता समा असंखिज्जा । रूवगयं लहइ सव्वं खेत्तोवमियं अगणिजीवा ॥ विशे. भा. ६८८ (नि. ४५).

'समयकालो दु' समयश्चासौ कालश्च समयकालः। समयविसेसणं किमट्ठं ? दव्वकालपडिसेहट्ठं। किमट्ठं दव्वकालपडिसेहो कीरदे ? तेणेत्थ पओजणाभावादो। दुसद्दो अविसद्दत्थे[1] दट्ठव्वो। अवधेः समयकालोऽपि असंख्येयलोकमात्रः। एदेण परमोहीए उक्कस्सकाल-भावाणं परूवणा कदा। होदु कालपरूवणा एसा, ण भावपरूवणा; काल-भावाणमेयत्तविरोहादो। ण एस दोसो, अदीदाणागयपज्जया तीदाणागयकालो, वट्टमाणपज्जया वट्टमाणकालो। तेसिं चेव भावसण्णा वि, 'वर्तमानपर्यायोपलक्षितं द्रव्यं भावः[2]' इदि पओअदंसणादो। तीदाणागयकालेहिंतो वट्टमाणकालो भावसण्णिदो कालत्तणेण अभिण्णो त्ति काल-भावाणमेयत्ताविरोहादो। एदेण वक्खाणेण जहण्णपरमोहिकालो ण सूचिदो, सो कधं लब्भदे ? 'परमोहीए असंखेज्जा

....

काल है।

शंका—यहां समय विशेषण किसलिये दिया है ?

समाधान—द्रव्य कालका प्रतिषेध करनेके लिये समय विशेषण दिया है।

शंका—द्रव्य कालका प्रतिषेध किसलिये किया जाता है ?

समाधान—क्योंकि, उसका यहां प्रयोजन नहीं है।

'तु' शब्द अपि (भी) शब्दके अर्थमें जानना चाहिये। अवधिका समय रूप काल भी असंख्यात लोक मात्र है। इससे परमावधिके उत्कृष्ट काल और भावकी प्ररूपणा की है।

शंका—यह कालप्ररूपणा भले ही हो, किन्तु भावप्ररूपणा नहीं हो सकती; क्योंकि, काल और भावकी एकताका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अतीत और अनागत पर्यायें अतीत अनागत काल हैं, तथा वर्तमान पर्यायें वर्तमान काल हैं। उन्हीं पर्यायोंकी ही भाव संज्ञा भी है, क्योंकि, 'वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्य भाव है' ऐसा प्रयोग देखा जाता है। अतीत और अनागत कालसे चूंकि भाव संज्ञावाला वर्तमान काल कालस्वरूपसे अभिन्न है, अतः काल और भावकी एकतामें कोई विरोध नहीं है।

शंका—इस व्याख्यानसे जघन्य परमावधिका काल नहीं सूचित किया गया है, वह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'परमावधिका असंख्यात समय-काल है,' इस सूत्रसे वह जाना

....

१ प्रतिषु 'अविसदत्थे' इति पाठः।

२ स. सि. १, ५. त. रा. १, ५, ८.

समयकालो ' त्ति सुत्तादो लब्भदे । खेत्तोवमअगणिजीवेहि, क्षेत्रोपमाश्च ते अग्निजीवाश्च क्षेत्रोपमाग्निजीवाः, तेहि खेत्तोवमागणिजीवेहि सलागभूदेहि जं सिद्धं पोग्गलदव्वं तं लहदि जाणदि । रूवयद-विसेसणं किमट्ठं ? अरूविदव्वपडिसेहट्ठं । जदि रूविदव्वस्सेव एदेण परिच्छेदो कीरदि तो ण तीदाणागय-वट्टमाणपज्जायाणमेदेण परिच्छेदो कीरदे, तेसिं रूवित्ताभावादो । तदभावो वि दव्वत्ताभावादो त्ति ? ण एस दोसो, तेसिं पोग्गलपज्जायाणं कथंचि रूविदव्वत्तसिद्धीदो । एसो रूवयदसद्दो मज्झदीवओ त्ति हेट्ठोवरिमोहिणाणेसु सव्वत्थ जोजेयव्वो । एदेण दव्वपरूवणा कदा ।

संपहि एदीए गाहाए सूचिदत्थस्स णिण्णयट्ठमिमा परूवणा कीरदे । तं जहा— सुहुमतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । तं बादरतेउक्काइयपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणाए तत्तो असंखेज्जगुणाए सोहिय सुद्धसेसम्मि जहण्णोगाहणवियप्पागमणट्ठं रूवं पक्खिविय सामण्णतेउक्काइयरासिम्मि गुणिदे खेत्तोवमअगणिजीव-

....

जाता है ।

क्षेत्रोपम अग्नि जीव— क्षेत्रोपम ऐसे वे अग्नि जीव क्षेत्रोपम अग्नि जीव हैं । उन शलाकाभूत क्षेत्रोपम अग्नि जीवोंसे जो पुद्गल द्रव्य सिद्ध है उसे परमावधि प्राप्त करता है अर्थात् जानता है ।

शंका—रूपगत विशेषण किस लिये दिया है ?

समाधान—अरूपी द्रव्यका प्रतिषेध करनेके लिये रूपगत विशेषण दिया है ।

शंका—यदि इसके द्वारा केवल रूपी द्रव्यका ही ग्रहण किया जाता है तो फिर इससे अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायोंका ग्रहण नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि, वे रूपी नहीं हैं । रूपीपनेका अभाव भी उनमें द्रव्यत्वके अभावसे है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उन पुद्गलपर्यायोंके कथंचित् रूपी द्रव्यत्व सिद्ध है ।

यह रूपगत शब्द चूंकि मध्यदीपक है, अतएव इसे अधस्तन और उपरिम अवधिज्ञानोंमें सर्वत्र जोड़ लेना चाहिये । इस व्याख्यान द्वारा द्रव्यप्ररूपणा की गई है ।

अब इस गाथा द्वारा सूचित अर्थके निर्णयार्थ यह प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— सूक्ष्म तेजकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना अंगुलके असंख्यातवें भाग है । उसे उससे असंख्यातगुणी बादर तेजकायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहनामेंसे कम करके शेषमें जघन्य अवगाहनाके विकल्पोंको लानेके लिये एक रूपका प्रक्षेप करके सामान्य तेजकायिक राशिको गुणित करनेपर क्षेत्रोपम अग्नि जीवोंका प्रमाण होता है । यह परमावधिके

पमाणं होदि । एसो परमोहीए दव्व-खेत्त-काल-भावाणं सलागरासि त्ति पुध ट्ठवेदव्वो । पुणो दो आवलियाए असंखेज्जदिभागा समसंखा, ते वि पुध ट्ठवेदव्वा । तत्थ दाहिणपासट्ठियस्स पडिगुणगारो अवट्ठिदगुणगारो त्ति दोण्णि णामाणि । तत्थ जो सो वामपासट्ठिदो तस्स खेत्त-कालगुणगारो अणवट्ठिदगुणगारो त्ति दोण्णि णामाणि । एवं ठविय तदो देसोहिउक्कस्सदव्व-मवट्ठिदविरलणाए समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं परमोहिजहण्णदव्वं होदि[1] । देसोहि-उक्कस्सभावे तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि गुणिदे परमोहीए जहण्णभावो होदि । देसोहीए उक्कस्सखेत्तं लोगमणवट्ठिदगुणगारेण गुणिदे परमोहीए जहण्णं खेत्तं होदि । पुणो समऊण-पल्लमुक्कस्सदेसोहिकालं तेणेव अणवट्ठिदगुणगारेण गुणिदे परमोहिजहण्णकालो होदि । सलागाहिंतो एगरूवमवणेदव्वं । पुणो परमोहिजहण्णदव्वमवट्ठिदविरलणाए समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगखंडं परमोहीए बिदियदव्ववियप्पो होदि । परमोहीए जहण्णभावं तप्पाओग्ग-असंखेज्जरूवेहि गुणिदे तस्सेव बिदियवियप्पो होदि । पुणो परमोहिजहण्णखेत्तं पडिगुणगारेण गुणिदहेट्ठिमवियप्पगुणगारेण गुणिदे परमोहिखेत्तस्स बिदियवियप्पो होदि । एदेणेव गुणगारेण

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी शलाका राशि है; अतः उसे पृथक् स्थापित करना चाहिये । पुनः समान संख्यावाले आवलीके दो असंख्यात भागोंको लेकर उन्हें भी पृथक् स्थापित करना चाहिये । उनमेंसे दाहिने पार्श्वमें स्थित राशिको प्रतिगुणकार व अवस्थित गुणकार इस प्रकार दो संज्ञायें हैं । उनमें जो वह वाम पार्श्वमें स्थित है उसके क्षेत्र-कालगुणकार और अनवस्थित गुणकार ये दो नाम हैं । इस प्रकार स्थापित करके पश्चात् देशावधिके उत्कृष्ट द्रव्यको अवस्थित विरलनासे समखण्ड करके देनेपर उनमें एक रूपधरित परमावधिका जघन्य द्रव्य होता है । देशावधिके उत्कृष्ट भावको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर परमावधिका जघन्य भाव होता है । देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र लोकको अनवस्थित गुणकारसे गुणित करनेपर परमावधिका जघन्य क्षेत्र होता है । पुनः एक समय कम पल्य रूप देशावधिके उत्कृष्ट कालको उसी अनवस्थित गुणकारसे गुणित करनेपर परमावधिका जघन्य काल होता है । शलाकाओंमेंसे एक रूप कम करना चाहिये । पुनः परमावधिके जघन्य द्रव्यको अवस्थित विरलनासे समखण्ड करके देनेपर उनमें एक खण्ड परमावधिका द्वितीय द्रव्यविकल्प होता है । परमावधिके जघन्य भावको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर उसका ही द्वितीय विकल्प होता है । पुनः परमावधिके जघन्य क्षेत्रको प्रतिगुणकारसे गुणित अधस्तन विकल्पके गुणकारसे गुणित करनेपर परमावधिके क्षेत्रका द्वितीय विकल्प होता है । इसी गुणकारसे परमावधिके जघन्य कालको गुणित करनेपर

---

१ देसावहिवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे णियमा । परमावहिस्स अवरं दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं ॥ परमावहिस्स भेदा सगउग्गाहणवियप्पहदतेऊ । चरिमे हारपमाणं जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु ॥ गो. जी. ४१३-४१४.

परमोहिजहण्णकाले गुणिदे कालस्स बिदियवियप्पो होदि। सलागासु एगरूवमवणेदव्वं। पुणो बिदियवियप्पजहण्णदव्वमवट्ठिदविरलणाए समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगखंडं तदियवियप्पदव्वं होदि। बिदियवियप्पभावे तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि गुणिदे तदियवियप्पभावो होदि। अवट्ठिदगुणगारगुणिदबिदियवियप्पगुणगारेण बिदियवियप्पखेत्त-काले गुणिदे तदियवियप्पखेत्त-काला होंति। सलागासु अण्णेगरूवमवणेदव्वं। चउत्थ-पंचम-छट्ठ-सत्तमादिवियप्पाणमेवं चेव णेदव्वं। णत्थि एत्थ कोच्छि विसेसो। एवं गच्छमाणे अणवट्ठिदगुणगारो कम्हि उद्देसे घणलोगमेत्तो होदि त्ति वुत्ते वुच्चदे— आवलियाए असंखेज्जदिभागस्स छेदणएहि लोगछेदणए ओवट्टिय लद्धमेत्तमद्धाणे गंदे अणवट्ठिदगुणगारो लोगमेत्तो होदि, विरलणरासिमेत्तअवट्ठिदगुणगाराणमण्णोण्णब्भत्थरासिस्स तत्थुवलंभादो। तदो प्पहुडि उवरि सव्वत्थ अणवट्ठिदगुणगारो असंखेज्जलोगमेत्तो होदि, वियप्पं पडि अवट्ठिदगुणगारेण गुणिज्जमाणत्तादो। एवं णेदव्वं जाव परमोहीए दुचरिमवियप्पो त्ति।

संपधि चरिमवियप्पो उच्चदे— परमोहीए दुचरिमदव्वमवट्ठिदविरलणाए समखंडं

....

कालका द्वितीय विकल्प होता है। शलाकाओंमेंसे एक रूप कम करना चाहिये। पुनः द्वितीय विकल्प रूप जघन्य द्रव्यको अवस्थित विरलनासे समखण्ड करके देनेपर उनमें एक खण्ड तृतीय विकल्प रूप द्रव्य होता है। द्वितीय विकल्प रूप भावको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर तृतीय विकल्प रूप भाव होता है। अवस्थित गुणकारसे गुणित द्वितीय विकल्पके गुणकारसे द्वितीय विकल्पभूत क्षेत्र व कालको गुणित करनेपर तृतीय विकल्प रूप क्षेत्र व काल होते हैं। शलाकाओंमेंसे अन्य एक रूप कम करना चाहिये। चतुर्थ, पंचम, छठे और सातवें आदि विकल्पोंको इसी प्रकार ही ले जाना चाहिये, क्योंकि, यहां कोई भी विशेषता नहीं है।

शंका—इस प्रकार जानेपर अनवस्थित गुणकार किस स्थानमें घनलोक मात्र होता है?

समाधान—इस प्रकार पूछनेपर उत्तर कहते हैं— आवलीके असंख्यातवें भागके अर्धच्छेदोंसे लोकके अर्धच्छेदोंको अपवर्तित करके लब्ध मात्र अध्वान जानेपर अनवस्थित गुणकार लोक मात्र होता है, क्योंकि, विरलन राशि मात्र अवस्थित गुणकारोंकी अन्योन्याभ्यस्त राशि वहां पायी जाती है।

वहांसे लेकर ऊपर सर्वत्र अनवस्थित गुणकार असंख्यात लोक मात्र होता है, क्योंकि, प्रत्येक विकल्पके प्रति वह अवस्थित गुणकारसे गुणिज्यमान है। इस प्रकार परमावधिके द्विचरम विकल्प तक ले जाना चाहिये।

अब अन्तिम विकल्पको कहते हैं— परमावधिके द्विचरम द्रव्यको अवस्थित

करिय दिण्णे चरिम- [दव्व-] वियप्पो होदि । दुचरिमभावं तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि गुणिदे परमोहीए चरिमभावो होदि । परमोहीए असंखेज्जलोगमेत्तदुचरिमअणवट्ठिदगुणगारमण्णेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिय तेण गुणिदरासिणा दुचरिमखेत्त-काले गुणिदे परमोहीए उक्कस्सखेत्तं उक्कस्सकालो च होदि । सलागासु एगरूवमवणिदे सव्वसलागाओ एत्थ णिट्ठिदाओ । खेत्तोवमअगणिजीवेहि देसोहिउक्कस्सदव्व-खेत्त-काल-भावाणं खंडण-गुणणवार-सलागाहि सोहिददव्व-खेत्त-काल-भावे उक्कस्सपरमोही जाणदि त्ति सिद्धं । तेण देसोहीए पुव्वं णमोक्कारो कदो, पच्छा परमोहीए ।

णमो सव्वोहिजिणाणं ॥ ४ ॥

सर्वं विश्वं कृत्स्नमवधिर्मर्यादा यस्य स बोधः सर्वावधिः । एत्थ सव्वसद्दो सयलदव्व-वाचओ ण घेत्तव्वो, परदो अविज्जमाणदव्वस्स ओहित्ताणुववत्तीदो । किंतु सव्वसद्दो सव्वेगदेसम्हि रूवयदे वट्टमाणो घेत्तव्वो । तेण सव्वरूवयदं ओही जिस्से[1] त्ति संबंधो कायव्वो । अधवा, सरति गच्छति आकुंचन-विसर्पणादीनीति पुद्गलद्रव्यं सर्वं, तमोही जिस्से[1] सा सव्वोही । असेससंसारि-

---

विरलनासे समखण्ड करके देनेपर अन्तिम द्रव्यविकल्प होता है । द्विचरम भावको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर परमावधिका अन्तिम भाव होता है । परमावधिके असंख्यात लोक मात्र द्विचरम अनवस्थित गुणकारको अन्य आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करके उस गुणित राशिसे द्विचरम क्षेत्र और कालको गुणित करनेपर परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र और उत्कृष्ट काल होता है । शलाकाओंमेंसे एक रूप कम करनेपर सब शलाकायें यहां समाप्त हो जाती हैं । क्षेत्रोपम अग्नि जीवोंसे देशावधिके उत्कृष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी खण्डन और गुणन रूप वारशलाकाओंसे शोधित द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको उत्कृष्ट परमावधि जानता है, यह सिद्ध हुआ । इसीलिये देशावधिको पूर्वमें नमस्कार किया है, पश्चात् परमावधिको ।

सर्वावधि जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४ ॥

विश्व और कृत्स्न ये सर्व शब्दके समानार्थक शब्द हैं । सर्व है मर्यादा जिस ज्ञानकी वह सर्वावधि है । यहां सर्व शब्द समस्त द्रव्यका वाचक नहीं ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, जिसके परे अन्य द्रव्य न हो उसके अवधिपना नहीं बनता । किन्तु सर्व शब्द सबके एक देश रूप रूपी द्रव्यमें वर्तमान ग्रहण करना चाहिये । इसलिये सर्व रूपगत है अवधि जिसकी, इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये । अथवा, जो आकुंचन और विसर्पणादिकोंको प्राप्त हो वह पुद्गल द्रव्य सर्व है, वही जिसकी मर्यादा है वह सर्वावधि है ।

---

१ प्रतिषु ' जिणस्से ' इति पाठः ।

जीव-पोग्गलदव्वपरिच्छेदकारित्तादो परमोहिजिणेहिंतो महल्लाणं सव्वोहिजिणाणं किमिदि पुव्वमेव णमोक्कारो ण कदो ? ण, सव्वोहिमहल्लत्तावगमणगुणेण सव्वोहीदो परमोहीए महल्लत्तं पेक्खिय तिस्से पुव्वं णमोक्कारविहाणादो। कधं परमोहीदो सव्वोहिमहल्लत्तमवगम्मदे ? उच्चदे— परमोहिउक्कस्सदव्वमवट्ठिदविरलणाए समखंडं करिय दिण्णे रूवं पडि एगेगो परमाणू पावदि, सो सव्वोहीए विसओ। एत्थ जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तवियप्पा णत्थि, सव्वोहीए एयवियप्पादो[1]। परमोहिउक्कस्सभावं तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि गुणिदे सव्वोहीए उक्कस्सभावो होदि। परमोहिउक्कस्सखेत्तं तप्पाओग्गअसंखेज्जलोगेहि गुणिदे सव्वोहीए उक्कस्सखेत्तं होदि। सव्वोहिउक्कस्सखेत्तुप्पायणट्ठं परमोहिउक्कस्सखेत्तं तिस्से चेव चरिम-अणवट्ठिदगुणगारेण आवलियाए असंखेज्जदिभागपदुप्पण्णेण गुणिज्जदि त्ति के वि भणंति। तण्ण घडदे, परियम्मे वुत्तओहिणिबद्धखेत्ताणुप्पत्तीदो। तं जहा— परमोहिखेत्तपरूवणा ताव

शंका—चूंकि सर्वावधि जिन समस्त संसारी जीव और पुद्गल द्रव्यको जानते हैं, अतः परमावधिजिनोंकी अपेक्षा महान् होनेसे उन्हें ही पूर्वमें नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, सर्वावधिके महत्त्वका ज्ञान कराने रूप गुणसे सर्वावधिकी अपेक्षा परमावधिके महत्त्वको देखकर उसे पहिले नमस्कार किया है।

शंका—परमावधिकी अपेक्षा सर्वावधिकी महत्ता कैसे जानी जाती है ?

समाधान—इस शंकाका उत्तर देते हैं— परमावधिके उत्कृष्ट द्रव्यको अवस्थित विरलनासे समखण्ड करके देनेपर रूपके प्रति जो एक एक परमाणु प्राप्त होता है, वह सर्वावधिका विषय है। यहां जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्त विकल्प नहीं हैं, क्योंकि, सर्वावधि एक विकल्प रूप है। परमावधिके उत्कृष्ट भावको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर सर्वावधिका उत्कृष्ट भाव होता है। परमावधिके उत्कृष्ट क्षेत्रको उसके योग्य असंख्यात लोकोंसे गुणित करनेपर सर्वावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र होता है। सर्वावधिके उत्कृष्ट क्षेत्रको उत्पन्न करानेके लिये परमावधिके उत्कृष्ट क्षेत्रको आवलीके असंख्यातवें भागसे उत्पन्न उसके ही अन्तिम अनवस्थित गुणकारसे गुणा किया जाता है, ऐसा कोई आचार्य कहते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर परिकर्ममें कहे हुए अवधिसे निबद्ध क्षेत्र नहीं बनते। वह इस प्रकारसे— पहिले परमावधिके क्षेत्रकी प्ररूपणा करते हैं। तेजकायिक जीवोंके अव-

१ सव्वावहिस्स एक्को परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो। गो. जी. ४१५.

कीरदे, अगणिकाइयओगाहणट्ठाणगुणिदअगणिकाइयजीवरासिं गच्छं काऊण एगादिएगुत्तर-संकलणमाणिदे तेउक्काइयरासिवग्गमइच्छिदूण तदुवरिमवग्गादो हेट्ठा एसो रासी उप्पज्जदि । एदं सलागसंकलणरासिं विरलेदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागं रूवं पडि दादूण अण्णोण्णगुणं करिय देसोहिउक्कस्सखेत्तं घणलोगं गुणिदे परमोहिउक्कस्सखेत्तं होदि[1] । एदस्स अद्धाणगवेसणा कीरदे — विरलणरासिछेदणया दिण्णरासिछेदणयजुदा उप्पण्णरासिस्स वग्गसलागा होंति । विरलणरासिछेदणया णाम एत्थ तेउक्काइयाणमद्धच्छेदणेहिंतो दुगुणा सादिरेया, तेउक्काइयरासिवग्गवग्गादो हेट्ठा ट्ठिदरासिमद्धछेदणए कदे समुप्पण्णत्तादो । केहि एत्थ सादिरेयत्तं ? ओगाहणट्ठाणवग्गद्धछेदणएहि दिज्जमाणरासिवग्गसलागाहि य । एदेसु पक्खित्तेसु आदिवग्गप्पहुडि परमोहिखेत्तस्स चडिदद्धाणं होदि । एदं चडिदद्धाणं तेउक्काइयरासिअद्धछेदणेहिंतो दुगुणसादिरेयमेत्तं तेउक्काइयरासिवग्गसलागाहि छिंदिय अद्धरूवूणेण तेउक्काइयरासिवग्गसलागाओ गुणिदे तेउक्काइयरासीदो उवरि चडिदद्धाणं होदि । एदं

गाहनास्थानोंसे गुणित तेजकायिक जीवोंकी राशिको गच्छ करके एकको आदि लेकर एक एक अधिक संकलनके [जैसे—प्रथम स्थानमें १, द्वि. में १+२=३, तृ. में १+२+३=६, च. में १ + २ + ३ + ४ = १० इत्यादि] लानेपर तेजकायिक राशिके वर्गको लांघकर उससे उपरिम वर्गके नीचे यह राशि उत्पन्न होती है । इस शलाका संकलन राशिका विरलन करके आवलीके असंख्यातवें भागको प्रत्येक रूपके प्रति देकर परस्पर गुणित करके उससे देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र घनलोकको गुणित करनेपर परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र होता है । इसके अध्वानकी खोज करते हैं— देय राशिके अर्धच्छेदोंसे युक्त विरलन राशिके अर्धच्छेद उत्पन्न राशिकी वर्गशलाका होते हैं । विरलन राशिके अर्द्धच्छेद यहां तेजकायिक जीवोंके अर्धच्छेदोंसे कुछ अधिक दूने हैं, क्योंकि, वे तेजकायिक राशिके वर्गके वर्गसे नीचे स्थित राशिके अर्धच्छेद करनेपर उत्पन्न होते हैं ।

शंका—किनसे यहां अधिकता है, अर्थात् उस अधिकताका प्रमाण क्या है ?

समाधान—अवगाहनास्थानके वर्गके अर्धच्छेद और दीयमान राशिकी वर्गशलाकाओंसे यहां अधिकता है ।

इनका प्रक्षेप करनेपर आदिके वर्गसे लेकर परमावधिके चढित अध्वान होता है । तेजकायिक राशिके अर्धच्छेदोंसे कुछ अधिक दुगणे मात्र इस चढित अध्वानको तेजकायिक राशिकी वर्गशलाकाओंसे खण्डित कर अर्ध रूप कम इससे तेजकायिक राशिकी वर्गशलाकाओंको गुणित करनेपर तेजकायिक राशिसे ऊपर चडित अध्वान होता है । यह परमा-

---

१ आवलिअसंखभागा इच्छिदगच्छधणमाणमेत्ताओ । देसावहिस्स खेत्ते काले वि य होंति संवग्गे ॥ गो. जी. ४१७.

परमोहिउक्कस्सखेत्तं तेउक्काइयकायट्ठिदीदो थोवं, तेउक्काइयअद्धच्छेदणेहिंतो दुगुणसादिरेयमेत्तवग्गसलागत्तादो। तेउक्काइयकायट्ठिदी बहुआ, तेउक्काइयरासीदो उवरि असंखेज्जलोगमेत्तवग्गट्ठाणाणि गंतूणुप्पण्णवग्गसलागत्तादो। एदं परमोहिउक्कस्सखेत्तं तेउक्काइयकायट्ठिदीदो हेट्ठा असंखेज्जलोगमेत्तवग्गट्ठाणाणि ओसरिय ट्ठिदं आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणिदपरमोहिचरिमअणवट्ठिदगुणगारेण गुणिदे ओहिणिबद्धखेत्तं ण उप्पज्जदि, परमोहिखेत्तस्स असंखेज्जदिभागेणेदेण गुणगारेण परमोहिखेत्ते गुणिदे तदुवरिमवग्गस्स वि अणुप्पत्तीदो। पुणो केद्दहो गुणगारो होदि त्ति वुत्ते वुच्चदे — परमोहिखेत्तेण तेउक्काइयकायट्ठिदि-ओहिणिबद्धखेत्तण्णोण्णगुणगारवग्गद्धछेदणयसलागाणमुवरि असंखेज्जलोगमेत्तवग्गट्ठाणाणि गंतूण ट्ठिदओहिणिबद्धखेत्तम्मि भागे हिदे लद्धमेत्तो गुणगारो होदि, ण अण्णो; उत्तदोसप्पसंगादो। परमोहिकालं पि तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि गुणिदे सव्वोहिउक्कस्सकालो होदि। एसो एक्को चेव लोगो, परमोहि-सव्वोहीओ असंखेज्जलोगे जाणंति त्ति कधं घडदे? ण एस दोसो, सव्वो पोग्गलरासी जदि[1] असंखेज्जलोगे आवूरिऊण अवचेट्ठदि तो

वधिका उत्कृष्ट क्षेत्र तेजकायिक जीवोंकी कायस्थितिसे स्तोक है, क्योंकि, तेजकायिक राशिके अर्धच्छेदोंसे कुछ अधिक दुगुणे प्रमाण उसकी वर्गशलाकायें हैं। तेजकायिकोंकी कायस्थिति बहुत है, क्योंकि, तेजकायिक राशिसे ऊपर असंख्यात लोक मात्र वर्गस्थान जाकर उसकी वर्गशलाकायें उत्पन्न होती हैं। तेजकायिकोंकी कायस्थितिसे नीचे असंख्यात लोक मात्र वर्गस्थानोंको छोड़कर स्थित इस परमावधिके उत्कृष्ट क्षेत्रको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित परमावधिके अन्तिम अनवस्थित गुणकारसे गुणा करनेपर अवधिनिबद्ध क्षेत्र नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि, परमावधिके क्षेत्रके असंख्यातवें भाग रूप इस गुणकारसे परमावधिके क्षेत्रको गुणित करनेपर उसका उपरिम वर्ग भी नहीं उत्पन्न होता।

शंका — तो फिर कितना गुणकार है?

समाधान — ऐसा पूछनेपर कहते हैं — परमावधिके क्षेत्रका तेजकायिकोंकी कायस्थिति और अवधिनिबद्ध क्षेत्रके परस्पर गुणकारके वर्गकी अर्धच्छेद शलाकाओंके ऊपर असंख्यात लोक मात्र वर्गस्थान जाकर स्थित अवधिनिबद्ध क्षेत्रमें भाग देनेपर जो लब्ध हो उतने मात्र गुणकार होता है, अन्य नहीं; क्योंकि, उक्त दोषका प्रसंग आता है।

परमावधिके कालको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणा करनेपर सर्वावधिका उत्कृष्ट काल होता है।

शंका — यह एक ही लोक है, परमावधि और सर्वावधि असंख्यात लोकोंको जानते हैं, यह कैसे घटित होता है?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यदि सब पुद्गल राशि असंख्यात

[1] प्रतिषु 'जदि वि' इति पाठः।

वि जाणंति त्ति तेसिं सत्तिप्पदंसणादो। परमोहि-सव्वोहीणं जिणत्ताविणाभाविणीणं किमट्ठं जिणविसेसणं कीरदे ? सच्चमेदं, किंतु एत्थ सव्व-परमोहीओ विसेसणं जिणा विसेसियं, अणेय-पयाराणमाहारत्तादो। तेण ण दोसो त्ति सिद्धं। सर्वावध्यश्च ते जिनाश्च सर्वावधिजिनाः, तेभ्यो नमः।

णमो अणंतोहिजिणाणं ॥ ५ ॥

अणंते त्ति उत्ते उक्कस्सअणंतस्स गहणं, दव्वट्ठियणयावलंबणादो। सो उक्कस्साणंतो ओही जस्स सो[1] अणंतोही। ओही णाम[2] वत्थुणिबंधणा। ण च एत्थ उक्कस्साणंतादो बज्झं किं पि अत्थि, तम्हा उक्कस्साणंतस्स ओहित्तं ण जुज्जदि त्ति ? ण, ओही व ओहि त्ति उव-यारेण उक्कस्साणंतस्स ओहित्तविरोहाभावादो। ओही किमुक्कस्साणंतादो पुधभूदा आहो

लोकोंको पूर्ण करके स्थित हों तो भी वे जान लेंगे। इस प्रकार उनकी शक्तिका प्रदर्शन किया गया है।

शंका—जिनत्वके साथ अविनाभाव रखनेवाले परमावधि और सर्वावधिके जिन विशेषण किसलिये किया जाता है ?

समाधान—यह सत्य है, किन्तु यहां सर्वावधि और परमावधि विशेषण हैं और जिन विशेष्य है, क्योंकि, वे अवधिज्ञानके अनेक प्रकारोंके आधार हैं; अतएव उक्त विशे-षण-विशेष्य भावमें कोई दोष नहीं है, यह सिद्ध है।

सर्वावधि रूप जो जिन हैं वे सर्वावधि जिन हैं, उनके लिये नमस्कार हो।

अनन्तावधि जिनोंको नमस्कार हो ॥ ५ ॥

'अनन्त' इस प्रकार कहनेपर उत्कृष्ट अनन्तका ग्रहण है, क्योंकि, यहां द्रव्या-र्थिक नयका अवलम्बन है। वह उत्कृष्ट अनन्त है अवधि जिसकी वह अनन्तावधि है।

शंका—अवधि वस्तु निमित्तक होती है। और यहां उत्कृष्ट अनन्तसे बाह्य कोई भी वस्तु है नहीं, अतः उत्कृष्ट अनन्तको अवधिपना उचित नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'अवधिके समान जो है वह अवधि है' इस प्रकार उप-चारसे उत्कृष्ट अनन्तको अवधि माननेमें कोई विरोध नहीं हैं।

शंका—अवधि क्या उत्कृष्ट अनन्तसे पृथग्भूत है, अथवा उत्कृष्ट अनन्त ही अवधि

---

१ प्रतिषु 'ओहि विरस सो' इति पाठः।

२ अप्रतौ 'णामादो', आ-काप्रत्योः 'णामदो' इति पाठः।

उक्कस्साणंतो चेव ओहि त्ति ? ण पढमपक्खो, उक्कस्साणंतादो वदिरित्तदव्व-पज्जायाण-मणुवलंभादो । ण च उक्कस्साणंतो चेव ओही, उक्कस्साणंतस्स दोसु वि पासेसु अण्णेसि-मभावेण तस्स ओहित्तविरोहादो त्ति ? ण पढमपक्खो, अणब्भुवगमादो । ण बिदियपक्खुत्तदोसो वि संभवदि, अभिविहिग्गहणादो । ण च एक्कम्हि दुब्भावो विरुज्झदे, अणेयंते एक्कम्हि तदविरोहादो । अधवावयविणासाणं वाचओ अंतसद्दो घेत्तव्वो । ओही मज्जाया उक्कस्साणं-तादो पुधभूदा । अन्तश्च अवधिश्च अन्तावधी, न विद्यते तौ यस्य स अनन्तावधिः । अभेदा-ज्जीवस्यापीयं संज्ञा । अनन्तावधयश्च ते जिनाश्च अनन्तावधिजिनाः । तेभ्यो नमः ।

अणंतोहिजिणा णाम केवलणाणिणो, तदो ते सव्वजिणेहिंतो महल्ला । तेसिं पुव्वमेव णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, केवलणाणमहल्लत्तजाणावणगुणेण केवलणाणादो महल्लाए सव्वोहीए पुव्वमेव णमोक्कारकरणे विरोहाभावादो । मिच्छत्तादो सम्मत्तस्स माहप्पं जाणि-ज्जदि त्ति सम्मत्तभत्तीए मिच्छत्तस्स णमोक्कारो किण्ण कीरदे ? ण एस दोसो,

---

है ? इनमें प्रथम पक्ष तो बनता नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट अनन्तको छोड़कर द्रव्य व उनकी पर्यायें पायी नहीं जातीं । और वह उत्कृष्ट अनन्त ही हो सो भी नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट अनन्तके दोनों ही पार्श्व भागोंमें अन्य वस्तुओंका अभाव होनेसे उसे अवधि माननेमें विरोध है ?

समाधान—शंकाकारने जिन दो पक्षोंमें दोष दिखाये हैं उनमेंसे प्रथम पक्ष तो है ही नहीं, क्योंकि, वैसा स्वीकार ही नहीं किया गया । द्वितीय पक्षमें कहा गया दोष भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, यहां अभिविधिका ग्रहण है । दूसरी बात यह कि एक वस्तुमें द्वित्वका विरोध भी नहीं है, क्योंकि, अनेकान्तका आश्रय कर एकमें द्वित्वका अविरोध है । अथवा, यहां अवयविनाशोंका वाचक अन्त शब्द ग्रहण करना चाहिये । अवधिका अर्थ मर्यादा है । वह उत्कृष्ट अनन्तसे पृथग्भूत है । अन्त और अवधि जिसके नहीं हैं वह अनन्तावधि है । अभेद होनेसे जीवकी भी यह संज्ञा है । अनन्तावधि रूप जो जिन वे अनन्तावधि जिन हैं, उनको नमस्कार हो ।

शंका—अनन्तावधिका अर्थ केवलज्ञानी है, इसलिये वे सर्वावधि जिनोंसे महान् हैं । उनको पहिले ही नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, केवलज्ञानके माहात्म्यका ज्ञान कराने रूप गुणकी अपेक्षा केवलज्ञानसे सर्वावधि महान् है । अतएव उसे पहिले ही नमस्कार करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—मिथ्यात्वसे चूंकि सम्यक्त्वका माहात्म्य जाना जाता है, अतः सम्यक्त्वकी भक्तिमें मिथ्यात्वको नमस्कार क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकार मति, श्रुत और अवधि

जहा मदि-सुद-ओहिणाणेहिंतो केवलणाणमाहप्पमवगम्मदे तहा मिच्छत्तादो सम्मत्तमाहप्पस्स अवगमाभावादो। ण च जो जस्स भत्तो मित्तो वा सो तव्विरोहीणं भत्तिं कुणइ, विरोहादो। पच्छाणुपुव्विकमप्पदंसणट्ठं वा देसोहिजिणादीणं पुव्वं णमोक्कारो कदो। संपधि सुद-मण-पज्जवणाणत्तवाइं मदिणाणपुव्वा इदि कट्टु मइणाणम्मि समुप्पण्णसद्धो गोदमभडारओ उत्तर-सुत्तेहि मदिणाणीणं णमोक्कारं कुणदि—

णमो कोट्ठबुद्धीणं ॥ ६ ॥

कोष्ठयः शालि-व्रीहि-यव-गोधूमादीनामाधारभूतः कुस्थली[1] पल्यादिः। सा चासेसदव्व-पज्जायधारणगुणेण कोट्ठसमाणा बुद्धी कोट्ठो, कोट्ठा च सा बुद्धी च कोट्ठबुद्धी[2]। एदिस्से अत्थधारणकालो जहण्णेण संखेज्जाणि उक्कस्सेण असंखेज्जाणि वासाणि। कुदो? 'काल-

ज्ञानोंसे केवलज्ञानका माहात्म्य जाना जाता है उस प्रकार मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वका माहात्म्य नहीं जाना जाता। दूसरे, जो जिसका भक्त अथवा मित्र होता है वह उसके विरोधियोंकी भक्ति नहीं करता है, क्योंकि, ऐसा करनेमें विरोध है। अथवा, पश्चादानुपूर्वी अर्थात् विपरीत क्रम दिखलानेके लिये देशावधि जिनादिकोंको पूर्वमें नमस्कार किया है।

अब श्रुत और मनःपर्यय ज्ञान तथा तप आदि चूंकि मतिज्ञानपूर्वक होते हैं अतः मतिज्ञानमें श्रद्धा उत्पन्न होनेसे गौतम भट्टारक उत्तर सूत्रोंसे मतिज्ञानियोंको नमस्कार करते हैं—

कोष्ठबुद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ६ ॥

शालि, व्रीहि, जौ और गेहूं आदिके आधारभूत कोथली, पल्ली आदिका नाम कोष्ठ है। समस्त द्रव्य व पर्यायोंको धारण करने रूप गुणसे कोष्ठके समान होनेसे उस बुद्धिको भी कोष्ठ कहा जाता है। कोष्ठ रूप जो बुद्धि वह कोष्ठबुद्धि है। इसका अर्थधारण-काल जघन्यसे संख्यात वर्ष और उत्कर्षसे असंख्यात वर्ष है, क्योंकि, 'असंख्यात और

१ प्रतिषु 'कुस्थनी' इति पाठः। २ प्रतिपु 'सादासेस-' इति पाठः।

३ उक्करिसधारणाए जुत्तो पुरिसो गुरूवएसेणं। णाणाविहगंथेसुं वित्थारे लिंगसद्दबीजाणि ॥ गहिऊण णियमदीए मिस्सेण विणा धरेदि मदिकोट्ठे। जो कोइ तस्स बुद्धी णिद्दिट्ठा कोट्ठबुद्धि त्ति ॥ ति. प. ४, ९७८, ९७९. कोष्ठागारिकस्थापितानामसंकीर्णानामविनष्टानां भूयसां धान्यबीजानां यथा कोष्ठेऽवस्थानं तथा परोपदेशादनवधारितानामर्थग्रन्थबीजानां भूयसामव्यतिकीर्णानां बुद्धाववस्थानं कोष्ठबुद्धिः। त. रा. ३, ३६, २. कोट्ठयधन्नसुनिग्गल-सुत्तत्था कोट्ठबुद्धीया ॥ प्रवचनसारोद्धार १५०२.

मसंखं संखं च धारणा ' त्ति सुत्तुवलंभादो । कुदो एदं होदि ? धारणावरणीयस्स कम्मस्स तिव्वखओवसमादो । बुद्धिमंताणं पि कोट्ठबुद्धी सण्णा, गुण-गुणीणं भेदाभावादो । जिणसद्दो उवरि सव्वत्थ पवाहसरूवेण अणुवट्टावेदव्वो, अण्णहा सुत्तट्ठाणुववत्तीदो । जदि जिणसद्दो णुवट्टदे[1] तो देस-परम-सव्वाणंतोहिकिदियकम्मसुत्तेसु किमट्ठं जिणसद्दो उच्चदे ? ण, तदणुवुत्तिप्पदंसणट्ठं[2] तत्थ तदुत्तीदो । तदो णमो कोट्ठबुद्धीणं[3] जिणाणमिदि सिद्धं ॥ धारणामदिणाणजिणाणं णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, कोट्ठबुद्धीए अवगाहिदासेस[4]धारणाणाणवियप्पाए णमोक्कारे कदे सव्वधारणाणं णमोक्कारसिद्धीदो । मदिणाणादो ओहि-केवलणाणाणं विसयविसेसावगमादो तदुप्पत्तिकारणादो च पुव्वमेव मदिणाणीणं णमोक्कारो किण्ण कीरदि ?

संख्यात काल तक धारणा रहती है ' ऐसा सूत्र पाया जाता है ।

शंका—यह कहांसे होता है ?

समाधान—धारणावरणीय कर्मके तीव्र क्षयोपशमसे होता है ।

उक्त बुद्धिके धारकोंकी भी कोष्ठबुद्धि संज्ञा है, क्योंकि, गुण और गुणीके कोई भेद नहीं है । जिन शब्दकी ऊपर सर्वत्र प्रवाह रूपसे अनुवृत्ति लेना चाहिये, क्योंकि, उसके विना सूत्रोंका अर्थ नहीं बनता ।

शंका—यदि जिन शब्दकी अनुवृत्ति लेते हैं तो फिर देशावधि, परमावधि, सर्वावधि और अनन्तावधि धारकोंके नमस्कार सूत्रोंमें जिन शब्दका उच्चारण किसलिये किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्तिको दिखलानेके लिये वहां जिन शब्द कहा है । इसलिये ' कोष्ठबुद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ' ऐसा सिद्ध हुआ ।

शंका—धारणामतिज्ञानी जिनोंको नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, समस्त धारणाज्ञानके विकल्पोंका अवगाहन करनेवाली कोष्ठबुद्धिको नमस्कार करनेपर सब धारणाज्ञानियोंको नमस्कार सिद्ध है ।

शंका—मतिज्ञानसे अवधि और केवल ज्ञानके विषयकी विशेषताका ज्ञान होनेसे तथा उनकी उत्पत्तिका कारण होनेसे पहिले ही मतिज्ञानियोंको नमस्कार क्यों नहीं करते ?

१ अ-आप्रत्योः ' णुववट्टदे ' इति पाठः ।

२ अप्रतौ ' तदणुववत्ति ', आप्रतौ ' तदणुव्वत्ति ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' णमोक्कार बुद्धीणं ' इति पाठः ।

४ प्रतिषु ' अवगाहदासेस- ' इति पाठः ।

ण, गोमदथेरसणमेत्थ एवंविहभावाभावादो। तब्भावो कुदो वगम्मदे ? मदिणाणीणं पुव्वं किदिकम्माकरणादो। परोक्खं मदिणाणं, ओहि-केवलाणि पच्चक्खाणि; इंदियजं मदिणाणं, ओहि-केवलणाणाणि अणिंदियाणि त्ति मदिणाणादो ओहि-केवलणाणमाहप्पं पेक्खिय तेसिमग्ग-पूजा कदा। गोदमथेरस्स एसो अहिप्पाओ त्ति कधं णव्वदे ? अहिप्पायाविणाभाविवयण-कज्जादो। बीजबुद्धिआदीणमग्गपूजा किण्ण कदा ? ण, तत्तो धारणाए गुणगरिमुवलंभादो। कुदो ? धारणाए विणा बीजबुद्धिआदीणं विहलत्तुवलंभादो।

णमो बीजबुद्धीणं ॥ ७ ॥

जिणाणमिदि अणुवट्टदे[1]। तदो णमो बीजबुद्धीणं जिणाणमिदि एद्दहं सुत्तमिदि

समाधान — नहीं करते, क्योंकि, गौतम स्थविरका यहां ऐसा अभिप्राय नहीं है।

शंका—उनका ऐसा अभिप्राय नहीं रहा, यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान—मतिज्ञानियोंको पहिले नमस्कार न करनेसे उनके उक्त अभिप्रायका अभाव जाना जाता है। मतिज्ञान परोक्ष है, किन्तु अवधि और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष हैं; मतिज्ञान इन्द्रियजन्य है और अवधि व केवल ज्ञान अतीन्द्रिय हैं; इस प्रकार मतिज्ञानसे अवधि और केवल ज्ञानके माहात्म्यकी अपेक्षा करके उनकी पहिले पूजा की है।

शंका—गौतम स्थविरका ऐसा अभिप्राय रहा है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—उक्त अभिप्रायके विना न होनेवाले वचन रूप कार्यसे वह जाना जाता है।

शंका—बीजबुद्धि आदिके धारकोंकी पहिले पूजा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं की, क्योंकि, बीजबुद्धि आदिकी अपेक्षा धारणाके गुणगौरव अधिक पाया जाता है। कारण कि धारणाके विणा बीजबुद्धि आदिकोंकी विफलता देखी जाती है।

बीजबुद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ७ ॥

यहां 'जिनोंको' पदकी अनुवृत्ति है। इस कारण बीजबुद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो, इस प्रकार इतना सूत्र है; ऐसा ग्रहण करना चाहिये। बीजके समान बीज

---

१ अ आप्रत्योः 'अणुववट्टदे' इति पाठः।

घेत्तव्वं। बीजमिव बीजं। जहा बीजं मूलंकुर-पत्त-पोर-क्खंद[1]-पसव-तुस-कुसुम-खीरतंदुलादीण-माहारं तहा दुवालसंगत्थाहारं जं पदं तं बीजतुल्लत्तादो बीजं। बीजपदविसयमदिणाणं पि बीजं, कज्जे कारणोवयारादो। संखेज्जसद्दअणंतत्थपडिबद्धअणंतलिंगेहि सह बीजपदं जाणंती[2] बीजबुद्धि त्ति भणिदं होदि[3]। ण बीजबुद्धी अणंतत्थपडिबद्धअणंतलिंगबीजपदमवगच्छदि, खओवसमियत्तादो त्ति? ण[4], खओवसमिएण परोक्खेण सुदणाणेण केवलणाणविसईकयाणंत-त्थाण जहा परिच्छेदो कीरदे परोक्खसरूवेण, तहा मदिणाणेण वि अणंतत्थपरिच्छेदो सामण्ण-सरूवेण कीरदे; विरोहाभावादो। जदि सुदणाणिस्स विसओ अणंतसंखा होदि तो जमुक्कस्स-संखेज्जं विसओ चोद्दसपुव्विस्से त्ति परियम्मे उत्तं तं कधं घडदे? ण एस दोसो, उक्कस्स-

---

कहा जाता है। जिस प्रकार बीज मूल, अंकुर, पत्र, पोर, स्कन्ध, प्रसव, तुष, कुसुम, क्षीर और तंदुल आदिकोंका आधार है उसी प्रकार बारह अंगोंके अर्थका आधारभूत जो पद है वह बीज तुल्य होनेसे बीज है। बीज पद विषयक मतिज्ञान भी कार्यमें कारणके उपचारसे बीज है। संख्यात शब्दोंके अनन्त अर्थोंसे सम्बद्ध अनन्त लिंगोंके साथ बीज पदको जाननेवाली बीजबुद्धि है, यह तात्पर्य है।

शंका—बीजबुद्धि अनन्त अर्थोंसे सम्बद्ध अनन्त लिंग रूप बीजपदको नहीं जानती, क्योंकि, वह क्षायोपशमिक है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार क्षयोपशम जन्य परोक्ष श्रुतज्ञानके द्वारा केवलज्ञानसे विषय किये गये अनन्त अर्थोंका परोक्ष रूपसे ग्रहण किया जाता है, उसी प्रकार मतिज्ञानके द्वारा भी सामान्य रूपसे अनन्त अर्थोंको ग्रहण किया जाता है, क्योंकि, इसमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—यादि श्रुतज्ञानका विषय अनन्त संख्या है तो 'चौदहपूर्वीका विषय उत्कृष्ट संख्यात है' ऐसा जो परिकर्ममें कहा है वह कैसे घटित होगा?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट संख्यातको ही जानता है,

---

१ प्रतिषु 'पोरकंद' इति पाठः।　　२ प्रतिषु 'जाणंति' इति पाठः।

३ णोइंदियसुदणाणावरणाणं वीरअंतरायाए। तिविहाणं पगदीणं उक्कस्सखउवसमविसुद्धस्स ॥ संखेज्ज-सरूवाणं सद्दाणं तत्थ लिंगसंजुत्तं। एक्कं चिय बीजपदं लद्धूण परोपदेसेणं ॥ तम्मि पदे आधारे सयलसुदं चिंतिऊण गेण्हेदि। कस्स वि महेसिणो जा बुद्धी सा बीजबुद्धि त्ति ॥ ति. प. ४, ९७५-९७७. सुकृष्टसुमथान्विते (सुमथिते) क्षेत्रे सारवति कालादिसहायापेक्षं बीजमेकमुप्तं यथानेकबीजकोटिप्रदं भवति तथा नोइन्द्रियावरण-श्रुतावरण-वीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षे सति एकबीजपदग्रहणादनेकपदार्थप्रतिपत्तिर्बीजबुद्धिः। त. रा. ३, ३६, २. जो अत्थपएणऽत्थं अणुसरइ स बीयबुद्धी ओ (उ) ॥ प्रवचनसारोद्धार १५०३.

४ अप्रतौ 'ण' इति पदं नोपलभ्यते।

संखेज्जं चेव जाणदि त्ति तत्थ णियमाभावादो । णासेसपयत्था सुदणाणेण परिच्छिज्जंति,

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं ।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो[1] ॥ १७ ॥

इदि वयणादो त्ति उत्ते होदु णाम सयलपयत्थाणमणंतिमभागो दव्वसुदणाणविसओ, भावसुदणाणविसओ पुण सयलपयत्था; अण्णहा तित्थयराणं वागदिसयत्ताभावप्पसंगादो[2] । [तदो] बीजपदपरिच्छेदकारिणी बीजबुद्धि त्ति सिद्धं । बीजपदट्ठिदपदेसादो हेट्ठिमसुदणाणुप्पत्तीए कारणं होदूण पच्छा उवरिमसुदणाणुप्पत्तिणिमित्ता बीजबुद्धि त्ति के वि आइरिया भणंति । तण्ण घडदे, कोट्ठबुद्धियादिचदुण्हं णाणाणमक्कमेणेक्कम्हि जीवे सव्वदा अणुप्पत्तिप्पसंगादो । तं कधं ? बीजबुद्धिसहिदजीवे ण ताव अणुसारी पडिसारी वा संभवदि, उहय-

---

ऐसा यहां नियम नहीं है ।

शंका — श्रुतज्ञान समस्त पदार्थोंको नहीं जानता है, क्योंकि,

वचनके अगोचर ऐसे जीवादिक पदार्थोंके अनन्तवें भाग प्रज्ञापनीय अर्थात् तीर्थंकरकी सातिशय दिव्य ध्वनिमें प्रतिपाद्य होते हैं । तथा प्रज्ञापनीय पदार्थोंके अनन्तवें भाग द्वादशांग श्रुतके विषय होते हैं ॥ १७ ॥

इस प्रकारका वचन है ।

समाधान — इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि समस्त पदार्थोंका अनन्तवां भाग द्रव्य श्रुतज्ञानका विषय भले ही हो, किन्तु भाव श्रुतज्ञानका विषय समस्त पदार्थ हैं; क्योंकि, ऐसा माननेके विना तीर्थंकरोंके वचनातिशयके अभावका प्रसंग होगा । [इसलिये] बीजपदोंको ग्रहण करनेवाली बीजबुद्धि है, यह सिद्ध हुआ ।

बीजपदसे अधिष्ठित प्रदेशसे अधस्तन श्रुतके ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण होकर पीछे उपरिम श्रुतके ज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्त होनेवाली बीजबुद्धि है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर कोष्ठबुद्धि आदि चार ज्ञानोंकी युगपत् एक जीवमें सर्वदा उत्पत्ति न हो सकनेका प्रसंग आवेगा ।

शंका — वह कैसे ?

समाधान — बीजबुद्धि सहित जीवमें अनुसारी अथवा प्रतिसारी बुद्धि सम्भव

---

१ गो. जी. ३३४. विशे. भा. १४१. २ प्रतिषु ' वागतिसयत्थाभाव- ' इति पाठः ।

दिसाविसयसुदणाणजणणक्खमबीजबुद्धिमहिट्ठिदजीवे बीजबुद्धिविरुद्धाणमणु-पडिसारीणमव-ट्ठाणविरोहादो। णोभयसारी वि, हेट्ठिमसुदणाणुप्पत्तीए कारणं होदूणुवरिमसुदणाणुप्पत्तीए कारणं होदि त्ति णियमपडिबद्धबीजबुद्धिमहिट्ठिदजीवे अणियमेणुहयदिसाविसयसुदणाणुप्पायणसहावो-भयसारिबुद्धीए अवट्ठाणविरोहादो । ण च एक्कम्हि जीवे सव्वदा चदुण्हं बुद्धीणं अक्कमेण अणुप्पत्ती चेव,

> बुद्धि तवो वि य लद्धी विउव्वणलद्धी तहेव ओसहिया ।
> रस-बल-अक्खीणा वि य लद्धीओ सत्त पण्णत्ता ॥ १८ ॥

त्ति सुत्तगाहाए वक्खाणम्मि गणहरदेवाणं चदुरमलबुद्धीणं दंसणादो । किं च अत्थि गणहरदेवेसु चत्तारि बुद्धीओ, अण्णहा दुवालसंगाणमणुप्पत्तिप्पसंगादो। तं कधं? ण ताव तत्थ कोट्ठबुद्धीए अभावो, उप्पण्णसुदणाणस्स अवट्ठाणेण विणा विणासप्पसंगादो । ण बीजबुद्धीए अभावो, ताए विणा अणवगयतित्थयरवयणविणिग्गयअक्खराणक्खरप्पयबहुलिंगालिंगियबीज-

---

नहीं हैं, क्योंकि, उभय [अधस्तन व उपरिम] दिशा विषयक श्रुतज्ञानके उत्पन्न करनेमें समर्थ ऐसी बीजबुद्धिको प्राप्त जीवमें बीजबुद्धिके विरुद्ध अनुसारी और प्रतिसारी बुद्धियोंके अवस्थानका विरोध है। उभयसारी बुद्धि भी सम्भव नहीं हैं, क्योंकि, 'वह अधस्तन श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका कारण होकर उपरिम श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका कारण होती है' ऐसे नियमसे सम्बद्ध बीजबुद्धि युक्त जीवमें अनियमसे उभय दिशा विषयक श्रुतज्ञानको स्वभावसे उत्पन्न करनेवाली उभयसारी बुद्धिके अवस्थानका विरोध है । और एक जीवमें सर्वदा चार बुद्धियोंकी एक साथ उत्पत्ति हो ही नहीं, ऐसा है नहीं; क्योंकि,

बुद्धि, तप, विक्रिया, औषधि, रस, बल और अक्षीण, इस प्रकार ऋद्धियां सात कही गई हैं ॥ १८ ॥

इस सूत्रगाथाके व्याख्यानमें गणधर देवोंके चार निर्मल बुद्धियां देखी जाती हैं। तथा गणधर देवोंके चार बुद्धियां होती हैं, क्योंकि, उनके विना बारह अंगोंकी उत्पत्ति न हो सकनेका प्रसंग आवेगा।

शंका—बारह अंगोंकी उत्पत्ति न हो सकनेका प्रसंग कैसे होगा ?

समाधान— गणधर देवोंमें कोष्ठबुद्धिका अभाव नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा होनेपर अवस्थानके विना उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानके विनाशका प्रसंग आवेगा। बीजबुद्धिका अभाव नहीं हो सकता, क्योंकि, उसके विना गणधर देवोंको तीर्थंकरके मुखसे निकले हुए अक्षर

---

१ प्रतिषु ' कारणमहोदूणुवरिम- ' इति पाठः ।

पदाणं गणहरदेवाणं दुवालसंगाभावप्पसंगादो। बीजपदसरूवावगमो बीजबुद्धी, तत्तो दुवालसंगुप्पत्ती। ण च ताए विणा तमुप्पज्जदि, अइप्पसंगादो। ण च तत्थ पदाणुसारिसण्णिदणाणाभावो, बीजबुद्धीए अवगयसरूवेहिंतो कोट्ठबुद्धीए पत्तावट्ठाणेहिंतो बीजपदेहिंतो ईहावाएहि विणा बीजपदुभयदिसाविसयसुदणाणक्खर-पद-वक्क-तदट्ठविसयसुदणाणुप्पत्तीए अणुववत्तीदो। ण संभिण्णसोदारत्तस्स अभावो, तेण विणा अक्खराणक्खरप्पाए सत्तसदट्ठारसकुभास-भाससरूवाए णाणाभेदभिण्णबीजपदसरूवाए पडिक्खणमण्णण्णभावमुवगच्छंतीए दिव्वज्झुणीए गहणाभावादो दुवालसंगुप्पत्तीए अभावप्पसंगो त्ति। तम्हा बीजपदसरूवावगमो बीजबुद्धि त्ति सिद्धं। तत्तो भेदाभावादो जीवो वि बीजबुद्धी। तेसिं बीजबुद्धीणं जिणाणं णमो इदि वुत्तं होदि। एसा कुदो होदि? विसिट्ठोग्गहावरणीयक्खओवसमादो।

णमो पदाणुसारीणं ॥ ८ ॥

और अनक्षर स्वरूप बहुत लिंगालिंगिक बीजपदोंका ज्ञान न होनेसे द्वादशांगके अभावका प्रसंग आवेगा। बीजपदोंके स्वरूपका जानना बीजबुद्धि है, इससे द्वादशांगकी उत्पत्ति होती है। उस बीजबुद्धिके विना द्वादशांगकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि, ऐसा होनेमें अतिप्रसंग आता है। उनमें पदानुसारी नामक ज्ञानका अभाव नहीं हैं, क्योंकि, बीजबुद्धिसे जाना गया है स्वरूप जिनका तथा कोष्ठबुद्धिसे प्राप्त किया है अवस्थान जिन्होंने ऐसे बीजपदोंसे ईहा और अवायके विना बीजपदकी उभय दिशा विषयक श्रुतज्ञान तथा अक्षर, पद, वाक्य और उनके अर्थ विषयक श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति बन नहीं सकती। उनमें संभिन्नश्रोतृत्वका अभाव नहीं है, क्योंकि, उसके विना अक्षरानक्षरात्मक, सात सौ कुभाषा और अठारह भाषा स्वरूप, नाना भेदोंसे भिन्न बीजपद रूप, व प्रत्येक क्षणमें भिन्न भिन्न स्वरूपको प्राप्त होनेवाली ऐसी दिव्यध्वनिका ग्रहण न होनेसे द्वादशांगकी उत्पत्तिके अभावका प्रसंग होगा।

इस कारण बीजपदोंके स्वरूपका जानना बीजबुद्धि है, ऐसा सिद्ध हुआ। उक्त बुद्धिसे भिन्न न होनेके कारण जीव भी बीजबुद्धि है। उन बीजबुद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है।

शंका—यह बीजबुद्धि कहांसे होती है?

समाधान—वह विशिष्ट अवग्रहावरणीयके क्षयोपशमसे होती है।

पदानुसारी ऋद्धिके धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ८ ॥

एत्थ जिणसद्दो णुवट्टदे, तेण णमो पदाणुसारीणं जिणाणमिदि वत्तव्वं । पमाण-मज्झिमादिपदेहि एत्थ पओजणाभावादो बीजपदस्स गहणं । पदमनुसरति अनुकुरुते इति पदानुसारी बुद्धिः । बीजबुद्धीए बीजपदमवगंतूण एत्थ इदं एदेसिमक्खराणं लिंगं होदि ण होदि त्ति ईहिदूण सयलसुदक्खर-पदाइमवगच्छंती[1] पदाणुसारी । तेहि पदेहिंतो समुप्पज्जमाणं णाणं सुदणाणं ण अक्खर-पदविसयं, तेसिमक्खर-पदाणं बीजपदंतब्भावादो । सा च पदाणु-सारी अणु-पदि-तदुभयसारिभेदेण तिविहा । बीजपदादो हेट्ठिमपदाइं चेव बीजपदट्ठियलिंगेण जाणंती[2] पदिसारी णाम । उवरिमाणि चेव जाणंती अणुसारी णाम । दोपासट्ठियपदाइं णियमेण विणा णियमेण वा जाणंती उभयसारी णाम[3] । एदेसिं पदाणुसारिजिणाणं णिसुढियं[4]

यहां जिन शब्दकी अनुवृत्ति आती है, इसलिये पदानुसारी ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो, ऐसा कहना चाहिये । प्रमाण और मध्यम आदि पदोंसे यहां प्रयोजन न होनेके कारण बीजपदका ग्रहण है । पदका जो अनुसरण या अनुकरण करती है वह पदानुसारी बुद्धि है । बीजबुद्धिसे बीजपदको जानकर यहां यह इन अक्षरोंका लिंग होता है और इनका नहीं, इस प्रकार विचार कर समस्त श्रुतके अक्षर-पदोंको जाननेवाली पदानुसारी बुद्धि है । उन पदोंसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान श्रुतज्ञान है, वह अक्षर-पद-विषयक नहीं है; क्योंकि, उन अक्षर-पदोंका बीजपदमें अन्तर्भाव है । वह पदानुसारी बुद्धि अनुसारी, प्रतिसारी और तदुभयसारीके भेदसे तीन प्रकार है । जो बीजपदसे अध-स्तन पदोंको ही बीजपदस्थित लिंगसे जानती है वह प्रतिसारी बुद्धि है । जो उपरिम पदोंको ही जानती है वह अनुसारी बुद्धि है । दोनों पार्श्वस्थ पदोंको नियमसे अथवा विना नियमके भी जो जानती है वह उभयसारी बुद्धि है । इन पदानुसारी जिनोंको नत होकर

१ अप्रतौ ' अवगच्छंतीति ' इति पाठः । २ अप्रतौ ' जाणंतीति ' इति पाठः ।

३ बुद्धी वियक्खणाणं पदाणुसारी हवेदि तिविहप्पा । अणुसारी पडिसारी जहत्थणामा उभयसारी ॥ आदि-अवसाण-मज्झे गुरूवदेसेण एक्कबीजपदं । गेण्हिय उवरिमगंथं जा गिण्हदि सा मदी हु अणुसारी ॥ आदि-अवसाण-मज्झे गुरूवदेसेण एक्कबीजपदं । गेण्हिय हेट्ठिमगंथं बुज्झदि जा सा च पडिसारी ॥ णियमेण अणियमेण य जुगवं एगस्स बीजसद्दस्स । उवरिम-हेट्ठिमगंथं जा बुज्झइ उभयसारी सा ॥ ति. प. ४, ९८०-९८३. पदानु-सारित्वं त्रेधा— अनुश्रोतः प्रतिश्रोतः उभयथा चेति । एकं पदस्यार्थं परतः उपश्रुत्यादौ अन्ते च मध्ये वा शेष-ग्रन्थार्थावधारणं पदानुसारित्वम् ॥ त. रा. ३, ३६, २. जो सुत्तपएण बहुं सुयमणुधावइ पयाणुसारी सो । प्रवचनसारोद्धार १५०३. ४ प्रतिषु ' णिसुढिय ' इति पाठः ।

णिवदिदो किदियम्मं करेमि त्ति भणिदं होदि । कुदो एदं होदि ? ईहावायावरणीयाणं तिव्वक्खओवसमेण ।

णमो संभिण्णसोदाराणं[1] ॥ ९ ॥

जिणाणमिदि अणुवट्टदे[2] । सम्यक् श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमेन भिन्नाः अनुविद्धाः संभिन्नाः, संभिन्नाश्च ते श्रोतारश्च संभिन्नश्रोतारः । अणेगाणं सद्दाणं अक्खराणक्खरसरूवाणं कधंचियाणमक्कमेण पयत्ताणं[3] सोदारा संभिण्णसोदारा त्ति णिद्दिट्ठा[4] ।

नवनागसहस्राणि नागे नागे शतं रथाः ।
रथे रथे शतं तुर्गाः तुर्गे तुर्गे[5] शतं नराः ॥ १९ ॥

भूमिपतित हुआ नमस्कार करता हूं, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—यह कहांसे होती है ?

समाधान—ईहावरणीय और अवायावरणीयके तीव्र क्षयोपशमसे होती है ।

संभिन्नश्रोता जिनोंको नमस्कार हो ॥ ९ ॥

'जिनोंको' इस पदकी अनुवृत्ति आती है। सं अर्थात् भले प्रकार श्रोत्रेन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे जो भिन्न— अनुविद्ध अर्थात् सम्बद्ध हैं, वे संभिन्न हैं; संभिन्न ऐसे जो श्रोता वे संभिन्नश्रोता हैं । कथंचित् युगपत् प्रवृत्त हुए अक्षर-अनक्षर स्वरूप अनेक शब्दोंके श्रोता संभिन्नश्रोता हैं, ऐसा निर्देश किया गया है ।

एक अक्षौहिणीमें नौ हजार हाथी, एक हाथीके आश्रित सौ रथ, एक एक रथके आश्रित सौ घोड़े और एक एक घोड़ेके आश्रित सौ मनुष्य होते हैं ॥ १९ ॥

---

१ प्रतिषु 'सोदारणं' इति पाठः । २ प्रतिषु 'अणुवट्टदे' इति पाठः ।

३ प्रतिषु 'पमत्ताणं' इति पाठः ।

४ सादिंदियसुदणाणावरणाणं बीरियंतरायाए । उक्कस्सखउवसमे उदिदंगोवंगणामकम्मम्मि ॥ सोदुक्कस्स-खिदीदो बाहिं संखेज्जजोयणपएसे । संठियणर-तिरियाणं बहुविहसद्दे समुट्ठंते ॥ अक्खर-अणक्खरमए सोदूणं दसदिसासु पत्तेक्कं । जं दिज्जदि पडिवयणं तं चिय संभिण्णसोदित्तं ॥ ति. प. ४, ९८४–९८६. द्वादशयोजनायामे नव-योजनविस्तारे चक्रधरस्कंधावारे गज वाजि-खरोष्ट्र-मनुष्यादीनां अक्षरानक्षररूपाणं नानाविधशब्दानां युगपदुत्पन्नानां तपोविशेषबललाभापादितसर्वजीवप्रदेशश्रोत्रेन्द्रियपरिणामात् सर्वेषामेककालग्रहणं संभिन्नश्रोतृत्वम् ॥ त. रा. ३, ३६, २. जो सुणइ सव्वओ मुणइ सव्वविसए उ सव्वसोएहिं । सुणइ बहुए वि सद्दे भिन्ने संभिन्नसोओ सो ॥ प्रवचनसारोद्धार १४९८.

५ प्रतिषु 'तुरगाः तुरगे तुरगे' इति पाठः । स तु न छन्दोनियमानुसारी ।

एदमेक्कक्खोहिणीए पमाणं। एरिसियाओ चत्तारि अक्खोहिणीओ सग-सगभासाहि अक्खराणक्खरसरूवाहि अक्कमेण जदि भणंति तो वि संभिण्णसोदारो अक्कमेण सव्व-भासाओ घेत्तूण पदुप्पादेदि। एदेहिंतो संखेज्जगुणभासासंभलिदतित्थयरवयणविणिग्गयँज्झुणि-समूहमक्कमेण गहणक्खमम्मि संभिण्णसोदारे ण चेदमच्छेरयं। कुदो एदं होदि? बहु-बहुविहक्खिप्पावरणीयाणं खओवसमेण। एदेसिं संभिण्णसोदाराणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि। संपहि ओग्गह-ईहावाय-धारणजिणाणमेदेसु चेव अंतब्भावो होदि त्ति पुध णमोक्कारो ण कदो। उजुमदीणं णमोक्कारकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णमो उजुमदीणं ॥ १० ॥

परकीयमतिगतोऽर्थः उपचारेण मतिः। ऋज्वी अवक्रा। कथमृजुत्वम्? यथार्थ-मत्यारोहणात् यथार्थमभिधानगतत्वात् यथार्थमभिनयगतत्वाच्च। ऋज्वी मतिर्यस्य सः ऋजु-

---

यह एक अक्षौहिणीका प्रमाण है। ऐसी यदि चार अक्षौहिणी अक्षर-अनक्षर स्वरूप अपनी अपनी भाषाओंसे युगपत् बोलें तो भी संभिन्नश्रोता युगपत् सब भाषाओंको ग्रहण करके उत्तर देता है। इनसे संख्यातगुणी भाषाओंसे भरी हुई तीर्थंकरके मुखसे निकली ध्वनिके समूहको युगपत् ग्रहण करनेमें समर्थ ऐसे संभिन्नश्रोताके विषयमें यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।

शंका—यह कहांसे होती है?

समाधान—बहु, बहुविध और क्षिप्र ज्ञानावरणीय कर्मोंके क्षयोपशमसे होती है।

इन संभिन्नश्रोता जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है। अब अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा रूप जिनोंका चूंकि इन्हींमें अन्तर्भाव है, अतः उन्हें पृथक् नमस्कार नहीं किया। ऋजुमति जिनोंको नमस्कार करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानियोंको नमस्कार हो ॥ १० ॥

दूसरेकी मति अर्थात् मनमें स्थित अर्थ उपचारसे मति कहा जाता है। ऋजुका अर्थ वक्रता रहित है।

शंका—ऋजुता कैसे है?

समाधान—यथार्थ मतिका विषय होने, यथार्थ वचनगत होने और यथार्थ अभिनय अर्थात् शारीरिक चेष्टागत होनेसे उक्त मतिमें ऋजुता है।

ऋजु है मति जिसकी वह ऋजुमति कहा जाता है। सरलतासे मनोगत, सरलतासे

मतिः[1]। उज्जुवेण मणोगदं उज्जुवेण वचि-कायगदमत्थमुज्जुवं जाणंतो तव्विवरीदमणुज्जुव-मत्थमजाणंतो मणपज्जवणाणी उजुमदि त्ति भण्णदे। अचिंतिदमणुत्तमणभिणइदमत्थं किमिदि ण जाणदे? ण, विसिट्ठखओवसमाभावादो। मदिणाणेण वा सुदणाणेण वा मण-वचि-काय-भेदं णादूण पच्छा तत्थट्ठिदमत्थं पच्चक्खेण जाणंतस्स मणपज्जवणाणस्स दव्व-खेत्त-काल-भावभेएण विसओ चउव्विहो। तत्थ उज्जुमदी एगसमइयमोरालियसरीरस्स णिज्जरं जहण्णेण जाणदि[3]। सा तिविहा जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तओरालियसरीरणिज्जरा त्ति। तत्थ कं जाणदि? तव्वदिरित्तं। कुदो? सामण्णणिद्देसादो। उक्कस्सेण एगसमइयमिंदियणिज्जरं

वचनगत व कायगत ऋजु अर्थको जाननेवाला, और उससे विपरीत वक्र अर्थको न जाननेवाला मनःपर्ययज्ञानी ऋजुमति कहा जाता है।

शंका — ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी मनसे अचिन्तित, वचनसे अनुक्त और अनभिनीत अर्थात् शारीरिक चेष्टाके अविषयभूत अर्थको क्यों नहीं जानता है?

समाधान — नहीं जानता, क्योंकि, उसके विशिष्ट क्षयोपशमका अभाव है।

मतिज्ञान अथवा श्रुतज्ञानसे मन, वचन व कायके भेदको जानकर पीछे वहां स्थित अर्थको प्रत्यक्षसे जाननेवाले मनःपर्ययज्ञानका विषय द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावके भेदसे चार प्रकार है। इनमें ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जघन्यसे एक समय सम्बन्धी औदारिक शरीरकी निर्जराको जानता है।

शंका — वह औदारिक शरीरकी निर्जरा जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है। उनमेंसे किस निर्जराको वह जानता है?

समाधान — तद्व्यतिरिक्त औदारिक शरीरकी निर्जराको जानता है, क्योंकि, यहां सामान्य निर्देश है।

उक्त ज्ञान उत्कर्षसे एक समय सम्बन्धी इन्द्रियनिर्जराको जानता है।

---

१ रिउ सामन्नं तम्मत्तगाहिणी रिउमई मणोनाणं। पायं विसेसविमुहं घडमेत्तं चिंतियं मुणइ॥ प्रवचनसारोद्धार १४९९. २ प्रतिषु 'मउत्त' इति पाठः।

३ यः कार्मणद्रव्यानन्तभागोऽन्त्यः सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागः ऋजुमते-र्विषयः। स. सि. १, २४. अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु। चक्खिंदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजु-मदिस्स हवे॥ गो. जी. ४५१. तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई णं अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ॥ नं. सू. १८.

जाणदि । ओरालियसरीरिंदियणिज्जराणं ण भेदो, इंदियवदिरित्तओरालियसरीराभावादो त्ति उत्ते ण एस दोसो, सव्विंदियाणमग्गहणादो । पुणो किमिंदियं घेप्पदि ? चक्खिंदियं । कुदो ? सेसेंदिएहिंतो अप्पपरिमाणत्तादो, सगारंभकपोग्गलखंधाणं सण्णहत्तादो वा । इदमेत्र इंदियं घेप्पदि त्ति कधं णव्वदे ? गुरूवदेसादो । घाण-सोदिंदिएहिंतो चक्खिंदियस्स महल्लत्तं दिस्सदे चे ण, चक्खुगोलयमज्झट्ठियाए मसूरियागाराए ताराए चक्खिंदियत्तब्भुवगमादो । चक्खिंदियणिज्जरा वि जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तभेएण तिविहा, तत्थ काए गहणं ? तव्वदिरित्ताए । कुदो ? सामण्णणिद्देसादो । जहण्णुक्कस्सदव्वाणं मज्झिमदव्ववियप्पे तव्वदिरित्ता उज्जुमदी जाणदि । खेत्तेण जहण्णं गाउवपुधत्तं, उक्कस्सेण जोयणपुधत्तं[1] । जहण्णुक्कस्स-

शंका—औदारिक शरीरनिर्जरा और इन्द्रियनिर्जराके बीच कोई भेद नहीं है, क्योंकि, इन्द्रियोंसे भिन्न औदारिक शरीरका अभाव है ?

समाधान—इस शंकापर कहते हैं कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यहां सब इन्द्रियोंका ग्रहण नहीं है ।

शंका—फिर कौनसी इन्द्रियका ग्रहण है ?

समाधान—चक्षुरिन्द्रियका ग्रहण है, क्योंकि, वह शेष इन्द्रियोंकी अपेक्षा अल्प-प्रमाण रूप है व अपने आरम्भक पुद्‌गलोंकी श्लक्ष्णता अर्थात् सूक्ष्मतासे भी युक्त है ।

शंका—यही इन्द्रिय ग्रहण की गई है, यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान – यह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

शंका—घ्राण और श्रोत्र इन्द्रियकी अपेक्षा चक्षुरिन्द्रियके विशालता देखी जाती है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, चक्षुगोलकके मध्यमें स्थित मसूरके आकार ताराको चक्षुरिन्द्रिय स्वीकार किया है ।

शंका—चक्षुरिन्द्रियनिर्जरा भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्‌व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है, उनमें कौनसी निर्जराका ग्रहण है ?

समाधान—तद्‌व्यतिरिक्त निर्जराका ग्रहण है, क्योंकि, उसका सामान्य निर्देश है ।

जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्यके मध्यम द्रव्यविकल्पोंको तद्‌व्यतिरिक्त ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जानता है । क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्यसे वह गव्यूतिपृथक्त्व और उत्कर्षसे

१ क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तरं न बहिः । स. सि. १, २३. त. रा. १, २३, ९. गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं ॥ गो. जी. ४५५.

खेत्ताणं मज्झिमवियप्पे तव्वदिरित्ता उजुमदी जाणदि। कालदो जहण्णेण दोण्णि भवग्गहणाणि जाणदि। तीदाणि अणागयाणि च भवग्गहणाणि दो चेव जाणदि, वट्टमाणेण सह तिण्णि[1]। ण वट्टमाणभवग्गहणं सुजाणंति तीदाणागयाउ-संपयासंपय-भुत्त-कय-पडिसेवियादिणाणासुहुमत्थाइण्णस्स सुजाणत्तविरोहादो। उक्कस्सेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि। तीदाणागयाणि सत्त, वट्टमाणेण सह अट्ठ भवग्गहणाणि जाणदि। जहण्णुक्कस्सकालाणं मज्झिमवियप्पं तव्वदिरित्तउज्जुमदी जाणदि। भावेण जहण्णुक्कस्सदव्वेसु तप्पाओग्गे असंखेज्जे भावे[2] जहण्णुक्कस्सउजुमदिणो जाणंति[3]। एतेभ्यः ऋजुमतिजिनेभ्यो नमः।

योजनपृथक्त्वको जानता है। जघन्य व उत्कृष्ट क्षेत्रके मध्यम विकल्पोंको तद्व्यतिरिक्त ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है। कालकी अपेक्षा जघन्यसे दो भवग्रहणोंको जानता है। अतीत और अनागत दो ही भवग्रहणोंको जानता है। वर्तमान भवके साथ तीन भवोंको जानता है। किन्तु वर्तमान भवग्रहणको भले प्रकार नहीं जानते, क्योंकि, जो भव अतीत और अनागत आयु, सम्पन्, असम्पन्, भुक्त, कृत, प्रतिसेवित आदि नाना सूक्ष्म अर्थोंसे आकीर्ण है उसके सुज्ञातपना माननेमें विरोध आता है। उत्कर्षसे सात-आठ भवग्रहणोंको जानता है। अतीत और अनागत सात, तथा वर्तमानके साथ आठ भवग्रहणोंको जानता है। जघन्य और उत्कृष्ट कालके मध्यम विकल्पको तद्व्यतिरिक्त ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है।

भावकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्योंमें उसके योग्य असंख्यात पर्यायोंको जघन्य व उत्कृष्ट ऋजुमति जानते हैं। इन ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जिनोंके लिये नमस्कार हो।

खेत्तओ णं उज्जुमई अ जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जयभागं। उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्ले खुड्डगपयरे, उड्ढे जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तीसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचिंदिआणं पज्जत्तआणं मणोगए भावे जाणइ पासइ॥ नं. सू. १८.

१ तत्र ऋजुमतिर्मनःपर्ययः कालतो जघन्येन जीवानामात्मनश्च द्वि-त्रीणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति। स. सि. १, २३. त. रा. १, २३, ९. दुग-तिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं। गो. जी. ४५७. कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ। नं. सू. १८.

२ प्रतिषु 'भागे' इति पाठः।

३ आवलिअसंखभागं अवरं च वरं च वरमसंखगुणं। गो. जी. ४५८. भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ। नं. सू. १८.

णमो विउलमदीणं ॥ ११ ॥

परकीयमतिगतोऽर्थो मतिः। विपुला विस्तीर्णा। कुतो वैपुल्यम् ? यथार्थ मनोगमनात् अयथार्थ मनोगमनात् उभयथापि तदवगमनात्, यथार्थ वचोगमनात् अयथार्थ वचोगमनात् उभयथापि तत्र गमनात्, यथार्थ कायगमनात् अयथार्थ कायगमनात् ताभ्यां तत्र गमनाच्च वैपुल्यम्। विपुला मतिर्यस्य सः विपुलमतिः[1]। तद्योगाज्जिनोऽपि विपुलमतिः। उज्जुवाणुज्जुव-मण-वचि-कायगयं तेहि दोहि वि पयारेहि तेसिमगयमद्धगयं च वत्थुं जाणंतस्स विउलमदिस्स जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तदव्व-खेत्त-काल-भावाणं परूवणा कीरदे— दव्वदो जहण्णेण एगसमय-मिंदियणिज्जरं जाणदि[2]। उज्जुमदिउक्कस्सदव्वमेव कधं विउलमदिस्स तत्तो बहुवयरस्स विसओ होदि ? ण, चक्खिंदियस्स णिज्जराए अजहण्णुक्कस्साए अणंतवियप्पाए उजुमदि-

विपुलमति जिनोंको नमस्कार हो ॥ ११ ॥

दूसरेकी मतिमें स्थित पदार्थ मति कहा जाता है। विपुलका अर्थ विस्तीर्ण है।

शंका—विपुलता किस कारणसे है ?

समाधान—यथार्थ मनको प्राप्त होनेसे, अयथार्थ मनको प्राप्त होनेसे और दोनों प्रकारसे भी मनको प्राप्त होनेसे; यथार्थ वचनको प्राप्त होनेसे, अयथार्थ वचनको प्राप्त होनेसे और उभय प्रकारसे भी उसमें प्राप्त होनेसे; यथार्थ कायको प्राप्त होनेसे, अयथार्थ कायको प्राप्त होनेसे तथा उन दोनों प्रकारोंसे भी वहां प्राप्त होनेसे विपुलता है।

विपुल है मति जिसकी वह विपुलमति कहा जाता है। विपुल मतिके सम्बन्धसे जिन भी विपुलमति कहलाते हैं। ऋजु या अनृजु मन, वचन व कायमें स्थित उन दोनों ही प्रकारोंसे उनको अप्राप्त और अर्धप्राप्त वस्तुको जाननेवाले विपुलमतिके जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावकी प्ररूपणा करते हैं—द्रव्यकी अपेक्षा वह जघन्यसे एक समय रूप इन्द्रियनिर्जराको जानता है।

शंका—ऋजुमतिका उत्कृष्ट द्रव्य ही उससे बहुत श्रेष्ठ विपुलमतिका विषय कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अनन्त विकल्प रूप चक्षुरिन्द्रियकी अजघन्यानुत्कृष्ट

१ विउलं वत्थुविसेसण नाणं तग्गाहिणी मई विउला। चिंतियमणुसरइ घडं पसंगओ पज्जवसएहिं ॥ प्रवचनसारोद्धार १५००.

२ मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं। खंडिदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्वं ॥ गो. जी. ४५२.

विसईकयउक्कस्सदव्वादो तप्पाओग्गहाणिमुवगयएगसमइयइंदियणिज्जरादव्वस्स विउलमदि-विसयत्तेण अब्भुवगमादो। उक्कस्सदव्वजाणावणट्ठं तप्पाओग्गासंखेज्जाणं कप्पाणं समए सलागभूदे ठविय मणदव्ववग्गणाए अणंतिमभागं विरलिय अजहण्णुक्कस्समेगसमयपबद्धं विस्सासोवचयविरहिदमट्ठकम्मपडिबद्धं समखंड करिय दिण्णे तत्थ एगखंडं बिदियवियप्पो होदि। सलागरासीदो एगरूवमवणेदव्वं। एवमणेण विहाणेण णेदव्वं जाव सलागरासी समत्तो त्ति। एत्थ अपच्छिमदव्ववियप्पमुक्कस्सविउलमदी जाणदि[1]। जहण्णुक्कस्सदव्वाणं मज्झिम-वियप्पे तव्वदिरित्तविउलमदी जाणदि।

खेत्तेण जहण्णं जोयणपुधत्तं। ण च उजुविउलमदिउक्कस्स-जहण्णखेत्ताणं समाणत्तं, जोयणपुधत्तम्मि अणेयभेयदंसणादो। उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरदो, णो बहिद्धा[2]। पणदालीसजोयणलक्खघणपदरं जाणदि त्ति उत्तं होदि[3]। एगागाससेडीए चेव जाणदि त्ति

निर्जराके ऋजुमति द्वारा विषय किये गये उत्कृष्ट द्रव्यकी अपेक्षा उसके योग्य हानिको प्राप्त एक समय रूप इन्द्रियनिर्जराका द्रव्य विपुलमतिका विषय माना गया है।

उत्कृष्ट द्रव्यके ज्ञापनार्थ उसके योग्य असंख्यात कल्पोंके समयोंको शलाका रूपसे स्थापित करके मनोद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागका विरलन कर विस्रसोपचय रहित व आठ कर्मोंसे सम्बद्ध अजघन्यानुत्कृष्ट एक समयप्रबद्धको समखण्ड करके देनेपर उनमें एक खण्ड द्रव्यका द्वितीय विकल्प होता है। इस समय शलाका राशिमेंसे एक रूप कम करना चाहिये। इस प्रकार इस विधानसे शलाका राशि समाप्त होने तक ले जाना चाहिये। इनमें अन्तिम द्रव्यविकल्पको उत्कृष्ट विपुलमति जानता है। जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्यके मध्यम विकल्पोंको तद्व्यतिरिक्त विपुलमति जानता है।

क्षेत्रकी अपेक्षा विपुलमतिका जघन्यसे योजनपृथक्त्व विषय है। ऋजुमतिका उत्कृष्ट और विपुलमतिका जघन्य क्षेत्र यहां समान नहीं है, क्योंकि, योजनपृथक्त्वमें अनेक भेद देखे जाते हैं। उत्कर्षसे वह मानुषोत्तर पर्वतके भीतरकी बात जानता है, बाहरकी नहीं। तात्पर्य यह कि पैंतालीस लाख योजन घनप्रतरको जानता है।

एक आकाशश्रेणीमें ही जानता है ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु वह घटित

---

१ अट्ठण्हं कम्माणं समयपबद्धं विविस्ससोवचयं। धुवहारेणिगिवारं भजिदे बिदियं हवे दव्वं॥ तव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं। धुवहारेणवहरिदे होदि हु उक्कस्सयं दव्वं॥ गो. जी. ४५३-४५४.

२ क्षेत्रतो जघन्येन योजनपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण मानुषोत्तरशैलस्याभ्यन्तरं न बहिः। स. सि. १, २३. त. रा. १, २३, १०. विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं॥ गो. जी. ४५५.

३ णरलोए त्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स। जम्हा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं॥ गो. जी. ४५६.

के वि भणंति । तण्ण घडदे, देव-मणुस्सविज्जाहराइसु तस्स णाणस्स अप्पउत्तिप्पसंगादो । 'माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरदो चेव जाणदि णो बहिद्धा ' त्ति वग्गणसुत्तेण णिद्दिट्ठत्तादो माणुसखेत्तअब्भंतरट्ठिदसव्वमुत्तिदव्वाणि जाणदि णो बाहिराणि त्ति के वि भणंति । तण्ण घडदे, माणुसुत्तरसेलसमीवे ठाइदूण बाहिरदिसाए कओवयोगस्स णाणाणुप्पत्तिप्पसंगादो । होदु चे ण, तदणुप्पत्तीए कारणाभावादो । ण ताव खओवसमाभावादो, अब्भंतरदिसाविसयणाणुप्पत्तीए अण्णहाणुववत्तीदो खओवसमस्स अत्थित्तसिद्धीए । ण माणुसुत्तरसेलेण अंतरिदत्तादो परभागट्ठिदत्थेसु णाणाणुप्पत्ती, अणिंदियस्स पच्चक्खस्स तीदाणागयपज्जाएसु वि असंखेज्जेसु वावरंतस्स[1] अब्भंतरदिसाए पव्वदादीहि अंतरिदत्थे वि जाणंतस्स मणपज्जवणाणिस्स माणुसुत्तरसेलेण पडिघाडाणुववत्तीदो । तदो माणुसुत्तरसेलब्भंतरवयणं ण खेत्तणियामयं, किंतु माणुसुत्तरसेलब्भंतरपणदालीसजोयणलक्खणियामयं, विउलमदिमणपज्जवणाणुज्जोयसहिदखेत्तं घणागारेण ठइदे पणदालीसलक्खमेत्तं चेव होदि त्ति । अधवा उवदेसं लद्धूण वत्तव्वं ।

कालदो जहण्णं सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि

नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर देव, मनुष्य एवं विद्याधरादिकोंमें विपुलमति मनःपर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति न हो सकनेका प्रसंग आवेगा । 'मानुषोत्तर शैलके भीतर ही स्थित पदार्थको जानता है, उसके बाहिर नहीं ' ऐसा वर्गणासूत्र द्वारा निर्दिष्ट होनेसे मानुषक्षेत्रके भीतर स्थित सब मूर्त द्रव्योंको जानता है, उससे बाह्य क्षेत्रमें नहीं; ऐसा कोई आचार्य कहते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा स्वीकार करनेपर मानुषोत्तर पर्वतके समीपमें स्थित होकर बाह्य दिशामें उपयोग करनेवालेके ज्ञानकी उत्पत्ति न हो सकनेका प्रसंग होगा। यदि कहा जाय कि उक्त प्रसंग आता है तो आने दीजिये, सो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि, उसके उत्पन्न न हो सकनेका कोई कारण नहीं है। क्षयोपशमका अभाव होनेसे उसकी उत्पत्ति न हो सो तो है नहीं, क्योंकि, उसके विना मानुषोत्तर पर्वतके अभ्यन्तर दिशाविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति भी घटित नहीं होती । अतः क्षयोपशमका अस्तित्व सिद्ध है । मानुषोत्तर पर्वतसे व्यवहित होनेके कारण परभागमें स्थित पदार्थोंमें ज्ञानकी उत्पत्ति न हो, यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि, असंख्यात अतीत व अनागत पर्यायोंमें व्यापार करनेवाले तथा अभ्यन्तर दिशामें पर्वतादिकोंसे व्यवहित पदार्थोंको भी जाननेवाले मनःपर्ययज्ञानीके अनिन्द्रिय प्रत्यक्षका मानुषोत्तर पर्वतसे प्रतिघात हो नहीं सकता । अत एव 'मानुषोत्तर पर्वतके भीतर' यह वचन क्षेत्रका नियामक नहीं है, किन्तु मानुषोत्तर पर्वतके भीतर पैंतालीस लाख योजनोंका नियामक है, क्योंकि, विपुलमति मनःपर्ययज्ञानके उद्योत सहित क्षेत्रको घनाकारसे स्थापित करनेपर पैंतालीस लाख योजन मात्र ही होता है । अथवा उपदेश प्राप्त कर इस विषयका व्याख्यान करना चाहिये ।

कालकी अपेक्षा वह जघन्यसे सात-आठ भवग्रहणोंको और उत्कर्षसे असंख्यात

---

१ प्रतिषु ' वादरंतस ' इति पाठः ।

जाणदि[1] । भावेण जं जं दिट्ठं दव्वं तस्स तस्स असंखेज्जपज्जाए जाणदि । एवंविधेभ्यो विपुलमतिभ्यो नम इति यावत् । संपधि विउलमदिजिणाणं णमोक्कारं काऊण सुदणाणजिणाणं णमोक्कारकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णमो दसपुव्वियाणं ॥ १२ ॥

एत्थ दसपुव्विणो भिण्णाभिण्णभेएण दुविहा होंति । तत्थ एक्कारसंगाणि पढिदूण पुणो परियम्म-सुत्त-पढमाणियोग-पुव्वगय-चूलिया त्ति पंचहियारणिबद्धदिट्ठिवादे पढिज्जमाणे उप्पाद-पुव्वमादिं कादूण पढंताणं दसपुव्वीए विज्जाणुपवादे[2] समत्ते रोहिणीआदिपंचसयमहाविज्जाओ सत्तसयदहरविज्जाहिं अणुगयाओ किं भयवं आणवेदि त्ति ढुक्कंति । एवं ढुक्काणं सव्वविज्जाणं जो लोभं गच्छदि सो भिण्णदसपुव्वी । जो पुण ण तासु लोभं करेदि कम्मक्खयत्थी होंतो सो अभिण्णदसपुव्वी णाम[3] । तत्थ अभिण्णदसपुव्विजिणाणं णमोक्कारं करेमि त्ति उत्तं होदि ।

भवग्रहणोंको जानता है । भावकी अपेक्षा जो जो द्रव्य ज्ञात है उस उसकी असंख्यात पर्यायोंको जानता है । इस प्रकारके विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है । अब विपुलमति जिनोंको नमस्कार करके श्रुतज्ञानी जिनोंको नमस्कार करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं-

दशपूर्वीक जिनोंको नमस्कार हो ॥ १२ ॥

यहां भिन्न और अभिन्नके भेदसे दशपूर्वी दो प्रकार हैं । उनमें ग्यारह अंगोंको पढ़कर पश्चात् परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका, इन पांच अधिकारोंमें निबद्ध दृष्टिवादके पढ़ते समय उत्पादपूर्वको आदि करके पढ़नेवालोंके दशम पूर्व विद्यानुप्रवादके समाप्त होनेपर सात सौ क्षुद्र विद्याओंसे अनुगत रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्यायें ' भगवन् क्या आज्ञा देते हैं ' ऐसा कहकर उपस्थित होती हैं । इस प्रकार उपस्थित हुई सब विद्याओंके लोभको जो प्राप्त होता है वह भिन्नदशपूर्वी है । किन्तु जो कर्मक्षयका अभिलाषी होकर उनमें लोभ नहीं करता है वह अभिन्नदशपूर्वी कहलाता है । उनमें अभिन्नदशपूर्वी जिनोंको नमस्कार करता हूं, यह सूत्रका अर्थ है ।

---

१ द्वितीयं कालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि, उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति । स. सि. १, २३. त. रा. १, २३, १०. अड णवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ॥ गो. जी. ४५७.

२ अप्रतौ ' दसपुव्वी विज्जापवादे ' इति पाठः ।

३ रोहिणिपहुदीण महाविज्जाणं देवदाउ पंच सया । अंगुट्ठपसेणाइं खुद्दअविज्जाण सत्त सया ॥ एत्तूण पेसणाइं मग्गंते दसमपुव्वपढणम्मि । णेच्छंति संजमंता ताओ जे ते अभिण्णदसपुव्वी ॥ भुवणेसु सुप्पसिद्धा विज्जाहर-समणणामपज्जाया । ताणं मुणीण बुद्धी दसपुव्वी णाम बोद्धव्वा ॥ ति. प. ४, ९९८–१०००. महारोहिण्यादिभिस्त्रिभिरागताभिः प्रत्येकमात्मीयरूपसामर्थ्याविष्करण-कथनकुशलाभिर्वेगवतीभिर्विद्यादेवताभिरविचलितचरित्रस्य दश-पूर्व-समुद्रोत्तरणं दशपूर्वित्वम् । त. रा. ३, ३६, २.

भिण्णदसपुव्वीणं कधं पडिणियत्ती ? जिणसद्दाणुवुत्तीदो । ण च तेसिं जिणत्तमत्थि, भग्गमहव्वएसु जिणत्ताणुववत्तीदो । आचारांगादिहेट्ठिमअंग-पुव्वधराणं णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, तेसिं पि णमोक्कारो कदो चेव, तेसिमेत्थुवलंभादो । चोद्दसपुव्वहराणं पुव्वं णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, जिणवयणपच्चयट्ठाणपदुप्पायणदुवारेण दसपुव्वीणं चागमहप्पपदरिसणट्ठं पुव्वं तण्णमोक्कारकरणादो । सुदपरिवाडीए वा पुव्वं दसपुव्वीणं णमोक्कारो कदो ।

णमो चोद्दसपुव्वियाणं ॥ १३ ॥

जिणाणमिदि एत्थाणुवट्टदे । सयलसुदणाणधारिणो चोद्दसपुव्विणो[1] । तेसिं चोद्दस-

---

शंका — भिन्नदशपूर्वियोंकी व्यावृत्ति कैसे होती है ?

समाधान — जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे उनकी व्यावृत्ति होती है । भिन्नदशपूर्वियोंके जिनत्व नहीं है, क्योंकि, जिनके महाव्रत नष्ट हो चुके हैं उनमें जिनत्व घटित नहीं होता ।

शंका — आचारांगादि अधस्तन अंग और पूर्वके धारकोंको नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, उनको भी नमस्कार किया ही है; क्योंकि, वे इनमें पाये जाते हैं ।

शंका — चौदह पूर्वोंके धारकोंको पहिले नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, जिनवचनोंपर प्रत्ययस्थान अर्थात् विश्वास उत्पादन द्वारा दशपूर्वियोंके त्यागकी महिमा दिखलानेके लिये पूर्वमें उन्हें नमस्कार किया गया है । अथवा, श्रुतकी परिपाटीकी अपेक्षासे पहिले दशपूर्वियोंको नमस्कार किया गया है ।

चौदहपूर्वीक जिनोंको नमस्कार हो ॥ १३ ॥

यहां 'जिनोंको' इस पदकी अनुवृत्ति आती है । समस्त श्रुतज्ञानके धारक

---

१ सयलागमपारगया सुदकेवलिणामसुप्पसिद्धा जे । एदाण बुद्धिरिद्धी चोद्दसपुव्वि त्ति णामेणं ॥ ति. प. ४, १००१. सम्पूर्णश्रुतकेवलिता चतुर्दशपूर्वित्वम् । त. रा. ३, ३६, २.

पुव्वीणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि। सेसहेट्ठिमपुव्वीणं णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, तेसिं पि कदो चेव, तेहि विणा चोद्दसपुव्वाणुववत्तीदो। चोद्दसपुव्वस्सेव णामणिद्देसं कादूण किमट्ठं णमोक्कारो कीरदे ? विज्जाणुपवादस्स समत्तीए इव चोद्दसपुव्वसमत्तीए वि जिणवयण-पच्चयदंसणादो। चोद्दसपुव्वसमत्तीए को पच्चओ ? चोद्दसपुव्वाणि समाणिय रत्तिं काओसग्गेण ट्ठिदस्स पहादसमए भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-कप्पवासियदेवेहि कयमहापूजा संख-काहला-तूररवसंकुला होदु। एदेसु दोसु ट्ठाणेसु जिणवयणपच्चओवलंभो। जिणवयणत्तं पडि सव्वंग-पुव्वाणि समाणाणि त्ति तेसिं सव्वेसिं णामणिद्देसं काऊण णमोक्कारो किण्ण कदो ? ण, जिणवयणत्तणेण सव्वंग-पुव्वेहि सरिसत्ते संते वि विज्जाणुप्पवाद-लोगविंदुसाराणं महल्लत्त-मत्थि, एत्थेव देवपूजोवलंभादो। चोद्दसपुव्वहरो मिच्छत्तं ण गच्छदि, तम्हि भवे असंजमं च ण पडिवज्जदि, एसो एदस्स विसेसो।

....

चौदहपूर्वी कहे जाते हैं। उन चौदहपूर्वी जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है।

शंका—शेष अधस्तनपूर्वियोंको नमस्कार क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, उनको भी नमस्कार किया ही है, क्योंकि, अधस्तन पूर्वोंके विना चौदह पूर्व घटित ही नहीं होते।

शंका—चौदह पूर्वका ही नामनिर्देश करके किसलिये नमस्कार किया जाता है।

समाधान—क्योंकि, विद्यानुप्रवादकी समाप्तिके समान चौदह पूर्वकी समाप्तिमें भी जिनवचनपर विश्वास देखा जाता है।

शंका—चौदह पूर्वकी समाप्तिमें कौनसा विश्वास है ?

समाधान—चौदह पूर्वोंको समाप्त करके रात्रिमें कायोत्सर्गसे स्थित साधुकी प्रभात समयमें भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवों द्वारा शंख, काहला और तूर्यके शब्दसे व्याप्त महापूजा की जाती है। इन दो स्थानोंमें जिन वचनोंपर विश्वास पाया जाता है।

शंका—जिनवचनकी अपेक्षासे सब अंग और पूर्व समान हैं, अतएव उन सबका नामनिर्देश करके नमस्कार क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, जिनवचन रूपसे सब अंग और पूर्वोंमें सदृशताके होनेपर भी विद्यानुप्रवाद और लोकविन्दुसारका महत्व है, क्योंकि, इनमें ही देवपूजा पायी जाती है। चौदह पूर्वका धारक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता और उस भवमें असंयमको भी नहीं प्राप्त होता, यह इसकी विशेषता है।

णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं ॥ १४ ॥

अंग-सर-वंजण-लक्खण-छिण्ण-भौम-सुमिणंतरिक्खाणि महाणिमित्ताणमट्ठअंगाणि । उत्तं च —

> अंग सरो वंजण-लक्खणाणि छिण्णं च भौम्मं सुमिणंतरिक्खं ।
> एदे णिमित्तेहि य राहणिज्जा[1] जाणंति लोयस्स सुहासुहाइं ॥ १९ ॥

तत्थ अंगगयमहाणिमित्तं णाम मणुस-तिरिक्खाणं सत्त-सहाव-वाद[2]-पित्त-सेंभ-रस-रुधिर-मांस-मेदट्ठि-मज्ज-सुक्काणि सरीरवण्ण-गंध-रस-फासणिण्णुण्णदाणि जोएदूण जीविद-मरण-सुह-दुख-लाहालाह-पवासादिविसयावगमो[3] । खर-पिंगलोलूव-वायस सिव-सियाल-णर-णारीसरं सोऊण लाहालाह-सुह-दुक्ख-जीविद-मरणादीणं अवगमो सरमहाणिमित्तं णाम[4] । तिल-याणूग-

अष्टांग महानिमित्तोंमें कुशलताको प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ १४ ॥

अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष, ये महानिमित्तोंके आठ अंग हैं । कहा भी है—

अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष, इन निमित्तोंसे आराधनीय साधु जनसमुदायके शुभाशुभको जानते हैं ॥ १९ ॥

उनमें मनुष्य और तिर्यंचोंके वात, पित्त व कफ व रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, एवं शुक्र सत्व स्वभाव रूप, तथा शरीरके निम्न व उन्नत वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शको देखकर जीवित, मरण, सुख, दुख, लाभ, अलाभ और प्रवासादि विषयक ज्ञान अंगगत महानिमित्त है । खर, पिंगल, [नेवला, बन्दर या सर्पविशेष] उल्लू, काक, शिवा, शृगाल, नर और नारीके स्वरको सुनकर लाभालाभ, सुख दुख और जीवित-मरणादिको जानना स्वरमहानिमित्त कहा जाता

---

१ अप्रतौ ' राणिहिज्जा ', आप्रतौ ' राणिहिच्चा ', काप्रतौ ' राहिणिच्चा ' इति पाठः ।

२ अप्रतौ ' सत्त सहावाद ' इति पाठः ।

३ वातादिप्पगिदीओ रुहिरप्पहुदिरसहावसत्ताइं । णिण्णाण उण्णयाणं अंगोवंगाण दंसणा पासा ॥ णर-तिरियाणं दट्ठुं जं जाणइ दुक्ख-सोक्ख-मरणाइं । कालत्तयणिप्पाणं अंगणिमित्तं पसिद्धं तु ॥ ति. प. ४, १००६–१००७. अंग-प्रत्यंगदर्शनादिभिस्त्रिकालभाविसुख-दुःखादिविभावनमंगम् । त. रा. ३, ३६, २.

३ णर-तिरियाण विचित्तं सद्दं सोदूण दुक्खसोक्खाइं । कालत्तयणिप्पण्णं जं जाणइ तं सरणिमित्तं ॥ ति. प. ४, १००८. अक्षरानक्षरशुभाशुभशब्दश्रवणेनेष्टानिष्टफलाविर्भावनं महानिमित्तं स्वरम् । त. रा. ३. ३६, २.

५ प्रतिषु ' तिलयाणंग- ' इति पाठः ।

मसादिं दट्ठूण तेसिमवगमो वंजणं[1] णाम महाणिमित्तं । सोत्थिय-णंदावत्त-सिरीवच्छ-संख-चक्कंकुस-चंद-सूर-रयणायरादिलक्खणाणि उर-ललाट-हत्थ-पादतलादिसु जहाकमेण अट्ठुत्तर-सद-चउसट्ठि-बत्तीसं दट्ठूण तित्थयर-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेवत्तावगमो लक्खणं[2] णाम महाणिमित्तं । अंगछायाविवज्जास-वत्थालंकारछेदं मणुव-तिरिक्खादीणं चेट्ठा-संठाणाणि दट्ठूण सुहासुहावगमो छिण्णं[3] णाम महाणिमित्तं । भूमिगयलक्खणाणि दट्ठूण गाम-णयर-खेट-कव्वड-घर-पुरादीणं[4] वुड्ढि-हाणिपदुप्पायणं भोम्मं[5] णाम महाणिमित्तं । छिण्ण-माला-सुमिणाणं सरूवं

....

है । तिल, आनुअ और मशा आदिको देखकर उन सुख-दुःखादिकका जानना व्यञ्जन महानिमित्त है । उर, ललाट, हस्ततल और पादतलादिकमें यथाक्रमसे एक सौ आठ, चौंसठ व बत्तीस स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, श्रीवृक्ष, शंख, चक्र, अंकुश, चन्द्र, सूर्य एवं रत्नाकर आदि लक्षणोंको देखकर तीर्थंकरत्व, चक्रवर्तित्व एवं बलदेवत्व व वासुदेवत्वका जानना लक्षण नामक महानिमित्त है । शरीरछायाकी विपरीतता, वस्त्र व अलंकारका छेद तथा मनुष्य और तिर्यंच आदिकोंकी चेष्टा व आकारको देखकर शुभाशुभका जानना छिन्न महानिमित्त कहा जाता है । भूमिगत लक्षणोंको देखकर ग्राम, नगर, खेड़ा, कर्वट, घर व पुरादिकोंकी वृद्धि-हानिको कहना भौम नामक महानिमित्त है । छिन्न स्वप्न और माला स्वप्नके

....

१ सिर-मुह-कंधप्पहुदिसु तिल-मसयप्पहुदिआइ दट्ठूणं । जं तियकालसुहाइं जाणइ तं वेंजणणिमित्तं ॥ ति. प. ४, १००९. शिरोमुखग्रीवादिषु तिलक-मशकलक्ष्मव्रणादिवीक्षणेन त्रिकालहिताहितवेदनं व्यंजनम् । त. रा. ३, ३६, २.

२ कर-चरणतलप्पहुदिसु पंकय-कुलिसादियाणि दट्ठूणं । जं तियकालसुहाइं लक्खइ तं लक्खणणिमित्तं ॥ ति. प. ४, १०१०. श्रीवृक्ष-स्वस्तिक-भृंगार-कलशादिलक्षणवीक्षणात् त्रैकालिकस्थानमानैश्वर्यादिविशेषज्ञानं लक्षणम् । त. रा. ३, ३६, २.

३ सुर-दाणव-रक्खस-णर-तिरिएहिं छिण्णसत्थ-वत्थाणिं । पासाद-णयर-देसादियाणि चिण्हाणि दट्ठूणं ॥ कालत्तयसंभूदं सुहासुहं मरण-विविहदव्वं च । सुह-दुक्खाइं लक्खइ चिण्हणिमित्तं ति तं जाणइ ॥ ति. प. ४, १०११-१०१२. वस्त्र-शस्त्र-छत्रोपानदासन-शयनादिषु देव-मानुष-राक्षसादिविभागैः शस्त्र-कण्टक-मूषिकादिकृत-छेदनदर्शनात् कालत्रयविषयलाभालाभ-सुख-दुःखादिसूचनं छिन्नम् । त. रा. ३, ३६, २.

४ अप्रतौ 'कव्वडघपुरायादीणं', आ-काप्रत्योः 'कव्वडघपुरारायादीणं', मप्रतौ 'कव्वडघरारादीणं' इति पाठः ।

५ घण-सुसिर-णिद्ध-लुक्खप्पहुदिगुणे भाविदूण भूमीए । जं जाणइ खय-वाड्ढिं तम्मयस-कणय-रजदपमुहाणं ॥ दिसि-विदिसअंतरेसुं चउरंगबलं ठिदं च दट्ठूणं । जं जाणइ जयमजयं तं भउमणिमित्तमुद्दिट्ठं ॥ ति. प. ४, १००४-१००५. भुवो घन-शुषिर-स्निग्ध-रूक्षादिविभावनेन पूर्वादिदिक्सूत्रनिवासेन वा वृद्धि-हानि-जय-पराजयादि-विज्ञानं भूमेरन्तर्निहितसुवर्ण-रजतादिसंसूचनं च भौमं । त. रा. ३, ३६, २.

दट्ठूण भाविकज्जावगमो सुमिणं[1] णाम महाणिमित्तं । तत्थ वसह-मायंग-सीह-सायर-चंदाइच्च-जलकलियकलस-पउमाहिसेय-जलण-पउमायर-भवणविमाण-रयणरासि-सीहासण-कीडंतमच्छ-पफुल्लदामजुवलाणं अण्णोण्णसंबंधविरहियाणं सुत्ततित्थयरमादूणं सोलसण्णं दंसणं छिण्ण-सुमिणओ णाम । पुव्वावरेण घडंताणं भावाणं सुमिणंतरेण दंसणं मालासुमिणओ णाम । चंदाइच्च-गहाणमुदयत्थवण-जय-पराजय-गहघट्टण-विज्जुचडक-किंदाउह-चंदाइच्च-परिवेसुवराग-बिंबभेयादिं दट्ठूण सुहासुहावगमो अंतरिक्खं णाम महाणिमित्तं[2] । एदेसु अट्ठंगमहाणिमित्तेसु कुसलाणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि । जिणसद्दाणुवुत्तीदो णासंजद-संजदासंजदाणं गहणं । णाणेण विसेसिदजिणाणं पुव्वमेव णमोक्कारो किमट्ठं कदो ? चारित्तदो णाणस्स पहाणत्तपदु-

---

स्वरूपको देखकर भावी कार्यको जानना स्वप्न नामक महानिमित्त है। उनमें वृषभ, हाथी, सिंह, समुद्र, चन्द्र, सूर्य, जलसे परिपूर्ण कलश, लक्ष्मीका अभिषेक, अग्नि, तालाब, भवनविमान, रत्नराशि, सिंहासन, क्रीड़ा करती मछलियोंका युगल और पुष्पमालाओंका युगल, इन परस्परके सम्बन्धसे रहित सोलह स्वप्नोंका सोती हुई जिनजननीको जो दर्शन होता है वह छिन्न स्वप्न है। पूर्वापरसे सम्बन्ध रखनेवाले भावोंका स्वप्नान्तरसे देखना माला स्वप्न है। चन्द्र, सूर्य एवं ग्रहके उदय व अस्तमन तथा जय पराजय, ग्रहघर्षण, विजलीकी ध्वनि, कर्कधायुध, चन्द्र व सूर्यके परिवेष, उपराग एवं बिम्बभेदादिको देखकर शुभाशुभका जानना अन्तरिक्ष नामक महानिमित्त है। इन अष्टांगमहानिमित्तोंमें कुशल जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है। जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे असंयत और संयतासंयतोंका ग्रहण नहीं है।

शंका—ज्ञानसे विशिष्ट जिनोंको पहिले ही नमस्कार किसलिये किया ?

समाधान—चारित्रकी अपेक्षा ज्ञानकी प्रधानता बतलानेके लिये ज्ञानविशिष्ट

---

१ वातादिदोसचत्तो पच्छिमरत्ते मुयंक-रविपहुदिं । णियमुहकमलपविट्ठं देक्खिय सउणम्मि सुहसउणं ॥ घडतेलब्भंगादिं रासह-करभादिएसु आरुहणं । परदेसगमण सव्वं जं देक्खइ असुहसउणं तं ॥ जं भासइ दुक्ख-सुहप्पमुहं कालत्तए वि संजादं । तं चिय सउणणिमित्तं चिण्हो मालो त्ति दोभेदं ॥ करि-केसरिपहुदीणं दंसणमेत्तादि चिण्हसउणं तं । पुव्वावरसंबंधं सउणं तं मालसउणो त्ति ॥ ति. प. ४, १०१३–१०१६. वात-पित्त-श्लेष्मदोषोदयरहितस्य पश्चिमरात्रिविभागे चन्द्र-सूर्यधरादिसमुद्रमुखप्रवेशनसकलमहीमण्डलोपगूहनादिशुभ-घृत-तैलाक्तात्मीयदेहखर-करभारूढावदिग्गमनाद्यशुभस्वप्नदर्शनादागामिजीवित-मरण-सुख-दुःखाद्याविर्भावकः स्वप्नः । त. रा. ३, ३६, २.

२ रवि-ससि-गहपहुदीणं उदयत्थमणादिआइं दट्ठूणं । खीणत्तं दुक्ख-सुहं जं जाणइ तं हि णहणिमित्तं ॥ ति. प. ४-१००३. तत्र रवि-शशि-ग्रह-नक्षत्र-भगणोदयास्तमयादिभिरतीतानागतफलप्रविभागदर्शनमंतरिक्षम् ॥ त. रा. ३, ३६, २.

प्पायणट्ठं । कुदो तत्तो तस्स पहाणत्तं ? णाणेण विणा चरणाणुववत्तीदो । चरणफलविसेसिय-जिणपणमणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि--

णमो विउव्वणपत्ताणं ॥ १५ ॥

अणिमा महिमा लहिमा पत्ती पागम्मं ईसित्तं वसित्तं कामरूवित्तमिदि विउव्वणमट्ठविहं । तत्थ महापरिमाणं सरीरं संकोडिय परमाणुपमाणसरीरेण अवट्ठाणमणिमा णाम[1] । परमाणुपमाण-देहस्स मेरुगिरिसरिससरीरकरणं महिमा णाम । मेरुपमाणसरीरेण मक्कडतंतुहि परिसक्कण-णिमित्तसत्ती लघिमा णाम[2] । भूमिट्ठियस्स करेण चंदाइच्चबिंबच्छिवणसत्ती पत्ती[3] णाम ।

जिनोंको पहिले ही नमस्कार किया है।

शंका—चारित्रसे ज्ञानकी प्रधानता क्यों है ?

समाधान—चूंकि विना ज्ञानके चारित्र होता नहीं है, अतः ज्ञान प्रधान है ।

चारित्रके फलसे विशेषताको प्राप्त जिनोंको नमस्कार करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

विक्रिया ऋद्धिको प्राप्त हुए जिनोंको नमस्कार हो ॥ १५ ॥

अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामरूपित्व, इस प्रकार विक्रिया ऋद्धि आठ प्रकार है । उनमें महा परिमाण युक्त शरीरको संकुचित करके परमाणु प्रमाण शरीरसे स्थित होना अणिमा नामक विक्रिया ऋद्धि है । परमाणु प्रमाण शरीरको मेरु पर्वतके सदृश करनेको महिमा ऋद्धि कहते हैं । मेरु प्रमाण शरीरसे मकड़ीके तंतुओंपरसे चलनेमें निमित्तभूत शक्तिका नाम लघिमा है । भूमिमें स्थित रहकर हाथसे चन्द्र व सूर्यके बिम्बको छूनेकी शक्ति प्राप्ति ऋद्धि कही जाती है ।

१ अणुतणुकरणं अणिमा अणुछिद्दे पविसिदूण तत्थेव । विकरदि खंदावारं णिएसमवि चक्कवट्टिस्स ॥ ति. प. ४-१०२६. तत्राणुशरीरविकरणमणिमा बिसछिद्रमपि प्रविश्याऽऽसित्वा तत्र च चक्रवर्तिपरिवारविभूतिं सृजेत् । त. रा. ३, ३६, २.

२ मेरूवमाणदेहा महिमा अणिलाउ लघुतरो लघिमा । ति, प. ४-१०२७. मेरोरपि महत्तरशरीरविकरणं महिमा । वायोरपि लघुतरशरीरता लघिमा ॥ त. रा. ३, ३६, २.

३ भूमीए चिट्ठंतो अंगुलिअग्गेण सूर-ससिपहुदिं । मेरुसिहराणि अण्णं जं पावदि पत्तिरिद्धी सा ॥ ति. प. ४-१०२८. भूमौ स्थित्वांगुल्यग्रेण मेरुशिखर-दिवाकरादिस्पर्शनसामर्थ्यं प्राप्तिः । त. रा. ३, ३६, २.

कुलसेल-मेरुमहीहर-भूमीणं बाहमकाऊण तासु गमणसत्ती तवच्छरणबलेणुप्पण्णा पागम्मं[1] णाम । सव्वेसिं जीवाणं गाम-णयर-खेडादीणं च भुंजणसत्ती समुप्पण्णा ईसित्तं णाम । माणुस-मायंग-हरि-तुरयादीणं सगिच्छाए विउव्वणसत्ती वसित्तं[2] णाम । ण च वसित्तस्स ईसित्तम्मि पवेसो, अवसाणं पि हदाकारेण ईसित्तकरणुवलंभादो । इच्छिदरूवग्गहणसत्ती कामरूवित्तं[3] णाम । ईसित्त-वसित्ताणं कधं वेउव्वियत्तं ? ण, विविहगुणइड्ढिजुत्तं वेउव्वियमिदि तेसिं वेउव्वियत्ता-विरोहादो । एत्थ एगसंजोगादिणा विसदपंचवंचासविउव्वणभेदा उप्पाएदव्वा, तक्कारणस्स

कुलाचल और मेरु पर्वतके पृथिवीकायिक जीवोंको बाधा न पहुंचाकर उनमें तपश्चरणके बलसे उत्पन्न हुई गमनशक्तिको प्राकाम्य ऋद्धि कहते हैं । सब जीवों तथा ग्राम, नगर एवं खेड़े आदिकोंके भोगनेकी जो शक्ति उत्पन्न होती है वह ईशित्व ऋद्धि कही जाती है । मनुष्य, हाथी, सिंह एवं घोड़े आदिक रूप अपनी इच्छासे विक्रिया करनेकी शक्तिका नाम वशित्व ऋद्धि है । वशित्वका ईशित्व ऋद्धिमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि, अवशी-कृतोंका भी उनका आकार नष्ट किये विना ईशित्वकरण पाया जाता है । इच्छित रूपके ग्रहण करनेकी शक्तिका नाम कामरूपित्व है ।

शंका—ईशित्व और वशित्वके विक्रियापन कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नाना प्रकार गुण व ऋद्धि युक्त होनेका नाम विक्रिया है, अतएव उन दोनोंके विक्रियापनेमें कोई विरोध नहीं है ।

यहां एकसंयोग, द्विसंयोग आदिके द्वारा दो सौ पचवन विक्रियाके भेद उत्पन्न कराना चाहिये, क्योंकि, उनके कारण विचित्र हैं । [एकसंयोगी ८, द्विसंयोगी $\frac{८ \times ७}{१ \times २}$ = २८; त्रिसंयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६}{१ \times २ \times ३}$ = ५६; चतुःसंयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६ \times ५}{१ \times २ \times ३ \times ४}$ = ७०; पंचसंयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६ \times ५ \times ४}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५}$ = ५६; षट्संयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६ \times ५ \times ४ \times ३}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६}$ = २८, सप्त-संयोगी $\frac{८ \times ७ \times ६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६ \times ७}$ = ८; अष्टसंयोगी १; समस्त ८ + २८ + ५६ +

---

१ सलिले वि य भूमीए उम्मज्ज-णिमज्जणाणि जं कुणदि । भूमीए वि य सलिले गच्छदि पाकम्मरिद्धी सा ॥ ति. प. ४-१०२९. अप्सु भूमाविव गमनं भूमौ जल इवोन्मज्जनकरणं प्राकाम्यम् । त. रा. ३, ३६, २.

२ णिस्सेसाण पहुत्तं जगाण ईसत्तणामरिद्धी सा । वसमेंति तवबलेणं जं जीवोहा वसित्तरिद्धी सा ॥ ति. प. ४-१०३०. त्रैलोक्यस्य प्रभुता ईशित्वम् । सर्वजीववशीकरणलब्धिर्वशित्वम् । त. रा. ३, ३६, २.

३ जुगवं बहुरूवाणि जं विरयदि कामरूवरिद्धी सा ॥ ति. प. ४-१०३२. युगपदनेकाकाररूपविकरण-शक्तिः कामरूपित्वमिति । त. रा. ३, ३६, २.

वइचित्तियत्तादो । एदेहि अट्ठहि विउव्वणसत्तीहि सहियाणं णमोक्कारो कीरदे । अट्ठगुणरिद्धि-जुत्ताणं देवाणं एसो णमोक्कारो किण्ण पावदे ? ण एस दोसो, जिणसद्दाणुवट्टणेण तण्णिरा-करणादो । ण च देवाणं जिणत्तमत्थि, तत्थ संजमाभावादो । एत्तो उवरि जहातहाणुपुव्वि-क्कमो दट्ठव्वो, महल्लपरिवाडीए अणुवलंभादो ।

णमो विज्जाहराणं ॥ १६ ॥

तिविहाओ विज्जाओ जादि-कुल-तवविज्जाभेएण । उत्तं च—

> जादीसु होइ विज्जा कुलविज्जा तह य होइ तवविज्जा ।
> विज्जाहरेसु एदा तवविज्जा होइ साहूणं[1] ॥ २० ॥

तत्थ सगमादुपक्खादो लद्धविज्जाओ जादिविज्जाओ णाम । पिदुपक्खुवलद्धाओ कुलविज्जाओ । छट्ठट्ठमादिउववासविहाणेहि साहिदाओ तवविज्जाओ । एवमेदाओ तिविहाओ

---

७० + ५६ + २८ + ८ + १ = २५५ भंग होते हैं ।] इन आठ विक्रिया शक्तियोंसे सहित जिनोंको नमस्कार किया जाता है ।

शंका—आठ गुण ऋद्धियोंसे युक्त देवोंको यह नमस्कार क्यों नहीं प्राप्त होगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्ति आनेसे उसका निराकारण हो जाता है । कारण कि देव जिन नहीं हैं, क्योंकि, उनमें संयमका अभाव है ।

यहांसे आगे यथा-तथा-आनुपूर्वीक्रम समझना चाहिये, क्योंकि, महानताकी परि-पाटी नहीं पाई जाती ।

विद्याधरोंको नमस्कार हो ॥ १६ ॥

जातिविद्या, कुलविद्या और तपविद्याके भेदसे विद्यायें तीन प्रकार हैं । कहा भी है—

जातियोंमें विद्या अर्थात् जातिविद्या है, कुलविद्या तथा तपविद्या भी विद्या हैं । ये विद्यायें विद्याधरोंमें होती हैं । किन्तु तपविद्या साधुओंके होती है ॥ २० ॥

इन विद्याओंमें स्वकीय मातृपक्षसे प्राप्त हुई विद्यायें जातिविद्यायें और पितृपक्षसे प्राप्त हुई कुलविद्यायें कहलाती हैं । षष्ठ और अष्टम आदि उपवासोंके करनेसे सिद्ध की

---

१ कुल-जाईविज्जाओ साहियविज्जा अणेयभेयाओ । विज्जाहरपुरिस-पुरंधियाण वरसोक्खजणणीओ ॥ ति. प. ४-१३८.

विज्जाओ होंति विज्जाहराणं। तेण वेअड्ढणिवासिमणुआ वि विज्जाहरा, सयलविज्जाओ छंडिऊण गहिदसंजमविज्जाहरा वि होंति विज्जाहरा, विज्जाविसयविण्णाणस्स तत्थुवलंभादो। पढिदविज्जाणुपवादा वि विज्जाहरा, तेसिं पि विज्जाविसयविण्णाणुवलंभादो। केसिमेत्थ गहणं? ण ताव वेयड्ढप्पण्णअसंजदाणं गहणं, तेसिं जिणत्ताभावादो। परिसेसादो सेसदुविह-विज्जाहरा एत्थ घेत्तव्वा। दसपुव्वहराणमेत्थ ण ग्गहणं, पउणरुत्तियादो? ण, तत्थ दस-पुव्वविसयणाणुवलक्खियजिणाणं णमोक्कारकरणादो, एत्थ सिद्धासेसविज्जापेसणपरिच्चागेणुव-लक्खियजिणाणं विज्जाहरत्तब्भुवगमादो त्ति। सिद्धविज्जाणं पेसणं जे ण इच्छंति केवलं धरंति चेव अण्णाणणिवित्तीए ते विज्जाहरजिणा णाम। तेभ्यो नमः।

णमो चारणाणं ॥ १७ ॥

जल-जंघ-तंतु-फल-पुप्फ-बीय-आगास-सेडीभेएण अट्ठविहा चारणा। उत्तं च—

....

गई तपविद्यायें हैं। इस प्रकार ये तीन प्रकारकी विद्यायें विद्याधरोंके होती हैं। इससे वैताढ्य पर्वतपर निवास करनेवाले मनुष्य भी विद्याधर होते हैं, सब विद्याओंको छोड़कर संयमको ग्रहण करनेवाले भी विद्याधर होते हैं, क्योंकि, विद्याविषयक विज्ञान वहां पाया जाता है। जिन्होंने विद्यानुप्रवादको पढ़ लिया है वे भी विद्याधर हैं, क्योंकि, उनके भी विद्याविषयक विज्ञान पाया जाता है।

शंका—इन तीन प्रकारके विद्याधरोंमेंसे यहां किनका ग्रहण है?

समाधान—वैताढ्य पर्वतपर उत्पन्न असंयतोंका यहां ग्रहण नहीं है, क्योंकि, वे जिन नहीं हैं। पारिशेष न्यायसे शेष दो प्रकारके विद्याधरोंका यहां ग्रहण करना चाहिये।

शंका—दशपूर्वधरोंका ग्रहण यहां नहीं करना चाहिये, क्योंकि, पुनरुक्ति दोष आता है?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, वहां दश पूर्व विषयक ज्ञानसे उपलक्षित जिनोंको नमस्कार किया गया है, किन्तु यहां सिद्ध हुई समस्त विद्याओंके कार्यके परि-त्यागसे उपलक्षित जिनोंको विद्याधर स्वीकार किया है। जो सिद्ध हुई विद्याओंसे काम लेनेकी इच्छा नहीं करते, केवल अज्ञानकी निवृत्तिके लिये उन्हें धारण ही करते हैं, वे विद्याधर जिन हैं। उनके लिये नमस्कार हो।

चारण ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ १७ ॥

जल, जंघा, तन्तु, फल, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणीके भेदसे चारण ऋद्धि-धारक आठ प्रकार हैं। कहा भी है—

जल-जंघ-तंतु-फल-पुप्फ-बीय-आगास-सेढिगइकुसला ।
अट्ठविहचारणगणा पइरिक्कसुहं पविहरंति[1] ॥ २१ ॥

तत्थ भूमीए इव जलकाइयजीवाणं पीडमकाऊण जलमफुसंता जहिच्छाए जलगमण-समत्था रिसओ जलचारणा[2] णाम । पउमणिपत्तं व जलपासेण विणा जलमज्झगामिणो जल चारणा त्ति किण्ण उच्चंति ? ण एस दोसो, इच्छिज्जमाणत्तादो । जलचारण-पागम्मरिद्धीणं दोण्हं को विसेसो ? घणपुढवि-मेरुसायराणंतो सव्वसरीरेण पवेससत्ती पागम्मं णाम । तत्थ जीवपरिहरणकउसलं चारणत्तं । तंतु-फल-पुप्फ-बीजचारणाणं पि जलचारणाणं व वत्तव्वं । भूमीए

जल, जंघा, तन्तु, फल, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणीका आलम्बन लेकर गमनमें कुशल ऐसे आठ प्रकारके चारणगण अत्यन्त सुखपूर्वक विहार करते हैं ॥ २१ ॥

उनमें जो ऋषि जलकायिक जीवोंको पीड़ा न पहुंचाकर जलको न छूते हुए इच्छानुसार भूमिके समान जलमें गमन करनेमें समर्थ हैं वे जलचारण कहलाते हैं ।

शंका — पद्मिनीपत्रके समान जलको न छूकर जलके मध्यमें गमन करनेवाले जलचारण क्यों नहीं कहलाते ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ऐसा अभीष्ट ही है ।

शंका — जलचारण और प्राकाम्य इन दोनों ऋद्धियोंमें क्या विशेषता है ?

समाधान — सघन पृथिवी, मेरु और समुद्रके भीतर सब शरीरसे प्रवेश करनेकी शक्तिको प्राकाम्य ऋद्धि कहते हैं, और वहां जीवोंके परिहारकी कुशलताका नाम चारण ऋद्धि है ।

तन्तुचारण, फलचारण, पुष्पचारण और बीजचारणका स्वरूप भी जलचारणोंके

१ चारणरिद्धी बहुविहविकप्पसंदोहवित्थरिदा ॥ जल-जंघा-फल-पुप्फं-पत्तग्गिसिहाण धूम-मेघाणं । धारा-मक्कडतंतू-जोदी-मरुदाण चारणा कमसो ॥ ति. प. ४-१०३५. तत्र चारणा अनेकविधाः जल-जंघा-तंतु-पत्र-श्रेण्यभि-शिखाद्यालंबनगमनाः । त. रा. ३, ३६, २. अइसयचरणसमत्था जंघा विज्जाहिं चरणा मुणओ । जंघाहिं जाइ पढमो नीसं काउं रविकरे वि ॥ एगुप्पाएण गओ रुयगवरम्मि तओ पडिनियत्तो । बीएणं णंदिस्सरमिहं तओ एइ तइएणं ॥ पढमेण पंडगवणं बीओप्पाएण णंदणं एइ । तइओप्पाएण तओ इह जंघाचारणो हो (ए) इ ॥ पढमेण माणुसोत्तरनगं स नंदिस्सरं तु बिइएण । एइ तओ तइएणं कयचेइयवंदणो इहइं ॥ पढमेण नंदणवणे बीओप्पाएण पंडगवणंमि । एइ इहं तइएणं जो विज्जाचारणो होइ ॥ विशे. भा. ७८९-७९३.

२ अविराहियप्पुकाए जीवे पदखेवणेहिं जं जादि । धावेदि जलहिमज्झे स च्चिय जलचारणा रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०३६.

पुढविकाइयजीवाणं बाहमकाऊण अणेगजोयणसयगामिणो जंघचारणा[1] णाम । धूमग्गि-गिरि-तरु-तंतुसंताणेसु उड्ढारोहणसत्तिसंजुत्ता सेडीचारणा णाम । चउहि अंगुलेहिंतो अहियपमाणेण भूमीदो उवरि आयासे गच्छंतो आगासचारणा णाम। आगासचारणाणमुवरि उच्चमाणआगास-गामीणं च को विसेसो ? उच्चदे— जीवपीडाए विणा पादुक्खेवेण आगासगामिणो आगास-चारणा णाम । पलियंक-काउसग्ग-सयणासण-पादुक्खेवादिसव्वपयारेहि आगासे संचरणसमत्था आगासगमिणो । चारणाणमेत्थ एगसंजोगादिकमेण विसदपंचवंचास भंगा उप्पाएदव्वा। कध-मेगं चारित्तं विचित्तसत्तिसमुप्पाययं ? ण, परिणामभेएण णाणभेदभिण्णचारित्तादो चारणबहुत्तं पडि विरोहाभावादो। कधं पुण चारणा अट्ठविहा त्ति जुज्जदे ? ण एस दोसो, णियमाभावादो,

....

समान कहना चाहिये । भूमिमें पृथिवीकायिक जीवोंको बाधा न करके अनेक सौ योजन गमन करनेवाले जंघाचारण कहलाते हैं । धूम, अग्नि, पर्वत और वृक्षके तन्तुसमूहपरसे ऊपर चढ़नेकी शक्तिसे संयुक्त श्रेणीचारण हैं । चार अंगुलोंसे अधिक प्रमाणमें भूमिसे ऊपर आकाशमें गमन करनेवाले ऋषि आकाशचरण कहे जाते हैं ।

शंका—आकाशचारण और आगे कहे जानेवाले आकाशगामीके क्या भेद है ?

समाधान—इस शंकाकारका उत्तर कहते हैं । जीवपीड़ाके विना पैर उठाकर आकाशमें गमन करनेवाले आकाशचारण हैं । पल्यंकासन, कायोत्सर्गासन, शयनासन और पैर उठाकर इत्यादि सब प्रकारोंसे आकाशमें गमन करनेमें समर्थ ऋषि आकाशगामी कहे जाते हैं ।

यहां चारण ऋषियोंके एकसंयोग द्विसंयोगादिके क्रमसे दो सौ पचवन भंग उत्पन्न करना चाहिये । (देखो सूत्र १५ की टीका) ।

शंका—एक ही चारित्र इन विचित्र शक्तियोंका उत्पादक कैसे हो सकता है ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, परिणामके भेदसे नाना प्रकार चारित्र होनेके कारण चारणोंकी अधिकतामें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—जब चारणोंके भेद दो सौ पचवन हैं तो फिर उन्हें आठ प्रकार बतलाना कैसे युक्त है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उनके आठ प्रकार होनेका नियम

....

१ चउरंगुलमेत्तमहिं छंडिय गयणम्मि कुडिलजाणु विणा । जं बहुजोयणगमणं सा जंघाचारणा रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०३७.

बिसदपंचवंचासचारणाणं अट्ठविहचारणेहिंतो एयंतेण पुधत्ताभावादो च । एदेसिं चारणजिणाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

कधं चारणाणं अट्ठसंखाणियमो ? ण, इदरेसिं चारणाणमेत्थंतब्भावादो । तं जहा— चिक्खल्ल-छार-गोवर-भुसादिचारणाणं जंघचारणेसु अंतब्भावो, भूमीदो चिक्खल्लादीणं कधंचि भेदाभावादो । कुंथुद्देही-मक्कुण-पिपीलियादिचारणाणं फलचारणेसु अंतब्भावो, तसजीवपरिहरणकुसलत्तं पडि भेदाभावादो । पत्तंकुर-त्तण-पवालादिचारणाणं पुप्फचारणेसु अंतब्भावो, हरिदकायपरिहरणकुसलत्तेण साहम्मादो । ओस-करवास-धूमरी-हिमादिचारणाणं जलचारणेसु अंतब्भावो, आउक्काइयजीवपरिहरणकुसलत्तं पडि साहम्मदंसणादो । धूमग्गि-वाद-मेहादिचारणाणं तंतु-सेडिचारणेसु अंतब्भावो, अणुलोम-विलोमगमणेसु जीवपीडाअकरणसत्तिसंजुत्तत्तादो । एवमण्णेसिं[1] पि चारणाणमेत्थेव अंतब्भावो दट्ठव्वो ।

णमो पण्णसमणाणं ॥ १८ ॥

नहीं है, तथा दो सौ पचास चारण आठ प्रकार चारणोंसे एकान्ततः पृथक् भी नहीं हैं ।

इन चारणजिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका — चारणोंकी आठ संख्याका नियम कैसे बनता है ?

समाधान — नहीं, अन्य चारणोंका इनमें अन्तर्भाव होनेसे उक्त संख्यानियम बन जाता है । वह इस प्रकारसे — कीचड़, भस्म, गोवर और भूसे आदि परसे गमन करनेवालोंका जंघाचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, भूमिसे कीचड़ आदिमें कथंचित् अभेद है । कुंथु जीव, मत्कुण और पिपीलिका आदि परसे संचार करनेवालोंका फलचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, इनमें त्रस जीवोंके परिहारकी कुशलताकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है । पत्र, अंकुर, तृण और प्रवाल आदि परसे संचार करनेवालोंका पुष्पचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, हरितकाय जीवोंके परिहारकी कुशलताकी अपेक्षा इनमें समानता है । ओस, ओला, कुहरा और बर्फ आदि पर गमन करनेवाले चारणोंका जलचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, इनमें जलकायिक जीवोंके परिहारकी कुशलताके प्रति समानता देखी जाती है । धूम, अग्नि, वायु और मेघ आदिके आश्रयसे चलनेवाले चारणोंका तन्तुश्रेणीचारणोंमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, वे अनुलोम और प्रतिलोम गमन करनेमें जीवोंको पीड़ा न करनेकी शक्तिसे संयुक्त हैं । इसी प्रकार अन्य चारणोंका भी इनमें ही अन्तर्भाव समझना चाहिये ।

प्रज्ञाश्रवणोंको नमस्कार हो ॥ ९ ॥

---

१ प्रतिपु ' एदमण्णेसिं ' इति पाठः ।

औत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा प्रज्ञा। तत्थ जम्मंतरे चउव्विहणिम्मलमदिबलेण विणएणावहारिददुबालसंगस्स देवेसुप्पज्जिय मणुस्सेसु अविणट्ठ-संसकारेणुप्पण्णस्स एत्थ भवम्मि पढण-सुणण-पुच्छणवावारविरहियस्स पण्णा अउप्पत्तिया णाम। उत्तं च—

विणएण सुदमधीदं[1] किह वि पमादेण होदि विस्सरिदं।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आहवदि॥ २२॥

एसो उप्पत्तिपण्णसमणो छम्मासोपवासगिलाणो वि तब्बुद्धिमाहप्पजाणावणट्ठं पुच्छा-वावदचोद्दसपुव्विस्स वि उत्तरवाहओ। विणएण दुवालसंगाइं पढंतस्सुप्पण्णा वेणइया णाम, परोवदेसेण जादपण्णा वा। तवच्चरणबलेण गुरूवदेसणिरपेक्खेणुप्पण्णपण्णा कम्मजा णाम, ओसहसेवाबलेणुप्पण्णपण्णा वा। सग-सगजादिविसेसेण समुप्पण्णपण्णा पारिणामिया णाम[2]।

औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी इस प्रकार प्रज्ञा चार प्रकार है। उनमें जन्मान्तरमें चार प्रकारकी निर्मल बुद्धिके बलसे विनयपूर्वक बारह अंगोंका अव-धारण करके देवोंमें उत्पन्न होकर पश्चात् अविनष्ट संस्कारके साथ मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर इस भवमें पढ़ने, सुनने व पूछने आदिके व्यापारसे रहित जीवकी प्रज्ञा औत्पत्तिकी कह-लाती है। कहा भी है—

विनयसे अधीत श्रुतज्ञान यदि किसी प्रकार प्रमादसे विस्मृत हो जाता है तो उसे [औत्पत्तिकी प्रज्ञा] पर भवमें उपस्थित करती है और केवलज्ञानको बुलाती है॥ २२॥

यह औत्पत्तिप्रज्ञाश्रमण छह मासके उपवाससे कृश होता हुआ भी उस बुद्धिके माहात्म्यको प्रकट करनेके लिये पूछने रूप क्रियामें प्रवृत्त हुए चौदहपूर्वीको भी उत्तर देता है। विनयसे बारह अंगोंको पढ़नेवालेके उत्पन्न हुई बुद्धिका नाम वैनयिक है। अथवा परोपदेशसे उत्पन्न बुद्धि भी वैनयिक कहलाती है। गुरुके उपदेशके विना तपश्चरणके बलसे उत्पन्न बुद्धि कर्मजा है। अथवा औषधसेवाके बलसे उत्पन्न बुद्धि भी कर्मजा है। अपनी अपनी जातिविशेषसे उत्पन्न बुद्धि पारिणामिका कही जाती है।

---

१ प्रतिषु '-मदीदं' इति पाठः।

२ पगडीए सुदणाणावरणाए वीरियंतरायाए। उक्कस्सक्खउवसमे उप्पज्जइ पण्णसमणद्धी॥ पण्णा-समणद्धिजुदो चोद्दसपुव्वीसु विसयसुहुमत्तं। सव्वं हि सुदं जाणदि अकअज्झअणो वि णियमेणं॥ भासंति तस्स बुद्धी पण्णासमणद्धि सा च चउभेदा। अउपत्तिअ-परिणामिय वइणइकी कम्मजा णेया॥ अउपत्तिकी भवंतरसुदविणएणं समुल्लसिदभावा। णिय-णियजादिविसेसे उप्पण्णा पारिणामिकी णामा॥ वइणइकी विणएणं उप्पज्जदि बारसंगसुद-जोग्गं। उवदेसेण विणा तवविसेसलाहेण कम्मजा तुरिमा॥ ति. प. ४, १०१७–१०२१.

उसहसेणादीणं तित्थयरवयणविणिग्गयबीजपदट्ठावहारयाणं पण्णाए कत्थंतब्भावो[1] ? पारिणामियाए, विणय-उप्पत्ति-कम्मेहि विणा उप्पत्तीदो। पारिणामिय-उप्पत्तियाणं को विसेसो ? जादिविसेसजणिदकम्मक्खओवसमुप्पण्णा पारिणामिया, जम्मंतरविणयजणिदसंसकारसमुप्पण्णा अउप्पत्तिया त्ति अत्थि विसेसो। एदेसु पण्णसमणेसु केसिं गहणं ? चदुण्हं पि गहणं। प्रज्ञा एव श्रवणं येषां ते प्रज्ञाश्रवणाः। तदो ण वेणइयपण्णसमणाणं गहणमिदि ? ण, अदिट्ठ-अस्सुदेसु अट्ठेसु णाणुप्पायणजोगत्तं पण्णा णाम, तिस्से सव्वत्थ उवलंभादो। गुरूवदेसेणावगमचोद्दसपुव्वे कहमस्सुदत्थावगमो ? ण, अणभिलप्पत्थविसयणाणुप्पायणसत्तीए तत्थाभावे सयलसुद-

....

शंका—तीर्थंकरके मुखसे निकले हुए बीजपदोंके अर्थका निश्चय करनेवाले वृषभसेनादि गणधरोंकी प्रज्ञाका कहां अन्तर्भाव होता है ?

समाधान—उसका पारिणामिक प्रज्ञामें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, वह विनय, उत्पत्ति और कर्मके विना उत्पन्न होती है।

शंका—पारिणामिक और औत्पत्तिक प्रज्ञामें क्या भेद है ?

समाधान—जातिविशेषमें उत्पन्न कर्मक्षयोपशमसे आविर्भूत हुई प्रज्ञा पारिणामिक है, और जन्मान्तरमें विनयजनित संस्कारसे उत्पन्न प्रज्ञा औत्पत्तिकी है; यह दोनोंमें भेद है।

शंका—इन प्रज्ञाश्रवणोंमें यहां किनका ग्रहण है ?

समाधान—चारों ही प्रज्ञाश्रमणोंका ग्रहण है, क्योंकि, 'प्रज्ञा ही है श्रवण जिनका वे प्रज्ञाश्रवण हैं' ऐसी निरुक्ति है ?

शंका—तो फिर वैनयिक प्रज्ञाश्रवणोंका ग्रहण नहीं हो सकेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अदृष्ट और अश्रुत अर्थोंमें ज्ञानोत्पादनकी योग्यताका नाम प्रज्ञा है, सो वह सर्वत्र पायी जाती है।

शंका—गुरुके उपदेशसे चौदह पूर्वोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले प्रज्ञाश्रवणके अश्रुत अर्थका ज्ञान कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उसमें अवक्तव्य पदार्थ विषयक ज्ञानके उत्पादनकी

....

१ प्रतिषु 'कथंतब्भावो' इति पाठः।

णाणुप्पत्तिविरोहादो । असंजदाणं ण पण्णसमणाणं गहणं, जिणसद्दाणुउत्तीदो । एदेसिं पण्ण-समणजिणाणं णमो । पण्णाए णाणस्स य को विसेसो ? णाणहेदुजीवसत्ती गुरूवएसणिरवेक्खा पण्णा णाम, तक्कारियं णाणं; तदो अत्थि भेदो ।

णमो आगासगामीणं ॥ १९ ॥

आगासे जहिच्छाए गच्छंता इच्छिदपदेसं माणुसुत्तरपव्वयावरुद्धं आगासगामिणो[1] त्ति घेत्तव्वा । देव-विज्जाहराणं ण गहणं, जिणसद्दाणुउत्तीदो । आगासचारणाणमागासगामीणं च को विसेसो ? उच्चदे — चरणं चारित्तं संजमो पावकिरियाणिरोहो त्ति एयट्ठो, तम्हि कुसलो णिउणो चारणो । तवविसेसेण जणिदआगासट्ठियजीव [-वध] परिहरणकुसलत्तणेण सहिदो

शक्तिका अभाव होनेपर समस्त श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका विरोध होगा ।

यहां असंयत प्रज्ञाश्रवणोंका ग्रहण नहीं है, क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्ति आती है । इन प्रज्ञाश्रवण जिनोंको नमस्कार हो ।

शंका — प्रज्ञा और ज्ञानके बीच क्या भेद है ?

समाधान — गुरूके उपदेशसे निरपेक्ष-ज्ञानकी हेतुभूत जीवकी शक्तिका नाम प्रज्ञा है, और उसका कार्य ज्ञान है; इस कारण दोनोंमें भेद है ।

आकाशगामी जिनोंको नमस्कार हो ॥ १९ ॥

आकाशमें इच्छानुसार मानुषोत्तर पर्वतसे घिरे हुए इच्छित प्रदेशमें गमन करने-वाले आकाशगामी हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये । यहां देव व विद्याधरोंका ग्रहण नहीं है, क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्ति है ।

शंका — आकाशचारण और आकाशगामीके क्या भेद है ?

समाधान — इसका उत्तर कहते हैं — चरण, चारित्र, संयम व पापक्रियानिरोध, इनका एक ही अर्थ है । इसमें जो कुशल अर्थात् निपुण है वह चारण कहलाता है । तप-विशेषसे उत्पन्न हुई आकाशस्थित जीवोंके [वधके] परिहारकी कुशलतासे जो सहित

१ दुविहा किरियारिद्धी णहयलगामित्त-चारणत्तेहिं । उड्ढीओ आसीणो काउस्सग्गेण इदरेणं ॥ गच्छेदि जीए एसा रिद्धी गयणगामिणी णाम। ति. प. ४, १०३३-१०३४. पर्यंकावस्था निषण्णा वा कायोत्सर्गसरीरा वा पादोद्धार-निक्षेपणविधिमंतरेणाकाशगमनकुशला आकाशगामिनः । त. रा. ३, ३६, २.

आगासचारणो[1]। आगासगमणमेत्तजुत्तो आगासगामी। आगासगामित्तादो जीववधपरिहरण-कुसलत्तणेण विसेसिदआगासगामित्तस्स विसेसुवलंभादो अत्थि विसेसो। एदेसिं तवोबलेण आगासगामीणं जिणाणं णमो त्ति उत्तं होदि।

णमो आसीविसाणं ॥ २० ॥

अविद्यमानस्यार्थस्य आशंसनमाशीः, आशीर्विषं एषां ते आशीर्विषाः। जेसिं जं पडि मरिहि त्ति वयणं णिप्पडिदं तं मारेदि, भिक्खं भमेत्ति वयणं भिक्खं भमावेदि, सीसं छिज्जउ त्ति वयणं सीसं छिंददि, ते आसीविसा[2] णाम समणा। कधं वयणस्स विससण्णा? विसमिव विसमिदि उवयारादो। आसी अविसममियं जेसिं ते आसीविसा। जेसिं वयणं थावर-जंगम-विसपूरिदजीवे पडुच्च 'णिव्विसा होंतु' त्ति णिस्सरिदं ते जीवावेदि, वाहिवेयण-दालिद्दादि-

हैं वह आकाशचारण है। आकाशमें गमन करने मात्रसे संयुक्त आकाशगामी कहलाता है। सामान्य आकाशगामित्वकी अपेक्षा जीवोंके वधपरिहारकी कुशलतासे विशेषित आकाश-गामित्वके विशेषता पायी जानेसे दोनोंमें भेद है। तपके बलसे आकाशमें गमन करने-वाले इन जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है।

आशीर्विष जिनोंको नमस्कार हो ॥ २० ॥

अविद्यमान अर्थकी इच्छाका नाम आशिष् है, आशिष् है विष जिनका वे आशी-र्विष कहे जाते हैं। 'मर जाओ' इस प्रकार जिसके प्रति निकला हुआ जिनका वचन उसे मारता है, 'भिक्षाके लिये भ्रमण करो' ऐसा वचन भिक्षार्थ भ्रमण कराता है, 'शिरका छेद हो' ऐसा वचन शिरको छेदता है, वे आशीर्विष नामक साधु हैं।

शंका—वचनके विष संज्ञा कैसे सम्भव है?

समाधान—विषके समान विष है, इस प्रकार उपचारसे वचनको विष संज्ञा प्राप्त है।

आशिष् है अविष अर्थात् अमृत जिनका वे आशीर्विष हैं। स्थावर अथवा जंगम विषसे पूर्ण जीवोंके प्रति 'निर्विष हों' इस प्रकार निकला हुआ जिनका वचन उन्हें

१ प्रतिषु 'आगासचारिणो' इति पाठः।

२ मर इदि भणिदे जीओ मरेइ सहस त्ति जीए सत्तीए। दुक्खरतवजुदमुणिणा आसीविसणामरिद्धी सा॥ ति. प. ४–१०७८. प्रकृष्टतपोबला यतयो यं ब्रुवते म्रियस्वेति स तत्क्षण एव महाविषपरीतो म्रियते ते आस्यविषाः। त. रा. ३, ३६, २. आसी दाढा तग्गय महाविसाऽऽसीविसा दुविहभेया। ते कम्म-जाइभेएण णेगहा चउव्विह-विकप्पा॥ प्रवचनसारोद्धार १५०१. विशे. भा. ७९४.

विलयं पडुच्च णिप्पडिदं संतं तं तं कज्जं करेदि ते वि आसीविसा[1] त्ति उत्तं होदि । तवोबलेण एवंविहसत्तिसंजुत्तवयणा होदूण जे जीवाणं णिग्गहाणुग्गहं ण कुणंति, ते आसीविसा त्ति घेत्तव्वा । कुदो ? जिणाणुउत्तीदो । ण च णिग्गहाणुग्गहेहि संदरिसिदरोस-तोसाणं जिणत्तमत्थि, विरोहादो । एदेसिं सुहासुहलद्धिसहियाणमासीविसाणं जिणाणं णिसुढिय महिवीढ[2]णिवदिदो किदियकम्मं करेमि त्ति उत्तं होदि ।

णमो दिट्ठिविसाणं ॥ २१ ॥

दृष्टिरिति चक्षुर्मनसोर्ग्रहणं, तत्रोभयत्र दृष्टिशब्दप्रवृत्तिदर्शनात् । तत्साहचर्यात्कर्म्मणोऽपि । रुट्ठो जदि जोएदि चिंतेदि किरियं करेदि वा ' मारेमि ' त्ति तो मारेदि, अण्णं पि असुहकम्मं संरंभपुव्वावलोयणेण कुणमाणो दिट्ठिविसो[3] णाम । एवं दिट्ठिअमियाणं[4] पि जाणि-

---

जिलाता है, व्याधिवेदना और दारिद्र्य आदिके विनाश हेतु निकला हुआ जिनका वचन उस उस कार्यको करता है, वे भी आशीर्विष हैं, यह सूत्रका अभिप्राय है। तपके प्रभावसे जो इस प्रकारकी शक्ति युक्त वचनोंसे संयुक्त हो करके जीवोंके निग्रह व अनुग्रहको नहीं करते हैं वे आशीर्विष हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि, जिन शब्दकी अनुवृत्ति है । और निग्रह व अनुग्रह द्वारा क्रमशः क्रोध व हर्षको दिखलानेवालोंके जिनत्व सम्भव नहीं है, क्योंकि, विरोध है । इन शुभ व अशुभ लब्धि सहित आशीर्विष जिनोंको नत होता हुआ पृथिवीतलपर गिरकर वन्दना करता हूं, यह कहनेका तात्पर्य है ।

दृष्टिविष जिनोंको नमस्कार हो ॥ २१ ॥

दृष्टि शब्दसे यहां चक्षु और मनका ग्रहण है, क्योंकि, उन दोनोंमें दृष्टि शब्दकी प्रवृत्ति देखी जाती है । उसकी सहचरतासे क्रियाका भी ग्रहण है । रुष्ट होकर वह यदि ' मारता हूं ' इस प्रकार देखता है, सोचता है व क्रिया करता है तो मारता है, तथा क्रोधपूर्वक अवलोकनसे अन्य भी अशुभ कार्यको करनेवाला दृष्टिविष कहलाता है ।

---

१ तित्तादिविविहमण्णं विसजुत्तं जीए वयणमेत्तेणं । पावेदि णिव्विसत्तं सा रिद्धी वयणणिव्विसा णामा ॥ अहवा बहुवाहीहिं परिभूदा झत्ति होंति णीरोगा । सोदुं वयणं जीए सा रिद्धी वयणणिव्विसा णामा ॥ ति. प. ४-१०७४-१०७५. उग्रविषसंपृक्तोऽप्याहारो येषामास्यगतो निर्विषीभवति यदीयास्यविनिर्गतवचःश्रवणाद्वा महाविषपरीता अपि निर्विषीभवंति ते आस्याविषाः । त. रा. ३, ३६, २.

२ प्रतिषु ' महीविद- ' इति पाठः ।

३ जीए जीओ दिट्ठो महासिणा रोसभरिदहिदएण । अहिदट्ठं व मरिज्जदि दिट्ठिविसा णाम सा रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०७९. उत्कृष्टतपसो यतयः क्रुद्धा यमीक्षन्ते स तदैवोग्रविषपरीतो म्रियते ते दृष्टिविषा । त. रा. ३, ३६, २.

४ रोग-विसेहिं पहदा दिट्ठीए जीए झत्ति पावंति । णीरोग-णिव्विसत्तं सा भणिदा दिट्ठिणिव्विसा रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०७६. येषामालोकनमात्रादेवातितीव्रविषदूषिता अपि संतः विगतविषा भवंति ते दृष्टिविषाः । त. रा. ३, ३६, २.

दूण लक्खणं वत्तव्वं । जिणाणमिदि अणुवट्टदे, अण्णहा दिट्ठिविसाणं सप्पाणं पि णमोक्कार-प्पसंगादो । एदेसिं सुहासुहलद्धिजुत्ताणं तोस-रोसुम्मुक्काणं छव्विहाणं पि दिट्ठिविसाणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

णमो उग्गतवाणं ॥ २२ ॥

उग्गतवा दुविहा उग्गुग्गतवा अवट्ठिदुग्गतवा चेदि । तत्थ जो एक्कोववासं काऊण पारिय दो उववासे करेदि, पुणरवि पारिय तिण्णि उववासे करेदि । एवमेगुत्तरवड्ढीए जाव जीविदंतं तिगुत्तिगुत्तो होदूण उववासे करेंतो[1] उग्गुग्गतवो[2] णाम । एदस्सुववास-पारणा-णयणे[3] सुत्तं—

> उत्तरगुणिते तु धने पुनरप्यष्टापितेऽत्र गुणगादिम् ।
> उत्तरविशेषतं वर्गितं च योज्यानयेन्मूलम् ॥ २३ ॥

इसी प्रकार दृष्टि-अमृतोंका भी लक्षण जानकर कहना चाहिये । 'जिनोंको' इसकी अनुवृत्ति आती है, क्योंकि, इसके विना दृष्टिविष सर्पोंको भी नमस्कार करनेका प्रसंग आता है । इन शुभ व अशुभ लब्धिसे युक्त तथा हर्ष व क्रोधसे रहित छह प्रकारके ही दृष्टिविष जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है ।

उग्रतप जिनोंको नमस्कार हो ॥ २२ ॥

उग्रतप ऋद्धि धारक दो प्रकार हैं— उग्रोग्रतप ऋद्धि धारक और अवस्थित उग्रतप ऋद्धि धारक । उनमें जो एक उपवासको करके पारणा कर दो उपवास करता है, पश्चात् फिर पारणा कर तीन उपवास करता है । इस प्रकार एक अधिक वृद्धिके साथ जीवन पर्यन्त तीन गुप्तियोंसे रक्षित होकर उपवास करनेवाला उग्रोग्रतप ऋद्धिका धारक है । इसके उपवास और पारणाओंको लानेके लिये सूत्र—

विशेषार्थ—इन तीन करणसूत्रोंका पाठ कुछ अशुद्ध प्रतीत होता है जिससे उनका ठीक अर्थ नहीं बैठाया जा सका । किन्तु उनमें जिस गणितकी विवक्षा है वह स्पष्ट

---

१ प्रतिषु 'करेंतवो' इति पाठः ।

२ उग्गतवा दो भेदा उग्गोग्ग-अवट्ठिदुग्गतवणामा ॥ दिक्खोववासमादिं कादूणं एक्काहिएक्कपचएणं । आमरणंतं जवणं सा होदि उग्गोग्गतवरिद्धी ॥ ति. प. १०५०–१०५१.

३ प्रतिषु 'पारणाणयणा' इति पाठः

आदिं त्रिगुणं मूलादपास्य शेषं चयेन हृतलब्धम् ।
सैकं दलितं च पदं शेषं तु धनं विनिर्दिष्टम् ॥ २४ ॥
मिश्रधने अष्टगुणो त्रिरूपवर्गेण संयुते मूलम् ।
मूलोर्द्धं च पदांशे शेषं तु धनं विनिर्दिष्टम् ॥ २५ ॥

एदेहि दोहि सुत्तेहि पदमाणिय धणम्मि सोहिदे उववासदिवसा । पदमेत्ताओ पारणाओ । एवं संते छम्मासेहिंतो वड्ढिमा[1] उववासा होंति । तदो णेदं घडदि त्ति ? ण एस दोसो, घादाउआणं मुणीणं छम्मासोववासणियमब्भुवगमादो, णाघादाउआणं, तसिमकाले

है । गोम्मटसार जीवकाण्डकी टीका (पृ. १२० आदि) में उल्लिखित करणसूत्रोंके अनुसार उपवास और पारणाके दिनोंकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती है—

मान लीजिये कि एक उग्रोग्र तपस्वी प्रतिपदासे प्रारम्भ कर एकोत्तर वृद्धि क्रमसे चतुर्दशी तक निम्न प्रकारसे उपवास (उ) व पारणा (पा) करता है—

१ २	३ ४ ५	६ ७ ८ ९	१० ११ १२ १३ १४
उ पा	उ उ पा	उ उ उ पा	उ उ उ उ पा
१	२	३	४

इसका सर्वधन या पदधन ' मुह-भूमिजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि ' इस सूत्रके अनुसार हुआ —

$\{ (२ + ५) \div २ \} \times ४ =$ १४ पद धन या सर्वधन ।

इसमें पदसंख्या अर्थात् कितने वार उपवास और पारणायें हुईं इसकी गणना ' आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे ' इस सूत्रके अनुसार हुई—

$(५ - २) \times १ + १ =$ ४ पद ।

अब धवलाकारके अनुसार धनमेंसे पदकी संख्या घटानेपर $१४ - ४ = १०$ उपवास दिवस हुए, और पदमात्र अर्थात् ४ पारणादिन ।

इन दो सूत्रोंसे पदको लाकर धनमेंसे कम करनेपर उपवासदिन होते हैं । पारणाएं पद प्रमाण होती हैं ।

शंका—ऐसा होनेपर छह मासोंसे अधिक उपवास हो जाते हैं । इस कारण यह घटित नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, घातायुष्क मुनियोंके छह मासोंके उपवासका नियम स्वीकार किया है, अघातायुष्क मुनियोंके नहीं; क्योंकि, उनका अकालमें

---

१ प्रतिषु ' वड्डमा ' इति पाठः ।

मरणाभावादो। अघादाउआ वि छम्मासोववासा चेव होंति, तदुवरि संकिलेसुप्पत्तीदो त्ति उत्ते होदु णाम एसो णियमो ससंकिलेसाणं सोवक्कमाउआणं च, ण संकिलेसविरहिदणिरुवक्कमाउआणं[1] तवोबलेणुप्पण्णविरियंतराइयक्खओवसमाणं तब्बलेणेव मंदीकयासादावेदणीओदयाणमेस णियमो, तत्थ तव्विरोहादो। एरिसी सत्ती महाणस्सुप्पज्जदि त्ति कधं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो। कुदो ? छम्मासेहिंतो उवरि उववासाभावे उग्गुग्गतवाणुववत्तीदो।

तत्थ दिक्खट्ठमेगोववासं काऊण पारिय पुणो एक्कहंतरेण गच्छंतस्स किंचिणिमित्तेण छट्ठोववासो जादो। पुणो तेण छट्ठोववासेण विहरंतस्स अट्ठमोववासो जादो। एवं दसमदुवालसादिक्कमेण हेट्ठा ण पदंतो जाव जीविदंतं जो विहरदि अवट्ठिदुग्गतवो णाम। एदं पि तवोविहाणं वीरियंतराइयक्खओवसमेण होदि। दोण्णं पि तवाणमुक्कट्ठफलं णिव्वुई, अवर-

....

मरण नहीं होता।

शंका—अघातायुष्क भी छह मास तक उपवास करनेवाले ही होते हैं, क्योंकि, इसके आगे संक्लेश भाव उत्पन्न हो जाता है ?

समाधान—इसके उत्तरमें कहते हैं कि संक्लेश सहित और सोपक्रमायुष्क मुनियोंके लिये यह नियम भले ही हो, किन्तु संक्लेश भावसे रहित निरुपक्रमायुष्क और तपके बलसे उत्पन्न हुए वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे संयुक्त तथा उसके बलसे ही असातावेदनीयके उदयको मन्द कर चुकनेवाले साधुओंके लिये यह नियम नहीं है, क्योंकि, उनमें इसका विरोध है।

शंका—ऐसी शक्ति किसी महाजन अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषके उत्पन्न होती है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे ही यह जाना जाता है, क्योंकि, छह मासोंसे ऊपर उववासका अभाव माननेपर उग्रोग्र तप बन नहीं सकता।

दीक्षाके लिये एक उपवास करके पारणा करे, पश्चात् एक दिनके अन्तरसे ऐसा करते हुए किसी निमित्तसे षष्ठोपवास हो गया। फिर उस षष्ठोपवाससे विहार करनेवालेके अष्टमोपवास हो गया। इस प्रकार दशम-द्वादशम आदिके क्रमसे नीचे न गिरकर जो जीवन पर्यंत विहार करता है वह अवस्थित-उग्रतप ऋद्धिका धारक कहा जाता है। यह भी तपका अनुष्ठान वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे होता है। इन दोनों ही तपोंका उत्कृष्ट

....

१ प्रतिषु 'विरहिणिरुवक्कमाउआणं' इति पाठः।

मणुक्कट्ठफलं। एदेसिमुग्गतवाणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि।

णमो दित्ततवाणं ॥ २३ ॥

दीप्तिहेतुत्वाद्दीप्तं तपः। दीप्तं तपो येषां ते दीप्ततपसः। चउत्थ-छट्ठमादि-उववासेसु कीरमाणेसु जेसिं तवजणिदलद्धिमाहप्पेण सरीरतेजो पडिदिणं[1] वड्ढदि धवलपक्खचंदस्सेव ते रिसओ दित्ततवा[2]। तेसिं ण केवलं दित्ती चेव वड्ढदि, किंतु बलो वि वड्ढदि; सरीरबल-मांस-रुहिरोवचएहि विणा सरीरदीत्तिवुड्ढीए अणुववत्तीदो। तेण ण तेसिं भुत्ती वि, तक्कारणाभावादो। ण च भुक्खादुक्खुवसमणट्ठं भुंजंति, तदभावादो। तदभावो कुदो वग्गम्मदे ? दित्ति-बल-सरीरोवचयादो। तेसिं दित्ततवाणं मण-वयण-काएहिं णमो।

णमो तत्ततवाणं ॥ २४ ॥

फल मोक्ष है, अन्य अनुत्कृष्ट फल है। इन उग्रतप ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है।

दीप्ततप ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २३ ॥

दीप्तिका कारण होनेसे तप दीप्त कहा जाता है। दीप्त है तप जिनका वे दीप्ततप हैं। चतुर्थ व छट्ठम आदि उपवासोंके करनेपर जिनका शरीरतेज तप जनित लब्धिके माहात्म्यसे प्रतिदिन शुक्ल पक्षके चन्द्रके समान बढ़ता जाता है, वे ऋषि दीप्ततप कहलाते हैं। उनकी केवल दीप्ति ही नहीं बढ़ती है, किन्तु बल भी बढ़ता है, क्योंकि, शरीरबल, मांस और रुधिरकी वृद्धिके विना शरीरदीप्तिकी वृद्धि हो नहीं सकती। इसीलिये उनके आहार भी नहीं होता, क्योंकि, उसके कारणोंका अभाव है। यदि कहा जाय कि भूखके दुखको शान्त करनेके लिये वे भोजन करते हैं, सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि, उनके भूखके दुखका अभाव है।

शंका—उसका अभाव कहांसे जाना जाता है ?

समाधान—दीप्ति, बल और शरीरकी वृद्धिसे वह जाना जाता है।

उन दीप्ततप ऋद्धिधारकोंको मन, वचन और कायसे नमस्कार हो।

तप्ततप ऋद्धिधारकोंको नमस्कार हो ॥ २४ ॥

---

१ प्रतिषु 'पदार्दाणं' इति पाठः।

२ बहुविहउववासेहिं रविसमवड्ढंतकायकिरणोघो। काय-मण-वयणबलिणो जीए सा दित्ततवरिद्धी ॥ ति. प. ४–१०५२. महोपवासकरणेऽपि प्रवर्धमानकाय-वाङ्मानसबलाः विगन्धरहितवदनाः पद्मोत्पलादिसुरभिनिश्वासाः अप्रच्युतमहादीप्तिशरीराः दीप्ततपसः। त. रा. ३, ३६, २.

तप्तं दग्धं विनाशितं मूत्र-पुरीष-शुक्रादि येन तपसा तदुपचारेण तप्ततपः । जेसिं भुत्तचउव्विहाहारस्स तत्त[1]लोहपिंडागरिसिदपाणियस्सेव णीहारो णत्थि ते तत्ततवा[2] । एदाए रिद्धीए सहियाणं जिणाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

णमो महातवाणं ॥ २५ ॥

अणिमादिअट्ठगुणोवेदो जलचारणादिअट्ठविहचारणगुणालंकरियो फुरंतसरीरप्पहो दुविह-अक्खीणलद्धिजुत्तो सव्वोसहिसरूवो पाणिपत्तणिवदिदसव्वाहारे अमियसादसरूवेण पल्लट्टावण-समत्थो सयलिंदेहिंतो वि अणंतबलो आसी-दिट्ठिविसलद्धिसमण्णिओ तत्ततवो सयलविज्जाहरो मदि-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणेहि मुणिदतिहुवणवावारो मुणी महातवो[3] णाम । कस्मात् ? महत्त्वहेतुस्तपोविशेषो महानुच्यते उपचारेण, स येषां ते महातपसः इति सिद्धत्वात् । अथवा

जिस तपके द्वारा मूत्र, मल और शुक्रादि तप्त अर्थात् दग्ध व विनष्ट कर दिया जाता है वह उपचारसे तप्ततप है । जिनके ग्रहण किये हुए चार प्रकारके आहारका तपे हुए लोहपिण्ड द्वारा आकृष्ट पानीके समान नीहार नहीं होता वे तप्ततप ऋद्धिके धारक हैं । इस ऋद्धिसे सहित जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है ।

महातप ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २५ ॥

जो अणिमादि आठ गुणोंसे सहित हैं, जलचारणादि आठ प्रकारके चारणगुणोंसे अलंकृत है, प्रकाशमान शरीरप्रभासे संयुक्त है, दो प्रकारकी अक्षीण ऋद्धिसे युक्त है, सर्वौषधि स्वरूप है, पाणिपात्रमें गिरे हुए सब आहारोंको अमृतस्वरूपसे पलटानेमें समर्थ है, समस्त इन्द्रोंसे भी अनन्तगुणे बलका धारक है, आशीविष और दृष्टिविष लब्धियोंसे समन्वित है, तप्ततप ऋद्धिसे संयुक्त है, समस्त विद्याओंका धारक है; तथा मति, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञानोंसे तीनों लोकके व्यापारको जाननेवाला है, वह मुनि महातप ऋद्धिका धारक है । कारण कि महत्वके हेतुभूत तपविशेषको उपचारसे महान् कहा जाता है । वह जिनके होता है वे महातप ऋषि हैं, ऐसा सिद्ध है । अथवा,

---

१ प्रतिषु ' तत्थ ' इति पाठः ।

२ तत्ते लोहकडाहे पडिअंबुकणं व जीए भुत्तण्णं । झिज्जदि धाऊहिं सा णियझाणाएहिं तत्ततवा ॥ ति. प. ४-१०५३. तप्तायसकटाहपतितजलकणवदाशुशुष्काल्पाहारतया मल-रुधिरादिभावपरिणामविरहिताभ्यवहाराः तप्ततपसः । त. रा. ३, ३६, २.

३ मंदरपंतिप्पमुहे महोववासे करेदि सव्वे वि । चउसण्णाणबलेणं जीए सा महातवा रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०५४. सिंहनिःक्रीडितादिमहोपवासानुष्ठानपरायणयतयो महातपसः । त. रा. ३, ३६, २.

महसां हेतुः तप उपचारेण महा इति भवति । सेसं सुगमं । एदेसिं महातवाणं मण-वयण-कायेहि णमोक्कारं करेमि ।

णमो घोरतवाणं ॥ २६ ॥

उववासेसु छम्मासोववासो, ओमोदरियासु एक्ककवलो, उत्तिपरिसंखासु चच्चरे गोयराभिग्गहो, रसपरिच्चागेसु उण्हजलजुदोयण[1]भोयणं, विवित्तसयणासणेसु वय-वग्घ-तरच्छ-छवल्लादिसावयसेवियासु सज्झ-विज्झुडईसु णिवासो, कायकिलेसेसु तिव्वहिमवासादिणिवदंतविसएसु अब्भोकास[2]रुक्खमूलादावणजोगग्गहणं । एवमब्भंतरतवेसु वि उक्कट्ठतवपरूवणा कायव्वा । एसो बारहविहो वि तवो कायरजणाणं सज्झसजणणो त्ति घोरत्तवो । सो जेसिं ते घोरत्तवा । बारसव्विहत्तउक्कट्ठवट्ठाए वट्टमाणा घोरतवा[3] त्ति भणिदं होदि । एसा वि तव-जणिदरिद्धी चेव, अण्णहा एवंविहाचरणाणुववत्तीदो । एदेसिं घोरतवाणं णमो इदि उत्तं होदि ।

महस् अर्थात् तेजोंका हेतुभूत जो तप है वह उपचारसे 'महा' होता है । शेष सुगम है । इन महातप ऋद्धिधारकोंको मन, वचन व कायसे नमस्कार करता हूं ।

घोरतप ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २६ ॥

उपवासोंमें छह मासका उपवास, अवमोदर्य तपोंमें एक ग्रास, वृत्तिपरिसंख्याओंमें चत्वर अर्थात् चौराहेमें भिक्षाकी प्रतिज्ञा, रसपरित्यागोंमें उष्ण जल युक्त ओदनका भोजन; विविक्तशय्यासनोंमें वृक, व्याघ्र, तरक्ष, छवल्ल आदि श्वापद अर्थात् हिंस्र जीवोंसे सेवित सह्य, विन्ध्य आदि अटवियोंमें निवास, कायक्लेशोंमें तीव्र हिमालय आदिके अन्तर्गत देशोंमें खुले आकाशके नीचे अथवा वृक्षमूलमें आतापन योग अर्थात् ध्यान ग्रहण करना । इसी प्रकार अभ्यन्तर तपोंमें भी उत्कृष्ट तपकी प्ररूपणा करना चाहिये । यह बारह प्रकार ही तप कायर जनोंको भयोत्पादक है, इसी कारण घोर तप कहलाता है । वह तप जिनके होता है वे घोर तप ऋद्धिके धारक हैं । बारह प्रकारके तपोंकी उत्कृष्ट अवस्थामें वर्तमान साधु घोरतप कहलाते हैं, यह तात्पर्य है । यह भी तपजनित ऋद्धि ही है, क्योंकि, विना तपके इस प्रकारका आचरण बन नहीं सकता । इन घोरतप ऋषीश्वरोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है ।

---

१ प्रतिषु '-वुदोयण' इति पाठः । २ प्रतिषु 'अब्भोवास-' इति पाठः ।

३ जलसूलप्पमुहाणं रोगेणच्चंतपीडिअंगा वि । साहंति दुद्धरतवं जीए सा घोरतवरिद्धी ॥ ति. प. ४-१०५५. वात-पित्त-श्लेष्म-सन्निपातसमुद्भूतज्वर-कास-श्वासाक्षि-शूल-कुष्ठ-प्रमेहादिविविधरोगसंतापितदेहा अप्य-प्रच्युतानशन-कायक्लेशादितपसो भीमश्मशानाद्रिमस्तकगुहा-दरी-कंदर-शून्यग्रामादिषु प्रदुष्टयक्ष-राक्षस-पिशाचप्रवृत्तवेताल-रूपविकारेषु परुषशिवारुतानुपरसिंह-व्याघ्रादि-व्याल मृगभीषणस्वन-घोरचौरादिप्रचरितेष्वभिरुचितावासाश्च घोरतपसः । त. रा. ३, ३६, २.

णमो घोरपरक्कमाणं[1] ॥ २७ ॥

तिहुवणुवसंहरण-महीवीढंगसण-सयलसायरजलसोसण–जलग्गिसिलापव्वदादिवरिसण-सत्ती घोरपरक्कमो णाम । घोरो परक्कमो जेसिं जिणाणं ते घोरपरक्कमा[2] । तेसिं णमो इदि भणिदं होदि । ण कूरकम्माणं असुराणं णमोक्कारो पसज्जदे, जिणाणुवत्तीदो ।

णमो घोरगुणाणं ॥ २८ ॥

घोरा रउद्दा गुणा जेसिं ते घोरगुणा । कधं चउरासीदिलक्खगुणाणं घोरत्तं ? घोर-कज्जकारिसत्तिजणणादो । तेसिं घोरगुणाणं णमो इदि उत्तं होदि । णादिप्पसंगो, जिणाणु-वुत्तीदो । ण गुण-परक्कमाणमेयत्तं, गुणजणिदसत्तीए परक्कमववएसादो ।

घोरपराक्रम ऋद्धि धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २७ ॥

तीनों लोकोंका उपसंहार करने, पृथिवीतलको निगलने, समस्त समुद्रके जलको सुखाने; तथा जल, अग्नि एवं शिलापर्वतादिके वरसानेकी शक्तिका नाम घोरपराक्रम है। घोर है पराक्रम जिन जिनोंका वे घोरपराक्रम कहलाते हैं। उनको नमस्कार हो, यह अभिप्राय है। यहां जिन शब्दकी अनुवृत्ति आनेसे क्रूर कर्म करनेवाले असुरोंको नमस्कार करनेका प्रसंग नहीं आता।

घोरगुण जिनोंको नमस्कार हो ॥ २८ ॥

घोर अर्थात् रौद्र हैं गुण जिनके वे घोरगुण कहे जाते हैं।

शंका—चौरासी लाख गुणोंके घोरत्व कैसे सम्भव है ?

समाधान—घोर कार्यकारी शक्तिको उत्पन्न करनेके कारण उनके घोरत्व सम्भव है।

उन घोरगुण जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है। जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे यहां अतिप्रसंग भी नहीं आता। गुण और पराक्रमके एकत्व नहीं है, क्योंकि, गुणसे उत्पन्न हुई शक्तिकी पराक्रम संज्ञा है।

१ आप्रतौ ' -पडिक्कमाणं ', काप्रतौ ' परिक्कमाणं ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' महीविद ' इति पाठः ।

३ णिरुवमवड्ढंततवा तिहुवणसंहरणकरणसत्तिजुदा । कंटय-सिलग्गि-पव्वय-धूमुक्कापहुदिवरिसणसमत्था ॥ सहस त्ति सयलसायरसलिलुप्पीलस्स सोसणसमत्था । जायंति जीए मुणिणो घोरपरक्कमतव त्ति सा रिद्धी ॥ ति. प. ४, १०५६–१०५७. त एव गृहीततपोयोगवर्धनपरा घोरपराक्रमाः । त. रा. ३, ३६, २.

णमो घोरगुणबंभचारीणं ॥ २९ ॥

ब्रह्म चारित्रं पंचव्रत-समिति-त्रिगुप्त्यात्मकम्, शान्तिपुष्टिहेतुत्वात्। अघोरा शान्ता गुणा यस्मिन् तदघोरगुणं, अघोरगुणं ब्रह्म चरन्तीति अघोरगुणब्रह्मचारिणः। जेसिं तवोमाहप्पेण डमरादि-मारि-दुब्भिक्ख-वइर-कलह-बध-बंधण-रोहादिपसमणसत्ती समुप्पण्णा ते अघोरगुण-बम्हचारिणो[3] त्ति उत्तं होदि। तेसिं अघोरगुणबंभयारीणं णमो इदि उत्तं होदि। एत्थ अकारो किण्ण सुणिज्जदे? संधिणिद्देसादो। दिट्ठिअमियाणमघोरबंभयारीणं च को विसेसो? उव-जोगसहेज्जदिट्ठीए ट्ठिदलद्धिजुत्ता दिट्ठिविसा णाम। अघोरबंभयारीणं पुण लद्धी असंखेज्जा सव्वंगगया, एदेसिमंगलग्गवादे वि सयलोवद्दवविणासणसत्तिदंसणादो। तदो अत्थि भेदो।

अघोरगुणब्रह्मचारी जिनोंको नमस्कार हो ॥ २९ ॥

ब्रह्मका अर्थ पांच व्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति स्वरूप चारित्र है, क्योंकि, वह शान्तिके पोषणका हेतु है। अघोर अर्थात् शान्त हैं गुण जिसमें वह अघोरगुण है, अघोरगुण ब्रह्मका आचरण करनेवाले अघोरगुणब्रह्मचारी कहलाते हैं। जिनके तपके प्रभावसे डमरादि (राष्ट्रीय उपद्रव आदि), रोग, दुर्भिक्ष, वैर, कलह, वध, बन्धन और रोध आदिको नष्ट करनेकी शक्ति उत्पन्न हुई है वे अघोरगुणब्रह्मचारी हैं, यह तात्पर्य है। उन अघोरगुण-ब्रह्मचारी जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अभिप्राय है।

शंका — 'णमो घोरगुणबंभचारीणं' इस सूत्रमें अघोर शब्दका अकार क्यों नहीं सुना जाता?

समाधान — सन्धियुक्त निर्देश होनेसे उक्त अकारका यहां श्रवण नहीं होता।

शंका — दृष्टि-अमृत और अघोरब्रह्मचारीके क्या भेद है?

समाधान — उपयोगकी सहायता युक्त दृष्टिमें स्थित लब्धिसे संयुक्त दृष्टिविष कहलाते हैं। किन्तु अघोरब्रह्मचारियोंकी लब्धियां सर्वांगगत असंख्यात हैं। इनके शरीरसे स्पृष्ट वायुमें भी समस्त उपद्रवोंको नष्ट करनेकी शक्ति देखी जाती है। इस कारण दोनोंमें भेद है।

---

१ अ-काप्रत्योः 'बम्हचारीणं' इति पाठः। २ प्रतिषु 'दमरिदि', मप्रतौ 'दमरीदि' इति पाठः।

३ जीए ण होंति मुणिणो खेत्तम्मि वि चोरपहुदिबाधाओ। काल-महाजुद्धादी रिद्धी साघोरबम्हचारित्ता ॥ उक्कस्सक्खउवसमे चारित्तावरणमोहकम्मस्स। जा दुस्सिमणं णासइ रिद्धी साघोरबम्हचारित्ता ॥ अहवा— सव्वगुणेहिं अघोरं महेसिणो बम्हसद्दचारित्तं। विप्फुरिदाए जीए रिद्धी साघोरबम्हचारित्ता ॥ ति. प. ४, १०५८-१०६०. चिरोषितास्खलितब्रह्मचर्यवासाः प्रकृष्टचारित्रमोहनीयक्षयोपशमात् प्रणष्टदुःस्वप्नाः घोरब्रह्मचारिणः। त. रा. ३, ३६, ६.

णवरि असुहलद्धीणं पउत्ती लद्धिमंताणमिच्छावसवट्टणी। सुहाणं लद्धीणं पउत्ती पुण दोहि वि पयोरेहि संभवदि, तदिच्छाए विणा वि पउत्तिदंसणादो।

णमो आमोसहिपत्ताणं ॥ ३० ॥

आमर्षः औषधत्वं प्राप्तो येषां ते आमर्षौषधप्राप्ताः। सुत्ते सकारो किण्ण सुणिज्जदि? 'आई-मज्झंतवण्ण-सरलोवो'[1] त्ति लक्खणादो। ओसहि त्ति इकारो कत्तो? 'एए छच्च समाणा'[2] त्ति

विशेष इतना है कि अशुभ लब्धियोंकी प्रवृत्ति लब्धियुक्त जीवोंकी इच्छाके वशसे होती है। किन्तु शुभ लब्धियोंकी प्रवृत्ति दोनों ही प्रकारोंसे सम्भव है, क्योंकि, उनकी इच्छाके विना भी उक्त लब्धियोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है।

आमर्षौषधिप्राप्त ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३० ॥

जिनका आमर्ष अर्थात् स्पर्श औषधपनेको प्राप्त है वे आमर्षौषध प्राप्त हैं।

शंका — सूत्रमें सकार क्यों नहीं सुना जाता है?

समाधान — '[प्राकृतमें] किन्हीं पदोंके आदि, मध्य व अन्तके वर्ण और स्वरका लोप कर दिया जाता है' इस व्याकरणके नियमसे सकारका लोप हो गया, अतः वह नहीं सुना जाता।

शंका — 'औषधि' में इकार कहांसे आया?

समाधान — 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ये छह समान स्वर [तथा ए और ओ ये दो सन्ध्यक्षर, ये आठों स्वर विना विरोधके एक दूसरेके स्थानमें आदेशको प्राप्त होते हैं]। इस व्याकरणके नियमसे 'औषधि' यहां इकार किया गया है।

विशेषार्थ — यद्यपि संस्कृतमें 'औषधि' और 'औषध' दोनों शब्द हैं, तथापि यहां केवल औषधिसमूह रूप 'औषध' शब्दसे अभिप्राय होनेके कारण उक्त प्रकार समाधान किया गया है।

१ कीरइ पयाण काण वि आई-मज्झंतवण्णसरलोवो — जयध. भाग १, पृ. ३२६.

२ एए छच्च समाणा दोण्णि अ संज्झक्खरा सरा अट्ठ। अण्णोण्णस्सविरोहा उवेंति सव्वे समाएसं ॥ (जयध. १, पृ. ३२६).

लक्खणादो। तवोमाहप्पेण जेसिं फासो सयलोसहसरूवत्तं पत्तो तेसिमामोसहिपत्ता[1] त्ति सण्णा। एवंविहाणमोसहिपत्ताणं णमो इदि भणिदं होदि। ण च एदेसिमघोरगुणबंभयारीणं अंतब्भावो, एदेसिं वाहिविणासणे चेव सत्तिदंसणादो।

णमो खेलोसहिपत्ताणं ॥ ३१ ॥

सेंभ-लाली[2]-सिंघाण-विप्पुसादीणं खेलो त्ति सण्णा। एसो खेलो ओसहित्तं पत्तो जेसिं ते खेलोसहिपत्ता[3]। तेसिं खेलोसहिपत्ताणं जिणाणं णमो।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं ॥ ३२ ॥

जल्लो अंगमलो बाहिरो। सो ओसहित्तं पत्तो जेसिं तवोबलेण ते जल्लोसहि-

....

तपके प्रभावसे जिनका स्पर्श समस्त औषधोंके स्वरूपको प्राप्त हो गया है उनकी आमर्शौषधिप्राप्त ऐसी संज्ञा है। इस प्रकारके औषधिप्राप्त ऋषियोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है। इनका अघोरगुणब्रह्मचारियोंमें अन्तर्भाव नहीं होता, क्योंकि, इनके केवल व्याधिके नष्ट करनेमें ही शक्ति देखी जाती है।

खेलौषधिप्राप्त ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३१ ॥

श्लेष्म, लार, सिंहाण अर्थात् नासिकामल और विप्रुष् आदिकी खेल संज्ञा है। जिनका यह खेल औषधित्वको प्राप्त हो गया है वे खेलौषधिप्राप्त ऋषि हैं। उन खेलौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

जल्लौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३२ ॥

बाह्य अंगमल जल्ल कहलाता है। वह तपके प्रभावसे जिनके औषधिपनेके प्राप्त

....

१ रिसिकर-चरणादीणं अल्लियमेत्तम्मि जीए पासम्मि। जीवा होंति णिरोगा साअम्मरिसोसही रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०६८. आमर्शनः संस्पर्शः, यदीयहस्त-पादाद्यामर्श औषधिप्राप्तो येस्ते आमर्शौषधिप्राप्ताः। त. रा. ३, ३६, २. संफरिसणमामोसो— संस्पर्शनमामर्शः, स एवौषधिर्यस्यासावामर्शौषधिः। करादिसंस्पर्शमात्रादेव त्रिविधव्याधिव्यपनयनसमर्थो लब्धि-लब्धिमतोरभेदोपचारात् साधुरेवामर्शौषधिरित्यर्थः। इदमत्र तात्पर्यम्— यत्प्रभावात् स्वहस्त-पाद्याद्यवयवपरामर्शमात्रेणैवात्मनः परस्य वा सर्वेऽपि रोगाः प्रणश्यन्ति सा आमर्शौषधिः। प्रवचनसारोद्धार १४९६ (वृत्ति). २ प्रतिषु 'लालि' इति पाठः।

३ जीए लाला-सेमच्छीमल-सिंहाणआदिआ सिग्घं। जीवाण रोगहरणा स च्चिय खेलोसही रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०६९. क्ष्वेलो निष्ठीवनमौषधिर्येषां ते क्ष्वेलौषधिप्राप्ताः। त. रा. ३, ३६, २. खेलः श्लेष्मा, जल्लो मलः कर्ण-वदन-नासिका-नयन-जिह्वा-समुद्भवः शरीरसम्भवश्च, तौ खेल-जल्लौ यत्प्रभावतः सर्वरोगापहारकौ सुरभी च भवतः सा क्रमेण खेलौषधिर्जल्लौषधिश्च। प्रवचनसारोद्धार १४९६ (वृत्ति).

पत्ता[1]। [तेसिं जल्लोसहिपत्ता-] णं जिणाणं णमो।

णमो विट्ठोसहिपत्ताणं ॥ ३३ ॥

विट्ठसद्दो जेण देसामासिओ तेण मुत्त-विट्ठा-सुत्ताणं गहणं। एदे ओसहित्तं पत्ता जेसिं ते विट्ठोसहिपत्ता[2], तेसिं विट्ठोसहिपत्ताणं जिणाणं णमो।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं ॥ ३४ ॥

रस-रुहिर-मांस-मेदट्ठि-मज्ज-सुक्क-पुप्फस-खरीस-कालेज्ज-मुत्त-पित्तंतुच्चारादओ सव्वे ओसहित्तं पत्ता जेसिं ते सव्वोसहिपत्ता[3]। तेसिं सव्वोसहिपत्ताणं णमो। एत्थ जेत्तियाओ

हो गया है वे जल्लौषधिप्राप्त जिन हैं। उन जल्लौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

विष्ठौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३३ ॥

विष्ठा शब्द चूंकि देशामर्शक है, अतएव उससे मूत्र, मल व स्रुत अर्थात् शरीरके क्षरितका ग्रहण है। ये जिनके औषधित्वको प्राप्त हो गये हैं वे विष्ठौषधिप्राप्त जिन हैं। उन विष्ठौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

सर्वौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३४ ॥

रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र, फुप्फुस, खरीष, कालेय, मूत्र, पित्त, अंतड़ी, उच्चार अर्थात् मल आदिक सब जिनके औषधिपनेको प्राप्त हो गये हैं वे सर्वौषधिप्राप्त जिन हैं। उन सर्वौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो। यहां लोकमें जितनी

---

१ सेयजलो अंगरयं जल्लं भण्णेत्ति जीए तेणावि। जीवाण रोगहरणं रिद्धी जल्लोसही णामा ॥ ति. प. ४-१०७०. स्वेदालंबनो रजोनिचयो जल्लः, स औषधिं प्राप्तो येषां ते जल्लौषधिप्राप्ताः। त. रा. ३, ३६, २.

२ मुत्त पुरीसो वि पुढं दारुणबहुजीवघायसंहरणा। जीए महामुणीणं विप्पोसहि णाम सा रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०७२. विडुच्चार औषधिर्येषां ते विडौषधिप्राप्ताः। त. रा. ३, ३६, २. मुत्त-पुरीसाण विप्पुसो वावि (अवयवा)। अन्ने विडित्ति विट्ठा भासंति पइत्ति पासवणं ॥ 'मुत्त-पुरीसाण विप्पुसो वावि' (अवयवा) त्ति मूत्र पुरीषयो-र्विप्रुषः— अवयवाः इह विप्रुडुच्यते, 'विप्पुसो वावि' त्ति पाठस्तु ग्रन्थान्तरेऽदृष्टत्वादुपेक्षितः, अथ चावश्यंम-तद्व्याख्यानेन प्रयोजनं तदेत्थं व्याख्येयम्— वा शब्दः समुच्चये, अपि शब्द एवकारार्थो भिन्नक्रमश्च, ततो मूत्र-पुरीषयोरेवावयवा इह विप्रुडुच्यते इति। अन्ये तु भाषन्ते — विडिति विष्ठा, पत्ति प्रश्रवणं मूत्रम्, 'मूत्रकल्वा-मूत्रस्यं-ति × × × यन्माहात्म्यान्मूत्र-पुरीषावयवमात्रमपि रोगराशिप्रणाशाय संपद्यते सुरभि च सा विप्रुडौषधिः। प्रवचन-सारोद्धार १४९६ (वृत्ति).

३ जीए पस्सजलाणिल-रोम-णहादीणि वाहिहरणाणि। दुक्करतवजुत्ताणं रिद्धी सव्वोसही णामा ॥ ति. प. ४-१०७३. अंग-प्रत्यंग-नख-दन्त-केशादिरवयवः तत्संस्पर्शी वाय्वादिस्सर्वः औषधिप्राप्तो येषां ते सर्वौषधिप्राप्ताः। त. रा. ३, ३६, २. तथा यन्माहात्म्यतो विण्मूत्र-केश-नखादयश्च सर्वेऽवयवाः समुदिताः सर्वत्र भेषजीभावं सौरभं च भजन्ते सा सर्वौषधिरिति। प्रवचनसारोद्धारवृत्ति १४९६-१४९७.

वाहीओ लोए अत्थि ताओ सव्वाओ ठवेदूण आमास-खेल-जल्ल-विट्ठ-सव्वोसहीणमेगसंजोगादि-भंगा णाणाकालजिणे[1] अस्सिदूण परूवेदव्वा, विचित्तचरित्तेण लद्धीणं वइचित्तियाविरोहादो ।

णमो मणबलीणं ॥ ३५ ॥

बारहंगुद्दिट्ठतिकालगोयराणंतट्ठ-वंजण-पज्जायाइण्णछद्दव्वाणि णिरंतरं चिंतिदे[2] वि खेया-भावो मणबलो । एसो मणबलो जेसिमत्थि ते मणबलिणो[3] । एसो वि मणबलो लद्धी, विसिट्ठ-तवोबलेणुप्पज्जमाणत्तादो । कधमण्णहा बारहंगट्ठो मुहुत्तेणेक्केण बहूहि वासेहि बुद्धिगोयरमा-वण्णो चित्तखेयं ण कुणेज्ज ? तेसिं मणबलीणं णमो ।

णमो वचिबलीणं ॥ ३६ ॥

बारसंगाणं बहुवारं पडिवाडिं काऊण वि जो खेयं ण गच्छइ सो वचिबलो,

---

व्याधियां हैं उन सबको स्थापित कर आमर्षौषधि, खेलौषधि, जल्लौषधि, विष्टौषधि और सर्वौषधिके एकसंयोगादि रूप भंगोंकी नाना काल सम्बन्धी जिनोंका आश्रय करके प्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, विचित्र चरित्रसे लब्धियोंकी विचित्रतामें कोई विरोध नहीं है ।

मनबल ऋद्धि युक्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३५ ॥

बारह अंगोंमें निर्दिष्ट त्रिकालविषयक अनन्त अर्थ व व्यञ्जन पर्यायोंसे व्याप्त छह द्रव्योंका निरन्तर चिन्तन करनेपर भी खेदको प्राप्त न होना मनबल है । यह मनबल जिनके है वे मनबली कहलाते हैं । यह मनबल भी लब्धि है, क्योंकि, वह विशिष्ट तपके प्रभावसे उत्पन्न होता है । अन्यथा बहुत वर्षोंमें बुद्धिगोचर होनेवाला बारह अंगोंका अर्थ एक मुहूर्तमें चित्तखेदको कैसे न करेगा ? अर्थात् करेगा ही । उन मनबली ऋषियोंको नमस्कार हो ।

वचनबली ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३६ ॥

बारह अंगोंका बहुत वार प्रतिवाचन करके भी जो खेदको नहीं प्राप्त होता है,

---

१ प्रतिषु ' जिणो ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' णिरं चिंतिद ' इति पाठः ।

३ बलरिद्धी तिविहप्पा मण-वयण-सरीरयाण भेएण । सुदणाणावरणाए पगडीए वीरयंतरायाए ॥ उक्कस्स-क्खउवसमे मुहुत्तमेत्तंतरम्मि सयलसुदं । चिंतइ जाणइ जीए सा रिद्धी मणबला णामा । ति. प. ४, १०६०–१०६१. तत्र मनःश्रुतावरण-वीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षे सत्यन्तर्मुहूर्ते सकलश्रुतार्थचिन्तनेऽवदाता मनोबलिनः । त. रा. ३, ३६, २.

तवोमाहप्पुप्पाइदवयणबलो वचिबली[1] त्ति उत्तं होदि । तेसिं विसुद्धमण-वयण-काएहि णमो ।

णमो कायबलीणं ॥ ३७ ॥

तिहुवणं करंगुलियाए[2] उद्धरिदूण अण्णत्थ ठवणक्खमो कायबली[3] णाम । एसा वि कायसत्ती चारित्तविसेसादो चेव उप्पज्जदे, अण्णहाणुवलंभादो । एदेसिं कायबलीणं णमो ।

णमो खीरसवीणं ॥ ३८ ॥

खीरं दुद्धं । सविसादो खीरस्स सवी खीरसवी । पाणिपत्तणिवदिदासेसाहाराणं

वह वचनबल है । तपके माहात्म्यसे जिसने वचनबलको उत्पन्न किया है वह वचनबली है, यह इसका अभिप्राय है । उनको विशुद्ध मन, वचन व कायसे नमस्कार हो ।

कायबली ऋषियोंको नमस्कार हो ॥ ३७ ॥

तीनों लोकोंको हाथकी अंगुलीसे ऊपर उठाकर अन्यत्र रखनेमें जो समर्थ है वह कायबली है । यह भी कायशक्ति चारित्रविशेषसे ही उत्पन्न होती है, क्योंकि, उसके बिना वह पायी नहीं जाती । इन कायबल ऋद्धिधारकों नमस्कार हो ।

क्षीरस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३८ ॥

क्षीरका अर्थ दूध है । विष सहित वस्तुसे भी क्षीरको बहानेवाला क्षीरस्रवी कहलाता है । हाथ रूपी पात्रमें गिरे हुए सब आहारोंको क्षीर स्वरूप उत्पन्न करनेवाली शक्ति

---

१ जिब्भिंदिय णोइंदिय-सुदणाणावरण-विरियविग्घाणं । उक्कस्सक्खओवसमे मुहुत्तमेत्तंतरम्मि मुणी ॥ सयलं पि सुदं जाणइ उच्चारइ जीए विप्फुरंतीए । असमो अहिकंठो सा रिद्धी उ णेया वयणबलणामा ॥ ति. प. ४, १०६३-१०६४. मनोजिह्वा-श्रुतावरण-वीर्यान्तरायक्षयोपशमातिशये सत्यन्तमुहूर्ते सकलश्रुतोच्चारणसमर्थाः सततमुच्चैरुच्चारणे सत्यपि श्रमविरहिता अहीनकंठाश्च वाग्बलिनः । त. रा. ३, ३६, २.

२ प्रतिषु ' कालंगुलियाए ' इति पाठः ।

३ उक्कस्सक्खउवसमे पविसेसे विरियविग्घपगडीए । मास-चउमासपमुहे काउस्सग्गे वि समहीणा ॥ उच्चट्ठिय तेल्लोक्कं झत्ति कणिट्ठंगुलीए अण्णत्थं । थविदुं जीए समत्था सा रिद्धी कायबलणामा ॥ ति. प. ४, १०६५-१०६६. वीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूतासाधारणकायबलत्वात्मासिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिकादिप्रतिमायोगधारणेऽपि श्रम-क्लमविरहिताः कायबलिनः । त. रा. ३, ३६, २.

खीरसादुप्पायणसत्ती वि कारणे कज्जोवयारादो खीरसवी णाम । कधं रसंतरेसु ट्ठियदव्वाणं तक्खणादेव खीरासादसरूवेण परिणामो ? ण, अमियसमुद्दम्मि णिवदिदविसस्सेव पंचमहव्वय-समिइ-तिगुत्तिकलावघडिदंजलिउदणिवदियाणं तदविरोहादो । सा जेसिमत्थि ते खीरसविणो । तेसिं णमो ।

णमो सप्पिसवीणं ॥ ३९ ॥

सर्पिर्घृतं । जेसिं तवोमाहप्पेण अंजलिउडणिवदिदासेसाहारा घदासादसरूवेण परिणमंति ते सप्पिसविणो[3] जिणा । तेसिं णमो ।

णमो महुसवीणं ॥ ४० ॥

सी कारणमें कार्यके उपचारसे क्षीरस्रवी कही जाती है ।

शंका— अन्य रसोंमें स्थित द्रव्योंका तत्काल ही क्षीर स्वरूपसे परिणमन कैसे सम्भव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार अमृतसमुद्रमें गिरे हुए विषका अमृत रूप परिणमन होनेमें कोई विरोध नहीं है, उसी प्रकार पांच महाव्रत, पांच समिति व तीन गुप्तियोंके समूहसे घटित अंजलिपुटमें गिरे हुए सब आहारोंका क्षीर स्वरूप परिणमन करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

वह शक्ति जिनके है वे क्षीरस्रवी कहलाते हैं । उनको नमस्कार हो ।

सर्पिस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३९ ॥

सर्पिष शब्दका अर्थ घृत है । जिनके तपके प्रभावसे अंजलिपुटमें गिरे हुए सब आहार घृत स्वरूपसे परिणमते हैं वे सर्पिस्रवी जिन हैं । उनको नमस्कार हो ।

मधुस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४० ॥

---

१ करयलणिक्खित्ताणिं रुक्खाहारादियाणि तक्काल । पावंति खीरभावं जीए खीरोसवी रिद्धी ॥ ति. प. ४-१०८१. विरसमप्यशनं येषां पाणिपुटनिक्षिप्तं [-निक्षिप्तं] क्षीररसगुणपरिणामि जायते, येषां वा वचनानि क्षीरवत् क्षीणानां संतर्पकाणि भवन्ति ते क्षीरास्रविणः । त. रा. ३, ३६, २.

२ प्रतिषु ' समुद्दम्मि ' इति पाठः ।

३ रिसिपाणितलणिखित्तं रुक्खाहारादियं पि खणमेत्ते । पावेदि सप्पिरूवं जीए सा सप्पियासवी रिद्धी ॥ अहवा दुक्खप्पमुहं सवणेण मुणिंददिव्ववयणस्स । उवसामदि जीवाणं एसा सप्पियासवी रिद्धी ॥ ति. प. ४, १०८६-१०८७. येषां पाणिपात्रगतमन्नं रूक्षमपि सर्पीरसवीर्यविपाकानाप्नोति सर्पिरिव वा येषां भाषितानि प्राणिनां संतर्पकाणि भवन्ति ते सर्पिरास्रविणः । त. रा. ३, ३६, २.

महुवयणेण गुड-खंड-सक्करादीणं गहणं, महुरसादं पडि एदासिं साहम्मुवलंभादो। हत्थक्खित्तासेसाहाराणं महु-गुड-खंड-सक्करासादसरूवेण परिणमणक्खमा महुसविणो[1] जिणा। तेसिं मण-वयण-काएहि णमो।

णमो अमडसवीणं ॥ ४१ ॥

जेसि हत्थं पत्ताहारो अमडसादसरूवेण परिणमइ ते अमडसविणो जिणा। एत्थ-वट्टिया संता जे देवाहारभोजिणो तेसिममडसवीणं णमो इदि उत्तं होदि।

णमो अक्खीणमहाणसाणं ॥ ४२ ॥

एत्थ अक्खीणमहाणससद्दो जेण देसामासओ तेण वसहिअक्खीणाणं पि गहणं। कूरो घियं तिम्मणं वा जम्स परिविसिदूण पच्छा चक्कवट्टिखंधावारे भुंजाविज्जमाणे वि ण

मधु शब्दसे गुड़, खांड़ और शक्कर आदिका ग्रहण किया गया है, क्योंकि, मधुर स्वादके प्रति इनके समानता पायी जाती है। जो हाथमें रखे हुए समस्त आहारोंको मधु, गुड़, खांड़ और शक्करके स्वाद स्वरूप परिणमन करानेमें समर्थ हैं वे मधुस्रवी जिन हैं। उनको मन, वचन व कायसे नमस्कार हो।

अमृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४१ ॥

जिनके हाथको प्राप्त हुआ आहार अमृत स्वरूपसे परिणत होता है वे अमृतस्रवी जिन हैं। यहां अवस्थित होते हुए जो देवाहारको ग्रहण करनेवाले हैं; उन अमृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो, यह सूत्रका अर्थ है।

अक्षीणमहानस जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४२ ॥

यहां चूंकि अक्षीणमहानस शब्द देशामर्शक है, अतएव उससे वसतिअक्षीण जिनोंका भी ग्रहण होता है। जिसके भात, घृत व भिगोया हुआ अन्न स्वयं परोस लेनेके पश्चात् चक्रवर्तीकी सेनाको भोजन करानेपर भी समाप्त नहीं होता है वह अक्षीणमहानस

---

१ मुणिकरणिक्खित्ताणिं लुक्खाहारादियाणि होंति खणे। जीए महुरसादं स च्चिय महुवासवी रिद्धी ॥ अहवा दुक्खप्पहुदी जीए मुणिवयणसवणमेत्तेणं। णासदि णर-तिरियाणं स च्चिय महुवासवी रिद्धी ॥ ति. प. ४, १०८२–१०८३. येषां पाणिपुटपतित आहारो नीरसोऽपि मधुररसवीर्यपरिणामो भवति, येषां वचांसि श्रोतृणां दुःखार्दितानामपि मधुगुणं पुष्णन्ति ते मध्वास्रविणः। त. रा. ३, ३६, २.

२ मुणिपाणिसंठियाणि रुक्खाहारादियाणि जीय खणे। पावंति अमियभावं एसा अमियासवी रिद्धी ॥ अहवा दुक्खादीणं महेसिवयणस्स सवणकालम्मि। णासंति जीए सिग्घं सा रिद्धी अमियासवी णामा ॥ ति. प. ४, १०८४–१०८५. येषां पाणिपुटप्राप्तं भोजनं यत्किंचिदमृततामास्कंदति, येषां वा व्याहृतानि प्राणिनां अमृतवदनुग्राहकाणि भवन्ति तेऽमृतास्रविणः। त. रा. ३, ३६, २.

३ प्रतिषु अतः प्राक् 'पि' इत्यधिकं पदं समुपलभ्यते।

णिट्ठादि सो अक्खीणमहाणसो णाम । जम्हि चउहत्थाए वि गुहाए अच्छिदे संते चक्कवट्टि-खंधावारं पि सा गुहा अवगाहदि सो अक्खीणावासो[1] णाम । तेसिमक्खीणमहाणसाणं णमो । कधमेदासिं सत्तीणमत्थित्तमवगम्मदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो णव्वदे, जिणेसु अण्णहा-वाइत्ताभावादो ।

णमो लोए सव्वसिद्धायदणाणं ॥ ४३ ॥

सव्वसिद्धवयणेण पुव्वं परूविदासेसजिणाणं गहणं कायव्वं, जिणेहिंतो पुधभूददेस-सव्वसिद्धाणमणुवलंभादो । सव्वसिद्धाणमायदणाणि सव्वसिद्धायदणाणि । एदेण कट्टिमा-कट्टिमजिणहराणं जिणपडिमाणमीसिपब्भारुज्जंत-चंपा-पावाणयरादिविसयणिसीहियाणं[2] च गहणं । तेसिं जिणायदणाणं णमो ।

ऋद्धिधारक कहलाता है । जिसके चार हाथ प्रमाण भी गुफामें रहनेपर चक्रवर्तीका सैन्य भी उस गुफामें रह सकता है वह अक्षीणावास ऋद्धिधारक है । उन अक्षीणमहानस जिनोंको नमस्कार हो ।

शंका— इन शक्तियोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे उनका अस्तित्व जाना जाता है, क्योंकि, जिन भगवान् अन्यथावादी नहीं हैं ।

लोकमें सब सिद्धायतनोंको नमस्कार हो ॥ ४३ ॥

' सब सिद्ध ' इस वचनसे पूर्वमें कहे हुए समस्त जिनोंका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, जिनोंसे पृथग्भूत देशसिद्ध व सर्वसिद्ध पाये नहीं जाते । सब सिद्धोंके जो आयतन हैं वे सर्व-सिद्धायतन हैं । इससे कृत्रिम व अकृत्रिम जिनगृह, जिनप्रतिमा तथा ईषत्प्राग्भार, ऊर्जयन्त, चम्पापुर व पावानगर आदि क्षेत्रों व निषीधिकाओंका भी ग्रहण करना चाहिये । उन जिनायतनोंको नमस्कार हो ।

१ लाभंतरायकम्मक्खउवसमसंजदाए जीए फुडं । मुणिभुत्तसेसमण्णं धामत्थं पियं जं कं पि ॥ तद्दिवसे खज्जंतं खंधावारेण चक्कवट्टिस्स । झिज्जइ ण लवेण वि सा अक्खीणमहाणसा रिद्धी ॥ जीए चउधणुमाणे समचउरसालयम्मि णर-तिरिया । मंति यसंखेज्जा सा अक्खीणमहालया रिद्धी ॥ ति. प. ४, १०८९–१०९१. लाभान्तरायक्षयोपशम-प्रकर्षप्राप्तेभ्यो यतिभ्यो यतो भिक्षा दीयते ततो भाजनाच्चक्रधरस्कंधावारोऽपि यदि भुंजीत तद्दिवसे नान्नं क्षीयते ते अक्षीणमहानसाः । अक्षीणमहालयलब्धिप्राप्ता यतयो यत्र वसन्ति देव-मनुष्य-तैर्यग्योना यदि सर्वेऽपि तत्र निवसेयुः परस्परमबाधमानाः सुखमासते । त. रा. ३, ३६, २. अक्खीणमहाणसिया भिक्खं जेणाणियं पुणो तेणं । परिभुत्तं चिय खिज्जइ बहुएहि वि न उण अन्नहि ॥ प्रवचनसारोद्धार १५०४.

२ प्रतिषु ' विसणिसीहियाणं ' इति पाठः ।

णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स ॥ ४४ ॥

वड्ढमाणभयवंतस्स पुव्वं कयणमोक्कारस्स किमट्ठं पुणो वि एत्थ णमोक्कारो कदो ? जस्संतियं.... मणसा वि णिच्चंमिच्चेदस्स णियमस्स आइरियपरंपरागयस्स पदुप्पायणट्ठं कदो ।

णिबद्धाणिबद्धभेएण दुविहं मंगलं । तत्थेदं किं णिबद्धमाहो अणिबद्धमिदि ? ण ताव णिबद्धमंगलमिदं, महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदियादिचउवीसअणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदबलिभडारएण वेयणाखंडस्स आदीए मंगलट्ठं तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्तविरोहादो । ण च वेयणाखंडं महाकम्मपयडिपाहुडं, अवयवस्स अवयवित्तविरोहादो । ण च भूदबली गोदमो, विगलसुदधारयस्स धरसेणाइरियसीसस्स भूदबलिस्स सयलसुदधारयवड्ढमाणंतेवासिगोदमत्तविरोहादो । ण चाण्णो पयारो णिबद्धमंगलत्तस्स हेदुभूदो अत्थि । तम्हा

....

वर्धमान बुद्ध ऋषिको नमस्कार हो ॥ ४४ ॥

शंका — जब कि वर्धमान भगवानको पूर्वमें नमस्कार किया जा चुका है तो फिर यहां दुबारा नमस्कार किस लिये किया गया है ?

समाधान — 'जिसके समीप धर्मपथ प्राप्त हो उसके निकट विनयका व्यवहार करना चाहिये । तथा उसका शिर आदि पांच अंग एवं काय, वचन और मनसे नित्य ही सत्कार करना चाहिये ।' इस आचार्यपरम्परागत नियमको बतलानेके लिये पुनः नमस्कार किया गया है ।

शंका — निबद्ध और अनिबद्धके भेदसे मंगल दो प्रकार है । उनमेंसे यह मंगल निबद्ध है अथवा अनिबद्ध ?

समाधान — यह निबद्ध मंगल तो हो नहीं सकता, क्योंकि, कृति आदि चौबीस अनुयोगद्वार रूप अवयवोंवाले महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके आदिमें गौतम स्वामीने इसकी प्ररूपणा की है और भूतबलि भट्टारकने वेदनाखण्डके आदिमें मंगलके निमित्त इसे वहांसे लाकर स्थापित किया है, अतः इसे निबद्ध माननेमें विरोध है । और वेदनाखण्ड महाकर्मप्रकृतिप्राभृत है नहीं, क्योंकि, अवयवके अवयवी होनेका विरोध है । और न भूतबलि गौतम ही हैं, क्योंकि, विकलश्रुतधारक और धरसेनाचार्यके शिष्य भूतबलिको सकल श्रुतके धारक और वर्धमान स्वामीके शिष्य गौतम होनेका विरोध है । इसके अतिरिक्त निबद्ध मंगलत्वका हेतुभूत और कोई प्रकार है नहीं, अतः यह अनिबद्ध मंगल है । अथवा, यह

....

१ षट्खं. पु. १, पृ. ५४.

अणिबद्धमंगलमिदं । अथवा होदु णिबद्धमंगलं । कधं वेयणाखंडादिखंडगंथस्स महाकम्मपयडिपाहुडत्तं ? ण, कदियादिचउवीसअणियोगद्दारेहिंतो एयंतेण पुधभूदमहाकम्मपयडिपाहुडाभावादो । एदेसिमणियोगद्दाराणं कम्मपयडिपाहुडत्ते संते पाहुडबहुत्तं पसज्जदे ? ण एस दोसो, कधंचि इच्छिज्जमाणत्तादो । कधं वेयणाए महापरिणामाए उवसंहारस्स इमस्स वेयणाखंडस्स वेयणाभावो ? ण, अवयवेहिंतो एयंतेण पुधभूदअवयविस्स अणुवलंभादो । ण च वेयणाए बहुत्तमणिट्ठमिच्छिज्जमाणत्तादो । कधं भूदबलिस्स गोदमत्तं ? किं तस्स गोदमत्तेण ? कधमण्णहा मंगलस्स णिबद्धत्तं ? ण, भूदबलिस्स खंडं गंथं पडि कत्तारत्ताभावादो । ण च अण्णेण कयगंथाहियाराणं एगदेसस्स पुव्विल्लसद्दत्थसंदब्भस्स परूवओ कत्तारो होदि,

निबद्ध मंगल भी हो सकता है ।

शंका—वेदनाखण्डादि स्वरूप खण्डग्रन्थके महाकर्मप्रकृतिप्राभृतपना कैसे सम्भव है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, कृति आदि चौबीस अनुयोगद्वारोंसे एकान्ततः पृथग्भूत महाकर्मप्रकृतिप्राभृतका अभाव है ।

शंका — इन अनुयोगद्वारोंको कर्मप्रकृतिप्राभृत स्वीकार करनेपर बहुत प्राभृत होनेका प्रसंग आवेगा ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ऐसा कथंचित् इष्ट ही है ।

शंका — महा प्रमाणवाली वेदनाके उपसंहाररूप इस वेदनाखण्डके वेदनापना कैसे सम्भव है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, अवयवोंसे सर्वथा पृथग्भूत अवयवी पाया नहीं जाता । यदि कहा जाय कि इस प्रकारसे बहुत वेदनाओंके माननेका अनिष्ट प्रसंग आवेगा, सो भी नहीं है; क्योंकि वैसा इष्ट ही है ।

शंका—भूतबलिके गौतमपना कैसे सम्भव है ?

प्रतिशंका --उनके गौतम होनेसे क्या प्रयोजन है ?

प्र. शं. समाधान —क्योंकि, भूतबलिको गौतम स्वीकार किये बिना मंगलके निबद्धता बन ही कैसे सकती है ?

शंका-समाधान —नहीं क्योंकि, भूतबलिके खण्डग्रन्थके प्रति कर्तृत्वका अभाव है । और दूसरेके द्वारा किये गये ग्रन्थाधिकारोंके एक देश रूप पूर्वोक्त शब्दार्थसन्दर्भका

अइप्पसंगादो। अधवा भूदवली गोदमो चेव, एगाहिप्पायत्तादो। तदो सिद्धं णिबद्धमंगलत्तं पि।

उवरि उच्चमाणेसु तिसु खंडेसु कस्सेदं मंगलं ? तिण्णं खंडाणं। कुदो ? वग्गणा-महाबंधाणमादीए मंगलाकरणादो। ण च मंगलेण विणा भूदबलिभडारओ गंथस्स पारंभदि, तस्स अणाइरियत्तप्पसंगादो। कधं वेयणाए आदीए उत्तं मंगलं सेसदोखंडाणं होदि ? ण, कदीए आदिम्हि उत्तस्स एदस्सेव मंगलस्स सेसतेवीसअणियोगद्दारेसु पउत्तिदंसणादो। महाकम्मपयडिपाहुडत्तणेण चउवीसण्हमणियोगद्दाराणं भेदाभावादो एगत्तं। तदो एगस्स एयं मंगलं तत्थ ण विरुज्झदे। ण च एदेसिं तिण्हं खंडाणमेयत्तमेगखंडप्पसंगादो ? ण एस दोसो, महाकम्मपयडिपाहुडत्तणेण एदेसिं पि एगत्तदंसणादो। कदि-पास-कम्म-पयडिअणियोगद्दाराणि वि एत्थ परूविदाणि। तेसिं खंडगंथसण्णमकाऊण तिण्णि चेव खंडाणि त्ति किमट्ठं उच्चदे।

प्ररूपक कर्ता हो नहीं सकता, क्योंकि, अतिप्रसंग दोष आता है। अथवा भूतबलि गौतम ही हैं, क्योंकि, दोनोंका एक ही अभिप्राय रहा है। इस कारण निबद्ध मंगलत्व भी सिद्ध है।

शंका — आगे कहे जानेवाले तीन खण्डोंमें किस खण्डका यह मंगल है ?

समाधान — यह आगे कहे जानेवाले तीनों खण्डोंका मंगल है, क्योंकि, वर्गणा और महाबन्ध इन दो खण्डोंके आदिमें मंगल नहीं किया गया है। और भूतबलि भट्टारक मंगलके विना ग्रन्थका प्रारम्भ करते नहीं है, क्योंकि, ऐसा करनेसे उनके अनाचार्यत्वका प्रसंग आता है।

शंका — वेदनाखण्डके आदिमें कहा गया मंगल शेष दो खण्डोंका कैसे हो सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, कृतिअनुयोगद्वारके आदिमें कहे गये इसी मंगलकी शेष तेईस अनुयोगद्वारोंमें प्रवृत्ति देखी जाती है।

शंका — महाकर्मप्रकृतिप्राभृत रूपसे चौबीस अनुयोगद्वारोंके कोई भेद न होनेसे उनके एकता है। अतएव वहां एक ग्रन्थका एक मंगल विरोधको प्राप्त नहीं होता। परन्तु इन तीन खण्डोंके एकता नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेपर उनके एक खण्ड होनेका प्रसंग आवेगा ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, महाकर्मप्रकृतिप्राभृत रूपसे इनके भी एकता देखी जाती है।

शंका — कृति, स्पर्श, कर्म और प्रकृति अनुयोगद्वारोंकी भी तो यहां प्ररुपणा की गई है। उनकी खण्डग्रन्थ संज्ञा न करके तीन ही खण्ड हैं, ऐसा किस लिये कहा जाता है ?

ण, तेसिं पहाणत्ताभावादो । तं पि कुदो णव्वदे ? संखेवेण परूवणादो ।

एसो सव्वो वि मंगलदंडओ देसामासओ, णिमित्तादीणं सूचयत्तादो । तदो एत्थ मंगलस्सेव णिमित्तादीणं परूवणा कायव्वा । तं जहा— गंथावयारस्स सिस्सा णिमित्तं, वयणपउत्तीए परट्ठाए चेय दंसणादो । केण हेदुणा पढिज्जदे ? मोक्खट्ठं । सग्गादओ किण्ण मग्गिज्जंते ? ण, तत्थ अच्चंतदुहाभावादो[1] संसारकारणसुहत्तादो रागं मोत्तूण तत्थ सुहाभावादो च । परिमाणं उच्चदे— गंथत्थपरिमाणभेएण[2] दुविहं परिमाणं । तत्थ गंथदो अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्तिअणियोगद्दारेहि संखेज्जं । अत्थदो अणंतं । अधवा खंडगंथं पडुच्च वेयणाए सोलसपदसहस्साणि । ताणि च जाणिदूण वत्तव्वाणि । वेदणा त्ति गुणणामं ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनकी प्रधानता नहीं है ।

शंका—वह भी कहांसे जाना जाता है ?

समाधान—यह संक्षेपमें की गई प्ररूपणासे जाना जाता है ।

यह सब मंगलदण्डक देशामर्शक है, क्योंकि, निमित्तादिकका सूचक है । इस कारण यहां मंगलके समान निमित्तादिककी प्ररूपणा करना चाहिये । वह इस प्रकारसे— ग्रन्थावतारके निमित्त शिष्य हैं, क्योंकि वचनोंकी प्रवृत्ति परके निमित्त ही देखी जाती है ।

शंका—यह शास्त्र किस हेतुसे पढ़ा जाता है ।

समाधान—मोक्षके हेतु पढ़ा जाता है ।

शंका—स्वर्गादिककी खोज क्यों नहीं की जाती है ?

समाधान—नहीं की जाती, क्योंकि, वहां अत्यन्त दुखका अभाव होनेसे संसार-कारण रूप सुख है, तथा रागको छोड़कर वहां सुख है भी नहीं ।

परिमाण कहा जाता है— ग्रन्थपरिमाण और अर्थपरिमाणके भेदसे परिमाण दो प्रकार हैं । उनमें ग्रन्थकी अपेक्षा अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति व अनुयोगद्वारोंसे वह संख्यात है । अर्थकी अपेक्षा वह अनन्त है । अथवा खण्डग्रन्थका आश्रय करके वेदनामें सोलह हजार पद हैं । उनको जानकर कहना चाहिये । नामकी अपेक्षा 'वेदना' यह गुणनाम अर्थात् सार्थक नाम है ।

१ प्रतिषु 'तहाभावादो' इति पाठः ।

२ अ-काप्रत्योः 'गंथप्परिमाण-', 'आप्रतौ 'गंथपरिमाण-' इति पाठः ।

कत्तारा दुविहा अत्थकत्तारो गंथकत्तारो चेदि । तत्थ अत्थकत्तारो भयवं महावीरो । तस्स दव्व-खेत्त-काल-भावेहि परूवणा कीरदे गंथस्स पमाणत्तपदुप्पायणट्ठं । केरिसं महावीर-सरीरं ? समचउरससंठाणं वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणं ससुअंधगंधेण आमोइयतिहुवणं सतेजपरिवेढेण विच्छाईकयसुज्जसंघायं सयलदोसवज्जियमिदि । कधमेदम्हादो सरीरादो गंथस्स पमाणत्तमवगम्मदे ? उच्चदे— णिराउहत्तादो जाणाविदकोह-माण-माया-लोह-जाइ-जरा-मरण-भय-हिंसाभावं, णिप्फंदक्खेक्खणादो[1] जाणाविदतिवेदोदयाभावं । णिराहरणत्तादो जाणा-विदरागाभावं, भिउडिविरहादो जाणाविदकोहाभावं । वग्गण-णच्चण-हसण-फोडणक्खसुत्त-जडा-मउड-णरसिरमालाधरणविरहादो[2] मोहाभावलिंगं । णिरंबरत्तादो लोहाभावलिंगं । ण तिरि-क्खेहि वियहिचारो, वइधम्मादो । ण दालिद्दिएहि वियहिचारो, अट्ठुत्तरसयलक्खणेहि अव-गयदालिद्दाभावादो । ण गहच्छलिएहि वियहिचारो, अट्ठुत्तरसयलक्खणेहि अव-गयतिहुवणाहिवइत्तस्स गहच्छलणाभावादो । णिव्विसयत्तादो[3] णिस्सेसदोसाभावलिंगं ।

कर्ता दो प्रकार हैं— अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ता । उनमें अर्थकर्ता भगवान् महावीर हैं । ग्रन्थकी प्रमाणताको बतलानेके लिये उसकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे प्ररूपणा करते हैं । महावीरका शरीर कैसा है ? वह समचतुरस्रसंस्थानसे युक्त, वज्रर्षभवज्र-नाराचशरीरसंहननसे सहित, सुगन्ध युक्त गन्धसे तीनों लोकोंको सुगन्धित करनेवाला, अपने प्रभामण्डलसे सूर्यसमूहको फीका करनेवाला, तथा समस्त दोषोंसे रहित है ।

शंका—इस शरीरसे ग्रन्थकी प्रमाणता कैसे जानी जाती है ?

समाधान—इसका उत्तर कहते हैं— वह शरीर निरायुध होनेसे क्रोध, मान, माया, लोभ, जन्म, जरा, मरण, भय और हिंसाके अभावका सूचक है । स्पन्द रहित नेत्रदृष्टि होनेसे तीनों वेदोंके उदयके अभावका ज्ञापक है, निराभरण होनेसे रागके अभावको प्रकट करनेवाला है । भृकुटि रहित होनेसे क्रोधके अभावका ज्ञापक है । गमन, नृत्य, हास्य, विदारण, अक्षसूत्र, जटा-मुकुट और नरमुण्डमालाको न धारण करनेसे मोहके अभावका सूचक है । वस्त्र रहित होनेसे लोभके अभावका सूचक है । यहां तिर्यंचोंसे व्यभिचार नहीं है, क्योंकि, उनमें साधर्म्यका अभाव है । दरिद्रोंसे भी व्यभिचार नहीं है, क्योंकि, एक सौ आठ लक्षणोंसे महावीरके दरिद्रताका अभाव जाना जाता है । न गृहछलियोंसे (गृहस्खलित अर्थात् गृहभ्रष्ट मनुष्योंसे) व्यभिचार है, क्योंकि, एक सौ आठ लक्षणोंसे जिनके तीनों लोकोंका अधिपतित्व निश्चित है उनके गृहस्खलन हो नहीं सकता । वह सरीर निर्विषय होनेसे समस्त दोषोंके अभावका सूचक

१ प्रतिषु ' णिक्कदंखक्खणादो जाणाविदे ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' विहादो ' इति पाठः ।
३ प्रतिषु ' णिव्वियाथदो ', मप्रतौ ' णिव्वियत्थदो ' इति पाठः ।

अग्गि-विसासणि-वज्जाउहादीहि बाहाभावादो घाइकम्माभावलिंगं । ण विज्जावाईहि[1] वियहिचारो, सोहम्मिंदादिदेवेहि अवहिरिदविज्जासत्तिम्हि तब्बाहाणुवलंभादो सणिबंधणाणिबंधणाणं साहम्माभावादो वा । ण देवेहि वियहिचारो, णिराउहादिविसेसणविसिट्ठस्स अग्गि-विसासणि-वज्जाउहादिबाहाभावादो त्ति सविसेसणसाहणप्पओगादो । पुव्विल्ललिंगेहि जाणाविदमोहाभावेण वा अवगमिदघादिकम्माभावं । वलियावलोयणाभावादो सगासेसजीवपदेसट्ठियणाण-दंसणावरणाणं णिस्सेसाभावलिंगं[2] । सव्वावयवेहि पच्चक्खावगमादो[3] अणिंदियजणिदणाणत्तलिंगं । आगास-गमणेण पहापरिवेढेण तिहुवणभवणविसारिणा सुरहिगंधेण च जाणाविदअमाणुसभावं । अधवा, ण इमे पादेक्कहेदओ, किंतु एदेसिं समूहो एक्को हेउ त्ति घेत्तव्वो । तदो एदं सरीरं राग-दोस-मोहाभावं जाणावेदि, तदभावो वि महावीरे मुसावादाभावं जाणावेदि, कारणाभावे

है । अग्नि, विष, अशनि और वज्रायुधादिकोंसे बाधा न होनेके कारण घातिया कर्मोंके अभावका अनुमापक है । यहां विद्यावादियोंसे व्यभिचार नहीं आता, क्योंकि, सौधर्मेन्द्र आदि देवों द्वारा जिसकी विद्याशक्ति छीन ली गई है उसमें चूंकि पूर्वोक्त बाधाएं पायी जाती हैं तथा सकारण और अकारण बाधाभावोंमें साधर्म्य भी नहीं है ।

विशेषार्थ—विद्यावादियोंमें बाधाभाव सकारण है, क्योंकि, वहां उक्त बाधाभाव विद्याजनित है, न कि जिन भगवान्‌के समान घातिया कर्मोंके अभावसे उत्पन्न बाधाभाव जैसा स्वाभाविक । यही दोनोंके बाधाभावमें वैधर्म्य है ।

न देवोंसे व्यभिचार है, क्योंकि, निरायुधादि विशेषणोंसे विशिष्ट उक्त शरीरके अग्नि, विष, अशनि, और वज्रायुधादिकोंसे कोई बाधा नहीं होती, ऐसे सविशेषण साधनका प्रयोग है । अथवा, पूर्वोक्त हेतुओंसे सूचित मोहाभावके द्वारा वह घातिया कर्मोंके अभावको प्रगट करनेवाला है । वलित अर्थात् कुटिल अवलोकनका अभाव होनेसे अपने समस्त जीवप्रदेशोंपर स्थित ज्ञानावरण और दर्शनावरणके पूर्ण अभावका सूचक है । समस्त अवयवों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होनेसे अतीन्द्रिय ज्ञानत्वका सूचक है । तथा आकाश-गमनसे, प्रभामण्डलसे एवं त्रिभुवनरूप महलमें फैलनेवाली अपनी सुरभित गन्धसे अमानुषताका ज्ञापक है । अथवा, ये प्रत्येक अलग अलग हेतु नहीं है, किन्तु इनके समूह रूप एक हेतु है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये । इस कारण यह शरीर राग, द्वेष एवं मोहके अभावका ज्ञापक है । और रागादिका अभाव भी भगवान् महावीरमें असत्य भाषणके

१ प्रतिषु ' इज्जावाईहि ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' णिस्सेसाभावविद्धं ', मप्रतौ ' णिस्सेसाभावविंदं ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' पच्चक्खावरमादो ' इति पाठः ।

कज्जस्स अत्थित्तविरोहादो । तदभावो वि आगमस्स पमाणत्तं जाणावेदि । तेण दव्वपरूवणा कायव्वा ।

तित्थुप्पत्ती कम्हि खेत्ते ? रविमंडलं व[1] समवट्टे, बारहजोयणविक्खंभायामे[2], एक्किंदइंणीलमणिसिलाघडिए[3], पंचरयणकणयविणिम्मियफुरंततेयचउतुंगगोउरधूलिवायारेण परिवेढिय-पेरंते, तस्संतो तिवायारवेढिय-तिमेहलापीढोवरिट्ठियमणिमयदिप्पदीहरचउमाणत्थंभविसिट्ठ-[5]विकसितोप्पलकंदोट्टारविंदादिपुप्फाइण्णणंदुत्तरादिवावीणिवहाऊरियधूलीवायारंतब्भाए, णवणिहि-सहियअट्ठुत्तरसयसंखुवलक्खियअट्ठमंगलावूरिदचउगोउरंतरिदसच्छजलकलिदखाइयापरिवेढिदे, तत्तो परं णाणाविहकुसुमभरेणोण्णयवल्लिवणेण चउरत्थंतरिएण परिवेढियाए, तत्तो परं सुतत्त-[6]

अभावको प्रकट करता है, क्योंकि, कारणके अभावमें कार्यके अस्तित्वका विरोध है । और असत्य भाषणका अभाव भी आगमकी प्रमाणताका ज्ञापक है । इसलिये द्रव्यसे अर्थकर्ताकी प्ररूपणा करना चाहिये ।

तीर्थकी उत्पत्ति किस क्षेत्रमें हुई है ? जो समवसरणमण्डल सूर्यमण्डलके समान समवृत्त अर्थात् गोल है, बारह योजन प्रमाण विस्तार और आयामसे युक्त है, एक इन्द्रनील मणिमय शिलासे घटित है, पांच रत्नों व सुवर्णसे निर्मित और प्रकाशमान तेजसे संयुक्त ऐसे चार उन्नत गोपुर युक्त धूलि-सालसे जिसका पर्यन्त भाग घिरा हुआ है, उसके भीतर तीन प्राकारोंसे वेष्टित तीन कटिनी युक्त पीठके ऊपर स्थित मणिमय देदीप्यमान दीर्घ चार मानस्तम्भोंसे विशिष्ट व विकसित उत्पल, कंदोट्ट (नील कमल) एवं अरविंद आदि पुष्पोंसे व्याप्त ऐसी नन्दोत्तरादि वापियोंके समूहसे जिसमें धूलिप्राकारका अभ्यन्तर भाग परिपूर्ण है, जो नौ निधियोंसे सहित व एक सौ आठ संख्यासे उपलक्षित आठ मंगलद्रव्योंसे परिपूर्ण ऐसे चार गोपुरोंसे व्यवहित स्वच्छ जल युक्त खातिकासे वेष्टित है, इसके आगे चार वीथियोंसे व्यवहित व नाना प्रकारके पुष्पोंके भारसे उन्नत ऐसे वल्लीवनसे परिवेष्टित है, इसके आगे तपाये

१ प्रतिषु ' रविमंडलं व व ' इति पाठः ।

२ रविमंडल व्व वट्टा सयला वि य खंधइंदणीलमई । सामण्णखिदी बारस जोयणमेत्तं मि उसहस्स ॥ तत्तो बेकोसूणो पत्तेक्कं णेमिणाहपज्जंतं । चउभागेण विरहिदा पासस्स य वड्ढमाणस्स ॥ ति. प. ४, ७१६-७१७. इह केई आइरिया पण्णारसकम्मभूमिजादाणं । तित्थयराणं बारसजोयणपरिमाणमिच्छंति ॥ ति. प. ४-७१९.

३ प्रतिषु ' ए एक्किंद- ' इति पाठः । ४ प्रतिषु ' फुटीइ ', मप्रतौ ' घटीए ' इति पाठः ।

५ प्रतिषु ' विसइ ' इति पाठः । ६ प्रतिषु ' सुरव ' इति पाठः ।

सुवण्णविणिम्मिएण अट्ठुत्तरसयट्ठमंगल-णवणिहि-सयलाहरणसहियधवलतुंगचउगोपुरपायारेण सोहियए, तत्तो परं चउण्हं गोउरवाराणमब्भंतरभागे दोपासट्ठिएहि डज्झंतसुगंधदव्वाणं गंधामोइयभुवणेहि दो-दोधूवघडएहि समुब्भडए, तत्तो परं तिभूमीएहि अइधवलरुप्पियरासिविणिम्मिएहि सगंगघडिदसुरलोयसारमणिसंघायबहुवण्णकिरणपडिच्छाइएहि[1] वज्जंतमुरवसंघायरवबहिरियजीवलोएहि बत्तीसच्छरा[2]पडिबद्धबत्तीसपेक्खणयसहियदोदोपासाएहि भूसियए, चउमहावहंतरट्ठिएहि मउवसुगंधणयणहरवण्णसुरलोगरयणघडियसमुत्तुंगरुक्खएहि विविहवरसुरहिगंधासत्तमत्तमहुवर-महुर-रवविराइयएहि णाणाविहगिरि-सरि-सर-मंडवसंडमंडिएहि[3] चउपासट्ठियजिणिंदयंदपडिबिंबसंबंधेण पत्तच्चणचइत्तरुक्खएहि असोग-सत्तच्छद-चंपयंबवणेहि[4] अइसोहियए, तत्तो परं रुप्पियचउगोउरसंबद्धसुवण्णणिम्मियवणवेइयावेढियए, तत्तो परं चउण्हं रत्थाणमंतरसु ट्ठियएहि थिरथोरसुरलोयमणित्थंभएहि पादेक्कमट्ठुत्तरसयसंखाएहि एगेगदिसाए दस-

हुए सुवर्णसे निर्मित व एक सौ आठ संख्या युक्त आठ मंगल द्रव्य, नौ निधियों एवं समस्त आभरणोंसे सहित धवल उन्नत चार गोपुर युक्त प्राकारसे सुशोभित है; इसके आगे चार गोपुर द्वारोंके अभ्यन्तर भागमें दोनों पार्श्व भागोंमें स्थित, जलते हुए सुगन्ध द्रव्योंके गन्धसे भुवनको आमोदित करनेवाले ऐसे दो दो धूपघटोंसे संयुक्त है; इसके आगे तीन भूमियोंसे संयुक्त, अत्यन्त धवल चांदीकी राशिसे निर्मित, अपने अवयवोंमें लगे हुए सुरलोकके श्रेष्ठ मणिसमूहकी अनेक वर्णवाली किरणोंसे आच्छादित, बजते हुए मृदंगसमूहके शब्दसे जीवलोकको बहरा करनेवाले, तथा बत्तीस अप्सराओंसे सम्बद्ध बत्तीस नाटकोंसे सहित, ऐसे दो दो प्रासादोंसे भूषित है; चार महापथोंके बीचमें स्थित, मृदु, सुगन्धित एवं नेत्रोंको हरनेवाले वर्णोंसे युक्त सुरलोकके रत्नोंसे निर्मित ऊंचे वृक्षोंसे संयुक्त, अनेक प्रकारकी उत्तम सुगन्धमें आसक्त हुए भ्रमरोंके मधुर शब्दसे विराजित नाना प्रकारके पर्वत, नदी, सरोवर व मण्डपसमूहोंसे मण्डित, तथा चारों पार्श्वभागोंमें स्थित जिनेन्द्र-चन्द्रके प्रतिबिम्बके सम्बन्धसे पूजाको प्राप्त हुए चैत्यवृक्षोंसे सहित ऐसे अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक व आम्र वनोंसे अतिशय शोभित है; इसके आगे चांदीसे निर्मित चार गोपुरोंसे सम्बद्ध व सुवर्णसे निर्मित ऐसी वनवेदिकासे वेष्टित है; इसके आगे चार वीथियोंके मध्य भागोंमें स्थित, स्थिर व स्थूल स्वर्गलोकके मणिमय स्तम्भोंसे संयुक्त, प्रत्येक एक सौ आठ संख्यासे युक्त, एक एक दिशामें दशसे गुणित एक सौ आठ

१ प्रतिषु 'पदच्छाइयएहि' इति पाठः । २ प्रतिषु 'बत्तीसच्छरा', मप्रतौ 'बत्तीसच्छा' इति पाठः ।
३ प्रतिषु 'सरिसरमंदवसंदमंविएहि', मप्रतौ 'सरिसरवमंदवसंदमंदियएहि' इति पाठः ।
४ प्रतिषु 'वणाहि' इति पाठः ।

गुणट्ठहियसयएहि मल्लंवरद्ध-बरहिण-गरुड-गय-केसरि-वसह-हंस-चक्कद्धयणिवएहि परिवेढियए[1], तत्तो परमवरेण अट्ठुत्तरसयट्ठमंगल-णवणिहिहरचउगोउरमंडिएण[2] विविहमणि-रयणविचित्तियंगेण आहरणतोरणसयसहियवारेण सुवण्णपायारेण जुत्तए, तस्संतो पुव्वं व दो-द्दो-डज्झंत-सुवंधदव्वगब्भिणधूवघडमुरव-महुर-रवविराइयतिहूमिधवलहरसमुत्तुंगए, तत्थेव चदुसु रत्थंतरेसु संकप्पियणाणाविहफलदाणसमत्थएहि रुंटंतमहुअर-कलगलकलयंठीकुलसंकुलएहि सगकिरणणिवहच्छाइयंबेरहि विविहपुर-गिरि-सरि-सरवर-हिंदोल-लयाहरएहि चउगोउरसंबद्धसुवण्णवणवेइयामज्जाएहि सिद्धट्ठियबुद्धिद्धसिद्धत्थपायवपवित्तीकयकप्परुक्खवणेहि[3] विहूसियए, तत्तो परं पउमरायमणिमयदेहाहि सगंगणिग्गयतेएण तंवीकयंबराहि सगसव्वंगेहि संधारियजिणिंद-यंदाहि मणितोरणंतरियाहि चदुसु रत्थंतरेसु ट्ठियधवलामलपासायविहूसियाहि रत्थामज्झट्ठियणव-णवत्थूहाहि[4] अंचियए, तदो गयणप्फलिहमणिघडिएण अट्ठुत्तरसयट्ठमंगल-णवणिहि-सणाहपउमरायमणिविणिम्मियगोउरेण पायारेण अहिणंदियए, पीढस्स पढममेहलाए फलिह-

[१०८×१०=१०८०], ऐसी माला-अम्बराध्व अर्थात् सूर्य और चन्द्र-अब्ज-मयूर-गरुड-गज-सिंह-वृषभ-हंस और चक्रके चिह्नसे युक्त ध्वजाओंके समूहसे घिरा हुआ है; इसके आगे एक सौ आठ मंगल द्रव्य व नौ निधियोंको धारण करनेवाले चार गोपुरोंसे मण्डित, अनेक प्रकारके मणि व रत्नोंसे विचित्र देहवाले तथा सैकड़ों आभरण व तोरणोंसे सहित द्वारोंसे संयुक्त ऐसे सुवर्णप्राकारसे युक्त है; उसके भीतर पूर्वके समान जलते हुए सुगन्ध द्रव्योंको मध्यमें धारण करनेवाले दो दो धूपघटोंसे युक्त और मृदंगके मधुर शब्दसे विराजित तीन भूमियोंवाले धवल घरोंसे उन्नत है; वहांपर ही चार वीथियोंके अन्तरालोंमें संकल्पित नाना प्रकार फलोंके देनेमें समर्थ, गुंजार करनेवाले भ्रमर व सुन्दर गलेवाली कोयलोंके समूहसे व्याप्त, अपने किरणसमूहसे आकाशको आच्छादित करनेवाले, अनेक प्रकारके पुर-पर्वत-नदी-सरोवर-हिंडोलों एवं लतागृहोंसे संयुक्त, चार गोपुरोंसे सम्बद्ध सुवर्णमय वनवेदिका रूप मर्यादावाले, तथा सिद्धप्रतिमाओंसे दीप्त सिद्धार्थ वृक्षोंसे पवित्र किये गये ऐसे कल्पवृक्षवनोंसे विभूषित है; इसके आगे पद्मरागमणिमय देहसे संयुक्त, अपने अंगसे निकलनेवाले तेजसे आकाशको ताम्रवर्ण करनेवाले, अपने सब अंगोंसे जिनेन्द्र-चन्द्रोंको धारण करनेवाले, मणिमय तोरणोंसे अन्तरित, चार वीथियोंके अन्तरालोंमें स्थित धवल व निर्मल प्रासादोंसे विभूषित, ऐसे वीथियोंके मध्यमें स्थित नौ नौ स्तूपोंसे व्याप्त है; इसके आगे आकाश-स्फटिकमणिसे निर्मित तथा एक सौ आठ अष्ट-मंगल-द्रव्यों एवं नौ निधियोंसे सनाथ व पद्मरागमणिसे निर्मित गोपुरोंवाले प्राकारसे अभिनन्दित है; पीठकी

१ प्रतिषु 'परिठेढियए' इति पाठः। ति. प. ४, ८१८-८१९. ह. पु. ५७-४४. २ प्रतिषु 'मंदिएण' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'पावय' इति पाठः। ४ ति. प. ४, ८३३-८३५. ह. पु. ५७-५३. ५ ति. प. ४, ८४४-८४७. ह. पु. ५७-५४. ६ ति. प. ४-८४८. ह. पु. ५७-५६.

पायारे च तिलिंगियाहि फलिहमणिघडियंगियाहि सोलहभित्तीहि कयबारहकोट्ठएहि मणित्थंभुद्धरियएगागासफलिहघडियमंडवेच्छाइयएहि सुरलोयसारसुअंधगंधगब्भिणएहि चउव्विहसंघ-कप्पवासिय-मणुव-जोइसिय-वाणवेंतर-भवणवासियजुअईहि भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-मणुव-तिरिक्खेहिं य अणुक्कमेण अहिउत्तएहि विराइए, तिमेहला-पीढेण मत्थएण उड्डवड्ढमाणदिवायरेण बिदियमेहलाए धरियट्ठमहाधय-मंगलेण मत्थयत्थधम्मचक्कविराइयजक्खकाएण मणिमएण समुत्तुंगवड्ढमाणजिणप्पहामंडलतेएण णट्ठंधारए, णिवदंतसुरकुसुमवरिसेण णिरंतरकयमंगलोवहारए, बहुकोडाकोडिमहुरसुरतूररवेण बहिरियतिहुवण-भवणए, मरगयमणिघडियखंधोवक्खंधेण पउमरायमणिमयपवालंकुरेण णाणाविह-फलकलिएण भमर-परहुअ-महुवर-महुरसरविराइएण जिणसासणासोगचिंधेण असोगपायवेण णिण्णासियसयलजणसोगसंघए, सिसिरयरकरधवलेण जोयणंतरवित्थारएण सच्छधवलथूलमुत्ता-हलदामकलावसोहमाणपेरंतएण गयणट्ठियछत्तत्तएण वड्ढमाणतिहुवणाहिवइत्तचिंधएण सुसोहियए,

प्रथम कटनी व स्फटिक-प्राकारसे लगी हुई और स्फटिकमणिसे निर्मित देहवाली सोलह भित्तियोंसे विभक्त किये गये, मणिमय स्तम्भोंसे उद्धृत व एक आकाश-स्फटिकसे निर्मित मण्डपसे आच्छादित, स्वर्गलोकके श्रेष्ठ सुगन्ध गन्धद्रव्यको धारण करनेवाले, चतुर्विध मुनिसंघ, कल्पवासिनी, मनुष्यनी, ज्योतिष्कदेवी, व्यन्तरदेवी भवनवासि-देवी, भवनवासीदेव, वानव्यन्तरदेव, ज्योतिषीदेव, कल्पवासीदेव, मनुष्य व तिर्यंचोंसे क्रमशः संयुक्त, ऐसे बारह कोठोंसे विराजित है; जिसके मस्तकके ऊपर वर्धमान भगवान् रूपी सूर्य स्थित है, जिसकी द्वितीय कटिनीपर आठ ध्वजाएं व मंगल-द्रव्य रखे हुए हैं, जो [प्रथम कटिनीपर] मस्तकपर स्थित धर्मचक्रसे विराजित यक्षोंके शरीरसे संयुक्त है, मणियोंसे निर्मित है, तथा उन्नत वर्धमान जिनके प्रभामण्डल युक्त तेजसे सहित है, ऐसे तीन कटिनी युक्त पीठसे अन्धकारको नष्ट करनेवाला है; गिरती हुई पुष्पवृष्टिसे निरन्तर किये गये मंगल उपहारसे युक्त है; अनेक कोड़ाकोड़ी मधुर स्वरवाले वादित्रोंके शब्दसे त्रिभुवन रूपी भवनको बहरा करनेवाला है; मरकतमणिसे निर्मित स्कन्ध व उपस्कन्धसे सहित, पद्मरागमणिमय प्रवालांकुरों (पत्तों) से युक्त, नाना प्रकारके फलोंसे युक्त, भ्रमर कोयल व मधुकरके मधुर स्वरोंसे विराजित तथा जिनशासनके अशोक अर्थात् आत्मसुखके चिह्नस्वरूप अशोक वृक्षसे समस्त जीवोंके शोकसमूहको नष्ट करनेवाला है; चन्द्रकिरणोंके समान धवल, कुछ कम एक योजन विस्तारवाले, स्वच्छ धवल एवं स्थूल मोतियोंकी मालाओंके समूहसे शोभायमान पर्यन्त भागसे संयुक्त तथा वर्धमान भगवान्के तीनों लोकोंके अधिपतित्वके चिह्न रूप ऐसे गगनस्थित तीन छत्रोंसे

१ प्रतिषु 'मंदव' इति पाठः। २ ति. प. ४, ८५६–८६३. ह. पु. ५७, १४८–१६०. ३ प्रतिषु 'मुत्थएण' इति पाठः। ४ ति. प. ४, ८८०–८८१. ह. पु. ५७–१४१. ५ ति. प. ४, ८७०. ह. पु. ५७–१४०. ६ प्रतिषु 'त्रिधेण' इति पाठः। ७ ति. प. ४, ९१८–९२७. ह. पु. ५७, १६२–१६६.

पंचसेलउरणेरइदिसाविसयअइविउलविउलगिरिमत्थयत्थए, गंगोहोव्व चउहि सुरविरइयवारेहि पविसमाणदेव-विज्जाहर-मणुवजणाण मोहए समवसरणमंडले जिणवइतणुमऊहखीरोवहिणिव्वुडासेसदेहम्मि जक्खिदकरणियरेहि विज्जिज्जमाणाणेयचामरच्छण्णट्ठदिसाविसयम्मि दिव्वामोयगंध-सुरसाराणेयमणिणिवहघडियम्मि गंधउडिपासायम्मि ट्ठियसीहासणारूढेण वड्ढमाणभडारएण तित्थमुप्पाइदं ।

खेत्तपरूवणा कधं तित्थस्स पमाणत्तं जाणावेदि ? वड्ढमाणभयवंतसव्वण्हुत्तलिंगत्तादो । कधं सव्वण्हू वड्ढमाणभयवंतो ? चोद्दसविज्जाठाणबलेण दिट्ठासेसभुवणेण ओहिणाणेण पच्चक्खीकयसगोहिखेत्तब्भंतरट्ठियसयलजीवकम्मक्खंधेण घाइचउक्कविणासेणुप्पण्णणवकेवल-लद्धीओ अघाइकम्मसंबंधेण पत्तमुत्तभावजिणट्ठियाओ पेच्छंतएण सोहम्मिंदेण तस्स कय-पूजण्णहाणुववत्तीदो । ण च विज्जावाइपूजाए वियहिचारो, अप्पिड्ढि-णाणवेंतरकयाए महिड्ढि-

सुशोभित है; पंचशैलपुर अर्थात् राजगृह नगरके नैऋत्य दिशाभागमें अत्यन्त विस्तृत विपुलाचलके मस्तकपर स्थित है; तथा जो देवों द्वारा रचे गये चार द्वारोंसे गंगाके प्रवाहके समान प्रवेश करनेवाले देव, विद्याधर एवं मनुष्य जनोंको मोहित करनेवाला है, ऐसे समवसरण-मण्डलमें जिनेन्द्र देवके शरीरकी किरणों रूप क्षीरसमुद्रमें डूबी हुई समस्त देहसे संयुक्त, यक्षेन्द्रोंके हाथोंके समूहोंसे ढोरे गये चामरोंसे आच्छादित आठ दिशाओंको विषय करने-वाले और दिव्य आमोद-सुगन्ध युक्त एवं देवोंके श्रेष्ठ अनेक मणियोंके समूहसे रचे गये गन्धकुटी रूप प्रासादमें स्थित सिंहासनपर आरूढ़ वर्धमान भट्टारकने तीर्थ उत्पन्न किया।

शंका—क्षेत्रप्ररूपणा तीर्थकी प्रमाणताकी ज्ञापक कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, वह वर्धमान भगवान्‌की सर्वज्ञताका चिह्न है ।

शंका—भगवान् वर्धमान सर्वज्ञ थे, यह कैसे सिद्ध होता है ?

समाधान—चौदह विद्यास्थानोंके बलसे समस्त भुवनको देखनेवाले, अवधि-ज्ञानसे अपने अवधिक्षेत्रके भीतर स्थित सम्पूर्ण जीवोंके कर्मस्कन्धोंको प्रत्यक्ष करनेवाले, तथा चार घातिया कर्मोंके नष्ट होनेसे उत्पन्न और अघातिया कर्मोंके सम्बन्धसे मूर्त-भावको प्राप्त ऐसी जिन भगवान्‌में स्थित नौ केवललब्धियोंको देखनेवाले सौधर्मेन्द्र द्वारा की गई उनकी पूजा चूंकि विना सर्वज्ञताके बनती नहीं है अतः सिद्ध है कि वर्धमान भगवान् सर्वज्ञ थे ।

यह हेतु विद्यावादियोंकी पूजासे व्यभिचरित नहीं होता, क्योंकि, अल्प ऋद्धि व ज्ञान युक्त व्यन्तर देवों द्वारा की गई पूजाका महा ऋद्धि व ज्ञानसे संयुक्त देवेन्द्रों द्वारा की

णाणदेविंदकयपूजाए सह साहम्माभावादो देविद्धिच्छायाएं विच्छायं गच्छंतीए वेंतरपूजाए इंदकय-जिणपूजाए इव धुवत्ताभावेण वइधम्मियादो वा। होदु णाम दिट्ठजिणदव्वमहिमाणं देविंद-सरूवावगच्छंतजीवाणमिदं जिणसव्वण्णुत्तलिंगं, ण सेसाणं; लिंगविसयअवगमाभावादो। ण च अणवगयलिंगस्स लिंगिविसओं अवगमो उप्पज्जदि, अइप्पसंगादो त्ति उत्ते अणेण पयारेण जिणभावजाणावणट्ठं भावपरूवणा कीरदे। तं जहा—

ण जीवो जडसहावो, ससंवेयणापच्चक्खेण अविसंवादसहावेण अजडसहावजीउवलंभादो। ण च णिच्चेयणो जीवो चेयणागुणसंबंधेण चेयणसहावो होदि, सरूवहाणिप्पसंगादो। किं च ण णिच्चेयणो जीवो, तस्साभावप्पसंगादो। तं जहा— ण ताव इंदियणाणेण अप्पा घेप्पइ, तस्स बज्झत्थे वावारुवलंभादो। ण ससंवेयणाए घेप्पइ, चेयणसरूवाए तिस्से जडजीवे असंभवादो। ण चाणुमाणेण वि घेप्पइ, दुविहपच्चक्खाणमविसएण जीवेण अविणाभाविलिंग-

गई पूजाके साथ कोई साधर्म्य नहीं है। अथवा, देवर्द्धिकी छायामें कान्तिहीनताको प्राप्त होनेवाली व्यन्तरकृत पूजामें इन्द्रकृत जिनपूजाके समान स्थिरता न होनेसे दोनोंमें साधर्म्यका अभाव है।

शंका—जिनद्रव्य अर्थात् जिनशरीरकी महिमाको देखनेवाले व देवेन्द्रस्वरूपके जानकार जीवों (सौधर्मेन्द्रादिक) के वह जिनदेवकी सर्वज्ञताका साधन भले ही बन सकता हो, किन्तु वह शेष जीवोंके नहीं बनता; क्योंकि, उनके उक्त साधनविषयक ज्ञानका अभाव है। और साधनज्ञानसे रहित व्यक्तिके साध्यविषयक ज्ञान उत्पन्न हो नहीं सकता, क्योंकि, ऐसा होनेमें अतिप्रसंग दोष आता है?

समाधान—इस शंकाके उत्तरमें इस प्रकारसे जिनभावके ज्ञापनार्थ भावप्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— जीव जड़स्वभाव नहीं है, क्योंकि, विसंवाद रहित स्वभाव-वाले स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे अजड़स्वभाव जीव पाया जाता है। और अचेतन जीव चेतना-गुणके सम्बन्धसे चेतनास्वभाव भी नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेपर स्वरूपकी हानिका प्रसंग आवेगा।

दूसरे, जीव अचेतन हो नहीं सकता, क्योंकि, ऐसा होनेसे उसके अभावका प्रसंग आवेगा। वह इस प्रकारसे— इन्द्रियज्ञानके द्वारा तो आत्माका ग्रहण होता नहीं है, क्योंकि, इन्द्रियज्ञानका व्यापार बाह्य अर्थमें पाया जाता है। स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे आत्माका ग्रहण नहीं होता, क्योंकि, चेतनस्वभाव होनेसे उक्त प्रत्यक्ष जड़ जीवमें सम्भव नहीं है। अनुमानसे भी आत्माका ग्रहण नहीं होता, क्योंकि, दोनों प्रकारके प्रत्यक्षोंके अविषयभूत जीवके साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखनेवाले लिंगका ग्रहण सम्भव

१ प्रतिषु 'देविद्धिच्छाए' इति पाठः। २ प्रतिषु 'लिंगविसओ' इति पाठः।

ग्गहणाणुववत्तीदो । ण चागमेण वि घेप्पइ, अपउरुसेयआगमाभावादो । पोरुसेण वि, सव्वण्णुणा विणा तस्साभावादो इयरेयरासयदोसप्पसंगादो च । तदो णत्थि जीवो, सयलपमाणगोयराइक्कंतत्तादो त्ति ट्ठिदजीवाभावो[1] मा होहिदि त्ति जीवो सचेयणो त्ति इच्छिदव्वो ।

किं च सचेयणो जीवो, अण्णहा णाणाभावप्पसंगादो । तं जहा— ण ताव णाणोवायाणकारणं जीवो, णिच्चेयणस्स तदुवायाणकारणत्तविरोहादो । अविरोहे वा आयासं पि तदुवायाणकारणं होज्ज, अमुत्तत्त-सव्वगयत्त णिच्चेयणत्तेहि विसेसाभावादो । ण च सद्दुवायाणकारणत्तकओ विसेसो, तस्स सज्झसमाणत्तादो । ण चोवायाणकारणेण विणा कज्जुप्पत्ती, विरोहादो । तम्हा[2] आयासादीहिंतो जीवस्स विसेसो अब्भुवगंतव्वो, कधमण्णहा जीवो चेव णाणस्सुवायाणकारणं होज्ज । सो वि चेयणं मोत्तूण को अण्णो विसेसो होज्ज, अण्णम्हि दोसुवलंभादो । रूवस्स पोग्गलदव्वं व जीवो चेय णाणस्सुवायाणकारणमिदि ण वोत्तुं जुत्तं,

---

नहीं है । आगमसे भी आत्माका ग्रहण नहीं होता, क्योंकि, अपौरुषेय आगमका अभाव है । यदि पौरुषेय आगमसे उसका ग्रहण माना जावे तो वह भी नहीं बनता, क्योंकि, सर्वज्ञके विना पौरुषेय आगमका अभाव है, तथा [पहिले जब सर्वज्ञ सिद्ध हो तब उससे पौरुषेय आगम सिद्ध हो और जब पौरुषेय आगम सिद्ध हो तब उससे सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध हो, इस प्रकार] अन्योन्याश्रय दोषका प्रसंग भी आता है । इस कारण जीव है ही नहीं, क्योंकि, वह समस्त प्रमाणोंकी विषयतासे रहित है; इस प्रकार प्रसंगप्राप्त जीवका अभाव न हो, एतदर्थ ' जीव सचेतन है ' ऐसा स्वीकार करना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त जीव सचेतन है, क्योंकि, सचेतनताके विना ज्ञानके अभावका प्रसंग आता है । वह इस प्रकारसे— जीव ज्ञानका उपादान कारण नहीं है, क्योंकि, चैतन्यसे रहित उसके ज्ञानोपादानकारणताका विरोध है । अथवा अचेतन होते हुए भी उसको ज्ञानका उपादान कारण माननेमें यदि कोई विरोध नहीं माना जाय तो आकाश भी उसका उपादान कारण हो जावे, क्योंकि अमूर्तत्व, सर्वव्यापकता और अचेतनताकी अपेक्षा जीवसे आकाशमें कोई विशेषता नहीं है । यदि कहा जाय कि आकाश शब्दका उपादान कारण है, यही उसमें जीवसे विशेषता है, सो वह भी नहीं हो सकता, क्योंकि, शब्दोपादानकारणत्व रूप हेतु साध्यके ही समान असिद्ध है । और उपादानकारणके विना कार्यकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेमें विरोध है । इस कारण आकाशादिकोंकी अपेक्षा जीवके विशेषता स्वीकार करना चाहिये; अन्यथा जीव ही ज्ञानका उपादान कारण कैसे हो सकता है ? वह विशेषता भी चेतनताको छोड़कर और दूसरी कौनसी हो सकती है, क्योंकि, अन्य विशेषतामें दोष पाये जाते हैं । जिस प्रकार पुद्‌गल द्रव्य रूपका उपादान कारण है, उसी प्रकार जीव भी ज्ञानका उपादान कारण है, ऐसा कहना भी उचित नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर रूपके समान

---

१ प्रतिषु ' ठिदं जीवाभावो ' इति पाठ ।   २ प्रतिषु ' तहा ' इति पाठः ।

रूवस्सेव णाणस्स जावदव्वभावित्तप्पसंगादो । ण पज्जायरूवेण वियहिचारो, रूवत्तं पडि समाणजादीयस्स रूवविसेसस्स तत्थावट्ठाणं व णाणत्तं पडि समाणजादीयस्स[1] णाणविसेसस्स जीवे वि सव्वदा अवट्ठाणप्पसंगादो । तम्हा सचेयणो जीवो त्ति इच्छिदव्वो ।

जेसिमण्णोण्णमविरोहो ते तस्स दव्वस्स जावदव्वभाविगुणा[2] पोग्गलदव्वस्स रूव-रस-गंध-पास इव । तदो चेयणा व णाणं पि जावदव्वभाविगुणो, चेयणाए सह णाणस्स विरोहाभावादो । किं च णाणं जीवस्स जावदव्वभाविगुणो, चेयणादो उवजोगत्तं पडि एगत्तादो । ण च एक्कस्स उवजोगस्स पमेयभेएण दुब्भावं गयस्स भिण्णदव्वावट्ठाणं जुज्जदे, विरोहादो । तदो णाण-दंसणसहावो जीवो त्ति सिद्धं । ण च णाणं दिवायरप्पहा व थोवदव्व-गुण-पज्जयपडिबद्धं, सत्तण्णहाणुवत्तीदो सयलमणेयंतप्पयमिच्चाइयस्स अणुमाणणाणस्स सव्व-दव्वपज्जयगयस्सुवलंभादो । तदो असेसदव्व-पज्जयणाण-दंसणसहावो जीवो त्ति सिद्धं ।

पुणो कसाया णाणविरोहिणो, कसायवड्ढि-हाणीहिंतो णाणस्स हाणि-वड्ढीणमुवलंभादो ।

ज्ञानके यावद्द्रव्यभावी होनेका प्रसंग आवेगा । पर्यायभूत नील-पीतादि रूपसे व्यभिचार भी नहीं हो सकता, क्योंकि, रूपत्वके प्रति समान जातीय रूपविशेषके वहां अवस्थानके समान ज्ञानत्वके प्रति समानजातीय ज्ञानविशेषके जीवमें भी सर्वदा अवस्थानका प्रसंग आवेगा । अतएव जीव सचेतन है, ऐसा स्वीकार करना चाहिये ।

जिन गुणोंके परस्परमें कोई विरोध नहीं रहता वे उस द्रव्यके यावद्द्रव्यभावी गुण कहलाते हैं, जैसे पुद्गलद्रव्यके रूप, रस, गन्ध व स्पर्श । इस कारण चेतनाके समान ज्ञान भी यावद्द्रव्यभावी गुण है, क्योंकि, चेतनाके साथ ज्ञानका कोई विरोध नहीं है । और भी, ज्ञान जीवका यावद्द्रव्यभावी गुण है, क्योंकि, चेतनाकी अपेक्षा उपयोगके प्रति उसकी एकता है । और एक उपयोगका प्रमेयके भेदसे द्वित्वको प्राप्त होकर भिन्न द्रव्यमें रहना उचित नहीं है, क्योंकि, वैसा होनेमें विरोध आता है । अत एव ज्ञान-दर्शन-स्वभाव जीव है, यह सिद्ध हुआ । तथा सूर्यप्रभाके समान ज्ञान स्तोक द्रव्य, गुण व पर्यायोंसे सम्बद्ध नहीं हैः क्योंकि, 'समस्त पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं, क्योंकि, उसके विना उनकी सत्ता घटित नहीं होती ' इत्यादिक अनुमानज्ञान सब द्रव्य व पर्यायोंमें रहनेवाला पाया जाता है । इस कारण सम्पूर्ण द्रव्य एवं पर्यायोंको विषय करनेवाले ज्ञान-दर्शन स्वरूप जीव है, ऐसा सिद्ध होता है ।

पुनः कषायें ज्ञानकी विरोधी हैं, क्योंकि, कषायोंकी वृद्धि और हानिसे क्रमशः

१ अप्रतौ ' समाणोजाणीयस्स ', आप्रतौ ' समाणजीणीयस्स ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' गुणो ' इति पाठः ।

ण कसाया जीवगुणा, जावदव्वभाविणा णाणेण सह विरोहण्णहाणुववत्तीदो। पमादासंजमा[1] वि ण जीवगुणा, कसायकज्जत्तादो। ण अण्णाणं पि, णाणपडिवक्खत्तादो। ण मिच्छत्तं पि, सम्मत्तप्पडिवक्खत्तादो अण्णाणकज्जत्तादो वा। तदो णाण-दंसण संजम-सम्मत्त-खंति-मद्द-वज्जव[2]-संतोस-विरागादिसहावो जीवो त्ति सिद्धं।

ण णिच्चाइं कम्माइं, तप्फलाणं जाइ-जरा-मरण तणु-करणाईणमणिच्चत्तण्णहाणुववत्तीदो। ण च णिक्कारणाणि, कारणेण विणा कज्जाणमुप्पत्तिविरोहादो। ण णाण-दंसणादीणि तक्कारणं, कम्मजणिदकसाएहि सह विरोहण्णहाणुववत्तीदो। ण च कारणाविरोहीण तक्कज्जेहि विरोहो जुज्जदे, कारणविरोहदुवारेणेव सव्वत्थ कज्जेसु विरोहुवलंभादो। तदो मिच्छत्तासंजम-कसायकारणाणि कम्माणि त्ति सिद्धं। सम्मत्त-संजम-कसायाभावा कम्मक्खय-कारणाणि, मिच्छत्तादीणं पडिवक्खत्तादो। ण च कारणाणि कज्जं ण जणेंति चेवेत्ति णियमो अत्थि, तहाणुवलंभादो। तम्हा कहिं पि काले कत्थ वि जीवे कारणकलावसामग्गीए णिच्छएण

....

ज्ञानकी हानि और वृद्धि पायी जाती है। कषायें जीवके गुण नहीं हैं, क्योंकि, यावद्द्रव्य-भावी ज्ञानके साथ उनका विरोध अन्यथा घटित नहीं होगा। प्रमाद व असंयम भी जीव-गुण नहीं हैं, क्योंकि, वे कषायोंके कार्य हैं। अज्ञान भी जीवका गुण नहीं है, क्योंकि, वह ज्ञानका प्रतिपक्षी है। मिथ्यात्व भी जीवका गुण नहीं है, क्योंकि, वह सम्यक्त्वका प्रति-पक्षी एवं अज्ञानका कार्य है। इस कारण ज्ञान, दर्शन, संयम, सम्यक्त्व, क्षमा, मृदुता, आर्जव, सन्तोष और विराग आदि स्वभाव जीव है, यह सिद्ध हुआ।

कर्म नित्य नहीं हैं, क्योंकि, अन्यथा जन्म, जरा, मरण, शरीर व इन्द्रियादि रूप कर्मकार्योंकी अनित्यता बन नहीं सकती। यदि कहा जाय कि जन्म-जरादिक अकारण हैं, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, कारणके बिना कार्योंकी उत्पत्तिका विरोध है। यदि ज्ञान-दर्शनादिकोंको उनका कारण माने तो वह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, अन्यथा कर्म-जनित कषायोंके साथ उनका विरोध घटित नहीं होता। और जो कारणके साथ अविरोधी हैं उनका उक्त कारणके कार्योंके साथ विरोध उचित नहीं है, क्योंकि, कारणके विरोधके द्वारा ही सर्वत्र कार्योंमें विरोध पाया जाता है। अत एव मिथ्यात्व, असंयम और कषाय कर्मोंके कारण हैं, यह सिद्ध हुआ। सम्यक्त्व, संयम और कषायोंका अभाव कर्मक्षयके कारण हैं, क्योंकि, ये मिथ्यात्वादिकोंके प्रतिपक्षी हैं। और कारण कार्यको उत्पन्न करते ही नहीं हैं, ऐसा नियम नहीं है; क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता। अत एव किसी कालमें किसी भी जीवमें कारणकलाप सामग्री निश्चयसे होना चाहिये। और इसीलिये किसी भी जीवके

....

१ अ-आप्रत्योः 'पमदासंजमा', काप्रतौ 'पमत्तासंजमा' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'वुड्डमज्जव' इति पाठः।

होदव्वमिदि कस्स वि जीवस्स सयलसहावोवलद्धीए होदव्वं, सहाववड्ढितारतम्मुवलंभादो; आगरकणय-पाहाणट्ठियसुवण्णस्सेव सुक्कपक्खचंदमंडलस्सेव वा। कसायस्स वि णिस्सेसक्खओ कत्थ वि जीवे होदि, हाणितारतम्मुवलंभादो, आगरकणए[1] व दुबलियमाणमलकलंकस्सेव। णिस्सेसं णाणं धूवरंति कम्माइं, आवरणतारतम्मुवलंभादो, चंदमंडलं राहुमंडलं वेत्ति ण वोत्तुं जुत्तं, जावदव्वभावीणं णाण-दंसणाणमभावेण जीवदव्वस्स वि अभावप्पसंगादो। तदो णेदं घडदि त्ति। तदो केवलणाणावरणक्खएण केवलणाणी, केवलदंसणावरणक्खएण केवलदंसणी, मोहणीयक्खएण वीयराओ, अंतराइयक्खएण अणंतबलो विग्घविवज्जिओ दरदद्धअघाइकम्मो जीवो कत्थ वि अत्थि त्ति सिद्धं। ण च खीणावरणो परमियं चेव जाणदि, णिप्पडिबंधस्स सयलत्थावगमणसहावस्स परिमियत्थावगमविरोहादो। अत्रोपयोगी श्लोकः —

ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः स्यादसति प्रतिबंधरि।
दाह्येऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबंधरि[2] ॥ २२ ॥

पूर्ण स्वभावकी प्राप्ति होना चाहिये, क्योंकि, स्वभाववृद्धिका तारतम्य पाया जाता है; जैसे—खानके कनकपाषाणमें स्थित सुवर्ण अथवा शुक्ल पक्षके चन्द्रमण्डलके। कषायका भी पूर्ण विनाश किसी भी जीवमें होता है, क्योंकि, उसकी हानिका तारतम्य पाया जाता है; जैसे— खानके सुवर्णमें हीयमान मलकलंक।

शंका—कर्म पूर्ण ज्ञानका आवरण करते हैं, क्योंकि, आवरणका तारतम्य पाया जाता है; जैसे चन्द्रमण्डलको राहुमण्डल। ऐसा भी यहां कहा जा सकता है ?

समाधान—ऐसा अनुमान योग्य नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेपर यावद्द्रव्यभावी ज्ञान-दर्शनके अभावसे जीव द्रव्यके भी अभाव होनेका प्रसंग आवेगा। इस कारण पूर्ण ज्ञानका आवरण घटित नहीं होता।

अत एव केवलज्ञानावरणके क्षयसे केवलज्ञानी, केवलदर्शनावरणके क्षयसे केवलदर्शनी, मोहनीयके क्षयसे वीतराग, अन्तरायके क्षयसे विघ्नोंसे रहित अनन्तबलसे संयुक्त, तथा अघातिया कर्मोंको किंचित् दग्ध करनेवाला जीव कहींपर भी है, यह सिद्ध है। और आवरणके क्षीण हो जानेपर आत्मा परिमितको ही जानता है, यह हो नहीं सकता, क्योंकि, प्रतिबन्धसे रहित और समस्त पदार्थोंके जानने रूप स्वभावसे संयुक्त उसके परिमित पदार्थोंके जाननेका विरोध है। यहां उपयोगी श्लोक—

ज्ञानस्वभाव आत्मा प्रतिबन्धकका अभाव होनेपर ज्ञेयके विषयमें ज्ञान रहित कैसे हो सकता है, अर्थात् नहीं हो सकता। [क्या] अग्नि प्रतिबन्धके अभावमें दाह्य पदार्थका दाहक नहीं होता है ? होता ही है ॥ २२ ॥

१ आ काप्रत्योः ' आगरकरणओ ', ' आप्रतौ ' अगरकरणओ ' इति पाठः।
२ जयध. १, पृ. ६६. स. त. पृ. ६३.

एसो वि एवंविहो वड्ढमाणभडारओ चेव, जुत्ति-सत्थाविरुद्धवयणत्तादो। एत्थुव-उज्जंतीओ गाहाओ—

> खीणे दंसणमोहे चरित्तमोहे तहेव घाइतिए।
> सम्मत्त-विरियणाणी खइए ते होंति जीवाणं[1] ॥ २३ ॥
>
> उप्पण्णम्मि अणंते णट्ठम्मि य छादुमत्थिए णाणे।
> देविंद-दाणविंदा करेंति महिमं जिणवरस्स[2] ॥ २४ ॥

एवंविहभावेण वड्ढमाणभडारएण तित्थुप्पत्ती कदा।

दव्व-खेत्त-भावपरूवणाणं संसकरणट्ठं कालपरूवणा कीरदे। तं जहा— दुविहो कालो ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीभेएण। जत्थ बलाउ-उस्सेहाणं उस्सप्पणं उड्ढी होदि सो कालो उस्सप्पिणी। जत्थ हाणी सो ओसप्पिणी। तत्थ एक्केक्को सुसम-सुसमादिभेएण[3] छव्विहो। तत्थ[4] एदस्स भरहखेत्तस्सोसप्पिणीए चउत्थे दुस्समसुसमकाले णवहि दिवसेहि छहि मासेहि य अहियतेत्तीसवासावसेसे | ३३ ६ ९ | तित्थुप्पत्ती जादा। उत्तं च—

यह भी इस प्रकारके स्वरूपसे संयुक्त वर्धमान भट्टारक ही हो सकते हैं, क्योंकि, उनके वचन युक्ति व शास्त्रसे अविरुद्ध हैं। यहां उपयुक्त गाथायें—

दर्शनमोह, चारित्रमोह तथा तीन अन्य घातिया कर्मोंके क्षीण हो जानेपर जीवोंके सम्यक्त्व, वीर्य और ज्ञान रूप वे क्षायिक भाव होते हैं ॥ २३ ॥

अनन्त ज्ञानके उत्पन्न होने और छाद्मस्थिक ज्ञानके नष्ट हो जानेपर देवेन्द्र एवं दानवेन्द्र जिनेन्द्रदेवकी महिमा करते हैं ॥ २४ ॥

इस प्रकारके भावसे युक्त वर्धमान भट्टारकने तीर्थकी उत्पत्ति की।

अब द्रव्य, क्षेत्र और भावकी प्ररूपणाओंके संस्कारार्थ कालप्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीके भेदसे काल दो प्रकार है। जिस कालमें बल, आयु व उत्सेधका उत्सर्पण अर्थात् वृद्धि होती है वह उत्सर्पिणी काल है। जिस कालमें उनकी हानि होती है वह अवसर्पिणी काल है। उनमें प्रत्येक सुखमा-सुखमादिकके भेदसे छह प्रकार है। उनमें इस भरतक्षेत्रके अवसर्पिणीके चतुर्थ दुखमा-सुखमा कालमें नौ दिन व छह मासोंसे अधिक तेतीस वर्षोंके (३३ वर्ष ६ मास ९ दिन) शेष रहनेपर तीर्थकी उत्पत्ति हुई। कहा भी है—

१ ष. खं. पु. १, पृ. ६४, जयध. १, पृ. ६८. २ जयध. १, पृ. ६८. ३ प्रतिषु 'सुसमादिमेएण' इति पाठः। ४ प्रतिषु 'तस्स' इति पाठः।

इम्मिस्से वसप्पिणीए चउत्थकालस्स पच्छिमे भाए ।
चोत्तीसवाससेसे किंचिविसेसूणकालम्मि[1] ॥ २५ ॥

तं जहा — पण्णारहदिवसेहिं अट्ठहि मासेहि य अहियं पचहत्तरिवासावसेसे चउत्थकाले | ७५ / ८ / १५ | पुप्फुत्तरविमाणादो आसाढजोण्णपक्खछट्ठीए महावीरो बाहत्तरिवासाउओ तिणाणहरो गब्भमोइण्णो[2] । तत्थ तीसवासाणि कुमारकालो, बारसवासाणि तस्स छदुमत्थकालो, केवलिकालो वि तीसं वासाणि; एदेसिं तिण्हं कालाणं समासो बाहत्तरिवासाणि । एदाणि पंचहत्तरिवासेसु सोहिदे वड्ढमाणजिणिंदे णिव्वुदे संते जो सेसो चउत्थकालो तस्स पमाणं होदि । एदम्मि छासट्ठिदिवसूणकेवलकाले पक्खित्ते णवदिवस-छम्मासाहियतेत्तीसवासाणि चउत्थकाले अवसेसाणि होंति । छासट्ठिदिवसावणयणं केवलकालम्मि किमट्ठं कीरदे ? केवलणाणे समुप्पण्णे वि तत्थ तित्थाणुप्पत्तीदो । दिव्वज्झुणीए किमट्ठं तत्थापउत्ती ? गणिंदाभावादो । सोहम्मिंदेण

इसी अवसर्पिणीके चतुर्थ कालके अन्तिम भागमें कुछ कम चौंतीस वर्ष प्रमाण कालके शेष रहनेपर [धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई] ॥ २५ ॥

वह इस प्रकारसे — पन्द्रह दिन और आठ मास अधिक पचत्तर वर्ष चतुर्थ कालमें शेष रहनेपर (७५ व. ८ मा. १५ दि.) पुष्पोत्तर विमानसे आषाढ़ शुक्ल षष्ठीके दिन बहत्तर वर्ष प्रमाण आयुसे युक्त और तीन ज्ञानके धारक महावीर भगवान् गर्भमें अवतीर्ण हुए । इसमें तीस वर्ष कुमारकाल, बारह वर्ष उनका छद्मस्थकाल, केवलिकाल भी तीस वर्ष, इस प्रकार इन तीन कालोंका योग बहत्तर वर्ष होते हैं । इनको पचत्तर वर्षोंमेंसे कम करनेपर वर्धमान जिनेन्द्रके मुक्त होनेपर जो शेष चतुर्थकाल रहता है उसका प्रमाण होता है । इसमें छयासठ दिन कम केवलिकालके जोड़नेपर नौ दिन और छह मास अधिक तेतीस वर्ष चतुर्थ कालमें शेष रहते हैं ।

शंका — केवलिकालमें छयासठ दिन कम किसलिये किये जाते हैं ?

समाधान — क्योंकि, केवलज्ञानके उत्पन्न होनेपर भी उनमें तीर्थकी उत्पत्ति नहीं हुई ।

शंका — इन दिनोंमें दिव्यध्वनिकी प्रवृत्ति किसलिये नहीं हुई ?

समाधान - गणधरका अभाव होनेसे उक्त दिनोंमें दिव्यध्वनिकी प्रवृत्ति नहीं हुई ।

शंका — सौधर्म इन्द्रने उसी क्षणमें ही गणधरको उपस्थित क्यों नहीं किया ?

१ ष. खं. पु. १, पृ. ६२. जयध. १, पृ. ७४.

२ पंचसप्ततिवर्षाष्टमास मासार्धशेषकः । चतुर्थस्तु तदा कालो दुःखमः सुखमोत्तरः ॥ ह. पु. २–२२.

तक्खणे चेव गणिंदो किण्ण ढोइदो ? काललद्धीए विणा असहायस्स देविंदस्स तड्ढोयणसत्तीए अभावादो। सगपादमूलम्मि पडिवण्णमहव्वयं मोत्तूण अण्णमुद्दिसिय दिव्वज्झुणी किण्ण पयट्टदे ? साहावियादो। ण च सहावो परपज्जणियोगारुहो, अव्ववत्थावत्तीदो[१]। तम्हा चोत्तीस-वाससेसे किंचिविसेसूणचउत्थकालम्मि तित्थुप्पत्ती जादा त्ति सिद्धं[२]।

अण्णे के वि आइरिया पंचहि दिवसेहि अट्ठहि मासेहि य ऊणाणि बाहत्तरि वासाणि त्ति वड्ढमाणजिणिंदाउअं परूवेंति | ७१ ३ २५ | । तेसिमहिप्पाएण गब्भत्थ-कुमार-छदुमत्थ[४]-केवल-कालाणं परूवणा कीरदे । तं जहा— आसाढजोण्णपक्खछट्ठीए कुंडलपुरणगराहिव-णाहवंस-सिद्धत्थणरिंदस्स तिसिलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहियणवमासे अच्छिय चइत्त-सुक्कपक्खतेरसीए उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो । एत्थ आसाढजोण्णपक्ख-छट्ठिमादिं कादूण जाव पुण्णिमा त्ति दस दिवसा होंति | १० | । पुणो सावणमासमादिं कादूण

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, काललब्धिके विना असहाय सौधर्म इन्द्रके उनको उपस्थित करनेकी शक्तिका उस समय अभाव था।

शंका—अपने पादमूलमें महाव्रतको स्वीकार करनेवालेको छोड़ अन्यका उद्देश कर दिव्यध्वनि क्यों नहीं प्रवृत्त होती ?

समाधान—नहीं होती, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है । और स्वभाव दूसरोंके प्रश्नके योग्य नहीं होता, क्योंकि, ऐसा होनेपर अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है ।

इस कारण चतुर्थ कालमें कुछ कम चौंतीस वर्ष शेष रहनेपर तीर्थकी उत्पत्ति हुई, यह सिद्ध है ।

अन्य कितने ही आचार्य पांच दिन और आठ मासोंसे कम बहत्तर वर्ष प्रमाण वर्धमान जिनेन्द्रकी आयु बतलाते हैं (७१ व. ३ मा. २५ दि.)। उनके अभिप्रायानुसार गर्भस्थ, कुमार, छद्मस्थ और केवलज्ञानके कालोंकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— आषाढ़ शुक्ल पक्ष षष्ठीके दिन कुण्डलपुर नगरके अधिपति नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्रकी त्रिशला देवीके गर्भमें आकर और वहां आठ दिन अधिक नौ मास रहकर चैत्र शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीके दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें गर्भसे बाहर आये । यहां आषाढ़ शुक्ल पक्षकी षष्ठीको आदि करके पूर्णिमा तक दश दिन होते हैं [१० दि.] । पुनः श्रावण मासको आदि करके आठ मास

१ प्रतिषु ' तड्ढायण ' इति पाठः । २ मप्रतौ ' अव्ववत्थादो ' इति पाठः । ३ जयध. १, पृ. ७५-७६. ४ प्रतिषु ' छदुमत्था ' इति पाठः ।

अट्ठमासे गब्भम्मि गमिय चइत्तमासम्मि सुक्कपक्खतेरसीए उप्पण्णो त्ति अट्ठावीस दिवसा तत्थ लब्भंति। एदेसु पुव्विल्लदसदिवसेसु पक्खित्तेसु मासो अट्ठदिवसाहिओ लब्भदि। तम्मि अट्ठमासेसु पक्खित्ते अट्ठदिवसाहियणवमासा गब्भत्थकालो होदि। तस्स संदिट्ठी | ९/८ |। एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ--

सुरमहिदो च्चुदकप्पे भोगं दिव्वाणुभागमणुभूदो।
पुप्फुत्तरणामादो विमाणदो जो चुदो संतो॥ २६॥

बाहत्तरिवासाणि य थोवविहूणाणि लद्धपरमाऊ।
आसाढजोण्णपक्खे छट्ठीए जोणिमुवयादो॥ २७॥

कुंडपुरपुरवरिस्सरसिद्धत्थक्खत्तियस्स णाहकुले।
तिसिलाए देवीए देवीसदसेवमाणाए॥ २८॥

अच्छित्ता णवमासे अट्ठ य दिवसे चइत्तसियपक्खे।
तेरसिए रत्तीए जादुत्तरफग्गुणीए दु[1]॥ २९॥

एवं गब्भट्ठिदकालपरूवणा कदा।

गर्भमें विताकर चैत्र मासमें शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको उत्पन्न हुए थे, अतः अट्ठाईस दिन चैत्र मासमें प्राप्त होते हैं। इनको पूर्वोक्त दश दिनोंमें मिला देनेपर आठ दिन सहित एक मास प्राप्त होता है। उसे आठ मासोंमें मिलानेपर आठ दिन अधिक नौ मास गर्भस्थकाल होता है। उसकी संदृष्टि [९ मा. ८ दि.]। यहां उपयुक्त गाथायें—

वर्धमान भगवान् अच्युत कल्पमें देवोंसे पूजित हो दिव्य प्रभावसे संयुक्त भोगोंका अनुभव कर पुनः पुष्पोत्तर नामक विमानसे च्युत होकर कुछ कम बहत्तर वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयुको प्राप्त करते हुए आषाढ़ शुक्ल पक्षकी षष्ठीके दिन योनिको प्राप्त हुए अर्थात् गर्भमें आये॥ २६–२७॥

तत्पश्चात् कुण्डलपुर रूप उत्तम पुरके ईश्वर सिद्धार्थ क्षत्रियके नाथकुलमें सैकड़ों देवियोंसे सेव्यमान त्रिशला देवीके [गर्भमें] नौ मास और आठ दिन रहकर चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें त्रयोदशीकी रात्रिमें उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए॥ २८–२९॥

इस प्रकार गर्भस्थित कालकी प्ररूपणा की है।

---

१ जयध. १, पृ. ७६–७८. नवमासेष्वतीतेषु स जिनोऽष्टदिनेषु च। उत्तराफाल्गुनीष्विंदौ वर्तमानेऽजनि प्रभुः॥ ह. पु. २–२५.

संपहि कुमारकालो उच्चदे— चइत्तमासस्स दो दिवसे |२| वइसाहमादिं कादूण अट्ठावीसं वासाणि |२८| पुणो वइसाहमादिं कादूण जाव कत्तिओ त्ति सत्तमासे च कुमारत्तणेण गमिय |७| तदो मग्गसिरकिण्हपक्खदसमीए णिक्खंत्तो त्ति एदस्स कालस्स पमाणं बारसदिवसं-सत्तमासाहियअट्ठवीसवासमेत्तं होदि | २८ ७ १२ | एत्थुववउज्जंतीओ गाहाओ—

मणुवत्तणसुहमउलं देवकयं सेविऊण वासाइं ।
अट्ठावीसं सत्त य मासे दिवसे य बारसयं ॥ ३० ॥

आहिणिबोहियबुद्धो छट्ठेण य मग्गसीसबहुले दु ।
दसमीए णिक्खंतो सुरमहिदो णिक्खमणपुज्जो[1] ॥ ३१ ॥

एवं कुमारकालपरूवणा कदा ।

संपधि छदुमत्थकालो वुच्चदे । तं जहा— मग्गसिरकिण्हपक्खएक्कारसिमादिं काऊण जाव मग्गसिरपुण्णिमा त्ति वीसदिवसे |२०| पुणो पुस्समासमादिं कादूण बारसवासाणि |१२| पुणो तं चेव मासमादिं कादूण चत्तारिमासे च |४| वइसाहजोण्णपक्खपंचवीसदिवसे

अब कुमारकालको कहते हैं— चैत्र मासके दो दिन [२], वैशाखको आदि लेकर अट्ठाईस वर्ष [२८], पुनः वैशाखको आदि करके कार्तिक तक सात मासको [७] कुमार स्वरूपसे बिताकर पश्चात् मगसिर कृष्ण पक्षकी दशमीके दिन दीक्षार्थ निकले थे। अतः इस कालका प्रमाण बारह दिन और सात मास अधिक अट्ठाईस वर्ष मात्र होता है [२८ वर्ष ७ मास १२ दिन] । यहां उपयुक्त गाथायें—

वर्धमान स्वामी अट्ठाईस वर्ष सात मास और बारह दिन देवकृत श्रेष्ठ मानुषिक सुखका सेवन करके आभिनिबोधिक ज्ञानसे प्रबुद्ध होते हुए षष्ठोपवासके साथ मगसिर कृष्णा दशमीके दिन गृहत्याग करके सुरकृत महिमाका अनुभव कर तप कल्याण द्वारा पूज्य हुए ॥ ३०-३१ ॥

इस प्रकार कुमारकालकी प्ररूपणा की है ।

अब छद्मस्थकाल कहते हैं। वह इस प्रकार है— मगसिर कृष्ण पक्षकी एकादशीको आदि करके मगसिरकी पूर्णिमा तक बीस दिन [२०], पुनः पौष मासको आदि करके बारह वर्ष [१२], पुनः उसी मासको आदि करके चार मास [४] और वैशाख शुक्ल पक्षकी दशमी तक वैशाखके पच्चीस दिनोंको

---

१ जयध. १, पृ. ७८.

च |२५| छदुमत्थत्तणेण गमिय वइसाहजोण्णपक्खदसमीए उजुकूलणदीतीरे जिंभियगामस्स बाहिं छट्ठोववासेण सिलावट्टे आदावेंतेण अवरण्हे पादछायाए केवलणाणमुप्पाइदं। तेणेदस्स कालस्स पमाणं पण्णारसदिवस-पंचमासाहियबारसवासमेत्तं होदि | १२ ५ १५ | । एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ —

गमइय छदुमत्थत्तं बारसवासाणि पंच मासे य।
पण्णरसाणि दिणाणि य तिरयणसुद्धो महावीरो ॥ ३२ ॥
उजुकूलणदीतीरे जंभियगामे बहिं सिलावट्टे।
छट्ठेणादावेंतो अवरण्हे पायछायाए ॥ ३३ ॥
वइसाहजोण्णपक्खे दसमीए खवगसेडिमारूढो।
हंतूण घाइकम्मं केवलणाणं समावण्णो[1] ॥ ३४ ॥

एवं छदुमत्थकालो परूविदो।

संपहि केवलकालो उच्चदे। तं जहा — वइसाहजोण्णपक्खएक्कारसिमादिं[2] कादूण जाव पुण्णिमा त्ति पंच दिवसे |५| पुणो जेट्ठप्पहुडि एगूणतीसवासाणि |२९| तं चेव मासमादिं

छद्मस्थ स्वरूपसे बिताकर वैशाख शुक्ल पक्षकी दशमीके दिन ऋजुकूला नदीके तीर-पर जृंभिका ग्रामके बाहर षष्ठोपवासके साथ शिलापट्टपर आतापन योग सहित होकर अपराह्ण कालमें पादपरिमित छायाके होनेपर केवलज्ञान उत्पन्न किया। इस लिये इस कालका प्रमाण पन्द्रह दिन और पांच मास अधिक बारह वर्ष मात्र होता है [१२ वर्ष ५ मास १५ दिन]। यहां उपयुक्त गाथायें—

रत्नत्रयसे विशुद्ध महावीर भगवान् बारह वर्ष, पांच मास और पन्द्रह दिन छद्मस्थ अवस्थामें बिताकर ऋजुकूला नदीके तीरपर जृम्भिका ग्राममें बाहर शिलापट्टपर षष्ठोपवासके साथ आतापन योग युक्त होते हुए अपराह्ण कालमें पादपरिमित छायाके होने-पर वैशाख शुक्ल पक्षकी दशमीके दिन क्षपक श्रेणीपर आरूढ़ होकर एवं घातिया कर्मोंको नष्ट कर केवलज्ञानको प्राप्त हुए ॥ ३२—३४ ॥

इस प्रकार छद्मस्थकालकी प्ररूपणा की।

अब केवलकाल कहते हैं। वह इस प्रकार है— वैशाख शुक्ल पक्षकी एकादशीको आदि करके पूर्णिमा तक पांच दिन [५], पुनः ज्येष्ठसे लेकर उनतीस वर्ष [२९], उसी

१ जयध. १, पृ. ७९-८०. २ अ-काप्रत्योः ' एक्कारस- ' इति पाठः।

काऊण जाव आसउज्जो त्ति पंचमासे |५| पुणो कत्तियमासकिण्हपक्खचोद्दसदिवसे च केवलणाणेण सह एत्थ गमिय णिव्वुदो |१४|। अमावासीए[1] परिणिव्वाणपूजा सयलदेविंदेहि कया त्ति तं पि दिवसमेत्थेव पक्खित्ते पण्णारस दिवसा होंति। तेणेदस्स पमाणं वीसदिवस-पंचमासाहियएगुणतीसवासमेत्तं होदि |२९ ५ २०|। एत्थुववउज्जंतीओ गाहाओ—

वासाणूणत्तीसं पंच य मासे य वीसदिवसे य।
चउविहअणगारेहिं बारहहि गणेहि विहरंतो ॥ ३५ ॥

पच्छा पावाणयरे कत्तियमासे य किण्हचोद्दसिए।
सादीए रत्तीए सेसरयं छेत्तु णिव्वाओ[2] ॥ ३६ ॥

एवं केवलकालो परूविदो।

परिणिव्वुदे जिणिंदे चउत्थकालस्स जं भवे सेसं।
वासाणि तिण्णि मासा अट्ठ य दिवसा वि पण्णरसा ॥ ३७ ॥

संपहि कत्तियमासम्मि पण्णारसदिवसेसु मग्गसिरादितिण्णिवासेसु अट्ठमासेसु च महा-

मासको आदि करके आसोज तक पांच मास [५], पुनः कार्तिक मासके कृष्ण पक्षके चौदह दिनोंको भी केवलज्ञानके साथ यहां बिताकर मुक्तिको प्राप्त हुए [१४]। चूंकि अमावस्याके दिन सब देवेन्द्रोंने परिनिर्वाणपूजा की थी, अतः उस दिनको भी इसीमें मिलानेपर पन्द्रह दिन होते है। इस कारण इसका प्रमाण बीस दिन और पांच मास अधिक उनतीस वर्ष मात्र होता है [२९ व.५ मा. २० दि.]। यहां उपयुक्त गाथायें—

भगवान् महावीर उनतीस वर्ष, पांच मास और बीस दिन चार प्रकारके अनगारों व बारह गणोंके साथ विहार करते हुए पश्चात् पावा नगरमें कार्तिक मासमें कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको स्वाति नक्षत्रमें रात्रिको शेष रज अर्थात् अघातिया कर्मोंको नष्ट करके मुक्त हुए ॥ ३५-३६ ॥

इस प्रकार केवलकालकी प्ररूपणा की।

महावीर जिनेन्द्रके मुक्त होनेपर चतुर्थ कालका जो शेष है वह तीन वर्ष, आठ मास और पन्द्रह दिन प्रमाण है ॥ ३७ ॥

अब भगवान् महावीरके निर्वाणगत दिनसे कार्तिक मासमें पन्द्रह दिन, मगसिरको

१ आ-काप्रत्योः 'अमवासीए' इति पाठः। २ जयध. १, पृ. ८०-८१.

वीरणिव्वाणगयदिवसादो गदेसु सावणमासपडिवयाए दुसमकालो ओदिण्णो | ३ ८ १५ |। एदं कालं वड्ढमाणजिणिंदाउअम्मि पक्खित्ते दसदिवसाहियपंचहत्तरिवासमेत्तावसेसे चउत्थकाले सग्गादो वड्ढमाणजिणिंदस्स ओदिण्णकालो होदि | ७५ १० |।

दोसु वि उवएसेसु को एत्थ समंजसो, एत्थ ण बाहइ जिब्भमेलाइरियवच्छओ; अलद्धोवदेसत्तादो दोण्णमेक्कस्स बाहाणुवलंभादो। किंतु दोसु एक्केण होदव्वं। तं जाणिय वत्तव्वं[1]।

एवमत्थकत्तारपरूवणा कदा।

संपहि गंथकत्तारपरूवणं कस्सामो। वयणेण विणा अत्थपदुप्पायणं ण सभवइ, सुहुमत्थाणं सण्णाए परूवणाणुववत्तीदो। ण चाणक्खराए झुणीए अत्थपदुप्पायणं जुज्जदे, अणक्खरभासतिरिक्खे मोत्तूणण्णेसिं तत्तो अत्थावगमाभावादो। ण च दिव्वज्झुणी अणक्खरप्पिया चेव, अट्ठारस-सत्तसयभास-कुभासप्पियत्तादो। तदो अत्थपरूवओ चेव गंथपरूवओ

आदि लेकर तीन वर्ष और आठ मासोंके वीतनेपर श्रावण मासकी प्रतिपदाके दिन दुखमा काल अवतीर्ण हुआ [३ व. ८ मा. १५ दि.]। इस कालको वर्धमान जिनेन्द्रकी आयुमें मिला देनेपर दश दिन अधिक पचत्तर वर्ष मात्र चतुर्थ कालके शेष रहनेपर वर्धमान जिनेन्द्रके स्वर्गसे अवतीर्ण होनेका काल होता है [७५ व. १० दि.]।

उक्त दो उपदेशोंमें कौनसा उपदेश यथार्थ है, इस विषयमें एलाचार्यका शिष्य (वीरसेन स्वामी) अपनी जीभ नहीं चलाता अर्थात् कुछ नहीं कहता, क्योंकि, न तो इस विषयका कोई उपदेश प्राप्त है और न दोमेंसे एकमें कोई बाधा ही उत्पन्न होती है। किन्तु दोनोंमेंसे एक ही सत्य होना चाहिये। उसे जानकर कहना उचित है।

इस प्रकार अर्थकर्ताकी प्ररूपणा की।

अब ग्रन्थकर्ताकी प्ररूपणा करते हैं।

शंका—वचनके विना अर्थका व्याख्यान सम्भव नहीं है, क्योंकि, सूक्ष्म पदार्थोंकी संज्ञा अर्थात् संकेत द्वारा प्ररूपणा नहीं बन सकती। यदि कहा जाय कि अनक्षरात्मक ध्वनि द्वारा अर्थकी प्ररूपणा होसकती है, सो यह भी योग्य नहीं है; क्योंकि, अनक्षर भाषा युक्त तिर्यंचोंको छोड़कर अन्य जीवोंको उससे अर्थज्ञान नहीं हो सकता। और दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक ही हो, सो भी नहीं है; क्योंकि, वह अठारह भाषा एवं सात सौ कुभाषा स्वरूप है। इसी कारण चूंकि अर्थका प्ररूपक ही ग्रन्थका प्ररूपक होता है, अतः ग्रन्थकर्ताकी

[1] जयध. १, पृ. ८१-८२.

त्ति गंथकत्तारपरूवणा ण कायव्वा इदि ? ण एस दोसो, संखित्तसद्दरयणमणंतत्थावगमहेदु-भूदाणेगलिंगसंगयं बीजपदं णाम । तेसिमणेयाणं बीजपदाणं दुवालसंगप्पयाणमट्ठारस-सत्त-सयभास-कुभाससरूवाणं परूवओ अत्थकत्तारो णाम, बीजपदणिलीणत्थपरूवयाणं दुवाल-संगाणं कारओ गणहरभडारओ गंथकत्तारओ त्ति अब्भुवगमादो । बीजपदाणं वक्खाणओ त्ति वुत्तं होदि । किमट्ठं तस्स परूवणा कीरदे ? गंथस्स पमाणत्तपदुप्पायणट्ठं । ण च राग-दोस-मोहोवहओ जहुत्तत्थपरूवओ, तत्थ सच्चवयणणियमाभावादो । तम्हा तप्परूवणा कीरदे । तं जहा— पंचमहव्वयधारओ तिगुत्तिगुत्तो पंचसमिदो णट्ठट्ठमदो मुक्कसत्तभओ बीज-कोट्ठ-पदाणुसारि-संभिण्णसोदारत्तुवलक्खिओ उक्कट्ठोहिणाणेण असंखेज्जलोगमेत्तकालम्मि तीदाणा-गद-वट्टमाणासेसपरमाणुपेरंतमुत्तिदव्वपज्जायाणं च पच्चक्खेण जाणंतओ तत्ततवलद्धीदो णीहारविवज्जिओ दित्ततवलद्धिगुणेण सव्वकालोववासो वि संतो सरीरतेजुज्जोइयदसदिसो

प्ररूपणा नहीं करना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, संक्षिप्त शब्दरचनासे सहित व अनन्त अर्थोंके ज्ञानके हेतुभूत अनेक चिह्नोंसे संयुक्त बीजपद कहलाता है । अठारह भाषा व सात सौ कुभाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीजपदोंका प्ररूपक अर्थकर्ता है, तथा बीजपदोंमें लीन अर्थके प्ररूपक बारह अंगोंके कर्ता गणधर भट्टारक ग्रन्थकर्ता हैं, ऐसा स्वीकार किया गया है । अभिप्राय यह कि बीजपदोंका जो व्याख्याता है वह ग्रन्थकर्ता कहलाता है ।

शंका—उक्त कर्ताकी प्ररूपणा किसलिये की जाती है ?

समाधान—ग्रन्थकी प्रमाणताको बतलानेके लिये कर्ताकी प्ररूपणा की जाती है । राग, द्वेष व मोहसे युक्त जीव यथोक्त अर्थोंका प्ररूपक नहीं हो सकता, क्योंकि, उसमें सत्य वचनके नियमका अभाव है । इसी कारण उसकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है—

पांच महाव्रतोंके धारक, तीन गुप्तियोंसे रक्षित, पांच समितियोंसे युक्त, आठ मदोंसे रहित, सात भयोंसे मुक्त; बीज, कोष्ठ, पदानुसारी व सम्भिन्नश्रोतृत्व बुद्धियोंसे उपलक्षित; प्रत्यक्षभूत उत्कृष्ट अवधिज्ञानसे असंख्यात लोक मात्र कालमें अतीत, अनागत एवं वर्तमान परमाणु पर्यन्त समस्त मूर्त द्रव्य व उनकी पर्यायोंको जाननेवाले, तप्ततप लब्धिके प्रभावसे मल-मूत्र रहित, दीप्ततप लब्धिके बलसे सर्व काल उपवास युक्त होकर भी शरीरके तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले, सर्वौषधि लब्धिके निमित्तसे

१ प्रतिषु 'पत्त्राण-' इति पाठः । २ प्रतिषु 'तीदाणागदाणं वट्टमाणा-' इति पाठः ।

सव्वोसहिलद्धिगुणेण सव्वोसहसरूवो अणंतबलादो करंगुलियाए[1] तिहुवणचालणक्खमो अमिया-सवीलद्धिबलेण[2] अंजलिपुडणिवदिदसयलाहारे अमियत्तणेण परिणमणक्खमो महातवगुणेण कप्परुक्खोवमो महाणसक्खीणलद्धिबलेण[3] सगहत्थणिवदिदाहाराणमक्खयभावुप्पायओ अघोर-तवमाहप्पेण जीवाणं मण-वयण-कायगयासेसदुत्थियत्तणिवारओ सयलविज्जाहि सेवियपादमूलो आयासचारणगुणेण रक्खियासेसजीवणिवहो वायाए मणेण य सयलत्थसंपादणक्खमो अणिमादिअट्ठगुणेहि जियासेसदेवणिवहो तिहुवणजणजेट्ठओ परोवदेसेण विणा अक्खराणक्खर-सरूवासेसभासंतरकुसलो समवसरणजणमेत्तरूवधारित्तणेण अम्हम्हाणं भासाहि अम्हम्हाणं चेव कहदि त्ति सव्वेसिं पच्चउप्पायओ समवसरणजणसोदिंदिएसु सगमुहविणिग्गयाणेयभासाणं संकरेण पवेसस्स विणिवारओ गणहरदेवो गंथकत्तारो, अण्णहा गंथस्स पमाणत्तविरोहादो धम्मरसायणेण समोसरणजणपोसणाणुववत्तीदो । एत्थुववज्जंती गाहा —

बुद्धि-तव-विउवणोसह-रस-बल-अक्खीण-सुस्सरत्तादी[4] ।
ओहि-मणपज्जवेहि य हवंति गणवालया सहिया ॥ ३८ ॥

समस्त औषधियों स्वरूप, अनन्त बल युक्त होनेसे हाथकी कनिष्ठ अंगुलि द्वारा तीनों लोकोंको चलायमान करनेमें समर्थ, अमृतास्रव आदि ऋद्धियोंके बलसे हस्तपुटमें गिरे हुए सब आहारोंको अमृत स्वरूपसे परिणमानेमें समर्थ, महातप गुणसे कल्पवृक्षके समान, अक्षीण-महानस लब्धिके बलसे अपने हाथोंमें गिरे हुए आहारोंकी अक्षयताके उत्पादक, अघोरतप ऋद्धिके माहात्म्यसे जीवोंके मन, वचन एवं काय गत समस्त कष्टोंको दूर करनेवाले, सम्पूर्ण विद्याओंके द्वारा सेवित चरणमूलसे संयुक्त, आकाशचारण गुणसे सब जीव-समूहोंकी रक्षा करनेवाले, वचन एवं मनसे समस्त पदार्थोंके सम्पादन करनेमें समर्थ, अणिमादिक आठ गुणोंके द्वारा सब देवसमूहोंको जीतनेवाले, तीनों लोकोंके जनोंमें श्रेष्ठ, परोपदेशके विना अक्षर व अनक्षर रूप सब भाषाओंमें कुशल, समवसरणमें स्थित जन मात्रके रूपके धारी होनेसे 'हमारी-हमारी भाषाओंसे हम-हमको ही कहते हैं' इस प्रकार सबको विश्वास करानेवाले, तथा समवसरणस्थ जनोंके कर्ण इन्द्रियोंमें अपने मुहसे निकली हुई अनेक भाषाओंके सम्मिश्रित प्रवेशके निवारक ऐसे गणधर देव ग्रन्थकर्ता हैं, क्योंकि, ऐसे स्वरूपके विना ग्रन्थकी प्रमाणताका विरोध होनेसे धर्म-रसायन द्वारा समवसरणके जनोंका पोषण बन नहीं सकता । यहां उपयुक्त गाथा—

गणधर देव बुद्धि, तप, विक्रिया, औषध, रस, बल, अक्षीण, सुस्वरत्वादि ऋद्धियों तथा अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञानसे सहित होते हैं ॥ ३८ ॥

---

१ प्रतिषु ' कालंगुलियाए ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' अमयादिलद्धिबलेण ', मप्रतौ ' अमियादिसादिलद्धिबलेण ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' महाणसक्कीण- ' इति पाठः ।

४ अ-काप्रत्योः '-विउलवण्णोबारस-', आप्रतौ '-विउवणोसवारस-', मप्रतौ '-विउवणोसावारस-' इति पाठः ।

संपहि वड्ढमाणतित्थगंथकत्तारो वुच्चदे—

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच ।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य ॥ २९ ॥

को होदि त्ति सोहम्मिंदचालणादो जादसंदेहेण पंच-पंचसयंतेवासिसहियभादुत्तिदय-परिवुदेण माणत्थंभदंसणेणेव पणट्ठमाणेण वड्ढमाणविसोहिणा वड्ढमाणजिणिंददंसणे वणट्ठा-संखेज्जभवज्जियगरुवकम्मेण जिणिंदस्स तिपदाहिणं करिय पंचमुट्ठीए वंदिय हियएण जिणं झाइय पडिवण्णसंजमेण विसोहिबलेण अंतोमुहुत्तस्स उप्पण्णासेसगणिंदलक्खणेण उवलद्ध-जिणवयणविणिग्गयबीजपदेण गोदमगोत्तेण बम्हणेण इंदभूदिणा आयार-सूदयद-ट्ठाण-समवाय-वियाहपण्णत्ति-णाहधम्मकहोवासयज्झयणंतयडदस-अणुत्तरोववादियदस-पण्णवायरण-विवाय-सुत्त-दिट्ठिवादाणं सामाइय-चउवीसत्थय-वंदणा-पडिक्कमण-वइणइय-किदियम्म-दसवेयालि-उत्तरज्झयण-कप्पववहार-कप्पाकप्प-महाकप्प-पुंडरीय-महापुंडरीय-णिसिहियाणं चोद्दसपइण्णयाण-मंगबज्झाणं च सावणमासबहुलपक्खजुगादिपडिवयपुव्वदिवसे जेण रयणा कदा तेणिंदभूदि-

---

अब वर्धमान जिनके तीर्थमें ग्रन्थकर्ताको कहते हैं —

पांच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पांच महाव्रत, आठ प्रवचनमाता अर्थात् पांच समिति और तीन गुप्ति तथा सहेतुक बन्ध और मोक्ष ॥ २९ ॥

'उक्त पांच अस्तिकायादिक क्या हैं ?' ऐसे सौधर्मेन्द्रके प्रश्नसे संदेहको प्राप्त हुए, पांच सौ पांच सौ शिष्योंसे सहित तीन भ्राताओंसे वेष्टित, मानस्तम्भके देखनेसे ही मानसे रहित हुए, वृद्धिको प्राप्त होनेवाली विशुद्धिसे संयुक्त, वर्धमान भगवान्के दर्शन करनेपर असंख्यात भवोंमें अर्जित महान् कर्मोको नष्ट करनेवाले; जिनेन्द्र देवकी तीन प्रदक्षिणा करके पंच मुष्टियोंसे अर्थात् पांच अंगों द्वारा भूमिस्पर्शपूर्वक वंदना करके एवं हृदयसे जिन भगवान्का ध्यान कर संयमको प्राप्त हुए, विशुद्धिके बलसे मुहुर्तके भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधरके लक्षणोंसे संयुक्त, तथा जिनमुखसे निकले हुए बीजपदोंके ज्ञानसे सहित ऐसे गौतम गोत्रवाले इन्द्रभूति ब्राह्मण द्वारा चूंकि आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृतदशांग, अनुत्तरोपपादिक-दशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग व दृष्टिवादांग, इन बारह अंगों तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका, इन अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकोंकी श्रावण मासके कृष्ण पक्षमें युगके आदिमें प्रतिपदाके पूर्व दिनमें रचना की

---

१ प्रतिषु ' उप्पण्णे सेसगणिंदि- ' इति पाठः ।

२ अ-आप्रत्योः ' दसवेयादि ', ' काप्रतौ ' दसवेयालियादि ' इति पाठः ।

भडारओ वड्ढमाणजिणतित्थगंथकत्तारो । उत्तं च —

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले ।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि[1] ॥ ४० ॥

एवं उत्तरतंतकत्तारपरूवणा कदा ।

संपहि उत्तरोत्तरतंतकत्तारपरूवणं कस्सामो । तं जहा— कत्तियमासकिण्णपक्ख-चोद्दसरत्तीए पच्छिमभाए महदिमहावीरे णिव्वुदे संते केवलणाणसंताणहरो गोदमसामी जादो । बारहवरसाणि केवलविहारेण विहरिय गोदमसामिम्हि णिव्वुदे संते लोहज्जाइरिओ केवलणाण-संताणहरो जादो । बारहवासाणि केवलविहारेण विहरिय लोहज्जभडारए णिव्वुदे संते जंबू-भडारओ केवलणाणसंताणहरो जादो । अट्ठत्तीसवस्साणि केवलविहारेण विहरिय जंबूभडारए परिणिव्वुदे संते केवलणाणसंताणस्स वोच्छेदो जादो भरहक्खेत्तम्मि । एवं महावीरे णिव्वाणं गदे बासट्ठिवरसेहि केवलणाणदिवायरो भरहम्मि अत्थमिदि [६२ । ३] । णवरि तक्काले सयल-सुदणाणसंताणहरो विण्णुआइरियो जादो । तदो अत्तुट्टसंताणरूवेण णंदिआइरिओ अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे सकलसुदधारया जादा । एदेसिं पंचण्हं पि सुदकेवलीणं काल-

थी, अतएव इन्द्रभूति भट्टारक वर्धमान जिनके तीर्थमें ग्रन्थकर्ता हुए । कहा भी है—

वर्षके प्रथम मास व प्रथम पक्षमें श्रावण कृष्ण प्रतिपदाके पूर्व दिनमें अभिजित् नक्षत्रमें तीर्थकी उत्पत्ति हुई ॥ ४० ॥

इस प्रकार उत्तरतंत्रकर्ताकी प्ररूपणा की ।

अब उत्तरोत्तर तंत्रकर्ताओंकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— कार्तिक मासमें कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीकी रात्रिके पिछले भागमें अतिशय महान् महावीर भगवान्‌के मुक्त होनेपर केवलज्ञानकी सन्तानको धारण करनेवाले गौतम स्वामी हुए । बारह वर्ष तक केवलविहारसे विहार करके गौतम स्वामीके मुक्त हो जानेपर लोहार्य आचार्य केवलज्ञान-परम्पराके धारक हुए । बारह वर्ष केवलविहारसे विहार करके लोहार्य भट्टारकके मुक्त हो जानेपर जम्बू भट्टारक केवलज्ञानकी परम्पराके धारक हुए । अड़तीस वर्ष केवलविहारसे विहार करके जम्बू भट्टारकके मुक्त हो जानेपर भरत क्षेत्रमें केवलज्ञानपरम्पराका व्युच्छेद हो गया । इस प्रकार भगवान् महावीरके निर्वाणको प्राप्त होनेपर बासठ वर्षोंसे केवलज्ञान रूपी सूर्य भरत क्षेत्रमें अस्त हुआ [६२ वर्षमें ३ के.] । विशेष यह है कि उस कालमें सकल श्रुतज्ञानकी परम्पराको धारण करनेवाले विष्णु आचार्य हुए । पश्चात् अविच्छिन्न सन्तान स्वरूपसे नन्दि आचार्य, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, ये सकल श्रुतके धारक हुए । इन पांच

१ ष. खं. पु. १, पृ. ६३; ति. प. १, ६९. २ जयध. १, पृ. ८४.

समासो बस्ससदं | १०० | ५ | । तदो भद्दबाहुभडारए सग्गं गदे संते भरहक्खेत्तम्मि अत्थमिओ सुदणाण-संपुण्णमियंको, भरहखेत्तमाऊरियमण्णाणंधयारेण । णवरि एक्कारसण्णमंगाणं विज्जाणुपवादपेरंतदिट्ठिवादस्स य धारओ विसाहाइरिओ जादो । णवरि उवरिमचत्तारि वि पुव्वाणि वोच्छिण्णाणि तदेगदेसधारणादो । पुणो तं विगलसुदणाणं पोट्ठिल्ल-खत्तिय-जय-णाग-सिद्धत्थ-धिदिसेण-विजय-बुद्धिल्ल-गंगदेव-धम्मसेणाइरियपरंपराए तेयासीदिवरिससयाइमागंतूण वोच्छिण्णं | १८३ । ११ | । तदो धम्मसेणभडारए सग्गं गदे णट्ठे दिट्ठिवादुज्जोए एक्कारसण्णमंगाणं दिट्ठिवादेगदेसस्स य धारयो णक्खत्ताइरियो जादो । तदो तमेक्कारसंगं सुदणाणं जयपाल-पांडु-धुवसेण-कंसा त्ति आइरियपरंपराए वीसुत्तरबेसदवासाइमागंतूण वोच्छिण्णं । | २२० । ५ | । तदो कंसाइरिए सग्गं गदे वोच्छिण्णे एक्कारसंगुज्जोवे सुभद्दाइरियो आयारंगस्स सेसंग-पुव्वाणमेगदेसस्स य धारओ जादो । तदो तमायारंगं पि जसभद्द-जसबाहु-लोहाइरियपरंपराए अट्ठारहोत्तरवरिससयमागंतूण वोच्छिण्णं | ११८ । ४ | । सव्वकालसमासो तेयासीदीए अहियछस्सदमेत्तो | ६८३ | । पुणो एत्थ सत्तमासाहियसत्तहत्तरिवासेसु | ७७ / ७ |

श्रुतकेवलियोंके कालका योग सौ वर्ष है [१०० वर्षमें ५ श्रु. के.]। पश्चात् भद्रबाहु भट्टारकके स्वर्गको प्राप्त होनेपर भरतक्षेत्रमें श्रुतज्ञान रूपी पूर्ण चन्द्र अस्तमित हो गया। अब भरतक्षेत्र अज्ञान अन्धकारसे परिपूर्ण हुआ। विशेष इतना है कि उस समय ग्यारह अंगों और विद्यानुवाद पर्यन्त दृष्टिवाद अंगके भी धारक विशाखाचार्य हुए। विशेषता यह है कि इसके आगेके चार पूर्व उनका एक देश धारण करनेसे व्युच्छिन्न हो गये। पुनः वह विकल श्रुतज्ञान प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन, इन आचार्योंकी परम्परासे एक सौ तरासी वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया [१८३ वर्षमें ११ एकादशांग-दशपूर्वधर]। पश्चात् धर्मसेन भट्टारकके स्वर्गको प्राप्त होनेपर दृष्टिवाद-प्रकाशके नष्ट हो जानेसे ग्यारह अंगों और दृष्टिवादके एक देशके धारक नक्षत्राचार्य हुए। तदनन्तर वह एकादशांग श्रुतज्ञान जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस, इन आचार्योंकी परम्परासे दो सौ बीस वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया [२२० वर्षमें ५ एकादशांगधर]। तत्पश्चात् कंसाचार्यके स्वर्गको प्राप्त होनेपर ग्यारह अंग रूप प्रकाशके व्युच्छिन्न हो जानेपर सुभद्राचार्य आचारांगके और शेष अंगों एवं पूर्वोंके एक देशके धारक हुए। तत्पश्चात् वह आचारांग भी यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्यकी परम्परासे एक सौ अठारह वर्ष आकार व्युच्छिन्न हो गया [११८ वर्षमें ४ आचारांगधर]। इस सब कालका योग छह सौ तरासी वर्ष होता है [६२ + १०० + १८३ + २२० + ११८ = ६८३]। पुनः इसमेंसे सात मास अधिक सतत्तर वर्षोंको

१ जयध. १, पृ. ८५-८६; ध. पु. १, ६६-६५.

भवणिदेसु पंचमासाहियपंचुत्तरछस्सदवासाणि हवंति । एसो वीरजिणिंदणिव्वाणगददिवसादो जाव सगकालस्स आदी होदि तावदियकालो । कुदो ? | ६०५ / ५ | एदम्हि काले सगणरिंदकालम्मि पक्खित्ते वड्ढमाणजिणणिव्वुदकालागमणादो । वुत्तं च —

पंच य मासा पंच य वासा छच्चेव होंति वाससया ।
सगकालेण य सहिया थावेयव्वो तदो रासी[1] ॥ ४१ ॥

अण्णे के वि आइरिया चोद्दससहस्स-सत्तसद-तिणउदिवासेसु जिणणिव्वाणदिणादो अइक्कंतेसु सगणरिंदुप्पत्तिं भणंति | १४७९३ | । वुत्तं च —

गुत्ति-पयत्थ-भयाइं चोद्दसरयणाइ समइक्कंताइं ।
परिणिव्वुदे जिणिंदे तो रज्जं सगणरिंदस्स[2] ॥ ४२ ॥

अण्णे के वि आइरिया एवं भणंति । तं जहा— सत्तसहस्स-णवसय-पंचाणउदि-

---

[७७ वर्ष ७ मास] कम करनेपर पांच मास अधिक छह सौ पांच वर्ष होते हैं । यह, वीर जिनेन्द्रके निर्वाण प्राप्त होनेके दिनसे लेकर जब तक शककालका प्रारम्भ होता है, उतना काल है । इस कालके ६०५ वर्ष और ५ माह होनेका कारण यह कि इस कालमें शक नरेन्द्रके कालको मिला देनेपर वर्धमान जिनके मुक्त होनेका काल आता है । कहा भी है —

पांच मास, पांच दिन और छह सौ वर्ष होते हैं । इस लिये शककालसे सहित राशि स्थापित करना चाहिये ॥ ४१ ॥

अन्य कितने ही आचार्य वीर जिनेन्द्रके मुक्त होनेके दिनसे चौदह हजार सात सौ तेरानबै वर्षोंके वीत जानेपर शक नरेन्द्रकी उत्पत्तिको कहते हैं [१४७९३] । कहा भी है—

वीर जिनेन्द्रके मुक्त होनेके पश्चात् गुप्ति[3], पदार्थ[9], भय[7] और चौदह[14] रत्नों अर्थात् चौदह हजार सात सौ तेरानबै वर्षोंके वीतनेपर शक नरेन्द्रका राज्य हुआ ॥ ४२ ॥

अन्य कितने ही आचार्य इस प्रकार कहते हैं । जैसे— वर्धमान जिनके मुक्त

---

१ णिव्वाणे वीरजिणे छव्वाससदेसु पंचवरिसेसु । पणमासेसु गदेसुं संजादो सगणिओ अहवा ॥ ति. प. ४, १४९९. वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रं मासपंचकम् । मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत् ॥ ह. पु. ६०, ५५१.

२ चोद्दससहस्ससगसयतेणउंदीवासकालविच्छेदे । वीरेसरसिद्धीदो उप्पण्णो सगणिओ अहवा ॥ ति. प. ४, १४९८.

वरिसेसु पंचमासाहिएसु वड्ढमाणजिणणिव्वुददिणादो अइक्कंतेसु सगणरिंदरज्जुप्पत्ती जादो त्ति। एत्थ गाहा—

सत्तसहस्सा णवसद पंचाणउदी सपंचमासा य।
अइक्कंता वासाणं जइया तइया सगुप्पत्ती ॥ ४३ ॥ | ७९९५ / ५ |

एदेसु तिसु एक्केण होदव्वं। ण तिण्णमुवदेसाण सच्चत्तं, अण्णोण्णविरोहादो। तदो जाणिय वत्तव्वं।

एत्तो उवरि पयदं परूवेमो — लोहाइरिये सग्गलोगं गदे आयार-दिवायरो अत्थमिओ। एवं बारससु दिणयरेसु भरहखेत्तम्मि अत्थमिएसु सेसाइरिया सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेगदेसभूद-पेज्जदोस-महाकम्मपयडिपाहुडादीणं धारया जादा। एवं पमाणीभूदमहरिसिपणालेण आगंतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपवाहो धरसेणभडारयं संपत्तो। तेण वि गिरिणयरचंदगुहाए भूदबलि-पुप्फदंताणं महाकम्मपयडिपाहुडं सयलं समप्पिदं। तदो भूदबलिभडारएण सुद-णईपवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठं महाकम्मपयडिपाहुडमुवसंहरिऊण छखंडाणि कयाणि। तदो तिकालगोयरासेसपयत्थविसयपच्चक्खाणंतकेवलणाणप्पभावादो पमाणीभूद-आइरियपणालेणागदत्तादो दिट्ठिट्ठविरोहाभावादो पमाणमेसो गंथो। तम्हा मोक्खकंखिणा

होनेके दिनसे पांच मास अधिक सात हजार नौ सौ पंचानबे वर्षोंके बीतनेपर शक नरेन्द्रके राज्यकी उत्पत्ति हुई। यहां गाथा—

जब सात हजार नौ सौ पंचानबै वर्ष और पांच मास बीत गये तब शक नरेन्द्रकी उत्पत्ति हुई ॥ ४३ ॥ [७९९५ व. ५ मा.]

इन तीन उपदेशोंमें एक होना चाहिये। तीनों उपदेशोंकी सत्यता सम्भव नहीं है, क्योंकि, इनमें परस्पर विरोध है। इस कारण जानकर कहना चाहिये।

यहांसे आगे प्रकृतकी प्ररूपणा करते हैं— लोहाचार्यके स्वर्गलोकको प्राप्त होनेपर आचारांगरूपी सूर्य अस्त हो गया। इस प्रकार भरतक्षेत्रमें बारह सूर्योंके अस्तमित हो जानेपर शेष आचार्य सब अंग-पूर्वोंके एकदेशभूत 'पेज्जदोस' और 'महाकम्मपयडिपाहुड' आदिकोंके धारक हुए। इस प्रकार प्रमाणीभूत महर्षि रूप प्रणालीसे आकर महाकम्मपयडिपाहुड रूप अमृत-जल-प्रवाह धरसेन भट्टारकको प्राप्त हुआ। उन्होंने भी गिरिनगरकी चन्द्र गुफामें सम्पूर्ण महाकम्मपयडिपाहुड भूतबलि और पुष्पदन्तको अर्पित किया। पश्चात् श्रुतरूपी नदीप्रवाहके व्युच्छेदसे भयभीत हुए भूतबलि भट्टारकने भव्य जनोंके अनुग्रहार्थ महाकम्मपयडिपाहुडका उपसंहार कर छह खण्ड (षट्खंडागम) किये। अतएव त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाले प्रत्यक्ष अनन्त केवल ज्ञानके प्रभावसे प्रमाणीभूत आचार्यरूप प्रणालीसे आनेके कारण प्रत्यक्ष व अनुमानसे चूंकि विरोधसे रहित है अतः यह ग्रन्थ प्रमाण है। इस कारण मोक्षाभिलाषी भव्य जीवोंको इसका

भवियलोएण अब्भसेयव्वो । ण एसो गंथो थोवो त्ति मोक्खकज्जजणणं पडि असमत्थो, अमियघडसयवाणफलस्स चुलुवामियवाणे वि उवलंभादो । एवं मंगलादीणं छण्णं परूवणं काऊण पयदगंथस्स संबंधपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

अग्गेणियस्स पुव्वस्स पंचमस्स वत्थुस्स चउत्थो पाहुडो कम्मपयडी णाम ॥ ४५ ॥

तत्थ इमाणि चउवीसअणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति — कदि वेदणाए पस्से कम्मे पयडीसु बंधणे णिबंधणे पक्कमे उवक्कमे उदए मोक्खे पुण संकमे लेस्सा-लेस्सायम्मे लेस्सा-परिणामे तत्थेव सादमसादे दीहेरहस्से भवधारणीए तत्थ पोग्गलत्ता णिधत्तमणिधत्तं णिकाचिदमणिकाचिदं कम्मट्ठिदिपच्छिमक्खंधे अप्पाबहुगं च । सव्वत्थ सव्वेसिं गंथाणं उवक्कमो णिक्खेवो अणुगमो णओ चेदि चउव्विहो अवयारो होदि । तत्थ उपक्रम्यते अनेनेत्युपक्रमः, जेण करणभूदेण णाम-पमाणादीहि गंथो अवगम्मदे सो उवक्कमो णाम । आणुपुव्वि-णाम-पमाण-वत्तव्वदत्थाहियारभेएण उवक्कमो पंचविहो[1] । तत्थ आणुपुव्विउव-

---

अभ्यास करना चाहिये । चूंकि यह ग्रन्थ स्तोक है अतः वह मोक्षरूप कार्यको उत्पन्न करनेके लिये असमर्थ है, ऐसा विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि, अमृतके सौ घड़ोंके पीनेका फल चुल्लु प्रमाण अमृतके पीनेमें भी पाया जाता है । इस प्रकार मंगलादिक छहकी प्ररूपणा करके प्रकृत ग्रन्थके सम्बन्धको बतलानेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

अग्रायणी पूर्वकी पंचम वस्तुके चतुर्थ प्राभृतका नाम कर्मप्रकृति है ॥ ४६ ॥

उसमें ये चौबीस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं— कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बन्धन, निबन्धन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम, वहांपर ही सातासात, दीर्घ-ह्रस्व, भवधारणीय, वहां पुद्गलात्त, निधत्तानिधत्त, निकाचितानिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिमस्कन्ध और अल्पबहुत्व । सर्वत्र सब ग्रन्थोंका उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय, इस प्रकार चार प्रकारका अवतार होता है । उनमें ' उपक्रम्यते अनेन इति उपक्रमः ' इस निरुक्तिके अनुसार जिस साधन द्वारा नाम व प्रमाणादिकोंसे ग्रन्थ जाना जाता है वह उपक्रम है । यह उपक्रम आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकारके भेदसे पांच प्रकार है । उनमें आनुपूर्वी उपक्रम तीन प्रकार

---

१ णाणप्पवादस्स पुव्वस्स दसमस्स वत्थुस्स तदियस्स पाहुडस्स पंचविहो उवक्कमो । तं जहा—आणुपुव्वी, णामं, पमाणं वत्तव्वदा, अत्थाहियारो चेदि (मू. सू.) । उपक्रम्यते समीपीक्रियते श्रोत्रा अनेन प्राभृतमित्युपक्रमः । जयध. १, पृ. १३.

क्कमो तिविहो पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जहा-तहाणुपुव्वी चेदि। उद्दिट्ठकमेण अत्थाहियार-परूवणा पुव्वाणुपुव्वी णाम। विलोमेण परूवणा पच्छाणुपुव्वी णाम। अणुलोम-विलोमेहि विणा परूवणा जहा-तहाणुपुव्वी। ण च परूवणाए चउत्थो पयारो अत्थि, अणुवलंभादो[1]।

णामोवक्कमो दसविहो गोण्ण-णोगोण्ण-आदाण-पडिवक्ख-पाधण्ण-णाम-पमाण-अवयव-संजोग-अणादियसिद्धंतपदभेएण[2]। गुणेण णिप्पण्णं गोण्णं। जहा सूरस्स तवण-भक्खर-दिणयरसण्णा, वड्ढमाणजिणिंदस्स सव्वण्णु-वीयराय-अरहंत-जिणादिसण्णाओ[3]। चंदसामी सूरसामी इंदगोवो इच्चादिणामाणि णोगोण्णपदाणि, णामिल्लए पुरिसे सद्दत्थाणुवलंभादो[4]। छत्ती मउली गब्भिणी अइहवा इच्चाईणि आदाणपदणामाणि, इदमेदस्स अत्थि त्ति विवक्खाए

है— पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथा तथानुपूर्वी। उद्दिष्टके क्रमसे अर्थाधिकारकी प्ररूपणाका नाम पूर्वानुपूर्वी है। विरुद्ध क्रमसे की गई प्ररूपणा पश्चादानुपूर्वी कहलाती है। अनुलोम व प्रतिलोम क्रमके विना जो प्ररूपणा की जाती है उसका नाम यथा-तथानुपूर्वी है। इनके अतिरिक्त प्ररूपणाका और कोई चतुर्थ प्रकार नहीं है, क्योंकि, वह पाया नहीं जाता।

गौण्यपद, नोगौण्यपद, आदानपद, प्रतिपक्षपद, प्राधान्यपद, नामपद, प्रमाणपद, अवयवपद, संयोगपद और अनादिकसिद्धान्तपदके भेदसे नामोपक्रम दश प्रकार है। जो पद गुणसे सिद्ध है वह गौण्य है। जैसे सूर्यके तपन, भास्कर एवं दिनकर नाम; वर्धमान जिनेन्द्रके सर्वज्ञ, वीतराग, अरहन्त व जिन आदि नाम। चन्द्रस्वामी, सूर्यस्वामी व इन्द्र-गोप इत्यादि नाम नोगौण्य पद हैं; क्योंकि, इन नामोंसे युक्त पुरुषमें शब्दोंका अर्थ नहीं पाया जाता। छत्री, मौली, गर्भिणी और अविधवा इत्यादिक आदानपद रूप नाम हैं,

---

१ ष. खं. पु. १, पृ. ७३. **आणुपुव्वी तिविहा।** एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा— पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि। जं जेण कमेण सुत्तकारेहि ठइदमुप्पण्णं वा तस्स तेण कमेण गणणा पुव्वाणुपुव्वी णाम। तस्स विलोमेण गणणा पच्छाणुपुव्वी। जत्थ वा तत्थ वा अप्पणो इच्छिदमादिं कादूण गणणा जत्थतत्थाणुपुव्वी। एवमाणुपुव्वी तिविहा चेव, अणुलोम-पडिलोम तदुभएहि वदिरित्तगणणकमाणुवलंभादो। जयध. १, पृ. २७.

२ ष. खं. पु. १, पृ. ७४-७९. **णामं छव्विहं।** एदस्स सुत्तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा— गोण्णपदे णोगोण्णपदे आदाणपदे पडिवक्खपदे अवचयपदे उवचयपदे चेदि। जयध. १, पृ. ३०.

३ गुणेण णिप्पण्णं गोण्णं। [जहा सूरस्स तवण-भक्खर-] दिणयरसण्णाओ, वड्ढमाणजिणिंदस्स सव्वण्हु-वीयराय-अरहंत-जिणादिसण्णाओ। जयध. १, पृ ३१.

४ चंदसामी सूरसामी इंदगोव इच्चादिसण्णाओ णोगोण्णपदाओ, णामिल्लए पुरिसे णामत्थाणुवलंभादो। जयध. १, पृ. ३१.

उप्पण्णत्तादो[1]। णाणी बुद्धिवंतो इच्चाईणि णामाणि आदाणपदाणि चेव, इदमेदस्स अत्थि त्ति विवक्खाणिबंधणत्तादो। ण गोण्णपदाणि, संबंधविवक्खाए विणा गुणसण्णाए दव्वम्मि पउत्तिअदंसणादो[2]। विहवा रंडा पोरो दुव्विहो इच्चाईणि पडिवक्खपदाणि अगब्भिणी अमउडी इच्चादीणि वा, इदमेदस्स णत्थि त्ति विवक्खाणिबंधणादो[3]। अण्णेहि वि रुक्खेहि सहियाणं कयंब-णिंबंबरुक्खाणं बहुत्तं पेक्खिय जाणि कयंब-णिंबंबवणणामाणि ताणि पाधण्णपदाणि। किमेत्थ पधाणत्तं? अप्पियं पहाणत्तमणप्पियमप्पहाणत्तमण्णहा पहाणत्ताणुववत्तीदो[4]। अरविंद-सद्दस्स अरविंदसण्णा णामपदं, णामस्स अप्पाणम्हि चेव पउत्तिदंसणादो। सदं सहस्समिच्चादीणि पमाणपदणामाणि, संखाणिबंधणादो। अवयवो दुविहो समवेदो असमवेदो चेदि। सिलीवदी[5]

क्योंकि, वे 'यह (छत्रादि) इसके है' इस विवक्षासे उत्पन्न हुए हैं। ज्ञानी व बुद्धिमान् इत्यादि नाम आदानपद ही हैं, क्योंकि, इनका कारण 'यह इसके है' यह विवक्षा है। ये गौण्यपद नहीं हैं, क्योंकि, सम्बन्धविवक्षाके विना द्रव्यमें गुण संज्ञाकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। विधवा, रांड, पोर (अनाथ बालक) व दुर्विध (धनहीन) इत्यादि; अथवा अगर्भिणी व अमुकुटी (मुकुट हीन) इत्यादि प्रतिपक्ष पद हैं; क्योंकि, ये पद 'यह इसके नहीं है' इस विवक्षाके निमित्तसे हैं। अन्य भी वृक्षोंसे सहित कदम्ब, नीम व आमके वृक्षोंके बाहुल्य की अपेक्षा करके जो कदम्बवन, निम्बवन व आम्रवन नाम हैं वे प्राधान्यपद हैं।

शंका—यहां प्रधानता क्या है?

समाधान—विवक्षित प्रधानता और अविवक्षित अप्रधानता है, क्योंकि, इसके विना प्रधानता बन नहीं सकती।

अरविन्द शब्दकी अरविन्द संज्ञा नाम पद है, क्योंकि, नामकी प्रवृत्ति अपनेमें ही देखी जाती है। शत, सहस्र इत्यादि प्रमाणपद नाम हैं, क्योंकि, वे संख्यानिमित्तक हैं।

अवयव दो प्रकार है— समवेत और असमवेत। श्लीपद, गलगण्ड, दीर्घनास एवं

१ दंडी छत्ती मोली गब्भिणी अइहत्ता इच्चादिसण्णाओ आदाणपदाओ, इदमेदस्स अत्थि त्ति संबंधणिबंधणत्तादो। जयध. १, पृ. ३१.

२ [णाणी बुद्धिवं-] तो इच्चादीणि वि णामाणि आदाणपदाणि चेव, इदमेदस्स अत्थि त्ति विवक्खा-णिबंधणत्तादो। एदाणि गोण्णपदाणि किण्ण होंति? ण, गुणमुहेण दव्वम्हि पवुत्तीए संबंधविवक्खाए विणा अदंसणादो। जयध. १, पृ. ३२.

३ विहवा रंडा पोरा दुव्विहा इच्चाईणि णामाणि पडिवक्खपदाणि, इदमेदस्स णत्थि त्ति विवक्खा-णिबंधणत्तादो। जयध. १, पृ. ३२.

४ अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनः प्रयोजनवशाद्यस्यकस्यचिद्धर्मस्य विवक्षया प्रापितं प्राधान्यमर्पितमुपनीत-मिति यावत्। तद्विपरीतमनर्पितम्। स. सि. ५, ३२. ५ प्रतिषु 'सिलीवर्भा' इति पाठः।

गलगंडो दीहणासो लंबकण्णो त्ति उवचिदावयवणिबंधणाणि; छिण्णकरो छिण्णणासो काणो कुंटो[1] इच्चादीणि अवचिदणिबंधणाणि[2]।

संजोगो दव्व-खेत्त-काल-भावभेएण चउव्विहो। तत्थ धणुहासि-परसुआदिसंजोगेण संजुत्तपुरिसाणं धणुहासि-परसुणामाणि दव्वसंजोगपदाणि। भारहओ[3] ऐरावओ माहुरो मागहो त्ति खेत्तसंजोगपदाणि णामाणि। सारओ वासंतओ त्ति कालसंजोगपदणामाणि। णेरइओ तिरिक्खो कोही माणी बालो जुवाणो इच्चेवमाईणि भावसंजोगपदाणि[4]। भाव-गुणाणं को विसेसो? ण, जावदव्वभाविणो गुणा, तव्विवरीया भावा इदि भेदुवलंभादो। दमिलो[5] अंधो कण्णाडओ त्ति

लम्बकर्ण, ये नाम उपचितावयव अर्थात् अवयवोंकी वृद्धिके निमित्तसे; तथा छिन्नकर, छिन्ननास, काना एवं कुण्ट (हस्त हीन) इत्यादि नाम अवयवोंकी हानिके निमित्तसे प्रसिद्ध हैं।

संयोग द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावके भेदसे चार प्रकार है। उनमें धनुष, असि व परशु आदिके संयोगसे संयुक्त पुरुषोंके धनुष, असि व परशु नाम द्रव्यसंयोगपद हैं। भारत, ऐरावत, माथुर व मागध, ये क्षेत्रसंयोगपद नाम हैं। शारद व वासंतक ये काल-संयोगपद नाम हैं। नारक, तिर्यंच, क्रोधी, मानी, बाल एवं युवा, इत्यादिक भावसंयोग पद हैं।

शंका—भाव और गुणमें क्या भेद है?

समाधान—नहीं, गुण यावद्द्रव्यभावी अर्थात् समस्त द्रव्यमें रहनेवाले होते हैं, परन्तु भाव यावद्द्रव्यभावी नहीं होते; यह उन दोनोंमें भेद है।

शंका—द्रविड, आन्ध्र और कर्नाटक, ये नाम कौनसे पद हैं?

---

१ प्रतिषु 'कुंठो' इति पाठः।

२ ष. खं. पु. १, पृ. ७७. सिलीवदो गलगंडो दीहणासो लंबकण्णो इच्चेवमादीणि णामाणि उवचय-पदाणि, सरीरे उवचिदमवयवमवेक्खिय एदेसिं णामाणं पउत्तिदंसणादो। छिण्णकण्णो छिण्णणासो काणो कुंठो [कुंटो] खंजो बहिरो इच्चाईणि णामाणि अवचयपदाणि, सरीरावयवविगलत्तमवेक्खिय एदेसिं णामाणं पउत्तिदंसणादो। जयध. १, पृ. ३३.

३ प्रतिषु 'आरहओ' इति पाठः।

४ ष. खं. पु. १, पृ. ७७–७८. दव्व-खेत्त-काल-भावसंजोयपदाणि रायासि-घणु-हर-सुरलोयणयर-भारहय-अइरावय-सायर (सारय-) वासंतय-कोहि-माणिइच्चाईणि णामाणि वि आदाणपदे चेव णिवदंति, इदमेदस्स अत्थि एत्थ वा इदमत्थि त्ति विवक्खाए एदेसिं णामाणं पवुत्तिदंसणादो। जयध. १, पृ. ३३.

५ प्रतिषु 'धमिलो' इति पाठः।

णामाणि किंपदाणि ? दव्वसंजोगपदाणि, भासा-पोग्गलदव्वसंजोगेण तदुप्पत्तीदो। पमाण-भावाणं को विसेसो ? ण, सगद-इयत्तापरिच्छेदकारणं पमाणं, तव्विवरीओ भावो त्ति तेसिं भेदुवलंभादो। धम्मत्थिओ अधम्मत्थिओ कालो पुढवी आऊ तेऊ[1] इच्चादीणि अणादियसिद्धंत-पदाणि[2]। भाव-गुणपडिसेहदुवारेणुप्पण्णणामाणि भावसंजोगपद-गोण्णाणि हवंति, अवयव-सद्दस्सेव भाव-गुणाणं देसामासयत्तब्भुवगमादो। एवं णामोवक्कमसरूवपरूवणा कदा।

णाम-ट्ठवण-दव्व-खेत्त-काल-भावपमाणभेदेण पमाणं छव्विहं। तत्थ णामपमाणं पमाण-

समाधान — ये द्रव्यसंयोगपद हैं, क्योंकि, उनकी उत्पत्ति भाषा (द्राविड़ी आदि) रूप पुद्गल द्रव्यके संयोगसे है।

शंका — प्रमाण और भावके क्या भेद है ?

समाधान — नहीं, स्वगत अर्थात् अपने वाच्यगत परिमाणके जाननेका कारण प्रमाण और इससे विपरीत भाव होता है, इस प्रकार उन दोनोंमें भेद पाया जाता है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, पृथिवी, अप् और तेज, इत्यादिक अनादिक-सिद्धान्तपद हैं। भाव और गुणके प्रतिषेध द्वारा उत्पन्न नाम क्रमशः भावसंयोगपद व गौण्यपद होते हैं, क्योंकि, अवयव शब्दके समान भाव और गुणको देशामर्शक स्वीकार किया गया है।

विशेषार्थ — जिस प्रकार अवयवके सद्भाव व अभावके वाचक पदोंका अन्तर्भाव अवयवपदोंमें किया है, उसी प्रकार भावसंयोग व भावासंयोग वाचक पदोंका भाव-संयोगपदोंमें एवं गुणके सद्भाव व असद्भाव वाचक पदोंका अन्तर्भाव गौण्य पदोंमें करना चाहिये।

इस प्रकार नामोपक्रम स्वरूपकी प्ररूपणा की है।

नामप्रमाण, स्थापनाप्रमाण, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भावप्रमाणके भेदसे प्रमाण छह प्रकार है। उनमेंसे अपनेमें व बाह्य पदार्थमें वर्तमान प्रमाण शब्द नाम-

---

१ प्रतिषु 'आउ तेउ' इति पाठः।

२ 'से किं तं अणाइसिद्धंतेणमित्यादि— अमनं अन्तो वाच्य-वाचकरूपतया परिच्छेदः, अनादिसिद्धश्चा-सावन्तश्चानादिसिद्धान्तस्तेनः अनादिकालादारभ्येदं वाचकमिदं तु वाच्यमित्येवं सिद्धः— प्रतिष्ठितो योऽसावन्तः— परिच्छेदस्तेन किमपि नाम भवतीत्यर्थः। अनु. सू. (मलय. वृत्ति) १३०.

३ प्रतिषु 'भावासंजोग' इति पाठः।

सद्दो अप्पाणम्मि बज्झत्थे च वट्टमाणो। कधं णामस्स पमाणत्तं? न, प्रमीयते अनेनेति प्रमाणत्वसिद्धेः[1]। सब्भावासब्भावट्ठवणा ठवणपमाणं, अण्णसरूवपरिच्छित्तिकारणत्तादो[2]। संखेज्जमसंखेज्जमणंतमिदि दव्वपमाणं पल-तुला-करिसादीणि वा, अण्णदव्वपरिच्छेदकारणत्तादो[3]। अधवा दव्वगयसंखाणं मोत्तूण दव्वमेव[4] पमाणमिदि घेत्तव्वं, दंडादिदव्वेहिंतो अण्णेसिं परिच्छित्तिदंसणादो। अंगुल-विहत्थि-किक्खुआदि क्खेत्तपमाणं[5]। समयावलियादि कालपमाणं[6]। जीवाजीवभावपमाणभेएण भावपमाणं दुविहं। तत्थ अजीवभावपमाणं संखेज्जा-

....

प्रमाण कहा जाता है।

शंका—नामके प्रमाणता कैसे हो सकती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिसके द्वारा जाना जाता है वह प्रमाण है, इस व्युत्पत्तिसे नामके प्रमाणता सिद्ध है।

सद्भाव और असद्भाव रूप स्थापनाका नाम स्थापनाप्रमाण है, क्योंकि, वह अन्य पदार्थोंके स्वरूपको जाननेकी कारण है। संख्यात, असंख्यात व अनन्त तथा पल (मापविशेष), तराजू व कर्ष इत्यादिक द्रव्यप्रमाण हैं, क्योंकि, ये अन्य द्रव्योंके जाननेके कारण हैं। अथवा, द्रव्यगत संख्याको छोड़कर द्रव्य ही प्रमाण है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, दण्डादिक द्रव्योंसे अन्य पदार्थोंका ज्ञान देखा जाता है। अंगुल, वितस्ति और किष्कु आदि क्षेत्रप्रमाण हैं। समय और आवली आदि कालप्रमाण हैं। जीवभावप्रमाण और अजीवभावप्रमाणके भेदसे भावप्रमाण दो प्रकार है। इनमें अजीवभावप्रमाण संख्यात, असंख्यात व अनन्तके भेदसे तीन प्रकार है। जीवभाव-

....

१ **पमाणं सत्तविहं**। ××× तं जहा— णामपमाणं ट्ठवणपमाणं संखपमाणं दव्वपमाणं खेत्तपमाणं कालपमाणं णाणपमाणं चेदि। प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्। नामाख्यातपदानि नामप्रमाणं प्रमाणशब्दो वा। कुदो? एदेहिंतो अप्पणो अण्णेसिं च दव्व-पज्जयाणं परिच्छित्तिदंसणादो। जयध. १, पृ. ३७.

२ सो एसो त्ति अभेदेण कट्ठ-सिला-पव्वएसु अप्पियवत्थुण्णासो ट्ठवणापमाणं। कथं ठवणाए पमाणत्तं? ण, ठवणादो एवंविहो सो त्ति अण्णस्स परिच्छित्तिदंसणादो। मइ-सुद-ओहि-मणपज्जव-केवलणाणाणं सब्भावासब्भावसरूवेण विण्णासो वा सयं सहस्समिदि असब्भावट्ठवणा वा ठवणपमाणं। जयध. १, पृ. ३८.

३ पल-तुला-कुडवादीणि दव्वपमाणं, दव्वंतरपरिच्छित्तिकारणत्तादो। जयध. १, पृ. ३८.

४ प्रतिषु 'दव्वमेद' इति पाठः।

५ अंगुलादिओगाहणाओ खेत्तपमाणं, 'प्रमीयन्ते अवगाह्यन्ते अनेन शेषद्रव्याणि' इति अस्य प्रमाणत्वसिद्धेः। जयध. १, पृ. ३९.

६ समयावलिय-खण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पव्व-पल्ल-सागरादि कालपमाणं। जयध. १, पृ. ४१.

संखेज्जाणंतभेएण तिविहं । जीवभावपमाणं आभिणिबोहिय-सुदोधि-मणपज्जव-केवलणाणभेएण पंचविहं । एवं पमाणोवक्कमसरूवपरूवणा कदा ।

ससमय-परसमय-तदुभयवत्तव्वदाभेदेण वत्तव्वदा तिविहा[1] । जदि ससमओ[2] चेव परूविज्जदि सा ससमयवत्तव्वदा[3] । जदि परसमओ चेव परूविज्जदि सा परसमयवत्तव्वदा । जदि दो वि परूविज्जंति सा तदुभयवत्तव्वदा । एवं वत्तव्वदुवक्कमसरूवपरूवणा कदा ।

अत्थाहियारो अणेयविहो, तत्थ संखाणियमाभावादो । एवमत्थहियारोवक्कमसरूवपरूवणा कदा । वुत्तं च—

तिविहा य आणुपुव्वी दसधा णामं च छव्विहं माणं ।
वत्तव्वदा य तिविहा तिविहो अत्थाहियारो य[4] ॥ ४४ ॥

एवमुवक्कमसरूवपरूवणा कदा ।

संपहि णिक्खेवसरूवपरूवणा कीरदे । तं जहा— बज्झत्थवियप्पपरूवणा णिक्खेवो

प्रमाण आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञानके भेदसे पांच प्रकार है । इस प्रकार प्रमाणोपक्रमके स्वरूपकी प्ररूपणा की है ।

स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता और तदुभयवक्तव्यताके भेदसे वक्तव्यता तीन प्रकार है । यदि स्वसमयकी ही प्ररूपणा की जाती है तो वह स्वसमयवक्तव्यता है। यदि परसमयकी ही प्ररूपणा की जाती है तो वह परसमयवक्तव्यता है । यदि दोनोंकी ही प्ररूपणा की जाती है तो वह तदुभयवक्तव्यता है। इस प्रकार वक्तव्यतोपक्रमके स्वरूपकी प्ररूपणा की है ।

अर्थाधिकार अनेक प्रकार है, क्योंकि, उसमें संख्याका नियम नहीं है । इस प्रकार अर्थाधिकारोपक्रमके स्वरूपकी प्ररूपणा की है। कहा भी है—

आनुपूर्वी तीन प्रकार, नाम दश प्रकार, प्रमाण छह प्रकार, वक्तव्यता तीन प्रकार और अर्थाधिकार अनेक प्रकार है ॥ ४४ ॥

इस प्रकार उपक्रमके स्वरूपकी प्ररूपणा की है ।

अब निक्षेपस्वरूपकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— बाह्यार्थके विकल्पोंकी

१ जयध. १, पृ. ९६. २ प्रतिषु 'समओ' इति पाठ ।
३ प्रतिषु 'समय' इति पाठः । ४ ष. खं. पु. १ पृ. ७२.

णाम, अणधिगदत्थणिराकरणदुवारेण अधिगदत्थपरूवणा वा। णिक्खेवेण विणा परूवणा किण्ण कीरदे ? ण, तेण विणा परूवणाणुववत्तीदो । सो च अणेयविहो—

जत्थ बहुं जाणेज्जो अवरिमियं तत्थ णिक्खिवे[1] णियमा ।
जत्थ य बहुं ण जाणदि चउट्टयं तत्थ णिक्खिवउ[2] ॥ ४५ ॥

इदि वयणादो । एवं णिक्खेवसरूवपरूवणा कदा ।

संपहि अणुगमत्थं वत्तइस्सामो— जम्हि जेण वा वत्तव्वं परूविज्जदि सो अणुगमो । अहियारसण्णिदाणमणिओगद्दाराणं जे अहियारा तेसिमणुगमो त्ति सण्णा, जहा वेयणाए पद-मीमांसादिः। सो च अणुगमो अणेयविहो, संखाणियमाभावादो । अथवा, अनुगम्यन्ते जीवादयः पदार्थाः अनेनेत्यनुगमः । किं प्रमाणम् ? निर्बाधबोधविशिष्टः आत्मा प्रमाणम् । संशय-

---

प्ररूपणा अथवा अनधिगत पदार्थके निराकरण द्वारा अधिगत अर्थकी प्ररूपणाका नाम निक्षेप है ।

शंका—निक्षेपके विना प्ररूपणा क्यों नहीं की जाती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसके विना प्ररूपणा बन नहीं सकती ।

वह निक्षेप अनेक प्रकार है, क्योंकि, जहां बहुत ज्ञातव्य हो वहां नियमसे अपरिमित निक्षेपोंका प्रयोग करना चाहिये। और जहां बहुतको नहीं जानना हो वहां चार निक्षेपोंका उपयोग करना चाहिये ॥ ४५ ॥

ऐसा वचन है । इस प्रकार निक्षेपके स्वरूपकी प्ररूपणा की है ।

अब अनुगमके अर्थको कहते हैं— जहां या जिसके द्वारा वक्तव्यकी प्ररूपणा की जाती है वह अनुगम कहलाता है । अधिकार संज्ञा युक्त अनुयोगद्वारोंके जो अधिकार होते हैं उनका 'अनुगम' यह नाम है, जैसे—वेदनानुयोगद्वारके पदमीमांसा आदि अनुगम । वह अनुगम अनेक प्रकार है, क्योंकि, उसकी संख्याका कोई नियम नहीं है । अथवा, जिसके द्वारा जीवादिक पदार्थ जाने जाते हैं वह अनुगम कहलाता है ।

शंका—प्रमाण किसे कहते हैं ?

समाधान—निर्बाध ज्ञानसे विशिष्ट आत्माको प्रमाण कहते हैं ।

---

१ प्रतिषु ' णिक्खवे ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' णिक्खिवओ ' इति पाठः । ध. खं. पु. १, पृ. ३०.

विपर्ययानध्यवसायबोधविशिष्टस्यात्मनः न प्रामाण्यं, संशय-विपर्ययोस्सबाधयोर्निर्बाधविशेषणस्य असत्वात्। अनध्यवसायस्स चार्थानुगमस्याभावात्। ज्ञानस्यैव प्रामाण्यं किमिति नेष्यते ? न, जानाति परिछिनत्ति जीवादिपदार्थानिति ज्ञानमात्मा, तस्यैव प्रामाण्याभ्युपगमात्। न ज्ञान-पर्यायस्य स्थितिरहितस्य उत्पाद-विनाशलक्षणस्य प्रामाण्यम्, तत्र त्रिलक्षणाभावतः अवस्तुनि परिच्छेदलक्षणार्थक्रियाभावात्, स्मृति-प्रत्यभिज्ञानुसंधानप्रत्ययादीनामभावप्रसंगाच्च।

तच्च प्रमाणं द्विविधम्, प्रत्यक्ष-परोक्षप्रमाणभेदात्। तत्र प्रत्यक्षं द्विविधं, सकल-विकलप्रत्यक्षभेदात्। सकलप्रत्यक्षं केवलज्ञानम्, विषयीकृतत्रिकालगोचराशेषार्थत्वात् अतीन्द्रियत्वात् अक्रमवृत्तित्वात् निर्व्यवधानात् आत्मार्थसन्निधानमात्रप्रवर्तनात्। उक्तं च—

क्षायिकमेकमनंतं त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम्।
निरतिशयमत्ययच्युतमव्यवधानं[1] जिनज्ञानम्॥ ४६॥ इति

संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय ज्ञानसे विशिष्ट आत्माके प्रमाणता नहीं हो सकती, क्योंकि, संशय और विपर्ययके बाधायुक्त होनेसे उनमें निर्बाध विशेषणका अभाव है, तथा अनध्यवसायके अर्थबोधका अभाव है।

शंका—ज्ञानको ही प्रमाण स्वीकार क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'जानातीति ज्ञानम्' इस निरुक्तिके अनुसार जो जीवादि पदार्थोंको जानता है वह ज्ञान अर्थात् आत्मा है, उसीको प्रमाण स्वीकार किया गया है। उत्पाद व व्यय स्वरूप किन्तु स्थितिसे रहित ज्ञानपर्यायके प्रमाणता स्वीकार नहीं की गई, क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप लक्षणत्रयका अभाव होनेके कारण अवस्तुस्वरूप उसमें परिच्छित्ति रूप अर्थक्रियाका अभाव है, तथा स्थिति रहित ज्ञान-पर्यायको प्रमाणता स्वीकार करनेपर स्मृति, प्रत्यभिज्ञान व अनुसंधान प्रत्ययोंके अभावका भी प्रसंग आता है।

वह प्रमाण प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणके भेदसे दो प्रकार है। उनमें प्रत्यक्ष सकल प्रत्यक्ष और विकल प्रत्यक्षके भेदसे दो प्रकार है। केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है, क्योंकि, वह त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाला, अतीन्द्रिय, अक्रमवृत्ति, व्यव-धानसे रहित और आत्मा एवं पदार्थकी समीपता मात्रसे प्रवृत्त होनेवाला है। कहा भी है—

जिन भगवान्‌का ज्ञान क्षायिक, एक अर्थात् असहाय, अनन्त, तीनों कालोंके सब पदार्थोंको एक साथ प्रकाशित करनेवाला, निरातिशय, विनाशसे रहित और व्यवधानसे विमुक्त है॥ ४६॥

---

१ प्रतिषु '-मवधानं' इति पाठः।

अवधि-मनःपर्ययज्ञाने विकलप्रत्यक्षम्, तत्र साकल्येन प्रत्यक्षलक्षणाभावात्[1]। तदपि कुतोऽवगम्यते? मूर्तद्रव्येष्वेव प्रवृत्तिदर्शनात् सक्षयत्वात् मूर्तेष्वप्यर्थेषु त्रिकालगोचरानन्तपर्यायेषु साकल्येन प्रवृत्तेरदर्शनात्[2]। अतीन्द्रियाणामवधि-मनःपर्यय-केवलानां कथं प्रत्यक्षता? नैष दोषः, अक्ष आत्मा, अक्षमक्षं प्रति वर्तत इति प्रत्यक्षमवधि-मनःपर्यय-केवलानीति तेषां प्रत्यक्षत्वसिद्धेः[3]। परोक्षं द्विविधं मति-श्रुतभेदेन। परोक्षमिति किम्? उपात्तानुपात्तपरप्राधान्यादवगमः परोक्षम्।

अवधि और मनःपर्यय ज्ञान विकल प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि, उनमें सकल प्रत्यक्षका लक्षण नहीं पाया जाता।

शंका—वह भी कहांसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि, उक्त दोनों ज्ञान मूर्त द्रव्योंमें ही प्रवर्तमान हैं, विनश्वर हैं, तथा तीन काल विषयक अनन्त पर्यायोंसे संयुक्त उन मूर्त पदार्थोंमें भी उनकी पूर्ण रूपसे प्रवृत्ति नहीं देखी जाती।

शंका—इन्द्रियोंकी अपेक्षासे रहित अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञानके प्रत्यक्षता कैसे सम्भव है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अक्ष शब्दका अर्थ आत्मा है; अतएव अक्ष अर्थात् आत्माकी अपेक्षा कर जो प्रवृत्त होता है वह प्रत्यक्ष है; इस निरुक्तिके अनुसार अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष हैं। अतएव उनके प्रत्यक्षता सिद्ध है।

मति और श्रुतके भेदसे परोक्ष दो प्रकार है।

शंका—परोक्षका क्या स्वरूप है?

समाधान—उपात्त और अनुपात्त इतर कारणोंकी प्रधानतासे जो ज्ञान होता है

---

१ ओहि-मणपज्जवणाणाणि वियलपच्चक्खाणि, अत्थेगदेसम्मि विसदसरूवेण तेसिं पउत्तिदंसणादो। जयध. १, पृ. २४.　　२ प्रतिषु 'प्रवृत्तिरदर्शनात्' इति पाठः।

३ **अक्षं प्रतिनियतमिति परापेक्षानिवृत्तिः**—अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीति अक्ष आत्मा प्राप्तक्षयोपशमः प्रक्षीणावरणो वा, तमेव प्रतिनियतं प्रत्यक्षमिति विग्रहात्परापेक्षानिवृत्तिः कृता भवति। त. रा. १, १२, २. कथं पुनरेतेषां प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वमिति चेत्, रूढित इति ब्रूमः। अथवा, अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा, तन्मात्रापेक्षोत्पत्तिकं प्रत्यक्षमिति किमनुपपन्नम्? न्यायदीपिका पृ. ३८. तत्र 'अशुङ् व्याप्तौ' अश्नुते ज्ञानात्मना सर्वानर्थान् व्याप्नोतीत्यक्षः। अथवा 'अश भोजने' अश्नाति सर्वान् अर्थान् यथायोगं भुङ्क्ते पालयति वेत्यक्षो जीव उभयत्राप्यौणादिकः सक्प्रत्ययः, तं अक्षं जीवं प्रति साक्षाद्वर्तते यत् ज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्। ××× उक्तं च—"जीवो अक्खो अत्थव्वावण-भोयणगुणन्निओ जेणं। तं पइ वट्टइ नाणं जं पच्चक्खं तयं तिविहं॥" नं. सू. (वृत्ति) २.

उपात्तानीन्द्रियाणि मनश्च, अनुपात्तं प्रकाशोपदेशादि, तत्प्राधान्यादवगमः परोक्षम् । यथा गति-शक्त्युपेतस्यापि[1] स्वयं गन्तुमसमर्थस्य यष्ट्याद्यालंबनप्राधान्यं गमनम्, तथा मति-श्रुतावरण-क्षयोपशमे सति ज्ञस्वभावस्यात्मनः स्वयमर्थानुपलब्धुमसमर्थस्य पूर्वोक्तप्रत्ययप्रधानं ज्ञानं परा-यत्तत्वात्परोक्षम्[2] ।

तत्र मत्याख्यं प्रमाणं चतुर्विधम् — अवग्रह ईहा अवायो धारणा चेति[3] । विषय-विषयि-सन्निपातानंतरमाद्यं ग्रहणमवग्रहः[4] । पुरुष इत्यवग्रहीते भाषा-वयोरूपादिविशेषैराकांक्षणमीहा[5] । ईहितस्यार्थस्य विशेषविज्ञानात् याथात्म्यावगमनमवायः । निर्णीतार्थाविस्मृतिर्यतस्सा धारणा[6] ।

अथ स्यादवग्रहो निर्णयरूपो वा स्यादनिर्णयरूपो वा ? आद्ये अवायान्तर्भावः । अस्तु

वह परोक्ष है । यहां उपात्त शब्दसे इन्द्रियां व मन तथा अनुपात्त शब्दसे प्रकाश व उप-देशादिका ग्रहण किया गया है । इनकी प्रधानतासे होनेवाला ज्ञान परोक्ष कहलाता है । जिस प्रकार गमन शक्तिसे युक्त होते हुए भी स्वयं गमन करनेमें असमर्थ व्यक्तिका लाठी आदि आलम्बनकी प्रधानतासे गमन होता है, उसी प्रकार मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञाना-वरणका क्षयोपशम होनेपर ज्ञस्वभाव परन्तु स्वयं पदार्थोंको ग्रहण करनेके लिये असमर्थ हुए आत्माके पूर्वोक्त प्रत्ययोंकी प्रधानतासे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान पराधीन होनेसे परोक्ष है ।

उनमें मति नामक प्रमाण चार प्रकार है — अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा । विषय और विषयीके सम्बन्धके अनन्तर जो आद्य ग्रहण होता है वह अवग्रह है । 'पुरुष' इस प्रकार अवग्रह द्वारा गृहीत अर्थमें भाषा, आयु और रूपादि विशेषोंसे होनेवाली आकांक्षाका नाम ईहा है । ईहासे गृहीत पदार्थका भाषा आदि विशेषोंके ज्ञानसे जो यथार्थ स्वरूपसे ज्ञान होता है वह अवाय है । जिससे निर्णीत पदार्थका विस्मरण नहीं होता वह धारणा है ।

शंका — क्या अवग्रह निर्णय रूप है अथवा अनिर्णय रूप ? प्रथम पक्षमें अर्थात् निर्णय रूप स्वीकार करनेपर उसका अवायमें अन्तर्भाव होना चाहिये । परन्तु ऐसा हो

१ अ-काप्रत्योः ' गतिशक्त्यपेतस्यापि ' इति पाठः ।　　२ त. रा. १, ११, ६.

३ उग्गह ईहाऽवाओ य धारणा एव हुंति चत्तारि । आभिणिबोहियणाणस्स भेयवत्थू समासेणं ॥ अत्थाणं उग्गहणंमि उग्गहो तह विआलणे ईहा । ववसायंमि अवाओ धरणं पुण धारणं बिंति ॥ नं. सू. गा. ७५-७६.

४ ष. खं. पु. १. पृ. ३५४; पु. ६, पृ. १६. तत्र अवग्रहणमवग्रहः— अनिर्देश्यसामान्यमात्ररूपार्थग्रहण-मित्यर्थः । यदाह चूर्णिकृत् " सामन्नस्स रूवादिविसेसणरहियस्स अनिद्देसस्स अवग्गहणमवग्गह " इति । नं. सू. (म. वृत्ति) २७.

५ ष. खं. पु. १, पृ. ३५४: पु. ६. पृ. १६. अवग्रहगृहीतार्थसमुद्भूतसंशयनिरासाय यतनमीहा । तद्यथा— पुरुष इति निश्चितेऽर्थे किमयं दाक्षिणात्य उतौदीच्य इति संशये सति दाक्षिणात्येन भवितव्यमिति तन्निरासायेहाख्यं ज्ञानं जायत इति । न्या. दी. पृ. ३२. ईहनमीहा, सद्भूतार्थपर्यालोचनरूपा चेष्टा इत्यर्थः । नं. सू. (म. वृत्ति) २७.

६ प्रतिषु ' निर्णीतार्थविस्मृतिर्यतस्साधारणात् ' इति पाठः ।

चेन्न, ततः पश्चात्संशयोत्पत्तेरभावप्रसंगान्निर्णयस्य विपर्ययानध्यवसायात्मकत्वविरोधाच्च। द्वितीये न प्रमाणमवग्रहः, तस्य संशय-विपर्ययानध्यवसायेष्वन्तर्भावादिति ? न, अवग्रहस्य द्वैविध्यात्। द्विविधोऽवग्रहो[1] विशदाविशदावग्रहभेदेन। तत्र विशदो निर्णयरूपः अनियमेनेहावाय-धारणाप्रत्ययोत्पत्तिनिबन्धनः। निर्णयरूपोऽपि नायमवायसंज्ञकः, ईहाप्रत्ययपृष्ठभाविनो निर्णयस्य अवायव्यपदेशात्। तत्र अविशदावग्रहो नाम अगृहीतभाषा-वयोरूपादिविशेषः गृहीतव्यवहारनिबन्धनपुरुषमात्रसत्वादिविशेषः अनियमेनेहाद्युत्पत्तिहेतुः। नायमविशदावग्रहो दर्शनेऽन्तर्भवति, तस्य विषय-विषयिसन्निपातकालवृत्तित्वात्। अप्रमाणमविशदावग्रहः, अनध्यवसायरूपत्वादिति चेन्न, अध्यवसितकतिपयविशेषत्वात्। न विपर्ययरूपत्वादप्रमाणम्, तत्र वैपरीत्यानुपलंभात्। न विपर्ययज्ञानोत्पादकत्वादप्रमाणम, तस्मात्तदुत्पत्तेर्नियमाभावात्। न संशयहेतुत्वादप्रमाणम्,

---

नहीं सकता, क्योंकि, वैसा होनेपर उसके पीछे संशयकी उत्पत्तिके अभावका प्रसंग आवेगा, तथा निर्णयके विपर्यय व अनध्यवसाय रूप होनेका विरोध भी है। अनिर्णय स्वरूप माननेपर अवग्रह प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा होनेपर उसका संशय, विपर्यय व अनध्यवसायमें अन्तर्भाव होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अवग्रह दो प्रकार है। विशदावग्रह और अविशदावग्रहके भेदसे अवग्रह दो प्रकार है। उनमें विशद अवग्रह निर्णय रूप होता हुआ अनियमसे ईहा, अवाय और धारणा ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है। यह निर्णय रूप होकर भी अवाय संज्ञावाला नहीं हो सकता, क्योंकि, ईहा प्रत्ययके पश्चात् होनेवाले निर्णयकी अवाय संज्ञा है।

उनमें भाषा, आयु व रूपादि विशेषोंको ग्रहण न करके व्यवहारके कारणभूत पुरुष मात्रके सत्वादि विशेषको ग्रहण करनेवाला तथा अनियमसे जो ईहा आदिकी उत्पत्तिमें कारण है वह अविशदावग्रह है। यह अविशदावग्रह दर्शनमें अन्तर्भूत नहीं है, क्योंकि वह (दर्शन) विषय और विषयीके सम्बन्धकालमें होनेवाला है।

शंका—अविशदावग्रह अप्रमाण है, क्योंकि, वह अनध्यवसाय स्वरूप है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, वह कुछ विशेषोंके अध्यवसायसे सहित है।

उक्त ज्ञान विपर्यय स्वरूप होनेसे भी अप्रमाण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, उसमें विपरीतता नहीं पायी जाती। यदि कहा जाय कि वह चूंकि विपर्यय ज्ञानका उत्पादक है अतः अप्रमाण है, सो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उससे विपर्यय ज्ञानके उत्पन्न होनेका कोई नियम नहीं है। संशयका हेतु होनेसे भी वह अप्रमाण नहीं है, क्योंकि,

---

१ प्रतिषु ' द्विविध्येवग्रहो ' इति पाठः।

कारणानुगुणकार्यनियमानुपलंभात्, संशयादप्रमाणात्प्रमाणीभूतनिर्णयप्रत्ययोत्पत्तितोऽनेकान्ताच्च । न च संशयरूपत्वादप्रमाणम्, स्थाणु-पुरुषसंचारिणश्चलस्वभावस्य संशयस्य अचलैकार्थ-विषयेण अविशदावग्रहेण एकत्वविरोधात् । ततो गृहीतवस्त्वंशं प्रति अविशदावग्रहस्य प्रामाण्यमभ्युपगन्तव्यम्, व्यवहारयोग्यत्वात् । व्यवहारायोग्योऽपि अविशदावग्रहोऽस्ति, कथं तस्य प्रामाण्यम् ? न, किंचिन्मया[1] दृष्टमिति व्यवहारस्य तत्राप्युपलंभात् । वास्तवव्यवहारा-योग्यत्वं प्रति पुनरप्रमाणम् ।

पुरुषमवगृह्य किमयं दाक्षिणात्य उत उदीच्य इत्येवमादिविशेषाप्रतिपत्तौ संशयानस्यो-त्तरकालं विशेषोपलिप्सां प्रति यत्नमीहा । ततोऽवग्रहगृहीतग्रहणात् संशयात्मकत्वाच्च न प्रमाणमीहाप्रत्यय इति चेदुच्यते — न तावद् गृहीतग्रहणमप्रामाण्यनिबन्धनम्, तस्य संशय-विपर्ययानध्यवसायनिबन्धनत्वात् । न चैकान्तेन ईहा गृहीतग्राहिणी, अवग्रहेण गृहीत[2]वस्त्वंशनिर्णयोत्पत्तिनिमित्तलिंगमवग्रहागृहीतमध्यवस्यंत्या गृहीतग्राहित्वा-

---

कारणगुणानुसार कार्यके होनेका नियम नहीं पाया जाता, तथा अप्रमाणभूत संशयसे प्रमाणभूत निर्णय प्रत्ययकी उत्पत्ति होनेसे उक्त हेतु व्यभिचारी भी है । संशय रूप होनेसे भी वह अप्रमाण नहीं है, क्योंकि, स्थाणु और पुरुष आदि रूप दो विषयोंमें प्रवर्त-मान व चलस्वभाव संशयकी अचल व एक पदार्थको विषय करनेवाले अविशदावग्रहके साथ एकताका विरोध है । इस कारण ग्रहण किये गये वस्त्वंशके प्रति अविशदावग्रहको प्रमाण स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि, वह व्यवहारके योग्य है ।

शंका—व्यवहारके अयोग्य भी तो अविशदावग्रह है, उसके प्रमाणता कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'मैंने कुछ देखा है' इस प्रकारका व्यवहार वहां भी पाया जाता है । किन्तु वस्तुतः व्यवहारकी अयोग्यताके प्रति वह अप्रमाण है ।

शंका—अवग्रहसे पुरुषको ग्रहण करके, क्या यह दक्षिणका रहनेवाला है या उत्तरका, इत्यादि विशेषज्ञानके विना संशयको प्राप्त हुए व्यक्तिके उत्तरकालमें विशेष जिज्ञासाके प्रति जो प्रयत्न होता है उसका नाम ईहा है । इस कारण अवग्रहसे गृहीत विषयको ग्रहण करने तथा संशयात्मक होनेसे ईहा प्रत्यय प्रमाण नहीं है ?

समाधान—इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि गृहीतग्रहण अप्रामाण्यका कारण नहीं है, क्योंकि, उसका कारण संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय है । दूसरे, ईहा प्रत्यय सर्वथा गृहीतग्राही भी नहीं है, क्योंकि, अवग्रहसे गृहीत वस्तुके उस अंशके निर्णयकी उत्पत्तिमें निमित्तभूत लिंगको, जो कि अवग्रहसे नहीं ग्रहण किया गया है, ग्रहण करनेवाला ईहा-

---

१ प्रतिषु 'किंचिन्नया' इति पाठः ।　　२ प्रतिषु 'अनवगृहीतगृहीत' इति पाठः ।

भावात्। न चैकान्तेन अगृहीतमेव प्रमाणैर्गृह्यते, अगृहीतत्वात खरविषाणवदसतो ग्रहण-विरोधात्। न चेहाप्रत्ययः संशयः, विमर्शप्रत्ययस्य निर्णयप्रत्ययोत्पत्तिनिमित्तलिंगपरिच्छेदन-द्वारेण संशयमुदस्यतस्संशयत्व[1]विरोधात। न च संशयाधारजीवसमवेतत्वादप्रमाणम्, संशय-विरोधिनः स्वरूपेण संशयतो व्यावृत्तस्य अप्रमाणत्वविरोधात्। नानध्यवसायरूपत्वादप्रमाण-मीहा, अध्यवसितकतिपयविशेषस्य निराकृतसंशयस्य प्रत्ययस्य अनध्यवसायत्वविरोधात्। तस्मात्प्रमाणं परीक्षाप्रत्यय इति सिद्धम्। अत्रोपयोगी श्लोकः —

अवायावयवोत्पत्तिस्संशयावयवच्छिदा।
सम्यग्निर्णयपर्यन्ता परीक्षेहेति कथ्यते ॥ ४७ ॥

नेहादयो मतिज्ञानमिन्द्रियेभ्योऽनुत्पन्नत्वाच्छ्रुतज्ञानवदिति चेन्न, इन्द्रियजनितावग्रहज्ञान-जनितानामीहादीनामुपचारेणेन्द्रियजत्वाभ्युपगमात। श्रुतज्ञानेऽपि तदस्त्विति चेन्न, ईहादीनामिव

ज्ञान गृहीतग्राही नहीं हो सकता। और एकान्ततः अगृहीतको ही प्रमाण ग्रहण करते हों सो भी नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेपर अगृहीत होनेके कारण खरविषाणके समान असत् होनेसे वस्तुके ग्रहणका विरोध होगा। ईहा प्रत्यय संशय भी नहीं हो सकता, क्योंकि निर्णयकी उत्पत्तिमें निमित्तभूत लिंगके ग्रहण द्वारा संशयको दूर करनेवाले विमर्श प्रत्ययके संशय रूप होनेमें विरोध है। संशयके आधारभूत जीवमें समवेत होनेसे भी वह ईहा प्रत्यय अप्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि, संशयके विरोधी और स्वरूपतः संशयसे भिन्न उक्त प्रत्ययके अप्रमाण होनेका विरोध है। अनध्यवसाय रूप होनेसे भी ईहा अप्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि, कुछ विशेषोंका अध्यवसाय करने हुए संशयको दूर करनेवाले उक्त प्रत्ययके अनध्यवसाय रूप होनेका विरोध है। अत एव परीक्षा प्रत्यय प्रमाण है, यह सिद्ध होता है। यहां उपयोगी श्लोक—

संशयके अवयवोंको नष्ट करके अवायके अवयवोंको उत्पन्न करनेवाली जो भले प्रकार निर्णय पर्यन्त परीक्षा होती है वह ईहा प्रत्यय कहा जाता है ॥ ४७ ॥

शंका—ईहादिक प्रत्यय मतिज्ञान नहीं हो सकते, क्योंकि, वे श्रुत ज्ञानके समान इन्द्रियोंसे उत्पन्न नहीं होते।

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए अवग्रह ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले ईहादिकोंको उपचारसे इन्द्रियजन्य स्वीकार किया गया है।

शंका— वह औपचारिक इन्द्रियजन्यता श्रुतज्ञानमें भी मान लेना चाहिये?

१ प्रतिषु '-मुदयस्यतःसंशयत्व ' इति पाठः।

अवग्रहगृहीतार्थविषयप्रवृत्त्यभावतो व्यधिकरणस्य श्रुतस्य प्रत्यासत्तेरभावतः इन्द्रियजत्वोपचाराभावात् । तत एव न श्रुतस्य मतिव्यपदेशोऽपीति । नावायज्ञानं मतिः, ईहानिर्णीतलिंगावष्टम्भबलेनोत्पन्नत्वादनुमानवदिति चेन्न, अवग्रहगृहीतार्थविषयलिंगादीहाप्रत्ययविषयीकृतादुत्पन्ननिर्णयात्मकप्रत्ययस्य अवग्रहगृहीतार्थविषयस्य अवायस्य अमतित्वविरोधात् । न चानुमानमवगृहीतार्थविषयमवग्रहनिर्णीतलिंगबलेन तस्यान्यवस्तुनि समुत्पत्तेः । न चावग्रहादीनां चतुर्णां सर्वत्र क्रमेणोत्पत्तिनियमः, अवग्रहानन्तरं नियमेन संशयोत्पत्त्यदर्शनात् । न च संशयमंतरेण विशेषाकांक्षास्ति येनावग्रहान्नियमेन ईहोत्पद्येत । न चेहातो नियमेन निर्णय उत्पद्यते, क्वचिन्निर्णयानुत्पादिकाया ईहाया एव दर्शनात् । न चावायाद्धारणा[1] नियमेनोत्पद्यते, तत्रापि व्यभिचारोपलंभात् । तस्मादवग्रहादयो धारणापर्यंता मतिरिति सिद्धम् ।

....

समाधान — नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार ईहादिककी अवग्रहसे गृहीत पदार्थके विषयमें प्रवृत्ति होती है उस प्रकार चूंकि श्रुतज्ञानकी नहीं होती, अतः व्यधिकरण होनेसे श्रुतज्ञानके प्रत्यासत्तिका अभाव है, इसी कारण उसमें उपचारसे इन्द्रियजन्यत्व नहीं बनता । और इसीलिये श्रुतके मति संज्ञा भी सम्भव नहीं है ।

शंका — अवायज्ञान मतिज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि, वह ईहासे निर्णीत लिंगके आलम्बन बलसे उत्पन्न होता है । जैसे अनुमान ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि, अवग्रहसे गृहीत पदार्थको विषय करनेवाले तथा ईहा प्रत्ययसे विषयीकृत लिंगसे उत्पन्न हुए निर्णय रूप और अवग्रहसे गृहीत पदार्थको विषय करनेवाले अवाय प्रत्ययके मतिज्ञान न होनेका विरोध है । और अनुमान अवग्रहसे गृहीत पदार्थको विषय करनेवाला नहीं है, क्योंकि, वह अवग्रहसे निर्णीत लिंगके बलसे अन्य वस्तुमें उत्पन्न होता है । तथा अवग्रहादिक चारोंकी सर्वत्र क्रमसे उत्पत्तिका नियम भी नहीं है, क्योंकि, अवग्रहके पश्चात् नियमसे संशयकी उत्पत्ति नहीं देखी जाती । और संशयके विना विशेषकी आकांक्षा होती नहीं है जिससे कि अवग्रहके पश्चात् नियमसे ईहा उत्पन्न हो । न ईहासे नियमतः निर्णय उत्पन्न होता है, क्योंकि, कहींपर निर्णयको उत्पन्न न करनेवाला ईहा प्रत्यय ही देखा जाता है । अवायसे धारणा भी नियमसे नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि, उसमें भी व्यभिचार पाया जाता है । इस कारण अवग्रहसे लेकर धारणा तक चारों ज्ञान मतिज्ञान हैं, यह सिद्ध होता है ।

....

१ प्रतिषु ' चावाया धारणात् ' इति पाठः ।

ते च बहु-बहुविध क्षिप्रानिःसृतानुक्त-ध्रुवेतरभेदेन द्वादशधा भवन्ति । तत्र बहुशब्दो हि संख्यावाची वैपुल्यवाची च । संख्यायामेकः द्वौ बहवः, वैपुल्ये बहुरोदनः[1] बहुः सूप इति एतस्योभयस्यापि ग्रहणम्[2] । न बह्ववग्रहोऽस्ति, विज्ञानस्य प्रत्यर्थवशवर्तित्वादिति चेन्न, नगर-वन-स्कंधावारेष्वनेकप्रत्ययोत्पत्तिदर्शनात्, बह्ववग्रहाभावे तन्निबन्धनबहुवचनप्रयोगानुपपत्तेः । न ह्येकार्थग्राहकेभ्यो[3] ज्ञानेभ्यो भूयसामर्थानां प्रतिपत्तिर्भवति, विरोधात्[4] । किं च, यस्यैकार्थ एव नियमेन विज्ञानं तस्य किं पूर्वज्ञाननिवृत्तौ उत्तरविज्ञानोत्पत्तिरनिवृत्तौ वा ? न द्वितीयः पक्षः, एकार्थमेकमनस्त्वादित्यनेन वाक्येन सह विरोधात् । नाद्यः, इदमस्मादन्यदित्यस्य

वे चारों ज्ञान बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव तथा इनसे विपरीत एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुवके भेदसे बारह प्रकार हैं । उनमें बहु शब्द संख्यावाची और वैपुल्यवाची है । संख्यामें एक, दो, बहुत और विपुलतामें बहुत ओदन व बहुत दाल, इस प्रकार इन दोनोंका भी ग्रहण है ।

शंका — बहुत पदार्थोंका अवग्रह नहीं है, क्योंकि, विज्ञान प्रत्येक अर्थके वशवर्ती है ?

समाधान – नहीं, क्योंकि नगर, वन व स्कन्धावार (छावनी) में अनेक पदार्थ विषयक प्रत्ययकी उत्पत्ति देखी जाती है । इसके अतिरिक्त बहु-अवग्रहके अभावमें उसके निमित्तसे होनेवाला बहु वचनका प्रयोग भी नहीं बन सकेगा । इसका कारण यह कि एक पदार्थके ग्राहक ज्ञानोंसे बहुत पदार्थोंका ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि, वैसा होनेमें विरोध है ।

दूसरे, जिसके अभिप्रायसे नियमतः एक पदार्थमें ही विज्ञान होता है उसके यहां क्या पूर्व ज्ञानके हट जानेपर उत्तर ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, अथवा उसके होते हुए ? इनमें द्वितीय पक्ष तो बनता नहीं है, क्योंकि पूर्व ज्ञानके होते हुए उत्तर ज्ञान होता है, ऐसा माननेपर 'एक मन होनेसे ज्ञान एक पदार्थको विषय करनेवाला है' इस वाक्यके साथ विरोध होगा। (अर्थात् जिस प्रकार यहां एक मन अनेक प्रत्ययोंका आरम्भक है उसी प्रकार एक प्रत्यय अनेक पदार्थोंको विषय करनेवाला भी होना चाहिये, क्योंकि, एक कालमें अनेक प्रत्ययोंकी

१ प्रतिपु ' बहुवोदनः ' इति पाठः ।

२ बहुशब्दस्य संख्या-वैपुल्यवाचिनो ग्रहणमविशेषात् । संख्यावाची यथा — एकः द्वौ बहव इति । वैपुल्यवाची यथा — बहुरोदनो बहुः सूपः इति । स. सि. १, १६. त. रा. १, १६, १.

३ प्रतिपु ' ह्येकार्थ ग्राहकेभ्यो ' इति पाठः।

४ बह्ववग्रहाद्यभावः प्रत्यर्थवशवर्तित्वादिति चेन्न, सर्वदैकप्रत्ययप्रसंगात् । स्यादेतत् प्रत्यर्थवशवर्ति विज्ञानं नानेकमर्थं गृहीतुमलम् । अतो बह्ववग्रहादीनामभाव इति ? तन्न, किं कारणं; सर्वदैकप्रत्ययप्रसंगात् । यथारण्याटव्यां कश्चिदेकमेव पुरुषमवलोकयन्नानेक इत्यर्वेति, मिथ्याज्ञानमन्यथा स्यादेकस्यानेकबुद्धिर्यदि भवेत् ; तथा नगर-वन स्कन्धावारावगाहिनोऽपि तस्यैकप्रत्ययः स्यात् सार्वकालिकः । अतश्चानेकार्थग्राहिविज्ञानस्यात्यन्तासम्भवान्नगर-वन-स्कन्धावारप्रत्ययनिवृत्तिः, नैताः संज्ञा ह्येकार्थानिवेशिन्यः । तस्माल्लोकसंव्यवहारनिवृत्तिः । त. रा. १, १६, २. ध. अ. प. ११६८.

व्यवहारस्योच्छित्तिप्रसंगात्[1], मध्यमा-प्रदेशिन्योर्युगपदुपलंभाभावासंजननात्तद्विषयदीर्घ-ह्रस्वव्यवहारस्य आपेक्षिकस्य विनिवृत्तिप्रसंगात्[3], एकार्थविषयवर्तिनि विज्ञाने स्थाणौ पुरुषे वा प्रत्यय इति उभयसंस्पर्शित्वाभावतः तन्निबन्धनसंशयस्याभावप्रसंगाच्च[4]। किं च, पूर्णकलशमालिखतश्चित्रकर्मणि निष्णातस्य चैत्रस्य क्रिया कलशविषयविज्ञानभेदाभावात्तदनिष्पत्तिः[5] स्यात्।

....

सम्भावना है ही।) प्रथम पक्ष भी नहीं बनता है, क्योंकि, पूर्व ज्ञानके नष्ट होनेपर उत्तर ज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा स्वीकार करनेपर 'यह इससे अन्य है' इस व्यवहारके नष्ट होनेका प्रसंग आवेगा, मध्यमा और प्रदेशिनी (तर्जनी) इन दोनों अंगुलियोंका एक साथ ज्ञान न हो सकनेका प्रसंग आनेसे उनके विषयमें अपेक्षाकृत दीर्घता व ह्रस्वताके व्यवहारके भी लोप होनेका प्रसंग आवेगा, तथा ज्ञानके एकार्थविषयवर्ती होनेपर या तो स्थाणुविषयक प्रत्यय होगा या पुरुषविषयक; इन दोनोंको विषय न कर सकनेसे उनके निमित्तसे होनेवाले संशयके भी अभावका प्रसंग आवेगा। दूसरे, पूर्ण कलशको चित्रित करनेवाले तथा चित्र क्रियामें दक्ष चैत्रके क्रिया व कलश विषयक विज्ञानका भेद न होनेसे

....

१ **नानात्वप्रत्ययाभावात्।** यस्यैकार्थमेव नियमाज्ज्ञानम्, तस्य पूर्वज्ञाननिवृत्तावुत्तरज्ञानोत्पत्तिः स्यादनिवृत्तौ वा? उभयथा च दोषः— यदि पूर्वमुत्तरज्ञानोत्पत्तिकालेऽस्ति, यदुक्तम् 'एकार्थमेकमनस्त्वात्' इत्यदो विरुध्यते—यथैकं मनोऽनेकप्रत्ययारम्भकं तथैकप्रत्ययोऽनेकार्थो भविष्यति, अनेकस्य प्रत्ययस्यैककालसम्भवात्। न त्वनेकार्थोपलब्धिरुपपत्स्यते, तत्र यदभिमतमेव 'एकस्य ज्ञानमेकं चार्थमुपलभते' इत्यमुष्य व्याघातः। अथ पुनर्निवृत्तेः [निवृत्ते] पूर्वस्मिन्नुत्तरज्ञानोत्पत्तिः प्रतिज्ञायते, ननु सर्वथैकार्थमेकमेव ज्ञानमित्यत इदमस्मादन्यदित्येष व्यवहारो न स्यात्। अस्ति च सः। तस्मान्न किंचिदेतत्। त. रा. १, १६, ३. ध. अ. प. ११६८.

२ प्रतिषु '-भावासंजननात्' इति पाठः। अप्रतौ ११६८ पत्रे 'युगपदुपलंभाभावात्तद्विषय' इति पाठः।

३ **आपेक्षिकसंव्यवहारनिवृत्तेः।** यस्यैकज्ञानमनेकार्थविषयं न विद्यते, तस्य मध्यम-प्रदेशिन्योर्युगपदनुपलम्भात्तद्विषयदीर्घ-ह्रस्वव्यवहारो विनिवर्तेत। आपेक्षिको ह्यसौ। न वा [चा] पेक्षास्ति। त. रा १, १६, ४.

४ **संशयाभावप्रसंगात्।** एकार्थविषयवर्तिनि विज्ञाने स्थाणौ पुरुषे वा प्राक्प्रत्ययजन्म स्यात्, नोभयोः, प्रतिज्ञातविरोधात्। यदि स्थाणौ पुरुषाभावात्स्थाणुबंध्यापुत्रवत्संशयाभावः स्यात्, अथ पुरुषे तथा स्थाणुद्रव्यानपेक्षत्वात्संशयो न स्यात्; तत्पूर्ववत्। न त्वभाव इष्टः। अतोऽनेकार्थग्राहि विज्ञानकल्पना श्रेयसीति। त. रा. १, १६, ५.

५ **ईप्सितनिष्पत्तिरनियमात्।** विज्ञानस्यैकार्थावलम्बित्वे चित्रकर्मणि निष्णातस्य चैत्रस्य पूर्णकलशमालिखतस्तत्क्रिया-कलश-तत्प्रकारग्रहणविज्ञानभेदादितरेतरविषयसंक्रमाभावादनेकविज्ञानोत्पादनिरोधक्रमे सत्यनियमेन निष्पत्तिः स्यात्। दृष्टा तु सा नियमेन। सा चैकार्थग्राहिणि विज्ञाने विरुध्यते। तस्मान्नानार्थोऽपि प्रत्ययोऽभ्युपेयः। त. रा. १, १६, ६.

नासौ यौगपद्येन द्वि-त्रादिविज्ञानाभावे[1] उत्पद्यते, विरोधात् । प्रतिद्रव्यभिन्नानां प्रत्ययानां कथमेकत्वमिति चेन्नाक्रमेणैकजीवद्रव्यवर्तिनां परिच्छेद्यभेदेन बहुत्वमादधानानामेकत्वविरोधात् ।

एकाभिधान-व्यवहारनिबन्धन. प्रत्यय एकः[2] । विधग्रहणं प्रकारार्थम्[3], बहुविधं बहुप्रकारमित्यर्थः । जातिगनभूयःसंख्याविषयः प्रत्ययो बहुविधः[4] । गो-मनुष्य-हय-हस्त्यादिजातिगताक्रमप्रत्ययश्चक्षुर्जः । श्रोत्रजस्तत-वितत-घन-सुषिरादिजातिविषयोऽक्रमप्रत्ययः । घ्राणजः कर्पूरागुरु-तुरुष्क-चन्दनादिगन्धगताक्रमवृत्तिः प्रत्ययः । रसनजस्तिक्त-कषायाम्ल-मधुर-लवणरसेष्वक्रमवृत्तिः प्रत्ययः । स्पर्शजः स्निग्ध-मृदु-कठिनोष्म-गुरु-लघु-शीतादिस्पर्शेष्वक्रमवृत्तिः प्रत्ययश्च

....

उसकी उत्पत्ति न हो सकेगी, कारण कि वह युगपत् दो तीन ज्ञानोंके विना उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि, वैसा होनेमें विरोध है ।

शंका—प्रत्येक द्रव्यमें भेदको प्राप्त हुए प्रत्ययोंके एकता कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, युगपत् एक जीव द्रव्यमें रहनेवाले और ज्ञेय पदार्थोंके भेदसे प्रचुरताको प्राप्त हुए प्रत्ययोंकी एकतामें कोई विरोध नहीं है ।

एक शब्दके व्यवहारका कारणभूत प्रत्यय एक प्रत्यय है । विधका ग्रहण भेद प्रकट करनेके लिये है, अतः बहुविधका अर्थ बहुत प्रकार है । जातिमें रहनेवाली बहु संख्याको अर्थात् अनेक जातियोंको विषय करनेवाला प्रत्यय बहुविध कहलाता है । गाय, मनुष्य, घोड़ा और हाथी आदि जातियोंमें रहनेवाला अक्रम प्रत्यय चक्षुर्जन्य बहुविध प्रत्यय है । तत, वितत, घन और सुषिर आदि शब्दजातियोंको विषय करनेवाला अक्रम प्रत्यय श्रोत्रज बहुविध प्रत्यय है । कपूर, अगुरु, तुरुष्क (सुगन्धि द्रव्य विशेष) और चन्दन आदि सुगन्ध द्रव्योंमें रहनेवाला यौगपद्य प्रत्यय घ्राणज बहुविध प्रत्यय है । तिक्त, कषाय, आम्ल, मधुर और लवण रसोंमें एक साथ रहनेवाला प्रत्यय रसनज बहुविध प्रत्यय है । स्निग्ध, मृदु, कठिन, ऊष्म, गुरु, लघु और

....

१ द्वि-त्र्यादिप्रत्ययाभावाच्च । एकार्थविषयवर्तिनि विज्ञाने द्वाविमौ इमे त्रय इत्यादिप्रत्ययस्याभावः । यतो नैकं विज्ञानं द्वित्र्याद्यर्थानां ग्राहकमस्ति । त. रा. १, १६, ७.

२ अल्पश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशम आत्मा ततशब्दादीनामन्यतममल्पं शब्दमवगृह्णाति । त. रा. १, १६, १५. एकार्थविषयः प्रत्यय एकः । ध अ. प. ११६९. यदा तु त्वेकमेव कश्चिच्छब्दमवगृह्णाति तदाऽबह्वग्रहः । नं. सू. (म. वृत्ति) ३६.

३ विधशब्दः प्रकारवाची । स. सि. १, १६. त. रा. १, १६, ७.

४ ध. अ. प. ११६९. प्रकृष्टश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमादिसन्निधाने सति ततादिशब्दविकल्पस्य प्रत्येकमेक-द्वि-त्रि-चतुः-संख्येयासंख्येयानन्तगुणस्यावग्राहकत्वाद् बहुविधमवगृह्णाति । त रा. १, १६, १५. शंख-पटहादि-नानाशब्दसमूहमध्ये एकैकं शब्दमनेकैः पर्यायैः स्निग्ध-गाम्भीर्यादिभिर्विशिष्टं यथावस्थितं यदाऽवगृह्णाति तदा स बहुविधावग्रहः । नं. सू. (म. वृत्ति) ३६.

बहुविधः । न चायमसिद्धः, उपलभ्यमानत्वात् । न चोपलंभोऽपह्नोतुं पार्यते, अव्यवस्थापत्तेः, जातिविषयबहुप्रत्ययनिबन्धनबहुवचनव्यवहाराभावापत्तेश्च ।

एकजातिविषयत्वादेतत्प्रतिपक्षः प्रत्ययः एकविधः[1] । न चैकप्रत्ययेऽस्यान्तर्भावस्तस्य व्यक्तिगतैकत्ववर्तित्वात्, एतस्य चानेकव्यक्त्यनुविद्धैकजातिवर्तित्वात् । क्षिप्रवृत्तिः प्रत्ययः क्षिप्रः[2] । अभिनवशरावगतोदकवत् शनैः परिच्छिंदानः अक्षिप्रप्रत्ययः[3] । वस्त्वेकदेशमवलम्ब्य साकल्येन वस्तुग्रहणं वस्त्वेकदेशं समस्तं वा अवलम्ब्य तत्रासन्निहितवस्त्वंतरविषयोऽप्यनिःसृतप्रत्ययः[4] । न चायमसिद्धः, घटार्वाग्भागमवलम्ब्य क्वचिद् घटप्रत्ययस्य उत्पत्त्युपलंभात्,

शीत आदि स्पर्शोंमें एक साथ रहनेवाला स्पर्शज बहुविध प्रत्यय है । यह प्रत्यय असिद्ध नहीं है, क्योंकि, वह पाया जाता है । और जिसकी प्राप्ति है उसका अपह्नव नहीं किया जा सकता, क्योंकि, ऐसा करनेमें अव्यवस्थाकी आपत्तिके साथ जातिविषयक बहुप्रत्ययके निमित्तसे होनेवाले बहुवचनके भी व्यवहारके अभावकी आपत्ति आवेगी ।

एक जातिको विषय करनेके कारण इसके प्रतिपक्षभूत प्रत्ययको एकविध कहते हैं। इसका अन्तर्भाव एकप्रत्ययमें नहीं हो सकता, क्योंकि, वह (एकप्रत्यय) व्यक्तिगत एकतामें सम्बद्ध रहनेवाला है और यह अनेक व्यक्तियोंमें सम्बद्ध एक जातिमें रहनेवाला है। क्षिप्रवृत्ति अर्थात् शीघ्रतासे वस्तुको ग्रहण करनेवाला प्रत्यय क्षिप्र कहा जाता है । नवीन सकोरेमें रहनेवाले जलके समान धीरे वस्तुको ग्रहण करनेवाला अक्षिप्र प्रत्यय है । वस्तुके एक देशका अवलम्बन करके पूर्ण रूपसे वस्तुको ग्रहण करनेवाला तथा वस्तुके एक देश अथवा समस्त वस्तुका अवलम्बन करके वहां अविद्यमान अन्य वस्तुको विषय करनेवाला भी अनिःसृत प्रत्यय है । यह प्रत्यय असिद्ध नहीं है, क्योंकि, घटके अर्वाग्भागका अवलम्बन करके कहीं घटप्रत्ययकी उत्पत्ति पायी जाती है, कहींपर ' गायके समान गवय होता है '

१ एकजातिविषयः प्रत्ययः एकविधः । न चैकविधैकप्रत्यययोरेकत्वम्, जाति-व्यक्त्योरेकत्वाभावत-स्तद्विषयप्रत्यययोरेकत्वाभावात् । ध. अ. प. ११६९. अल्पविशुद्धिश्रोत्रेन्द्रियादिपरिणामकारण आत्मा ततादिशब्दानामेकविधावग्रहणादेकविधमवगृह्णाति । त. रा. १, १६, १५. यदा त्वेकमनेकं वा शब्दमेकपर्यायविशिष्टमवगृह्णाति तदा सोऽबहुविधावग्रहः । नं. सू. (म. वृत्ति) ३६.

२ आशुर्थग्राही क्षिप्रप्रत्ययः । ध. अ. प. ११६९.

३ ध. अ. प. ११६९.

४ वस्त्वेकदेशस्य आलम्बनीभूतस्य ग्रहणकाले एकवस्तुप्रतिपत्तिः वस्त्वेकदेशप्रतिपत्तिकाल एव वा दृष्टान्तमुखेन अन्यथा वा अनवलम्बितवस्तुप्रतिपत्तिः अनुसंधानः प्रत्ययः प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययश्च अनिःसृतप्रत्ययः । ध. अ. प. ११६९. सुविशुद्धिश्रोत्रादिपरिणामात्साकल्येनानुच्चारितस्य ग्रहणादनिःसृतमवगृह्णाति । निःसृतं प्रतीतम् । त. रा १, १६, १५ तमेव शब्दं स्वरूपेण यदा जानाति, न लिंगपरिग्रहात्, तदाऽनिश्रितावग्रहः । लिंगपरिग्रहेण त्ववगच्छतो निश्रितावग्रहः । अथवा परधर्मैर्विमिश्रितं यद्ग्रहणं तन्मिश्रितावग्रहः । यत्पुनः परधर्मैरमिश्रितस्य ग्रहणं तदमिश्रितावग्रहः । नं. सू. (म वृत्ति) ३६.

क्वचिदर्वाग्भागैकदेशमवलम्ब्य तदुत्पत्त्युपलंभात्, क्वचिद् गौरिव गवय इत्यन्यथा वा एकवस्त्ववलम्ब्य तत्रासन्निहितवस्त्वंतरविषयप्रत्ययोत्पत्त्युपलंभात्, क्वचिदर्वाग्भागग्रहणकाल एव परभागग्रहणोपलंभात्। न चायमसिद्धः, वस्तुविषयप्रत्ययोत्पत्त्यन्यथानुपपत्तेः। न चार्वाग्भागमात्रं वस्तु, तत एव अर्थक्रियाकर्तृत्वानुपलंभात्। क्वचिदेकवर्णश्रवणकाल एव अभिधास्यमानवर्णविषयप्रत्ययोत्पत्त्युपलंभात्, क्वचित्स्वभ्यस्तप्रदेशे एकस्पर्शोपलंभकाल एव स्पर्शान्तरविशिष्टतद्वस्तुप्रदेशांतरोपलंभात्, क्वचिदेकरसग्रहणकाल एव तत्प्रदेशासन्निहितरसांतरविशिष्टवस्तूपलंभात्। निःसृतमित्यपरे पठन्ति। तैरुपमाप्रत्यय एक एव संगृहीतः स्यात्, ततोऽसौ नेष्यते[1]। एतत्प्रतिपक्षो निःसृतप्रत्ययः, तथा क्वचित्कदाचिदुपलभ्यते च वस्त्वेकदेशे आलम्बनीभूते प्रत्ययस्य वृत्तिः। इन्द्रियप्रतिनियतगुणविशिष्टवस्तूपलंभकाल एव तदिन्द्रियानियतगुणविशिष्टस्य

....

अर्वाग्भागके एकदेशका अवलम्बन करके उक्त प्रत्ययकी उत्पत्ति पायी जाती है, कहींपर 'गायके समान गवय होता है' इस प्रकार अथवा अन्य प्रकारसे एक वस्तुका अवलम्बन करके वहां समीपमें न रहनेवाली अन्य वस्तुको विषय करनेवाले प्रत्ययकी उत्पत्ति पायी जाती है, कहींपर अर्वाग्भागके ग्रहणकालमें ही परभागका ग्रहण पाया जाता है। और यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, अन्यथा वस्तुविषयक प्रत्ययकी उत्पत्ति बन नहीं सकती। तथा अर्वाग्भाग मात्र वस्तु हो नहीं सकती, क्योंकि, उतने मात्रसे अर्थक्रियाकारित्व नहीं पाया जाता। कहींपर एक वर्णके श्रवणकालमें ही आगे उच्चारण किये जानेवाले वर्णोंको विषय करनेवाले प्रत्ययकी उत्पत्ति पायी जाती है, कहींपर अपने अभ्यस्त प्रदेशमें एक स्पर्शके ग्रहणकालमें ही अन्य स्पर्श विशिष्ट उस वस्तुके प्रदेशान्तरोंका ग्रहण होता है, तथा कहींपर एक रसके ग्रहणकालमें ही उन प्रदेशोंमें नहीं रहनेवाले रसान्तरसे विशिष्ट वस्तुका ग्रहण होता है। दूसरे आचार्य 'निःसृत' ऐसा पढ़ते हैं। उनके द्वारा उपमा प्रत्यय एक ही संग्रहीत होगा, अतः वह इष्ट नहीं है। इसका प्रतिपक्षभूत निःसृतप्रत्यय है, क्योंकि, कहींपर किसी कालमें आलम्बनीभूत वस्तुके एक देशमें उतने ही ज्ञानका अस्तित्व पाया जाता है।

इन्द्रियके प्रतिनियत गुणसे विशिष्ट वस्तुके ग्रहणकालमें ही उस इन्द्रियके अप्रति-

....

१ निःसृतमित्यपरे पठंति ... ध. अ. प. ११६९. अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः। त एवं वर्णयन्ति— श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाणं मयूरस्य कुररस्य वेति कश्चित् प्रतिपद्यते। अपरः स्वरूपमेवानिःसृत इति। स. सि. १, १६.

तस्योपलब्धिर्यतः सोऽनुक्तप्रत्ययः[1]। न चायमसिद्धः, चक्षुषा लवण-शर्करा-खंडोपलंभकाल एव कदाचित्तद्रसोपलंभात्, दध्नो[2] गंधग्रहणकाल एव तद्रसावगतेः, प्रदीपस्य रूपग्रहणकाल एव कदाचित्तत्स्पर्शोपलंभादाहितसंस्कारस्य कस्यचिच्छब्दग्रहणकाल एव तद्रसादिप्रत्ययोत्पत्त्युपलंभाच्च। एतत्प्रतिपक्षः उक्तप्रत्ययः।

निःसृतोक्तयोः को भेदश्चेन्न, उक्तस्य निःसृतानिःसृतोभयरूपस्य तेनैकत्वविरोधात्[3]। स एवायमहमेव स इति प्रत्ययो ध्रुवः[4]। तत्प्रतिपक्षः प्रत्ययः अध्रुवः[5]। मनसोऽनुक्तस्य को

नियत गुणसे विशिष्ट उस वस्तुका ग्रहण जिससे होता है वह अनुक्तप्रत्यय है। यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, चक्षुसे लवण, शक्कर व खांड़के ग्रहणकालमें ही कभी उनके रसका ज्ञान हो जाता है, दहीके गन्धके ग्रहणकालमें ही उसके रसका ज्ञान हो जाता है, दीपकके रूपके ग्रहणकालमें ही कभी उसके स्पर्शका ग्रहण हो जाता है, तथा शब्दके ग्रहणकालमें ही संस्कार युक्त किसी पुरुषके उसके रसादिविषयक प्रत्ययकी उत्पत्ति भी पायी जाती है। इसके प्रतिपक्ष रूप उक्तप्रत्यय है।

शंका—निःसृत और उक्तमें क्या भेद है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उक्त प्रत्यय निःसृत और अनिःसृत दोनों रूप है। अतः उसका निःसृतके साथ एकत्व होनेका विरोध है।

'यह वही है, वह मैं ही हूं' इस प्रकारका प्रत्यय ध्रुव कहलाता है। इसका प्रतिपक्षभूत प्रत्यय अध्रुव है।

शंका—मनसे अनुक्तका क्या विषय है?

१ ध. अ. प. ११६९. प्रकृष्टविशुद्धिश्रोत्रेन्द्रियादिपरिणामकारणादेकवर्णनिर्गमेऽपि अभिप्रायेणैवानुच्चारितं शब्दमवग्रह्णाति 'इमं भवान् शब्दं वक्ष्यति' इति। अथवा, स्वरसंचरणात् प्राक् तन्त्रीद्रव्यातोद्यामर्शनेनैव वादितमनुक्तमेव शब्दमभिप्रायेणावगृह्याऽऽचष्टे भवानिमं शब्दं वादयिष्यतीति। त. रा. १, १६, १५.

२ प्रतिषु 'दध्ना' इति पाठः।

३ ध. अ. प. ११६९. तत्र 'तेन' स्थाने 'निसृतेन' इति पाठः।

४ नित्यत्वविशिष्टस्तम्भादिप्रत्ययः स्थिरः। ध. अ. प. ११६९. संक्लेशपरिणामनिरुत्सुकस्य (?) यथानुरूपश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमादिपरिणामकारणावस्थितत्वाद्यथा प्राथमिकं शब्दग्रहणं तथावस्थितमेव शब्दमवगृह्णाति, नोनं नाभ्यधिकम्। त. रा. १, १६, १५, सर्वदेव बह्वादिरूपेणावगृह्णतो ध्रुवावग्रहः। नं. सू. (म. वृत्ति) ३६.

५ विद्युत्प्रदीपज्वालादौ उत्पाद-विनाशविशिष्टवस्तुप्रत्ययः अध्रुवः, उत्पाद-व्यय ध्रौव्यविशिष्टवस्तुप्रत्ययोऽपि अध्रुवः; ध्रुवात्पृथग्भूतत्वात्। ध. अ. प. ११३९. पौनःपुन्येन संक्लेश विशुद्धिपरिणामकारणापेक्षस्यात्मनो यथानुरूपपरिणामोपात्तश्रोत्रेन्द्रियसान्निध्येऽपि तदावरणस्येषदीषदाविर्भावात्। पौनःपुनिकं प्रकृष्टावकृष्टश्रोत्रेन्द्रियावरणादिक्षयोपशमपरिणामत्वाच्चाध्रुवमवगृह्णाति। त. रा. १, १६, १५. कदाचिदेव पुनर्बह्वादिरूपेणावगृह्णतोऽध्रुवावग्रहः। नं. सू. (म. वृत्ति) ३६.

विषयश्चेददृष्टमश्रुतं[1] च । न च तस्य तत्र वृत्तिरसिद्धा, उपदेशमंतरेण द्वादशांगश्रुतावगमान्यथानुपपत्तितस्तस्य तत्सिद्धेः ।

इदानीमुच्चार्य प्रदर्श्यन्ते । तद्यथा — चक्षुषा बहुमवगृह्णाति, चक्षुषा एकमवगृह्णाति, चक्षुषा बहुविधमवगृह्णाति, चक्षुषा एकविधमवगृह्णाति, चक्षुषा क्षिप्रमवगृह्णाति, चक्षुषा अक्षिप्रमवगृह्णाति, चक्षुषा अनिसृतमवगृह्णाति, चक्षुषा निःसृतमवगृह्णाति, चक्षुषा अनुक्तमवगृह्णाति, चक्षुषा उक्तमवगृह्णाति, चक्षुषा ध्रुवमवगृह्णाति, चक्षुषा अध्रुवमवगृह्णाति । एवं चक्षुरिन्द्रियावग्रहो द्वादशविधः । ईहावायधारणाश्च[2] प्रत्येकं चक्षुषो द्वादशविधा भवन्ति । तद्यथा— बहुमीहते, एकमीहते, बहुविधमीहते, एकविधमीहते, क्षिप्रमीहते, अक्षिप्रमीहते, निःसृतमीहते, अनिःसृतमीहते, उक्तमीहते, अनुक्तमीहते, ध्रुवमीहते, अध्रुवमीहते । एवमीहाभेदाः । बहुमवैति, एकमवैति, बहुविधमवैति, एकविधमवैति, क्षिप्रमवैति, अक्षिप्रमवैति,

समाधान—अदृष्ट और अश्रुत पदार्थ उसका विषय है । और उसका वहां रहना असिद्ध नहीं है, क्योंकि, उपदेशके विना अन्यथा द्वादशांग श्रुतका ज्ञान नहीं बन सकता; अतएव उसका अदृष्ट व अश्रुत पदार्थमें रहना सिद्ध है ।

अब ये भेद उच्चारण करके दिखलाये जाते हैं । वह इस प्रकारसे— चक्षुसे बहुतका अवग्रह करता है, चक्षुसे एकका अवग्रह करता है, चक्षुसे बहुत प्रकारका अवग्रह करता है, चक्षुसे एक प्रकारका अवग्रह करता है, चक्षुसे क्षिप्रका अवग्रह करता है, चक्षुसे अक्षिप्रका अवग्रह करता है, चक्षुसे अनिःसृतका अवग्रह करता है, चक्षुसे निःसृतका अवग्रह करता है, चक्षुसे अनुक्तका अवग्रह करता है, चक्षुसे उक्तका अवग्रह करता है, चक्षुसे ध्रुवका अवग्रह करता है, चक्षुसे अध्रुवका अवग्रह करता है । इस प्रकार चक्षुरिन्द्रियावग्रह बारह प्रकार है ।

ईहा, अवाय और धारणा इनमेंसे प्रत्येक चक्षुके निमित्तसे बारह प्रकार है । वह इस प्रकारसे— बहुतका ईहा करता है, एकका ईहा करता है, बहुविधका ईहा करता है, एकविधका ईहा करता है, क्षिप्रका ईहा करता है, अक्षिप्रका ईहा करता है, निःसृतका ईहा करता है, अनिःसृतका ईहा करता है, उक्तका ईहा करता है, अनुक्तका ईहा करता है, ध्रुवका ईहा करता है, अध्रुवका ईहा करता है । इस प्रकार ये ईहाके भेद हैं । बहुतका अवाय करता है, एकका अवाय करता है, बहुविधका अवाय करता है, एकविधका अवाय करता, क्षिप्रका अवाय करता है, अक्षिप्रका अवाय

१ ध. अ. प. ११६९. तत्र ' अश्रुतम् ' इत्येतस्याग्रे ' अननुभूतम् ' इत्यधिकं पदम् ।

२ प्रतिषु ' ईहावायाधारणाश्च ' इति पाठः ।

निःसृतमवैति, अनिःसृतमवैति, उक्तमवैति, अनुक्तमवैति, ध्रुवमवैति, अध्रुवमवैति । इति अवाय-भेदाः । बहुं धारयति, एकं धारयति, बहुविधं धारयति, एकविधं धारयति, क्षिप्रं धारयति, अक्षिप्रं धारयति, निःसृतं धारयति, अनिःसृतं धारयति, उक्तं धारयति, अनुक्तं धारयति, ध्रुवं धारयति, अध्रुवं धारयति । एवं चक्षुरिन्द्रियस्याष्टचत्वारिंशन्मतिज्ञानभेदाः । मनसोऽप्येतावंत एव, अनयोर्व्यंजनावग्रहाभावात् । शेषेन्द्रियाणां प्रत्येकं षष्टिभंगाः, तेषां व्यंजनावग्रहस्य सत्वात् । त एते सर्वेऽप्येकध्यमुपनीताः त्रीणि शतानि षट्त्रिंशदधिकानि भवन्ति ।

कोऽर्थावग्रहो व्यंजनावग्रहो वा? अप्राप्तार्थग्रहणमर्थावग्रहः[1], प्राप्तार्थग्रहणं व्यंजनाव-ग्रहः[2] । न स्पष्टास्पष्टग्रहणे अर्थ-व्यंजनावग्रहौ, तयोश्चक्षुर्मनसोरपि सत्वतस्तत्र व्यंजनावग्रहस्य

करता है, निःसृतका अवाय करता है, अनिःसृतका अवाय करता है, उक्तका अवाय करता है, अनुक्तका अवाय करता है, ध्रुवका अवाय करता है, अध्रुवका अवाय करता है । इस प्रकार ये अवायके भेद हैं । बहुतको धारण करता है, एकको धारण करता है, बहुविधको धारण करता है, एकविधको धारण करता है, क्षिप्रको धारण करता है, अक्षिप्रको धारण करता है, निःसृतको धारण करता है, अनिःसृतको धारण करता है, उक्तको धारण करता है, अनुक्तको धारण करता है, ध्रुवको धारण करता है, अध्रुवको धारण करता है । इस प्रकार चक्षु इन्द्रियके निमित्तसे अड़तालीस मतिज्ञानके भेद होते हैं । मनके निमित्तसे भी इतने ही भेद होते हैं, क्योंकि, इन दोनोंके व्यञ्जनावग्रह नहीं होता । शेष चार इन्द्रियोंमें प्रत्येकके निमित्तसे साठ भंग होते हैं, क्योंकि, उनके व्यञ्जनावग्रह होता है । वे ये सब एकत्रित होकर तीनसौ छत्तीस (४८ + ४८ + ६० + ६० + ६० + ६० = ३३६) होते हैं ।

शंका—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह किसे कहते हैं ?

समाधान—अप्राप्त पदार्थके ग्रहणको अर्थावग्रह और प्राप्त पदार्थके ग्रहणको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं ।

स्पष्टग्रहणको अर्थावग्रह और अस्पष्टग्रहणको व्यञ्जनावग्रह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, स्पष्टग्रहण और अस्पष्टग्रहण तो चक्षु और मनके भी रहता है, अतः ऐसा माननेपर

---

१ ध. अ. प. ११६८. तत्र अर्थ्यते इत्यर्थः, अर्थस्य अवग्रहणं अर्थावग्रहः— सकलरूपादिविशेषनिर-पेक्षानिर्देश्यसामान्यमात्ररूपार्थग्रहणमेकसामयिकमित्यर्थः । नं. सू. (म. वृत्ति) २८.

२ ध. अ. प. ११६४. व्यञ्जनमव्यक्तं शब्दादिजातम् , तस्यावग्रहो भवति । स. सि. १, १८. व्यज्यते अनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनम् , तच्चोपकरणेन्द्रियस्य श्रोत्रादेः शब्दादिपरिणतद्रव्याणां च परस्परं सम्बन्धः । सम्बन्धे हि सति सोऽर्थः शब्दादिरूपः श्रोत्रादीन्द्रियेण व्यञ्जयितुं शक्यते, नान्यथा । ततः सम्बन्धो व्यञ्जनम् ।

सत्वप्रसंगात् । अस्तु चेन्न, 'न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्' इति तत्र व्यंजनावग्रहस्य प्रतिषेधात् । न शनैर्ग्रहणं व्यंजनावग्रहः, चक्षुर्मनसोरपि तदस्तित्वतस्तयोर्व्यंजनावग्रहस्य सत्वप्रसंगात् । न च तत्र शनैर्ग्रहणमसिद्धमक्षिप्रभंगाभावे अष्टचत्वारिंशच्चक्षुर्मतिज्ञानभेदस्यासत्वप्रसंगात् । न श्रोत्रादीन्द्रियचतुष्टये अर्थावग्रहः, तत्र प्राप्तस्यैवार्थस्य ग्रहणोपलंभादिति चेन्न, वनस्पतिष्व-प्राप्तार्थग्रहणस्योपलंभात् । तदपि कुतोऽवगम्यते ? दूरस्थनिधिमुद्दिश्य प्रारोहमुत्त्यन्यथानुप-पत्तेः[1] ।

उन दोनोंके भी व्यञ्जनावग्रहके अस्तित्वका प्रसंग आवेगा । परन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि, 'चक्षु और मनसे व्यञ्जन पदार्थका अवग्रह नहीं होता' इस प्रकार सूत्र द्वारा उन दोनोंके व्यञ्जनावग्रहका प्रतिषेध किया गया है । यदि कहो कि धीरे धीरे जो ग्रहण होता है वह व्यञ्जनावग्रह है, सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि इस प्रकारके ग्रहणका अस्तित्व चक्षु और मनके भी है, अतः उनके भी व्यञ्जनावग्रहके रहनेका प्रसंग आवेगा । और उन दोनोंमें शनैर्ग्रहण असिद्ध नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेसे अक्षिप्र भंगका अभाव होनेपर चक्षुनिमित्तक अड़तालीस मतिज्ञानके भेदोंके अभावका प्रसंग आवेगा ।

शंका—श्रोत्रादिक चार इन्द्रियोंमें अर्थावग्रह नहीं है, क्योंकि, उनमें प्राप्त ही पदार्थका ग्रहण पाया जाता है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, वनस्पतियोंमें अप्राप्त अर्थका ग्रहण पाया जाता है ।

शंका—वह भी कहांसे जाना जाता है ?

समाधान— क्योंकि, दूरस्थ निधि (खाद्य आदि) को लक्ष्य कर प्रारोह (शाखा) का छोड़ना अन्यथा बन नहीं सकता ।

तथा चाह भाष्यकृत्— 'वंजिज्जइ जेणऽत्थो घडो व दीवेण वंजणं तं च । उवगरणिंदियसद्दाइपरिणयद्दव्वसंबंधो' ॥ [वि. भा. १९४] । व्यञ्जनेन-सम्बन्धेनावग्रहणम्— सम्बध्यमानस्य शब्दादिरूपस्यार्थस्याव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः । अथवा, व्यज्यन्ते इति व्यञ्जनानि, 'कृद् बहुलम्' इति वचनात् कर्मण्यनट्, व्यञ्जनानां शब्दादि-रूपतया परिणतानां द्रव्याणामुपकरणेन्द्रियसम्प्राप्तानामवग्रहः— अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः । व्यज्यतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनम्— उपकरणेन्द्रियम् , तेन सम्बद्धस्यार्थस्य— शब्दादेरवग्रहणम्— अव्यक्तरूपः परिच्छेदो व्यञ्जनावग्रहः । इयमत्र भावना— उपकरणेन्द्रियशब्दादिपरिणतद्रव्यसम्बन्धे प्रथमसमयादारभ्यार्थावग्रहात् प्राक् या सुप्त-मत्त-मूर्च्छितादिपुरुषाणामिव शब्दादिद्रव्यसम्बन्धमात्रविषया काचिदव्यक्ता ज्ञानमात्रा सा व्यञ्जनाव-ग्रहः । नं. सू. (म. वृत्ति) २८.

१ [अत्र-] चक्षुर्भ्यां व्यतिरिक्तेष्विन्द्रियेष्वप्राप्तार्थग्रहणं नोपलभ्यते इति चेन्न, वनस्पत्यप्राप्तनिधिग्राहिण उपलम्भात् अलाबूवल्ल्यादीनामप्राप्तवृत्तिवृक्षादिग्रहणोपलम्भात् । ध. अ. प. ११६४.

चत्तारि धणुसयाइं चउसट्ठ सयं च तह य धणुहाणं ।
पासे रसे य गंधे दुगुणा दुगुणा असण्णि त्ति ॥ ४८ ॥

उणतीसजोयणसया चउवण्णा तह य होंति णायव्वा ।
चउरिंदियस्स णियमा चक्खुप्फासो सुणियमेण[1] ॥ ४९ ॥

उणसट्ठिजोयणसया अट्ठ य तह जोयणा मुणेयव्वा ।
पंचिंदियसण्णीणं चक्खुप्फासो मुणेयव्वो ॥ ५० ॥

अट्ठेव धणुसहस्सा विसओ सोदस्स तह असण्णिस्स ।
इय एदे णायव्वा पोग्गलपरिणामजोएण[2] ॥ ५१ ॥

पासे रसे य गंधे विसओ णव जोयणा मुणेयव्वा ।
बारह जोयण सोदे चक्खुस्सुड्ढं पवक्खामि ॥ ५२ ॥

सत्तेतालसहस्सा बे चेव सया हवंति तेवट्ठा ।
चक्खिंदियस्स विसओ उक्कस्सो होदि अदिरित्तो[3] ॥ ५३ ॥

चार सौ धनुष, चौसठ धनुष तथा सौ धनुष प्रमाण क्रमसे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीवोंका स्पर्श, रस एवं गन्ध विषयक क्षेत्र है। आगे असंज्ञी पर्यन्त यह विषयक्षेत्र दूना दूना होता गया है ॥ ४८ ॥

चतुरिन्द्रिय जीवके चक्षु इन्द्रियका विषय नियमसे उनतीस सौ चौवन योजन प्रमाण है ॥ ४९ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी जीवोंके चक्षु इन्द्रियका विषय उनसठ सौ आठ योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ ५० ॥

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके श्रोत्रका विषय आठ हजार धनुष प्रमाण है। इस प्रकार पुद्गलपरिणाम योगसे ये विषय जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंके स्पर्श, रस व गन्ध विषयक क्षेत्र नौ योजन प्रमाण तथा श्रोत्रका बारह योजन प्रमाण जानना चाहिये। चक्षुके विषयको आगे कहते हैं ॥ ५२ ॥

चक्षु इन्द्रियका उत्कृष्ट विषय सैंतालीस हजार दो सौ तिरेसठ योजनसे कुछ अधिक [$\frac{७}{२०}$] है ॥ ५३ ॥

१ प्रतिषु ' मुणियणेण ' इति पाठः ।

२ धणुवीसडदसयकदी जोयणछादालहीणतिसहस्सा । अट्ठसहस्स धणूणं विसया दुगुणा असण्णि त्ति ॥ गो. जी. १६७.

३ सण्णिस्स बार सोदे तिण्हं णव जोयणाणि चक्खुस्स । सत्तेताल सहस्सा बेसदतेसट्ठिमदिरेया ॥ गो. जी. १६८. ध. अ. प. ११६७.

इति आगमाद्वा तेषामप्राप्तार्थग्रहणमवगम्यते। नवयोजनान्तरस्थितपुद्गलद्रव्यस्कंधैक-देशमागम्येन्द्रियसंबद्धं जानन्तीति केचिदाचक्षते। तन्न घटते, अध्वानप्ररूपणायाः वैफल्य-प्रसंगात्। न चाध्वानं द्रव्याल्पीयस्त्वस्य कारणम्, स्वमहत्वापरित्यागेन भूयो योजनानि संचरज्जी-मूतव्रातोपलंभतोऽनेकांतात्। किं च यदि प्राप्तार्थग्राहिण्येवेन्द्रियाण्यध्वाननिरूपणमंतरेण द्रव्य-प्रमाणप्ररूपणमेवाकरिष्यत्। न चैवम्, तथानुपलंभात्। किं च नवयोजनांतरस्थिताग्नि-विषाभ्यां तीव्रस्पर्श-रसक्षयोपशमानां दाह-मरणे स्याताम्, प्राप्तार्थग्रहणात्। तावन्मात्राध्वानस्थिताशुचि-भक्षणतद्गन्धजनितदुःखे च तत एव स्याताम्।

पुट्ठं सुणेइ सद्दं अप्पुट्ठं चेय पस्सदे रूवं।
गंधं रसं च फासं बद्धं पुट्ठं च जाणादि[1] ॥ ५४ ॥

इत्यस्मात्सूत्रात्प्राप्तार्थग्राहित्वमिन्द्रियाणामवगम्यत इति चेन्न, अर्थावग्रहस्य लक्षणा-

इस आगमसे भी उक्त चार इन्द्रियोंके अप्राप्त पदार्थका ग्रहण जाना जाता है। नौ योजनके अन्तरसे स्थित पुद्गल द्रव्य स्कन्धके एक देशको प्राप्त कर इन्द्रियसम्बद्ध अर्थको जानते हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर अध्वानप्ररूपणाके निष्फल होनेका प्रसंग आता है। और अध्वान द्रव्यकी सूक्ष्मताका कारण नहीं है, क्योंकि, अपने महान् परिमाणको न छोड़कर बहुत योजनों तक गमन करते हुए मेघसमूहके देखे जानेसे हेतु अनैकान्तिक होता है। दूसरे, यदि इन्द्रियां प्राप्त पदार्थको ग्रहण करनेवाली ही होतीं तो अध्वानका निरूपण न करके द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा ही की जाती। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता। इसके अतिरिक्त नौ योजनके अन्तरमें स्थित अग्नि और विषसे स्पर्श और रसके तीव्र क्षयोपशमसे युक्त जीवोंके क्रमशः दाह और मरण होना चाहिये, क्योंकि, इन्द्रियां प्राप्त पदार्थका ग्रहण करनेवाली हैं। और इसी कारण उतने मात्र अध्वानमें स्थित अशुचि पदार्थके भक्षण और उसके गन्धसे उत्पन्न दुख भी होना चाहिये।

शंका—श्रोत्रसे स्पृष्ट शब्दको सुनता है। परन्तु चक्षुसे रूपको अस्पृष्ट ही देखता है। शेष इन्द्रियोंसे गन्ध, रस और स्पर्शको बद्ध व स्पृष्ट जानता है ॥ ५४ ॥

इस सूत्रसे इन्द्रियोंके प्राप्त पदार्थका ग्रहण करना जाना जाता है?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, वैसा होनेपर अर्थावग्रहके लक्षणका अभाव

१ स. सि. १, १९. त. रा १, १९, ३. तत्र 'बद्धं पुट्ठं च' इत्येतस्य स्थाने 'पुट्ठं पुट्ठं' इति पाठः। पुट्ठं सुणेइ सद्दं रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु। गंधं रसं च फासं च बद्धपुट्ठं वियागरे ॥ वि. भा. ३३६ (नि. ५).

भावतः खरविषाणस्येवाभावप्रसंगात्। कथं पुनरस्या गाथाया अर्थो व्याख्यायते ? उच्यते— रूपमस्पृष्टमेव चक्षुर्गृह्णाति। चशब्दान्मनश्च। गंधं रसं स्पर्शं च बद्धं स्वक-स्वकेन्द्रियेषु नियमितं पुट्ठं स्पृष्टं चशब्दादस्पृष्टं च शेषेन्द्रियाणि गृह्णन्ति। पुट्ठं सुणेइ सद्दं इत्यत्रापि बद्ध-च-शब्दौ योज्यौ, अन्यथा दुर्व्याख्यानतापत्तेः[1]। एवं मतिज्ञानं संक्षेपेण प्ररूपितम्।

इदानीं श्रुतस्वरूपमुच्यते — श्रुतशब्दो जहत्स्वार्थवृत्तिः कुशलशब्दवत्[2]। यथा कुशल-शब्दः कुशलवनकर्म प्रतीत्य व्युत्पादितः सर्वत्र पर्यवदाते वर्त्तते, तथा श्रुतशब्दोऽपि श्रवणमुपादाय व्युत्पादितो रूढिवशात्कस्मिंश्चिद् ज्ञानविशेषे वर्त्तते, न श्रवणोत्पन्नज्ञान एव। तदपि श्रुतज्ञानं

....

होनेसे गधेके सींगके समान उसके अभावका प्रसंग आवेगा।

शंका—फिर इस गाथाके अर्थका व्याख्यान कैसे किया जाता है ?

समाधान—इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं— चक्षु रूपको अस्पृष्ट ही ग्रहण करती है, च शब्दसे मन भी अस्पृष्ट ही वस्तुको ग्रहण करता है। शेष इन्द्रियां गन्ध, रस और स्पर्शको बद्ध अर्थात् अपनी अपनी इन्द्रियोंमें नियमित व स्पृष्ट ग्रहण करती हैं, च शब्दसे अस्पृष्ट भी ग्रहण करती हैं। 'स्पृष्ट शब्दको सुनता है' यहां भी बद्ध और च शब्दोंको जोड़ना चाहिये, क्योंकि, ऐसा न करनेसे दूषित व्याख्यानकी आपत्ति आती है। इस प्रकार संक्षेपसे मतिज्ञानकी प्ररूपणा की है।

अब श्रुत ज्ञानके स्वरूपको कहते हैं—श्रुत शब्द कुशल शब्दके समान जहत्स्वार्थवृत्ति (लक्षणाविशेष) है। जैसे कुश काटने रूप क्रियाका आश्रय करके सिद्ध किया गया कुशल शब्द [उक्त अर्थको छोड़कर] सब जगह 'पर्यवदात' अर्थमें आता है, उसी प्रकार श्रुत शब्द भी श्रवण क्रियाको लेकर सिद्ध होता हुआ रूढिवशसे किसी ज्ञानविशेषमें रहता है, न कि केवल श्रवणसे उत्पन्न ज्ञानमें ही। वह भी श्रुतज्ञान मतिपूर्वक अर्थात् मतिज्ञानके

....

१ पुट्ठं— आलिंगियं रेणुं व तणुंमि, शृणोति गृह्णात्युपलभत इति पर्यायाः। कम् ? शब्द्यतेऽनेनेति शब्दः तं, शब्दप्रायोग्यां द्रव्यसंहतिमित्यर्थः, तस्य बहुसूक्ष्मभावुकत्वात्। ×××× बद्धं— आत्मीकृतमात्मप्रदेशैस्तोय-वदाश्लिष्टमित्यर्थः, 'पुट्ठं' तु पूर्ववत्। प्राकृतशैल्या चेत्थमाह 'बद्धपुट्ठं तु' अर्थतस्तु 'पुट्ठबद्धं' इति द्रष्टव्यम्, अनुगुणत्वात्। ×××× भावार्थस्त्वयम्— स्पृष्टानन्तरमात्मप्रदेशैरागृहीतं गन्धादि बादरत्वात् अभावुकत्वादल्पद्रव्य-रूपत्वात् घ्राणादीनां चापटुत्वात्, गृह्णाति विनिश्चिनोति घ्राणेन्द्रियादिगण इत्येवं 'व्यागृणीयात्' प्रतिपादयेदिति निर्युक्तिगाथासमुदायार्थः। वि. भा. (वि. वृत्ति) ३३६.

२ त. रा. १, २०, १.

मतिपूर्वं, मतिकारणमिति यावत्, कार्यं पालयति पूरयतीति वा पूर्वशब्दनिष्पत्तेः[1]। मतिपूर्वत्वाविशेषात् श्रुताविशेष इति चेन्न, मतिपूर्वत्वाविशेषेऽपि प्रतिपुरुषं हि श्रुतावरणक्षयोपशमाः बहुधा भिन्नाः, तद्भेदात् बाह्यनिमित्तभेदाच्च श्रुतस्य प्रकर्षाप्रकर्षयोगो भवेदिति[2]। यदा शब्दपरिणतपुद्गलस्कन्धात् आहितवर्ण-पद-वाक्यादिभेदाच्च आद्यश्रुतविषयभावमापन्नादविनाभाविनः कृतसंगीतिर्जनो घटाज्जलधारणादिकार्यसम्बन्ध्यन्तरं प्रतिपद्यते अग्न्यादेर्वा भस्मादिद्रव्यं तदा श्रुताच्छ्रुतप्रतिपत्तिरिति कृत्वा मतिपूर्वलक्षणमव्यापीति चेत्तन्न, व्यवहितेऽपि पूर्वशब्दप्रवृत्तेः। तद्यथा— पूर्वं मथुरायाः पाटलिपुत्रमिति। ततः साक्षान्मतिपूर्वं परम्परामतिपूर्वमपि मतिपूर्वग्रहणेन गृह्यते[3]।

....

निमित्तसे होनेवाला है, क्योंकि, 'कार्यको जो पालन करता है अथवा पूर्ण करता है वह पूर्व है' इस प्रकार पूर्व शब्द सिद्ध हुआ है।

शंका — मतिपूर्वत्वकी समानता होनेसे श्रुतज्ञानमें कोई भेद नहीं होगा?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि, मतिपूर्वत्वके समान होनेपर भी प्रत्येक पुरुषमें श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशम बहुधा भिन्न होते हैं, अतः उनके भेदसे और बाह्य निमित्तोंके भी भेदसे श्रुतके हीनाधिकताका सम्बन्ध होता है।

शंका — जब वर्ण, पद एवं वाक्य आदि भेदोंको धारण करनेवाले तथा आद्य श्रुतविषयताको प्राप्त हुए अविनाभावी शब्दपरिणत पुद्गलस्कन्धसे संकेत युक्त पुरुष घटसे जलधारणादि कार्य रूप अन्य सम्बन्धीको अथवा अग्नि आदिसे भस्म आदिको जानता है तब श्रुतसे श्रुतका लाभ होता है, अतः श्रुतका मतिपूर्वत्व लक्षण अव्याप्ति दोष युक्त (लक्ष्यके एक देशमें रहनेवाला) है?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि, व्यवधानके होनेपर भी पूर्व शब्दकी प्रवृत्ति होती है। जैसे मथुरासे पूर्वमें पाटलिपुत्र है। इसलिये मतिपूर्व-ग्रहणसे साक्षात् मतिपूर्वक और परम्परासे मतिपूर्वक भी ग्रहण किया जाता है।

....

१ त. रा. १, २०. २. मइपुव्वं सुयमुत्तं न मई सुयपुव्विया विसेसोऽयं। पुव्वं पूरण-पालणभावाओ जं मई तस्स॥ पूरिज्जइ पालिज्जइ दिज्जइ वा जं मइए णामइणा। पालिज्जइ य मईए गहियं इहरा पणस्सेज्जा॥ वि. भा. १०५-६.　　२ त. रा. १, २०, ९.

३ यदा शब्दपरिणत... ...पद-वाक्यादिभावाच्चक्षुरादिविषयाच्चाऽद्यश्रुतविषयभावमापन्नादविनाभाविनः कृतसंगतिर्जनो...धूमादेर्वाग्न्यादिद्रव्यं तदा... ...लक्षणमव्यापीति तन्न, किं कारणम्, तस्योपचारतो मतित्वसिद्धेः। मतिपूर्वं हि श्रुतं क्वचिन्मतिरित्युपचर्यते। अथवा व्यवहिते पूर्वशब्दो वर्तते तद्यथा... ...। त. रा. १, २०, १०.

तदपि द्विविधमंगमंगबाह्यमिति । अंगश्रुतमाचारादिभेदेन द्वादशविधम्, इतरश्च सामायिकादिभेदेन चतुर्दशविधम्, अथवा अनेकभेदम्; चक्षुरादिभ्यः समुत्पन्नस्य परिगणनाभावात्। कथं शब्दस्य तत्स्थापनायाश्च श्रुतव्यपदेशः ? नैष दोषः, कारणे कार्योपचारात् ।

अथवा, अनुगम्यन्ते परिच्छिद्यन्त इति अनुगमाः षड्द्रव्याणि त्रिकोटिपरिणामात्मकपाषंड्यविषयाविभ्राड्भावरूपाणि प्राप्तजात्यन्तराणि प्रमाणविषयतया अपसारितदुर्नयानि सविश्वरूपानन्तपर्यायसप्रतिपक्षविधिनियत[1]भंगात्मकसत्तास्वरूपाणीति[2] प्रतिपत्तव्यम् । एवमणुगमपरूवणा कदा ।

संपहि णयसरूवपरूवणा कीरदे— को णयो णाम ? ज्ञातुरभिप्रायो नयः[3] ।

यह श्रुतज्ञान दो प्रकार है — अंग और अंगबाह्य । अंगश्रुत आचार आदिके भेदसे बारह प्रकार और दूसरा सामायिक आदिके भेदसे चौदह प्रकार अथवा अनेक भेद रूप है, क्योंकि, चक्षु आदि इन्द्रियोंसे उत्पन्न उसकी गणनाका अभाव है ।

शंका—शब्द और उसकी स्थापनाकी श्रुत संज्ञा कैसे हो सकती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, कारणमें कार्यका उपचार करनेसे शब्द या उसकी स्थापनाकी श्रुत संज्ञा बन जाती है ।

अथवा 'जो जाने जाते हैं वे अनुगम हैं' इस निरुक्तिके अनुसार त्रिकोटि स्वरूप (द्रव्य, गुण व पर्याय) पाखण्डियोंके अविषयभूत अविभ्राड्भावसम्बन्ध अर्थात् कथंचित् तादात्म्यसे सहित, जात्यन्तर स्वरूपको प्राप्त, प्रमाणके विषय होनेसे दुर्नयोंको दूर करनेवाले, अपनी नानारूप अनन्त पर्यायोंकी प्रतिपक्ष भूत असत्तासे सहित और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूपसे संयुक्त ऐसे छह द्रव्य अनुगम हैं, ऐसा जानना चाहिये । इस प्रकार अनुगमकी प्ररूपणा की है ।

अब नयोंके स्वरूपकी प्ररूपणा करते हैं—

शंका—नय किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञाताके अभिप्रायको नय कहते हैं ।

१ प्रतिषु '-नियम' इति पाठः ।

२ सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया । भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥ पंचा. ८.

३ णाणं होदि पमाणं णओ वि णादुस्स हिदयभावत्थो । ति. प. १-८३. ज्ञानं प्रमाणमात्मादेरुपायो न्यास इष्यते । नयो ज्ञातुरभिप्रायः युक्तितोऽर्थपरिग्रहः । लघी. ६, २.

अभिप्राय इत्यस्य कोऽर्थः? प्रमाणपरिगृहीतार्थैकदेशवस्त्वध्यवसायः अभिप्रायः[1]। युक्तितः प्रमाणात् अर्थपरिग्रहः द्रव्य-पर्याययोरन्यतरस्य अर्थ इति परिग्रहो वा नयः। प्रमाणेन परिच्छिन्नस्य वस्तुनः द्रव्ये पर्याये वा वस्त्वध्यवसायो नय इति यावत्।

प्रमाणमेव नयः इति केचिदाचक्षते, तन्न घटते; नयानामभावप्रसंगात्। अस्तु चेन्न, नयाभावे एकान्तव्यवहारस्य दृश्यमानस्याभावप्रसंगात्। किं च न प्रमाणं नयः, तस्यानेकान्तविषयत्वात्। न नयः प्रमाणम्, तस्यैकान्तविषयत्वात्[2]। न च ज्ञानमेकान्तविषयमस्ति, एकान्तस्य नीरूपत्वतोऽवस्तुनः कर्मरूपत्वाभावात्। न चानेकान्तविषयो नयोऽस्ति, अवस्तुनि वस्त्वर्पणाभावात्। किं च, न प्रमाणेन विधिमात्रमेवपरिच्छिद्यते, परव्यावृत्तिमनादधानस्य तस्य प्रवृत्तेः सांकर्यप्रसंगादप्रतिपत्तिसमानताप्रसंगो वा। न प्रतिषेधमात्रम्, विधिमपरिच्छिंदानस्य इदमस्माद्-

शंका — 'अभिप्राय' इसका क्या अर्थ है?

समाधान — प्रमाणसे गृहीत वस्तुके एक देशमें वस्तुका निश्चय ही अभिप्राय है।

युक्ति अर्थात् प्रमाणसे अर्थके ग्रहण करने अथवा द्रव्य और पर्यायमेंसे किसी एकको अर्थ रूपसे ग्रहण करनेका नाम नय है। प्रमाणसे जानी हुई वस्तुके द्रव्य अथवा पर्यायमें वस्तुके निश्चय करनेको नय कहते हैं, यह इसका अभिप्राय है।

प्रमाण ही नय है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर नयोंके अभावका प्रसंग आता है। यदि कहा जाय कि नयोंका अभाव हो जाय, सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा होनेपर देखे जानेवाले एकान्त व्यवहारके लोप होनेका प्रसंग आवेगा।

दूसरे, प्रमाण नय नहीं हो सकता, क्योंकि, उसका विषय अनेक धर्मात्मक वस्तु है। न नय प्रमाण हो सकता है, क्योंकि, उसका एकान्त विषय है। और ज्ञान एकान्तको विषय करनेवाला है नहीं, क्योंकि, एकान्त नीरूप होनेसे अवस्तु स्वरूप है, अतः वह कर्म नहीं हो सकता। तथा नय अनेकान्तको विषय करनेवाला नहीं है, क्योंकि, अवस्तुमें वस्तुका आरोप नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, प्रमाण केवल विधिको ही नहीं जानता, क्योंकि, दूसरे पदार्थोंसे भेदको न ग्रहण करनेपर उसकी प्रवृत्तिके संकरताका प्रसंग अथवा समान रूपसे अज्ञानका प्रसंग आवेगा। वह प्रमाण प्रतिषेध मात्रको ग्रहण नहीं करता, क्योंकि, विधिको न जाननेपर वह 'यह इससे भिन्न है' ऐसा ग्रहण करनेके

१ जयध. १, पृ. १९९.

२ किञ्च, न नयः प्रमाणम्: प्रमाणव्यपाश्रयस्य वस्त्वध्यवसायस्य तद्विरोधात्। 'सकलादेशः प्रमाणाधीनः, विकलादेशो नयाधीनः' इति भिन्नकार्यदर्शनात्(?) न नयः प्रमाणम्। जयध. १, पृ. २००. किञ्च, न नयः प्रमाणम्, एकान्तरूपत्वात्, प्रमाणे चानेकान्तरूपसन्दर्शनात्। जयध. १, पृ. २०७.

व्यावृत्तमिति गृहीतुमशक्यत्वात् । न च विधि-प्रतिषेधौ मिथो भिन्नौ प्रतिभासेते, उभयदोषानुषंगात् । ततो विधि-प्रतिषेधात्मकं वस्तु प्रमाणसमधिगम्यमिति नास्त्येकान्तविषयं विज्ञानम् । न चानुमानमेकान्तविषयं येन तस्य नयत्वमुच्यते, तस्याप्युक्तन्यायतोऽनेकान्तविषयत्वात् । ततः प्रमाणं न नयः, किंतु प्रमाणपरिच्छिन्नवस्तुनः एकदेशे वस्तुत्वार्पणा नय इति सिद्धम् ।

प्रमाण-नयैर्वस्त्वधिगम इत्यनेन सूत्रेणापि नेदं व्याख्यानं विघटते । कुतः ? यतः प्रमाण-नयाभ्यामुत्पन्नवाक्येऽप्युपचारतः[1] प्रमाण-नयौ, ताभ्यामुत्पन्नबोधौ विधि-प्रतिषेधात्मकवस्तु-विषयत्वात् प्रमाणतामादधानावपि कार्ये कारणोपचारतः प्रमाण-नयावित्यस्मिन् सूत्रे परिगृहीतौ । नयवाक्यादुत्पन्नबोधः प्रमाणमेव न नय, इत्येतस्य ज्ञापनार्थं ताभ्यां वस्त्वधिगम इति भण्यते । अथवा प्रधानीकृतबोधः पुरुषः प्रमाणम्, अप्रधानीकृतबोधो नयः । वस्त्वधिगम एव क्रियते नावस्तुन इति प्रतिपत्तव्यमन्यथा नयस्य प्रमाणांतःप्रवेशतोऽभावप्रसंगात् ।

....

लिये असमर्थ है । और प्रमाणमें विधि व प्रतिषेध दोनों परस्पर भिन्न भी नहीं प्रतिभासित होते, क्योंकि, ऐसा होनेपर पूर्वोक्त दोनों दोषोंका प्रसंग आता है । इस कारण विधि-प्रतिषेध रूप वस्तु प्रमाणका विषय है, अतएव ज्ञान एकान्तको विषय करनेवाला नहीं है ।

अनुमान भी एकान्तको विषय नहीं करता जिससे कि उसे नय कहा जा सके, क्योंकि, वह भी उपर्युक्त न्यायसे अनेकान्तको विषय करनेवाला है । इसलिये प्रमाण नय नहीं है, किन्तु प्रमाणसे जानी हुई वस्तुके एक देशमें वस्तुत्वकी विवक्षाका नाम नय है, यह सिद्ध हुआ ।

' प्रमाण और नयसे वस्तुका ज्ञान होता है ' इस सूत्र द्वारा भी यह व्याख्यान विरुद्ध नहीं पड़ता । इसका कारण यह कि प्रमाण और नयसे उत्पन्न वाक्य भी उपचारसे प्रमाण और नय हैं, उन दोनोंसे उत्पन्न उभय बोध विधि-प्रतिषेधात्मक वस्तुको विषय करनेके कारण प्रमाणताको धारण करते हुए भी कार्यमें कारणका उपचार करनेसे प्रमाण व नय हैं, इस प्रकार सूत्रमें ग्रहण किये गये हैं । नयवाक्यसे उत्पन्न बोध प्रमाण ही है, नय नहीं है; इस बातके ज्ञापनार्थ ' उन दोनोंसे वस्तुका ज्ञान होता है ' ऐसा कहा जाता है । अथवा, बोधको प्रधान करनेवाला पुरुष प्रमाण और उसे अप्रधान करनेवाला नय है । वस्तुका ही अधिगम किया जाता है, अवस्तुका नहीं, ऐसा जानना चाहिये; क्योंकि, इसके विना प्रमाणके भीतर प्रवेश होनेसे नयके अभावका प्रसंग आवेगा ।

....

१ प्रतिषु ' -वाक्ये न यावदप्युपचारतः ' इति पाठः ।

प्रमाणपरिगृहीतवस्तुनि यो व्यवहार एकान्तरूपः स नयनिबन्धनः। ततः सकलो व्यवहारो नयाधीनः। प्रमाणाधीनव्यवहारानुपलंभतस्तदस्तित्वे संशयानस्य प्रमाणनिबन्धनव्यवहार-प्रदर्शनार्थं 'सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीनः' इति प्रतिपादयता नानेनापीदं[1] व्याख्यानं विघटते। कः सकलादेशः? स्यादस्तीत्यादि। कुतः? प्रमाणनिबन्धनत्वात् स्याच्छब्देन सूचिताशेषाप्रधानीभूतधर्मत्वात्[2]। को विकलादेशः? अस्तीत्यादिः[3]। कुतः? नयोत्पन्नत्वात्। तथा पूज्यपादभट्टारकैरप्यभाणि सामान्यनयलक्षणमिदमेव। तद्यथा— प्रमाण-

प्रमाणसे गृहीत वस्तुमें जो एकान्त रूप व्यवहार होता है वह नयनिमित्तक है। इसीलिये समस्त व्यवहार नयके आधीन है। प्रमाणके आधीन व्यवहारके न पाये जानेसे उसके अस्तित्वमें संशय करनेवालेके लिये प्रमाणनिमित्तक व्यवहारके दिखलानेके लिये 'सकलादेश प्रमाणके आधीन है और विकलादेश नयके आधीन है' ऐसा कहा है। इससे भी यह व्याख्यान विघटित नहीं होता।

शंका—सकलादेश किसे कहते हैं?

समाधान—'स्यादस्ति' अर्थात् 'कथंचित् है' इत्यादि सात भंगोंका नाम सकलादेश है; क्योंकि, प्रमाणनिमित्तक होनेसे इनके द्वारा 'स्यात्' शब्दसे समस्त अप्रधानभूत धर्मोंकी सूचना की जाती है।

शंका—विकलादेश किसे कहते हैं?

समाधान—'अस्ति' अर्थात् 'है' इत्यादि सात वाक्योंका नाम विकलादेश है, क्योंकि, वे नयोंसे उत्पन्न हैं। तथा पूज्यपाद भट्टारकने भी सामान्य नयका लक्षण यही

---

१ प्रतिषु 'प्रतिपादयन्नानेनापीदं' इति पाठः।

२ कः सकलादेशः? स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्यः स्यादस्ति च नास्ति च स्यादस्ति चावक्तव्यश्च स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च घट इति सप्तापि सकलादेशः। कथमेतेषां सप्तानां सुनयानां सकलादेशत्वम्? न, एकधर्मप्रधानभावेन साकल्येन वस्तुनः प्रतिपादकत्वात्। जयध. १, पृ. २०१. **तत्र यदा यौगपद्यं तदा सकलादेशः**। स एव प्रमाणमित्युच्यते, सकलादेशः प्रमाणाधीन इति वचनात्। ××× कथं सकलादेशः? **एकगुणमुखेनाशेषवस्तुरूपसंग्रहात् सकलादेशः**। त. रा. ४, ४२, १६; १८.

३ को विकलादेशः? अस्त्येव नास्त्येव अवक्तव्य एव अस्ति नास्त्येव अस्त्यवक्तव्य एव नास्त्यवक्तव्य एव अस्ति नास्त्यवक्तव्य एव घट इति विकलादेशः। जयध. १, पृ. २०३. **यदा तु क्रमस्तदा विकलादेशः**। स एव नय इति व्यपदिश्यते, विकलादेशो नयाधीन इति वचनात्। ××× अथ कथं विकलादेशः? **निरंशस्यापि गुणभेदादंशकल्पना विकलादेशः**। त. रा. ४, ४२, १७; १९.

प्रकाशितार्थविशेषप्ररूपको नयः इति । प्रकर्षेण मानं प्रमाणम्, सकलादेशीत्यर्थः । तेन प्रकाशितानां प्रमाणपरिगृहीतानामित्यर्थः । तेषामर्थानामस्तित्व-नास्तित्व-नित्यानित्यत्वाद्यनन्तात्मकानां जीवादीनां ये विशेषाः पर्यायाः तेषां प्रकर्षेण रूपकः प्ररूपकः निरुद्धदोषानुषंगद्वारेणेत्यर्थः[1] । अबोधरूपस्याभिप्रायस्य कथं निरुद्धदोषानुषंगद्वारेण पर्यायप्ररूपकत्वम् ? नैष दोषः, द्रव्य-पर्यायाभिप्रायोत्थापितवचनयोः द्रव्य-पर्यायनिरूपणात्मकयोः अभिप्रायवतः पुरुषस्य वा नयत्वाभ्युपगमतो दोषाभावात्, अन्यथोक्तदोषानुषंगात् । तथा प्रभाचन्द्रभट्टारकैरप्यभाणि— प्रमाणव्यपाश्रयपरिणामविकल्पवशीकृतार्थविशेषप्ररूपणप्रवणः प्रणिधिर्यः स नय इति । प्रमाणव्यपाश्रयस्तत्परिणामविकल्पवशीकृतानां अर्थविशेषाणां प्ररूपणे प्रवणः प्रणिधानं प्रणिधिः प्रयोगो व्यवहारात्मा प्रयोक्ता वा स नयः[2] । 'स एष याथात्म्योपलब्धिनिमित्तत्वाद् भावानां श्रेयोऽपदेशः'

कहा है । वह इस प्रकार है— प्रमाणसे प्रकाशित जीवादिक पदार्थोंकी पर्यायोंका प्ररूपण करनेवाला नय है । इसीको स्पष्ट करते हैं— प्रकर्षसे अर्थात् संशयादिसे रहित वस्तुका ज्ञान प्रमाण है, अभिप्राय यह कि जो समस्त धर्मोंको विषय करनेवाला हो वह प्रमाण है। उससे प्रकाशित अर्थात् प्रमाणसे गृहीत उन अस्तित्व-नास्तित्व व नित्यत्व-अनित्यत्वादि अनन्त धर्मात्मक जीवादिक पदार्थोंके जो विशेष अर्थात् पर्यायें हैं उनका प्रकर्षसे अर्थात् दोषोंके सम्बन्धसे रहित होकर निरूपण करनेवाला नय है ।

शंका— अबोधरूप अभिप्राय संशयादि दोषोंसे रहित होकर जीवादिक पदार्थोंकी पर्यायोंका निरूपक कैसे हो सकता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, द्रव्य और पर्यायके अभिप्रायसे उत्पन्न द्रव्य-पर्यायके निरूपणात्मक वचनोंको अथवा अभिप्रायवान् पुरुषको नय माननेसे कोई दोष नहीं आता, ऐसा न माननेपर उपर्युक्त दोषका प्रसंग आता है ।

तथा प्रभाचन्द्र भट्टारकने भी कहा है— प्रमाणके आश्रित परिणामभेदोंसे वशीकृत पदार्थविशेषोंके प्ररूपणमें समर्थ जो प्रयोग होता है वह नय है । उसीको स्पष्ट करते हैं— जो प्रमाणके आश्रित है तथा उसके आश्रयसे होनेवाले ज्ञाताके भिन्न भिन्न अभिप्रायोंके आधीन हुए पदार्थविशेषोंके प्ररूपणमें समर्थ है ऐसे प्रणिधान अर्थात् प्रयोग अथवा व्यवहार स्वरूप प्रयोक्ताका नाम नय है । वह यह नय पदार्थोंके यथार्थ परिज्ञानका निमित्त होनेसे मोक्षका कारण है । यहां श्रेयस् शब्दका अर्थ मोक्ष और अपदेश शब्दका अर्थ

१ त. रा. १, ३३, १. तत्र ' सकलादेशीत्यर्थः ' इत्येतस्य स्थाने ' सकलादेश इत्यर्थः ' इति पाठः; ' तेन प्रकाशितानाम् ' अतोऽग्रे तत्र 'न प्रमाणाभासपरिगृहीतानामित्यर्थः' इत्यधिकः पाठः । जयध. १, पृ. २१०.

२ जयध. १, पृ. २१०.

श्रेयसो मोक्षस्यापदेशः कारणम्। कुतः? याथात्म्योपलब्धिनिमित्तभावात्[१]। तथा सारसंग्रहेऽप्युक्तं पूज्यपादैः — अनन्तपर्यायात्मकस्य वस्तुनोऽन्यतमपर्यायाधिगमे कर्तव्ये जात्यहेत्वपेक्षो निरवद्यप्रयोगो नय[२] इति। भवतु नाम अभिप्रायवतः प्रयोक्तुर्नयव्यपदेशः, न प्रयोगस्य; तत्र नित्यत्वानित्यत्वाद्यभिप्रायाणामभावादिति? न, नयतस्समुत्पन्नप्रयोगस्यापि प्रयोक्तुरभिप्रायप्ररूकस्य कार्ये कारणोपचारतो नयत्वसिद्धेः। तथा समन्तभद्रस्वामिनाप्युक्तम्—

स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नयः[३] ॥ ५५ ॥ इति

स्याद्वादः प्रमाणं कारणे कार्योपचारात्, तेन प्रविभक्ताः प्रकाशिताः अर्थाः ते स्याद्वादप्रविभक्तार्थाः, तेषां विशेषा पर्यायाः, जात्यहेत्ववष्टंभबलेन तेषां व्यंजकः प्ररूपकः यः स नय इति।

स एवंविधो नयो द्विविधः द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति[४]। द्रवति द्रोष्यत्यदुद्रवत्तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम्[५]। एतेन तद्भाव-सादृश्यलक्षणसामान्ययोर्द्वयोरपि ग्रहणम्, वस्तुनः

कारण है। नयको जो मोक्षका कारण बतलाया है उसका हेतु पदार्थोंकी यथार्थोपलब्धि-निमित्तता है।

तथा सारसंग्रहमें भी पूज्यपाद स्वामीने कहा है— अनन्त पर्याय स्वरूप वस्तुकी किसी एक पर्यायका ज्ञान करते समय श्रेष्ठ हेतुकी अपेक्षा करनेवाला निर्दोष प्रयोग नय कहा जाता है।

शंका—अभिप्राय युक्त प्रयोगकर्ताकी नय संज्ञा भले ही हो, किन्तु प्रयोगकी वह संज्ञा नहीं हो सकती; क्योंकि, उसमें नित्यत्व व अनित्यत्व आदि अभिप्रायोंका अभाव है?

समाधान — नहीं, क्योंकि, प्रयोगकर्ताके अभिप्रायको प्रगट करनेवाले नयजन्य प्रयोगके भी कार्यमें कारणका उपचार करनेसे नयपना सिद्ध है।

तथा समन्तभद्र स्वामीने भी कहा है— स्याद्वादसे प्रकाशित पदार्थोंकी पर्यायोंको प्रगट करनेवाला नय है। इस कारिकाके उत्तरार्धमें प्रयुक्त 'स्याद्वाद' शब्दका अर्थ कारणमें कार्यका उपचार करनेसे प्रमाण होता है। उस प्रमाणसे प्रविभक्त अर्थात् प्रकाशित जो पदार्थ हैं उनके विशेष अर्थात् पर्यायोंका जो श्रेष्ठ हेतुके बलसे व्यञ्जक अर्थात् प्ररूपण करता हो वह नय है।

उपर्युक्त स्वरूपवाला वह नय दो प्रकार है— द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। जो उन उन पर्यायोंको प्राप्त होता है, प्राप्त होगा अथवा प्राप्त हुआ है वह द्रव्य है। इस निरुक्तिसे तद्भाव सामान्य और सादृश्य सामान्य दोनोंका ही ग्रहण किया गया है,

---

१ जयध. १, पृ. २११.   २ जयध. १, पृ. २१०.   ३ आ. मी. १०६.

४ तस्य द्वौ मूलभेदौ द्रव्यास्तिकः पर्यायास्तिक इति। त. रा. १, ३३, १.

५ दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं। दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो॥ पंचा. ९.

उभयथापि द्रवणोपलंभात् ।

साम्प्रतं द्रव्यविकल्प उच्यते — सदित्येकं वस्तु, सर्वस्य सतोऽविशेषात्[1] । न ततो व्यतिरिक्तं किंचित्, असत्वप्रसंगात् । अथवा सर्वं द्विविधं वस्तु जीवाजीवभावाभ्यां विधि-निषेधाभ्यां मूर्तामूर्तत्वाभ्यां अस्तिकायानस्तिकायभेदाभ्यां वा[2] । कोऽनस्तिकायः ? कालः, तस्य प्रदेश-प्रचयाभावात् । कुतस्तस्यास्तित्वम् ? प्रचयस्य सप्रतिपक्षत्वान्यथानुपपत्तेः । अथवा, सर्वं वस्तु त्रिविधं द्रव्य-गुण-पर्यायैः[3] । चतुर्विधं वा बद्ध-मुक्त-बन्ध-मोक्षकारणैः[4] । तत्र बद्धः संसारि-जीवः । मुक्तः कर्मकलंकाङ्कच्युतः । एकान्तबुध्यवसितः सर्वो बाह्यार्थः मिथ्यविरति-प्रमाद-कषाय-योगाश्च बंधकारणम् । कथम् ? एतेषामेकत्वं प्रत्यभेदाद् । अनेकान्तबुद्ध्यध्यवसितः सर्वो

क्योंकि, वस्तुके दोनों प्रकारसे भी उन पर्यायोंको प्राप्त करना पाया जाता है ।

अब द्रव्यके भेदको कहते हैं— 'सत्' इस प्रकारसे वस्तु एक है, क्योंकि, सबके सत्‌की अपेक्षा कोई भेद नहीं है; कारण कि सत्‌से भिन्न कुछ नहीं है, क्योंकि, वैसा होनेपर उसके असत् होनेका प्रसंग आवेगा । अथवा सब वस्तु जीवभाव-अजीव-भाव, विधि-निषेध, मूर्त-अमूर्त या अस्तिकाय-अनस्तिकायके भेदसे दो प्रकार है ।

शंका—अनस्तिकाय कौन है ?

समाधान—काल अनस्तिकाय है, क्योंकि, उसके प्रदेशप्रचय नहीं है ?

शंका—तो फिर कालका अस्तित्व कैसे है ?

समाधान—चूंकि अस्तित्वके विना प्रचयके सप्रतिपक्षता बन नहीं सकती अतः उसका अस्तित्व सिद्ध है ।

अथवा, सब वस्तु द्रव्य, गुण व पर्यायसे तीन प्रकार है । अथवा वह वस्तु बद्ध, मुक्त, बन्धकारण और मोक्षकारणकी अपेक्षा चार प्रकार है । उनमें बद्ध संसारी जीव है । कर्मरूपी कलंकसे रहित मुक्त जीव है । एकान्त बुद्धिसे निश्चित सब बाह्य पदार्थ और मिथ्यात्व, अविरति प्रमाद, कषाय व योग, ये बन्धकारण हैं; क्योंकि, इनकी एकताके प्रति कोई भेद नहीं है । अनेकान्त बुद्धिसे निश्चित सब बाह्य पदार्थ और सम्यक्त्व, अविरति,

१ 'सत्ता' इत्येकं द्रव्यम् । जयध. १, पृ. २११.

२ द्विविधं वा द्रव्यं जीवाजीवद्रव्यभेदेन । जयध. १, पृ. २१३.

३ त्रिविधं वा द्रव्यं भव्याभव्यानुभयभेदेन । जयध. १, पृ. २१४.

४ संसार्यसंसारिभेदेन जीवद्रव्यं द्विविधम्, अजीवद्रव्यं पुद्गलापुद्गलभेदेन द्विविधम्, एवं चतुर्विधं वा द्रव्यम् । जयध. १, पृ. २१४.

बाह्यार्थः सम्यक्त्व-विरत्यप्रमादाकषायायोगाश्च[1] मोक्षकारणम्। सर्वं वस्तु पंचविधं वा औदयिकौपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभेदैः। सर्वं वस्तु षड्विधं वा जीव-पुद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदैः। सर्वं वस्तु सप्तविधं वा बद्ध-मुक्तजीव-पद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदैः। सर्वं वस्तु अष्टविधं वा भव्याभव्य-मुक्तजीव-पुद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदैः। सर्वं वस्तु नवविधं वा जीवाजीव-पुण्य-पापास्रव-संवर-निर्जर-बन्ध-मोक्षभेदैः। सर्वं वस्तु दशविधं वा एक-द्वि-त्रि-चतुः-पंचेन्द्रियजीव-पुद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदैः। सर्वं वस्त्वेकादशविधं वा पृथिव्यप्तेजो-वायु-वनस्पति-त्रसजीव-पुद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदैः। एवमेकाद्येकोत्तर-क्रमेण बहिरंगान्तरंगधर्मिणौ विपाट्येते यावदविभागप्रतिच्छेदं प्राप्ताविति। एष सर्वोऽप्यनन्त-

....

अप्रमाद, अकषाय एवं अयोग मोक्षकारण हैं।

अथवा सब वस्तु औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे पांच प्रकार है। अथवा सब वस्तु जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे छह प्रकार है। अथवा सब वस्तु बद्ध जीव, मुक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे सात प्रकार है। अथवा सब वस्तु भव्य, अभव्य, मुक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे आठ प्रकार है। अथवा सब वस्तु जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्षके भेदसे नौ प्रकार है। अथवा सब वस्तु एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव, त्रीन्द्रिय जीव, चतुरिन्द्रिय जीव, पंचेन्द्रिय जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे दस प्रकार है। अथवा सब वस्तु पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रस जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाशके भेदसे ग्यारह प्रकार है। इस प्रकार एकको लेकर एक अधिक क्रमसे बहिरंग व अंतरंग धर्मियोंका विभाग करना चाहिये जब तक कि अविभाग-प्रतिच्छेदको प्राप्त नहीं होते हैं। इस प्रकार सभी अनन्त भेद रूप संग्रहप्रस्तार नित्य व

....

१ प्रतिषु '-प्रमादकषायायोगाश्च' इति पाठः।

२ जीवद्रव्यं त्रिविधं भव्याभव्यानुभयभेदेन, अजीवद्रव्यं द्विविधं मूर्तामूर्तभेदेन, एवं पंचविधं वा द्रव्यम्। जीव-पुद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदेन षड्विधं वा। जीवाजीवास्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षभेदेन सप्तविधं वा। जीवाजीव-कर्मास्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षभेदेनाष्टविधं वा। जीवाजीव-पुण्य-पापास्रव-संवर-निर्जर-बन्ध-मोक्षभेदेन नवविधं वा। एक-द्वि-त्रि-चतुः-पंचेन्द्रिय-पुद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदेन दशविधं वा। पृथिव्यप्तेजो-वायु-वनस्पति-त्रस-पुद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदेनैकादशविधं वा। पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पति-समनस्कामनस्क-त्रस-पुद्गल-धर्माधर्म-कालाकाशभेदेन द्वादशविधं वा। जीवद्रव्यं त्रिविधं भव्याभव्यानुभयभेदेन, पुद्गलद्रव्यं षड्विधं बादरबादर-बादर-बादरसूक्ष्म-सूक्ष्मबादर-सूक्ष्म-सूक्ष्मसूक्ष्मं चेति। ××× शेषद्रव्याणि चत्वारि धर्माधर्म-कालाकाशभेदेन। एवं त्रयोदशविधं वा द्रव्यम्। एवमेतेन क्रमेण जीवाजीवद्रव्याणां भेदः कर्तव्यः यावदन्त्यविकल्प इति। जयध. १, पृ. २१४-१५.

विकल्पः संग्रहप्रस्तारः नित्यः वाचकभेदेनाभिन्नः द्रव्यमित्युच्यते । द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः[1] । एष एव सदादिरविभागप्रतिच्छेदनपर्यन्तः[2] संग्रहप्रस्तारः क्षणिकत्वेन विवक्षितः वाचकभेदेन च भेदमापन्नः विशेषप्रस्तारः पर्यायः । पर्यायः अर्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः[3] । तत्र योऽसौ द्रव्यार्थिकनयः स त्रिविधो नैगम-संग्रह-व्यवहारभेदेन । तत्र सत्तादिना यः सर्वस्य पर्याय-कलंकाभावेन अद्वैतत्वमध्यवस्येति शुद्धद्रव्यार्थिकः स संग्रहः[4] । अत्रोपयोगी गाहा—

शब्दभेदसे अभिन्न होता हुआ द्रव्य कहा जाता है । द्रव्य ही है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसका वह द्रव्यार्थिक नय है । सत्‌को आदि लेकर अविभागप्रतिच्छेद पर्यन्त यही संग्रह-प्रस्तार क्षणिक रूपसे विवक्षित व शब्दभेदसे भेदको प्राप्त होता हुआ विशेषप्रस्तार या पर्याय है । पर्याय ही है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसका वह पर्यायार्थिक नय है । उनमें जो वह द्रव्यार्थिक नय है वह नैगम, संग्रह और व्यवहारके भेदसे तीन प्रकार है । इनमें जो सत्ता आदिकी अपेक्षासे पर्याय रूप कलंकका अभाव होनेके कारण सबकी एकताको विषय करता है वह शुद्ध द्रव्यार्थिक संग्रह है । यहां उपयोगी गाथा—

१ प्रतिषु ' द्रव्यार्थिकः पुरुषः ' इति पाठः । ष. खं. पु. १, पृ. ८३. द्रव्यमस्तीति मतिरस्य द्रव्यभवन-मेव नातोऽन्ये भावविकाराः नाप्यभावस्तद्व्यतिरेकेणानुपलब्धेरितिद्रव्यास्तिकः । ××× अथवा, द्रव्यमेवार्थोऽस्य न गुण-कर्मणी तदवस्थारूपत्वादिति द्रव्यार्थिकः । ××× अथवा, अर्यते गम्यते निष्पाद्यत इत्यर्थः कार्यम्, द्रवति गच्छतीति द्रव्यं कारणम् । द्रव्यमेवार्थोऽस्य कारणमेव कार्यं नार्थान्तरम्; न च कार्य-कारणयोः कश्चिद् रूपभेदः तदु-भयमेकाकारमेव पर्वाङ्गुलिद्रव्यवदिति द्रव्यार्थिकः । ××× अथवा, अर्थनमर्थः प्रयोजनम्, द्रव्यमेवार्थोऽस्य प्रत्ययाभि-धानानुप्रवृत्तिलिंगदर्शनस्य निह्नोतुमशक्यत्वादिति द्रव्यार्थिकः । त. रा. १, ३३, १. एतद्द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः । तद्भावलक्षणसामान्येनाभिन्नं सादृश्यलक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्नं च वस्त्वभ्युपगच्छन् द्रव्यार्थिक इति यावत् । जयध. १, पृ. २१६. २ प्रतिषु ' -रविभागपरिच्छेदन ' इति पाठः ।

३ ष. खं. पु. १, पृ. ८४. पर्याय एवास्तीति मतिरस्य जन्मादिभावविकारमात्रमेव भवनम्, न ततोऽन्यद्-द्रव्यमस्ति, तद्व्यतिरेकेणानुपलब्धेरिति पर्यायास्तिकः। ××× पर्याय एवार्थोऽस्य रूपाद्युत्क्षेपणादिलक्षणो न ततोऽ-न्यद् द्रव्यमिति पर्यायार्थिकः । ××× परि समन्तादायः पर्यायः, पर्याय एवार्थः कार्यमस्य न द्रव्यमतीतानागतयो-र्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् स एवैकः कार्य-कारणव्यपदेशभागिति पर्यायार्थिकः । ××× पर्यायोऽर्थः प्रयोजनमस्य वाग्विज्ञानव्यावृत्तिनिबन्धनव्यवहारप्रसिद्धेरिति पर्यायार्थिकः । त रा. १, ३३, १. परि भेदं ऋजु-सूत्रवचनविच्छेदं एति गच्छतीति पर्यायः, स पर्यायः अर्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः । सादृश्यलक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्नं च द्रव्यार्थिकाशेषविषयं ऋजुसूत्रवचनविच्छेदेन पाटयन् पर्यायार्थिक इत्यवगन्तव्यः । जयध. १, पृ. २१७.

४ तत्र द्रव्यार्थिकनयस्त्रिविधः संग्रहो व्यवहारो नैगमश्चेति । तत्र शुद्धद्रव्यार्थिकः पर्यायकलंकरहितः बहु-भेदः संग्रहः । जयध. १, पृ. २१९.

सत्ता[1] सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पाय-धुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का[2] ॥ ५६ ॥

शेषद्वयाद्यनन्तविकल्पसंग्रहप्रस्तारावलम्बनः पर्याय-कलंकांकिततया[3] अशुद्धद्रव्यार्थिकः व्यवहारनयः[4]। यदस्ति न तद् द्वयमतिलंघ्य वर्तते इति संग्रह-व्यवहारयोः परस्परविभिन्नोभय-विषयालम्बनो नैगमनयः, शब्द-शील-कर्म-कार्य-कारणाधाराधेय-भूत-भविष्यद्वर्तमान-मेयोन्मेया-दिकमाश्रित्य स्थितोपचारप्रभव इति यावत्[5]।

पर्यायार्थिको नयश्चतुर्विधः ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढैवंभूतभेदेन। तत्र अपूर्वात्रिकाल-

---

अस्तित्व रूप सत्ता उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य रूप तीन लक्षणोंसे युक्त समस्त वस्तुविस्तारके सादृश्यकी सूचक होनेसे एक है; उत्पादादि त्रिलक्षण स्वरूप ' सत् ' इस प्रकारके शब्दव्यवहार एवं ' सत् ' इस प्रकारके प्रत्ययके भी पाये जानेसे समस्त पदार्थोंमें स्थित है; विश्व अर्थात् समस्त वस्तुविस्तारके त्रिलक्षण रूप स्वभावोंसे सहित होनेके कारण सविश्व रूप है, अनन्त पर्यायोंसे सहित है; भंग (व्यय), उत्पाद व ध्रौव्य स्वरूप है, तथा अपनी प्रतिपक्षभूत असत्तासे संयुक्त है ॥ ५६ ॥

शेष दो आदि अनन्त विकल्प रूप संग्रहप्रस्तारका अवलम्बन करनेवाला व्यवहार नय पर्याय रूप कलंकसे युक्त होनेसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है ।

'जो है वह भेद व अभेद दोनोंका उल्लंघन कर नहीं रहता' इस प्रकार संग्रह और व्यवहार नयोंके परस्पर भिन्न (भेदाभेद) दो विषयोंका अवलम्बन करनेवाला नैगम नय है। अभिप्राय यह कि जो शब्द, शील, कर्म, कार्य, कारण, आधार, आधेय, भूत, भविष्यत्, वर्तमान, मेय व उन्मेयादिकका आश्रयकर स्थित उपचारसे उत्पन्न होनेवाला है वह नैगम नय कहा जाता है ।

पर्यायार्थिक नय ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवम्भूतके भेदसे चार प्रकार है। इनमें जो तीन कालविषयक अपूर्व पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान कालविषयक पर्यायको

---

१ प्रतिषु ' सत्था ' इति पाठः ।　　२ पंचा ८.　　३ प्रतिषु ' पर्यायः कलंका-' इति पाठः ।

४ [अशुद्ध-] द्रव्यार्थिकः पर्यायकलंकांकितद्रव्यविषयः व्यवहारः । जयध. १, पृ. २१९.

५ ष. खं. पु. १ पृ. ८४. यदस्ति न तद्द्वयमतिलंघ्य वर्तत इति नैकगमो नैगमः शब्द-शील-कर्म-कार्य-कारणाधाराधेय-सहचार-मान-मेयोन्मेय-भूत-भविष्यद्-वर्तमानादिकमाश्रित्य स्थितोपचारविषयः । जयध. १, पृ. २२१.

विषयानतिशय्य वर्तमानकालविषयमादत्ते यः स ऋजुसूत्रः[1] । कोऽत्र वर्तमानकालः ? आरम्भात्प्रभृत्या उपरमादेष वर्तमानकालः । एष चानेकप्रकारः, अर्थ-व्यंजनपर्यायस्थितेरनेकविधत्वात् । तत्र तावच्छुद्धऋजुसूत्रविषयः प्रदर्श्यते— पच्यमानः पक्वः । पक्वस्तु स्यात्पच्यमानः स्यादुपरतपाक इति । पच्यमान इति वर्तमानः पक्व इति अतीतः, तयोरेकास्मिन्नवरोधो विरुद्ध इति चेन्न, पचनप्रारम्भप्रथमसमये पाकांशानिष्पत्तौ[2] द्वितीयादिक्षणेषु प्रथमलक्षण इव पाकांश-

....

ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्र नय है ।

शंका— यहां वर्तमान कालका क्या स्वरूप है ?

समाधान — विवक्षित पर्यायके प्रारम्भकालसे लेकर उसका अन्त होने तक जो काल है, वह वर्तमान काल है ।

अर्थ और व्यञ्जन पर्यायोंकी स्थितिके अनेक प्रकार होनेसे यह काल अनेक प्रकार है । उसमें पहिले शुद्ध ऋजुसूत्र नयके विषयको दिखलाते हैं— इस नयका विषय पच्यमान-पक्व है । पक्वका अर्थ कथंचित् पकनेवाला और कथंचित् पका हुआ है ।

शंका — चूंकि 'पच्यमान' यह पचन क्रियाके चालू रहने अर्थात् वर्तमान कालको और 'पक्व' यह उसके पूर्ण होने अर्थात् भूत कालको सूचित करता है अतः उन दोनोंका एकमें रखना विरुद्ध है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, पचन क्रियाके प्रारम्भ होनेके प्रथम समयमें पाकांशकी सिद्धि न होनेपर प्रथम क्षणके समान द्वितीयादि समयोंमें पाकांशकी सिद्धिका अभाव

....

१ ऋजु प्रगुणं सूत्रयति सूचयतीति ऋजुसूत्रः । अस्य विषयः पच्यमानः पक्वः । पक्वस्तु स्यात्पच्यमानः स्यादुपरतपाक इति । पच्यमान इति वर्तमानः, पक्व इत्यतीतः, तयोरेकस्मिन्नवरोधो विरुद्ध इति चेत् —न, पाकप्रारम्भप्रथमक्षणे निष्पन्नांशेन पक्वत्वाविरोधात् । न च तत्र पाकस्य सर्वांशैरनिष्पत्तिरेव, चरमावस्थायामपि पाकनिष्पत्तेरभावप्रसंगात् । ततः पच्यमान एव पक्व इति सिद्धम् । तावन्मात्रक्रियाफलनिष्पत्त्युपरमापेक्षया स एव पक्वः स्यादुपरतपाक इति, अन्यपाकापेक्षया निष्पत्तेरभावात् एव पच्यमान इति सिद्धम् । एवं क्रियमाणकृत-भुज्यमानभुक्त-बध्यमानबद्ध-सिध्यत्सिद्धादयो योज्याः । जयध. १, पृ. २२३. सूत्रपातवद् ऋजुसूत्रः । यथा ऋजुः सूत्रपातस्तथा ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तंत्रयति ऋजुसूत्रः । सर्वांस्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानविषयकालमादत्ते × × × अस्य विषयः पच्यमानः पक्वः । पक्वस्तु स्यात्पच्यमानः स्यादुपरतपाक इति । असदेतद्विरोधात् (?) । पच्यमान इति वर्तमानः, पक्व इत्यतीतः, तयोरेकस्मिन्नवरोधो विरोधीति ? नैष दोषः, पचनस्यादावविभागसमये कश्चिदंशो निर्वृत्तो वा न वा ? यदि न निर्वृत्तस्तद्द्वितीयादिष्वप्यनिर्वृत्तेः पाकाभावः स्यात् । ततोऽभिनिर्वृत्तेस्तदपेक्षया पच्यमानः पक्वः, इतरथा हि समयस्य त्रैविध्यप्रसंगः । स एवोदनः पच्यमानः पक्वः स्यात्पच्यमान इत्युच्यते पक्तुरभिप्रायस्यानिर्वृत्तेः । पक्तुर्हि सुविशद-सुस्विन्नौदने पक्वाभिप्रायः । स्यादुपरतपाक इति चोच्यते, कस्यचित् पक्तुस्तावतैव कृतार्थत्वात् । एवं क्रियमाणकृत-भुज्यमानभुक्त-बध्यमानबद्ध-सिध्यत्सिद्धादयो योज्याः । त. रा. १, ३३, ७.

२ प्रतिषु 'पाकांशनिष्पत्तौ' इति पाठः ।

निष्पत्त्यभावतः पाकस्य साकल्येनोत्पत्तेरभावप्रसंगात् । एवं द्वितीयादिक्षणेष्वपि पाकनिष्पत्तिर्वक्तव्या । ततः पच्यमानः पक्व इति सिद्धम्, नान्यथा; समयस्य त्रैविध्यप्रसंगात् । स एवौदनः पक्वः स्यात्पच्यमान इति चोच्यते, सुविशद-सुस्विन्नौदने पक्तुः पक्वाभिप्रायात् । तावन्मात्रक्रियाफलनिष्पत्त्युपरमापेक्षया स एव पक्वः ओदनः स्यादुपरतपाक इति कथ्यते । एवं क्रियमाणकृत- भुज्यमानभुक्त-बध्यमानबद्ध-सिद्ध्यत्सिद्धादयो योज्याः । 'तथा यदैव[2] धान्यानि मिमीते तदैव[3] प्रस्थः, प्रतिष्ठन्त्यस्मिन्निति प्रस्थव्यपदेशात् । न कुम्भकारोऽस्ति । कथम् ? उच्यते — शिवकादिपर्यायं करोति न तस्य तद्व्यपदेशः, शिवकादीनां कुम्भव्यपदेशाभावात् । नापि कुम्भपर्यायं करोति, स्वावयवेभ्य एव तस्य निष्पत्तेः । नोभयत एकस्योत्पत्तिः, युगपदेकत्र-

होनेसे पूर्णतया पाककी उत्पत्तिके अभावका प्रसंग आवेगा। इसी प्रकार द्वितीयादि क्षणोंमें भी पाककी उत्पत्ति कहना चाहिये। इसीलिये पच्यमान ओदन कुछ पके हुए अंशकी अपेक्षा पक्व है, यह सिद्ध होता है; क्योंकि, ऐसा न माननेसे समयके तीन प्रकार माननेका प्रसंग आवेगा। वही पका हुआ ओदन कथंचित् 'पच्यमान' ऐसा कहा जाता है, क्योंकि, विशद रूपसे पूर्णतया पके हुए ओदनमें [जो अभी सिद्ध नहीं हुआ है] पाचकका 'पक्व' से अभिप्राय है। उतने मात्र अर्थात् कुछ ओदनांशमें पचन क्रियाके फलकी उत्पत्तिके विराम होनेकी अपेक्षा वही ओदन उपरतपाक अर्थात् कथंचित् पका हुआ कहा जाता है। इसी प्रकार क्रियमाण-कृत, भुज्यमान-भुक्त, बध्यमान-बद्ध और सिद्ध्यत्-सिद्ध इत्यादि ऋजुसूत्र नयके विषय जानना चाहिये।

तथा जब धान्योंको मापता है तभी इस नयकी दृष्टिमें प्रस्थ (अनाज नापनेका पात्रविशेष) हो सकता है, क्योंकि, जिसमें धान्यादि स्थित रहते हैं उसे निरुक्तिके अनुसार प्रस्थ कहा जाता है।

इस नयकी दृष्टिमें कुम्भकार संज्ञा भी नहीं बनती। कैसे ? ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि जो शिवक आदि पर्यायको करता है उसकी कुम्भकार संज्ञा नहीं बन सकती, क्योंकि, शिवक-स्थासादिका कुम्भ नाम नहीं है। कुम्भ पर्यायको भी वह नहीं करता, क्योंकि, उसकी उत्पत्ति अपने अवयवोंसे ही होती है। और दोसे एककी उत्पत्ति सम्भव

१ त. रा. १, ३३, ७, जयध. १, पृ. २२४.   २ प्रतिषु 'यथैव' इति पाठः।

३ प्रतिषु 'तदेव' ति पाठः।

स्वभावद्वयविरोधात् अवयवेष्वेव व्याप्रियमाणपुरुषोपलम्भाच्च। [1]स्थितप्रश्ने न कुतोऽद्याागच्छसीति, न कुतश्चिदित्ययं मन्यते, तत्कालक्रियापरिणामाभावात्। यमेवाकाशदेशमवगाढुं समर्थः आत्मपरिणामं वा तत्रैवास्य वसतिः। [2]न कृष्णः काकोऽस्य नयस्य। कथम्? यः कृष्णः[3] स कृष्णात्मक एव, न काकात्मकः; भ्रमरादीनामपि काकताप्रसंगात्। काकश्च काकात्मको, न कृष्णात्मकः; शुक्लकाकाभावप्रसंगात् तत्पित्तास्थि-रुधिरादीनामपि कार्ष्ण्यप्रसंगात्। अस्तु चेन्न, तेषां पीत-शुक्ल-रक्तादिवर्णोपलम्भात्। न च तेभ्यो व्यतिरिक्तः काकोऽस्ति, तद्व्यतिरेकेण काकानुपलम्भात्। ततोऽत्र न विशेषण-विशेष्यभाव इति सिद्धम्। [2]न चास्य नयस्य सामानाधिकरण्यमप्यस्ति, एकस्य पर्यायेभ्य अनन्यत्वात्। न च पर्यायव्यतिरिक्तं नित्यमेक-

....

नहीं है, क्योंकि, एक साथ एकमें दो स्वभावोंका विरोध है, तथा पुरुष अवयवोंमें ही व्यापार करनेवाला पाया जाता है।

'आज तुम कहांसे आ रहे हो?' ऐसा किसी स्थित व्यक्तिसे पूछनेपर 'कहींसे नहीं आ रहा हूं' ऐसा यह ऋजुसूत्र नय मानता है, क्योंकि, उस समय आगमन क्रिया रूप परिणामका अभाव है। जिस आकाशप्रदेशको अथवा आत्मपरिणामको अवगाहनेके लिये वह समर्थ है वहींपर इसका निवास है।

'कृष्ण काक' यह इस नयका विषय नहीं है। कारण कि जो कृष्ण है वह कृष्णात्मक ही है, काक स्वरूप नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर भ्रमर आदिकोंके भी काक होनेका प्रसंग आवेगा। इसी प्रकार काक भी काकात्मक ही है, कृष्णात्मक नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर सफेद काकके अभावका प्रसंग आवेगा, तथा उसके पित्त (शरीरस्थ धातुविशेष), हड्डी व रुधिर आदिके भी कृष्णताका प्रसंग आवेगा। यदि कहा जाय कि वे भी कृष्ण होते हैं, सो ऐसा नहीं है, क्योंकि, क्रमशः उनका पीला, सफेद व लाल रंग पाया जाता है। और इन धातुओंसे भिन्न काक है नहीं, क्योंकि, उनको छोड़कर काक पाया नहीं जाता। इसीलिये इस नयकी दृष्टिमें विशेषण-विशेष्यभाव नहीं है, यह सिद्ध हुआ।

इस नयकी दृष्टिमें सामानाधिकरण्य (एक आधारमें समान रूपसे रहना) भी नहीं है, क्योंकि, एक द्रव्य पर्यायोंसे भिन्न नहीं है। तथा पर्यायोंको छोड़कर नित्य, एक,

....

१ स. सि. १, ३३, ७. जयध. १, पृ. २२५. २ स. सि. १, ३३, ७. जयध. १, पृ. २२६.

३ प्रतिषु 'कथ यत्कृष्णः' इति पाठः।

मनवयवं सकलावयवव्याप्युपलभ्यते । ततो न द्रव्य-पर्याया विविक्तशक्तयः सन्ति । न तेषामेकमधिकरणं स्वस्मिन्नवस्थितत्वात् । किं च, [1]न विनाशोऽन्यतो जायते, तस्य जातिहेतुत्वात् । अत्रोपयोगी श्लोकः—

जातिरेव हि भावानां निरोधे हेतुरिष्यते ।
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्यते पश्चात् स केन वः ॥ ५७ ॥

न च भावः अभावस्य हेतुः, घटादपि खरविषाणोत्पत्तिप्रसंगात् । किं च न वस्तु परतो विनश्यति, परसन्निधानाभावे तस्याविनाशप्रसंगात् । अस्तु चेन्न, अक्षणिकेऽर्थक्रियाविरोधात् । किं च, [2]न पलालो दह्यते, पलालाग्निसम्बन्धसमनन्तरमेव पलालस्य नैरात्म्यानुपलम्भात् । न द्वितीयादिक्षणेषु पलालस्य नैरात्म्यकृदग्निसम्बन्धः, तस्य तत्कार्यत्वप्रसंगात् । न पलालावयवी दह्यते, तस्यासत्त्वात् । नावयवा दह्यन्ते, निरवयवत्वतस्तेषामप्यसत्त्वात् । न

....

निरवयव और समस्त अवयवोंमें रहनेवाला द्रव्य पाया नहीं जाता । अत एव भिन्न भिन्न शक्तियुक्त द्रव्य व पर्यायें नहीं है । इसीलिये उनका एक अधिकरण नहीं है; क्योंकि, वे अपने आपमें स्थित हैं ।

और भी, इस नयकी अपेक्षा विनाश किसी अन्य पदार्थके निमित्तसे नहीं होता, क्योंकि, उसका हेतु उत्पत्ति ही है । यहां उपयोगी श्लोक—

पदार्थोंके विनाशमें जाति अर्थात् उत्पत्ति ही कारण मानी जाती है, क्योंकि, जो पदार्थ उत्पन्न होते ही नष्ट नहीं होता तो फिर वह पश्चात् आपके यहां किसके द्वारा नष्ट होगा ? अर्थात् किसीके द्वारा नष्ट नहीं हो सकेगा ॥ ५७ ॥

दूसरे, भाव अभावका हेतु नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा माननेपर घटसे भी गधेके सींगोंके उत्पन्न होनेका प्रसंग आवेगा । तथा वस्तु परके निमित्तसे नष्ट नहीं होती, क्योंकि, वैसा होनेपर परकी समीपताके अभावमें उसके अविनाशका प्रसंग आवेगा । यदि कहा जाय कि नाश न भी हो, सो यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, नित्य होनेपर अर्थक्रियाका विरोध होगा ।

इस नयकी दृष्टिमें पलाल (पुआल) का दाह नहीं होता, क्योंकि, पलाल और अग्निके सम्बन्धके अनन्तर ही पलालकी निरात्मता अर्थात् शून्यता नहीं पायी जाती । द्वितीयादि क्षणोंमें पलालकी निरात्मताको करनेवाला अग्निका सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि, उसके होनेपर पलालकी निरात्मताको उसके कार्य होनेका प्रसंग आवेगा [जो उस समय नहीं है] । पलाल अवयवीका दाह नहीं होता, क्योंकि, अवयवीकी [आपके यहां] सत्ता ही नहीं है । न अवयव जलते हैं, क्योंकि, स्वयं निरवयव होनेसे उनका

....

१ जयध. १, पृ. २२६.　　　　२ ष. सा. १, ३३, ७.

पलालोत्पत्तिक्षण एवाग्निसम्बन्धस्तस्यानुत्पत्तिप्रसंगात् । नोत्तरक्षणे, असत्तासम्बन्धविरोधात् । किं च यः पलालो न स दह्यते, तत्राग्निसम्बन्धजनितातिशयान्तराभावात्, भावे वा न स पलालप्राप्तोऽन्यस्वरूपत्वात् । न शुक्लः कृष्णीभवति, उभयोर्भिन्नकालावस्थितत्वात् प्रत्युत्पन्नविषये निवृत्तपर्यायानभिसम्बन्धात् । एवमृजुसूत्रनयस्वरूपनिरूपणं कृतम् ।

शपत्यर्थमाह्वयति प्रत्यायतीति शब्दः[1] । अयन्नयः लिंग-संख्या-काल-कारक-पुरुषोपग्रहव्यभिचारनिवृत्तिपरः[2] । लिंगव्यभिचारस्तावत् स्त्रीलिंगे पुल्लिंगाभिधानम्— तारका स्वातिरिति । पुल्लिंगे स्त्र्यभिधानम्— अवगमो विद्येति । स्त्रीत्वे नपुंसकाभिधानम्— वीणा आतोद्यमिति । नपुंसके स्त्र्यभिधानम्— आयुधं शक्तिरिति । पुल्लिंगे नपुंसकाभिधानम्—

भी असत्व है । यदि कहा जाय कि पलालकी उत्पत्तिक्षणमें ही अग्निका सम्बन्ध हो जाता है, अतः वह जल सकता है; सो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर अग्निका सम्बन्ध होनेसे वह उत्पन्न ही न हो सकेगा । इसलिये यदि उत्पत्तिके उत्तरक्षणमें अग्निका सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, उत्पत्तिके द्वितीय क्षणमें पलालकी सत्ता नष्ट हो जानेसे असत्ताके अग्निसम्बन्धका विरोध है । दूसरे, जो पलाल है वह नहीं जलता है, क्योंकि, उसमें अग्निसम्बन्ध जनित अतिशयान्तरका अभाव है । अथवा यदि अतिशयान्तर है भी तो वह पलाल प्राप्त नहीं है, क्योंकि, उसका स्वरूप पलालसे भिन्न है ।

इस नयकी अपेक्षा 'शुक्ल कृष्ण होता है' ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, कृष्ण और शुक्ल दोनों पर्यायें भिन्न कालमें रहनेवाली हैं, अतः उत्पन्न हुई कृष्ण पर्यायमें नष्ट हुई शुक्ल पर्यायका सम्बन्ध नहीं हो सकता । इस प्रकार ऋजुसूत्र नयके स्वरूपका निरूपण किया ।

जो 'शपति' अर्थात् अर्थको बुलाता है या उसका ज्ञान कराता है वह शब्द नय है । यह नय लिंग, वचन, काल, कारक, पुरुष और उपग्रहके व्यभिचारको दूर करनेवाला है । इनमें पहिले लिंगव्यभिचार कहा जाता है— स्त्रीलिंगमें पुल्लिंगका कथन करना लिंगव्यभिचार है । जैसे— 'तारका स्वातिः' यहां स्त्रीलिंग तारका शब्दके साथ पुल्लिंग स्वाति शब्दका प्रयोग किया गया है, अतः यह लिंगव्यभिचार है । पुल्लिंगमें स्त्रीलिंगका कथन करना । जैसे— 'अवगमो विद्या' यहां पुल्लिंग अवगम शब्दके साथ स्त्रीलिंग विद्या शब्दका प्रयोग । स्त्रीलिंगमें नपुंसक लिंगका कथन करना । जैसे— 'वीणा आतोद्यम्' यहां स्त्रीलिंग वीणाके लिये नपुंसकलिंग आतोद्य शब्दका प्रयोग । नपुंसकलिंगमें स्त्रीलिंगका कथन करना । जैसे— 'आयुधं शक्तिः' यहां नपुंसकलिंग आयुधके लिये स्त्रीलिंग शक्ति शब्दका प्रयोग । पुल्लिंगमें नपुंसकलिंगका कथन करना ।

१ जयध. १, पृ. २३०. २ त. रा. १, ३३, ८. जयध. १, पृ. २३५. ३ त. रा. १, ३३, ९.

पटो वस्त्रमिति । नपुंसके पुल्लिंगाभिधानम्— द्रव्यं परशुरिति[1] ।

संख्याव्यभिचारः । एकत्वे द्वित्वम्— नक्षत्रं पुनर्वसू इति । एकत्वे बहुत्वम्— नक्षत्रं शतभिषजः इति । द्वित्वे एकत्वम्— गोदौ[2] ग्राम इति । द्वित्वे बहुत्वम्— पुनर्वसू पंचतारका इति । बहुत्वे एकत्वम्— आम्राः वनमिति । बहुत्वे द्वित्वम्— देव-मनुष्याः उभौ राशी इति[3] ।

कालव्यभिचारः— विश्वदृश्वास्य[4] पुत्रो जनितेति भविष्यदर्थे भूतप्रयोगः । भावि कृत्यमा-

जैसे— 'पटो वस्त्रम्' यहां पुल्लिंग 'पटः' के साथ 'वस्त्रम्' ऐसे नपुंसकलिंग वस्त्र शब्दका प्रयोग। नपुंसकलिंगमें पुल्लिंगका कथन करना। जैसे— 'द्रव्यं परशुः' यहां नपुंसकलिंग द्रव्य शब्दके साथ पुल्लिंग परशु शब्दका प्रयोग। [यह सब लिंगव्यभिचार है।]

संख्याव्यभिचार कहा जाता है। एकवचनके स्थानमें द्विवचनका प्रयोग करना संख्याव्यभिचार है। जैसे— 'नक्षत्रं पुनर्वसू' यहां एक वचन 'नक्षत्रम्' के साथ 'पुनर्वसू' ऐसे द्विवचनका प्रयोग किया गया है। एक वचनके स्थानमें बहुवचनका प्रयोग, जैसे— 'नक्षत्रं शतभिषजः' यहां एक वचन 'नक्षत्रम्' के साथ 'शतभिषजः' ऐसे बहुवचनका प्रयोग किया गया है। द्विवचनके स्थानमें एकवचनका प्रयोग, जैसे— 'गोदौ ग्रामः' यहां 'गोदौ' द्विवचनके साथ 'ग्रामः' ऐसे एकवचनका प्रयोग किया गया है। द्विवचनके स्थानमें बहुवचनका प्रयोग, जैसे— 'पुनर्वसू पंचतारकाः' यहां 'पुनर्वसू' इस द्विवचनके साथ 'पंचतारकाः' ऐसे बहुवचनका प्रयोग किया गया है। बहुवचनके स्थानमें एकवचनका प्रयोग, जैसे— 'आम्राः वनम्' यहां 'आम्राः' बहुवचनके साथ 'वनम्' ऐसे एकवचनका प्रयोग किया गया है। बहुवचनके स्थानमें द्विवचनका प्रयोग, जैसे— 'देव-मनुष्याः उभौ राशी' अर्थात् देव एवं मनुष्य ये दो राशियां हैं, यहां 'देव मनुष्याः' इस प्रकार बहुवचनके साथ 'उभौ राशी' ऐसे द्विवचनका प्रयोग किया गया है। [यह सब वचनका विपर्यास होनेसे संख्याव्यभिचार है।]

कालव्यभिचार— विवक्षित किसी एक कालके स्थानमें दूसरे कालका प्रयोग करना कालव्यभिचार है। जैसे— 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' अर्थात् जिसने विश्वको देख लिया है ऐसा इसके पुत्र होगा। यहां भविष्यत्कालीन 'जनिता' क्रियाके साथ भूतकालीन क्रियाके द्योतक 'विश्वदृश्वा' कर्तृपदका प्रयोग किया गया है। 'भावि कृत्यमासीत्' अर्थात् कार्य होनेवाला ही था। यहां भूतकालीन 'आसीत्' क्रियाके साथ भविष्यत्कालीन क्रियाके द्योतक 'भावि' पदका 'कृत्य' के विशेषण रूपसे

१ ष. खं. पु. १, पृ. ८७.　　२ प्रतिषु 'गोधौ' इति पाठः।
३ ष. खं. पु. १, पृ. ८७. जयध. १, पृ. २३६.　　४ प्रतिषु 'विश्वदृश्वास्य' इति पाठः।

सीदिति भूतार्थे भविष्यत्प्रयोगः। साधनव्यभिचारः — ग्राममधिशेते इति । पुरुषव्यभिचारः— एहि, मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति[1]। उपग्रहव्यभिचारः — रमते विरमति, तिष्ठति संतिष्ठते, विशति निविशते; इत्येवमादयो व्यभिचारा न युक्ताः, अन्यार्थस्य अन्यार्थेन सम्बन्धाभावात् । तस्माद्यथालिंगं यथासंख्यं यथासाधनादि च न्याय्यमभिधानम्[2]। एवं शब्द-नयस्वरूपमभिहितम् ।

....

प्रयोग किया गया है । [इसीलिये उक्त दोनों कालव्यभिचारके उदाहरण हैं ।]

एक कारकके स्थानमें दूसरे कारकका प्रयोग करना साधनव्यभिचार है । जैसे— ' ग्राममधिशेते ' अर्थात् गांवमें सोता है । यहां ' ग्रामे ' अधिकरण कारकके स्थानमें ' ग्रामम् ' ऐसे कर्मकारकका प्रयोग किया गया है, अतः यह साधनव्यभिचार है ।

एक पुरुषके स्थानमें दूसरे पुरुषका प्रयोग करनेका नाम पुरुषव्यभिचार है । जैसे— ' एहि, मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पिता ' अर्थात् आओ, तुम समझते हो कि मैं रथसे जाऊंगा, पर तुम नहीं जाओगे, तुम्हारे पिता चले गये । यहां ' मन्यसे ' मध्यम पुरुषके स्थानमें ' मन्ये ' इस प्रकार उत्तम पुरुषका प्रयोग और ' यास्यामि ' इस उत्तम पुरुषके स्थानमें ' यास्यसि ' ऐसे मध्यम पुरुषका प्रयोग किया गया है । अत एव यह पुरुषव्यभिचार है ।

उपसर्गके सम्बन्धसे परस्मैपदके स्थानमें आत्मनेपद और आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपदका प्रयोग करना उपग्रहव्यभिचार है । जैसे— ' रमते ' ऐसे आत्मने-पदके स्थानमें वि उपसर्गके सम्बन्धसे ' विरमति ' इस प्रकार परस्मैपदका प्रयोग; ' तिष्ठति ' परस्मैपदके स्थानमें सम् उपसर्गके संयोगसे ' संतिष्ठते ' ऐसे आत्मनेपदका प्रयोग; और ' विशति ' परस्मैपदके स्थानमें नि उपसर्गके योगसे ' निविशते ' इस प्रकार आत्मनेपदका प्रयोग ।

उपर्युक्त लिंगादिव्यभिचारके अतिरिक्त और भी जो व्यभिचार हैं वे सब शब्दनयकी दृष्टिमें उचित नहीं हैं, क्योंकि, अन्य अर्थवाले शब्दका अन्य अर्थवाले शब्दके साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता । इस कारण जैसा लिंग हो, जैसा वचन हो और जैसा साधन आदि हो वैसा व्यभिचारसे रहित प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकार शब्दनयका स्वरूप कहा गया है ।

....

१ हासे मन्योक्तौ युस्मन्मन्येऽस्मत्त्वेकम् । मन्योक्तौ— मन्यवाचि, हासे— प्रहासे, गम्यमाने युष्मद् भवतिः मन्ये मन्यतेस्त्वस्मदेकं च । एहि, मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पिता । शब्दा. चं. १, २, १८२.   २ ष. खं. पु. १, पृ. ८७, जयध. १, पृ. २३६.

नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः । इन्दनादिन्द्रः शकनाच्छक्रः पूर्दारणात्पुरन्दर इत्येकस्यार्थस्यैकेन गतत्वादन्वर्थस्य नाम्नस्तत्र सामर्थ्याभावाद्वा पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थक इति नानार्थरोहणात्समभिरूढः[1]। [2]अथ स्यान्न शब्दो वस्तुधर्म्मः, तस्य ततो भेदात्। नाभेदः, वाच्य-वाचकभावाद् भिन्नेन्द्रियग्राह्यत्वाद् भिन्नसाधनत्वाद् भिन्नार्थक्रियाकारित्वादुपायोपेयरूपत्वात् त्वगिन्द्रियग्राह्याग्राह्यत्वात् क्षुर-मोदकशब्दोच्चारणे मुखस्य पाटन[3]-पूरणप्रसंगाद्[4] वैयाधिकरण्यात्। [4]न च विशेष्याद् भिन्नं विशेषणमव्यवस्थापत्तेः। ततो न वाचकभेदाद्वाच्यभेद इति? नैष दोषः, भिन्नानामपि वस्त्राभरणादीनां विशेषणत्वोपलम्भात् । न चैकत्वे व्यवच्छेद्य-व्यवच्छेदकभावो

....

शब्दभेदसे जो नाना अर्थोंमें रूढ़ हो, अर्थात् जो शब्दके भेदसे अर्थके भेदको स्वीकार करता हो वह समभिरूढ़नय है। जैसे — इन्दन अर्थात् ऐश्वर्योपभोग रूप क्रियाके संयोगसे इन्द्र, सकना क्रियाके संयोगसे शक्र और पुरोंके विभाग करने रूप क्रियाके संयोगसे पुरन्दर, इस प्रकार एक अर्थका एक शब्दसे परिज्ञान होनेसे अथवा अन्वर्थक शब्दका उस अर्थमें सामर्थ्य न होनेसे पर्यायशब्दोंका प्रयोग व्यर्थ है। इसलिये नाना अर्थोंको छोड़ एक अर्थमें ही शब्दका रूढ़ होना इस नयकी दृष्टिमें उचित है।

शंका—शब्द वस्तुका धर्म नहीं है, क्योंकि, उसका वस्तुसे भेद है। और यदि उसका वस्तुसे अभेद माना जाय तो यह सम्भव नहीं है, क्योंकि, वस्तु वाच्य है और शब्द वाचक है; वस्तु भिन्न इन्द्रियसे ग्राह्य है और शब्द भिन्न इन्द्रियसे ग्राह्य है; वस्तुके कारण भिन्न हैं और शब्दके कारण भिन्न हैं; वस्तुकी अर्थक्रिया भिन्न है और शब्दकी अर्थक्रिया भिन्न है; शब्द उपाय है और वस्तु उपेय है, तथा वस्तु त्वगिन्द्रियसे ग्राह्य है और शब्द त्वगिन्द्रियसे ग्राह्य नहीं है; इसके अतिरिक्त उन दोनोंमें अभेद माननेपर छुरा और मोदक शब्दोंका उच्चारण करनेपर क्रमसे मुखके कटने और पूर्ण होनेका प्रसंग आता है; अतः दोनोंमें सामानाधिकरण्य न होनेसे अभेद नहीं हो सकता। कदाचित् शब्द और वस्तुमें विशेषण-विशेष्यभाव मानकर यदि शब्दको वस्तुका धर्म स्वीकार करें तो यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, विशेष्यसे भिन्न विशेषण नहीं होता; कारण कि ऐसा माननेमें अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है। अत एव शब्द वस्तुका धर्म न होनेसे उसके भेदसे अर्थका भेद नहीं हो सकता?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, विशेष्यसे भिन्न भी वस्त्राभरणादिकोंके विशेषणता पायी जाती है। और विशेष्यसे विशेषणको एक माननेपर उनमें व्यवच्छेद्य-व्यवच्छेदकभाव मानना भी योग्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, अभेद माननेपर उसका

....

१ स. सि. १, ३३. त. रा. १, ३३, १०. प. खं. पु. १, पृ. ८९. जयध. १, पृ. २३९.
२ जयध. १, पृ. २४०. ३ प्रतिषु 'घटन' इति पाठः। ४ जयध. १, पृ. २३२.

युज्यते, विरोधात् । न स्वतो व्यतिरिक्ताशेषार्थव्यवच्छेदकः शब्दः[1], अयोग्यत्वात्। योग्यः शब्दो योग्यार्थस्य व्यवच्छेदक इति नातिप्रसंग आढौकते। कुतो योग्यता शब्दार्थानाम्? स्व-पराभ्याम्। न चैकान्तेनान्यत एव तदुत्पत्तिः, स्वतो विवर्तमानानामर्थानां सहायत्वेन वर्तमानबाह्यार्थोपलम्भात् । न च शब्दयोर्द्वैविध्ये तत्सामर्थयोरेकत्वं न्याय्यम्, भिन्नकालोत्पन्नद्रव्योपादान-भिन्नाधारयोरेकत्वविरोधात् । न च सादृश्यमपि, तयोरेकत्वापत्तेः । ततो वाचकभेदादवश्यं वाच्यभेदेनापि भवितव्यमिति नानार्थाभिरूढः समभिरूढः[2] । एवं समभिरूढनयस्वरूपमभिहितम्।

वाचकगतवर्णभेदेनार्थस्य गवाद्यर्थभेदेन गवादिशब्दस्य च भेदकः एवम्भूतः[3] । क्रिया-भेदे न अर्थभेदकः एवम्भूतः, शब्दनयान्तर्भूतस्य एवम्भूतस्य अर्थनयत्वविरोधात्। केऽर्थनयाः?

....

विरोध है। शब्द अपनेसे भिन्न समस्त पदार्थोंका व्यवच्छेदक नहीं हो सकता, क्योंकि, उसमें वैसी योग्यता नहीं है। किन्तु योग्य शब्द योग्य अर्थका व्यवच्छेदक होता है, अत एव अतिप्रसंग नहीं आता।

शंका — शब्द और अर्थके योग्यता कहांसे आती है?

समाधान — स्व और परसे उनके योग्यता आती है।

सर्वथा अन्यसे ही उसकी उत्पत्ति होती हो ऐसा है नहीं, क्योंकि, स्वयं वर्तनेवाले पदार्थोंकी सहायतासे वर्तते हुए बाह्य पदार्थ पाये जाते हैं। दूसरे, शब्दोंके दो प्रकार होनेपर उनकी शक्तियोंको एक मानना भी उचित नहीं है, क्योंकि, भिन्न कालमें उत्पन्न व भिन्न उपादान एवं भिन्न आधारवाली शब्दशक्तियोंके अभिन्न होनेका विरोध है। उनमें सादृश्य भी नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा होनेपर एकताकी आपत्ति आती है। इस कारण वाचकके भेदसे वाच्यभेद भी अवश्य होना चाहिये। अत एव शब्दभेदसे नाना अर्थोंमें जो रूढ़ है वह समभिरूढ़ नय है, यह सिद्ध है। इस प्रकार समभिरूढ़ नयका स्वरूप कहा गया है।

जो शब्दगत वर्णोंके भेदसे अर्थका और गौ आदि अर्थके भेदसे गो आदि शब्दका भेदक है वह एवम्भूत नय है। क्रियाका भेद होनेपर एवम्भूत नय अर्थका भेदक नहीं है, क्योंकि, शब्दनयके अन्तर्गत एवम्भूत नयके अर्थनय होनेका विरोध है।

शंका — अर्थनय कौन हैं?

....

१ प्रतिषु 'व्यवच्छेदकशब्दः' इति पाठः।

२ शब्दभेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनाप्यवश्यं भवितव्यमिति नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः। स. सि. १, ३३. त. रा. १, ३३, १०.

३ ष. खं. पु. १, पृ. ९०. जयध. १, पृ. २४२.

क्रिया-गुणाद्यर्थगतभेदेनार्थभेदनात् संग्रह-व्यवहारर्जुसूत्रा अर्थनयाः, शेषाः शब्दपृष्ठतोऽर्थ-ग्रहणप्रवणत्वात् शब्दनयाः। न एकगमो नैगम इति न्यायात् शुद्धाशुद्धपर्यायार्थिनयद्वय-विषयः पर्यायार्थिकनैगमः; द्रव्यार्थिकनयद्वयविषयः द्रव्यार्थिकनैगमः[1]; द्रव्य-पर्यार्थिकनयद्वय-विषयः नैगमो द्वंदजः, एवं त्रयो नैगमाः[2]। नव नयाः क्वचिच्छ्रूयन्त इति चेन्न नयानामियत्ता-संख्यानियमाभावात्। अत्रोपयोगिनी गाथा—

> जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा।
> जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया[3] ॥ ५८ ॥

समाधान — क्रिया और गुणादिक रूप अर्थगत भेदसे अर्थका भेद करनेके कारण संग्रह, व्यवहार व ऋजुसूत्र नय अर्थनय हैं। शेष नय शब्दके पीछे अर्थके ग्रहणमें तत्पर होनेसे शब्दनय हैं।

'जो एकको विषय न करे अर्थात् भेद व अभेद दोनोंको विषय करे वह नैगमनय है' इस न्यायसे जो शुद्धपर्यायार्थिक नय व अशुद्धपर्यायार्थिक नय इन दोनोंके विषयको ग्रहण करनेवाला हो वह पर्यायार्थिक नैगमनय है। शुद्धद्रव्यार्थिक और अशुद्धद्रव्यार्थिक दोनों नयोंके विषयको ग्रहण करनेवाला द्रव्यार्थिक नैगमनय है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयोंके विषयको ग्रहण करनेवाला द्वंदज अर्थात् द्रव्य पर्यायार्थिक नैगमनय है। इस प्रकार तीन नैगम हैं।

शंका — कहींपर नौ नय सुने जाते हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, 'नय इतने हैं' ऐसी संख्याके नियमका अभाव है। यहां उपयोगी गाथा —

जितने वचनमार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं, तथा जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय हैं ॥ ५८ ॥

१ प्रतिषु 'द्रव्यपर्यायार्थिकनयद्वयविषयः पर्यायार्थिकनैगमः' इति पाठः।

२ द्रव्यार्थिकनैगमः पर्यायार्थिकनैगमः द्रव्य-पर्यायार्थिकनैगमश्चेत्येवं त्रयो नैगमाः। तत्र सर्वमेकं सदविशेषात्, सर्वं द्विविधं जीवाजीवभेदादित्यादियुक्त्यवष्टम्भबलेन विषयीकृतसंग्रह-व्यवहारनयविषयः द्रव्यार्थिकनैगमः। ऋजुसूत्रादिनयचतुष्टयविषयं युक्त्यवष्टम्भबलेन प्रतिपन्नः पर्यायार्थिकनैगमः। द्रव्यार्थिकनयविषयं पर्यायार्थिकनय-विषयञ्च प्रतिपन्नः द्रव्य-पर्यायार्थिकनैगमः। जयध. १, पृ. २४४.

३ ष. खं. पु. १, पृ. ८०. जयध. १, पृ. २४५.

एते सर्वेऽपि नयाः अनवधृतस्वरूपाः सम्यग्दृष्टयः, प्रतिपक्षानिराकरणात्[1]। एत एव दुरवधारिताः मिथ्यादृष्टयः, प्रतिपक्षनिराकरणमुखेन प्रवृत्तत्वात्[2]। अत्रोपयोगिनः श्लोकाः—

यथैककं कारकमर्थसिद्धये समीक्ष्य शेषं[3] स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्य-विशेषमातृका नयास्तवेष्टा गुण-मुख्यकल्पतः[4] ॥ ५९ ॥

य एव नित्य-क्षणिकादयो नयाः मिथोऽनपेक्षाः स्व-परप्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्व-परोपकारिणः[5] ॥ ६० ॥

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्[6] ॥ ६१ ॥

एतेषां नयानां विषय उपनयः[7] उपचारात्। तत्समूहो वस्तु, अन्यथार्थक्रियाकर्तृत्वानुपपत्तेः। अत्रोपयोगी श्लोकः—

ये सभी नय वस्तुस्वरूपका अवधारण न करनेपर समीचीन नय होते हैं, क्योंकि, वे प्रतिपक्ष धर्मका निराकरण नहीं करते। किन्तु ये ही जब दुराग्रहपूर्वक वस्तुस्वरूपका अवधारण करनेवाले होते हैं तब मिथ्यानय कहे जाते हैं, क्योंकि, वे प्रतिपक्षका निराकरण करनेकी मुख्यतासे प्रवृत्त होते हैं। यहां उपयोगी श्लोक—

जिस प्रकार एक कारक शेषको अपना सहायक कारक मान करके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये होता है, उसी प्रकार सामान्य व विशेष धर्मोंसे उत्पन्न नय आपको मुख्य और गौणकी विवक्षासे इष्ट हैं ॥ ५९ ॥

जो नित्य व क्षणिक आदि नय परस्परमें निरपेक्ष होकर अपना व परका नाश करनेवाले हैं वे ही आप विमल मुनिके यहां परस्परकी अपेक्षा युक्त हो अपने व परके उपकारी हैं ॥ ६० ॥

मिथ्यानयोंका विषयसमूह मिथ्या है, ऐसा कहनेपर उत्तर देते हैं कि वह मिथ्या ही हो, ऐसा हमारे यहां एकान्त नहीं है। किन्तु परस्परकी अपेक्षा न रखनेवाले नय मिथ्या हैं, तथा परस्परकी अपेक्षा रखनेवाले वे वास्तवमें अभीष्टसिद्धिके कारण हैं ॥ ६१ ॥

इन नयोंका विषय उपचारसे उपनय है। इनका समूह वस्तु है, क्योंकि, इसके विना अर्थक्रियाकारित्व नहीं बन सकता। यहां उपयोगी श्लोक—

---

१ न चैकान्तेन नयाः मिथ्यादृष्टय एव, परपक्षानिराकरिष्णूनां सप (स्वप) क्षसत्त्वावधारणे व्यापृतानां स्यात्सम्यग्दृष्टित्वदर्शनात्। जयध. १, पृ. २५७.

२ एते सर्वेऽपि नयाः एकान्तावधारणगर्भा मिथ्यादृष्टयः, एतैरध्यवसितवस्त्वभावात्। जयध. १, पृ. २४५.

३ प्रतिषु 'तेषां' इति पाठः।　४ बृ. स्व. ६२. तत्र 'यथैककं' इत्यस्य स्थाने 'यथैकशः' इति पाठः।

५ बृ. स्व. ६१.　६ आ. मी. १०८.

७ प्रतिषु 'विषयोपनयः' इति पाठः। तच्छाखा-प्रशाखात्मोपनयः। अष्टशती १०७.

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः ।
अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा[1] ॥ ६२ ॥

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया चावि ।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवइ दव्वं[2] ॥ ६३ ॥

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्तधर्म्मणः ।
अंगित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदंगता[3] ॥ ६४ ॥

स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यम्, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादस्ति चावक्तव्यं च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च इति एतानि सप्त सुनयवाक्यानि प्रधानीकृतैकधर्मत्वात्[4] । न चैतेपु सप्तस्वपि वाक्येपु स्याच्छब्दप्रयोगनियमः[5], तथा प्रतिज्ञाशयादप्रयोगोपलम्भात् । सावधारणानि[6] वाक्यानि दुर्णयाः । एवं णयो परूविदो ।

नय एकान्त और उपनय एकान्तका विपयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायोंका अभिन्न सत्तासम्बन्ध रूप समुदाय द्रव्य कहलाता है । वह द्रव्य कथंचित् एक और कथंचित् अनेक है ॥ ६२ ॥

एक द्रव्यमें जितनी अतीत व अनागत अर्थपर्याय और व्यञ्जनपर्याय होती हैं उतने मात्र वह द्रव्य होता है ॥ ६३ ॥

अनन्त धर्म युक्त धर्मीके प्रत्येक धर्ममें अन्य ही प्रयोजन होता है । सब धर्मोंमें किसी एक धर्मके अंगी होनेपर शेप धर्म अंग होते हैं ॥ ६४ ॥

कथंचित् है, कथंचित् नहीं है, कथंचित् अवक्तव्य है, कथंचित् है और नहीं है, कथंचित् है और अवक्तव्य है, कथंचित् नहीं है और अवक्तव्य है, कथंचित् है नहीं है और अवक्तव्य है, इस प्रकार ये सात सुनयवाक्य हैं, क्योंकि, वे एक धर्मको प्रधान करते हैं । इन सातों ही वाक्योंमें 'स्यात्' शब्दके प्रयोगका नियम नहीं है, क्योंकि, वैसी प्रतिज्ञाका आशय होनेसे अप्रयोग पाया जाता है । ये ही वाक्य सावधारण अर्थात् अन्यव्यावृत्ति रूप होनेपर दुर्नय हो जाते हैं । इस प्रकार नयकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

१ आ. मी. १०७. २ षट्खं. पु. १, पृ. ३८६; जयध. पृ. २५३. ३ आ. मी. २२.
४ प्रतिपु 'प्रधानानिकृतैक...' इति पाठः ।
५ अप्रतौ 'स्याच्छब्दः प्रयोगनियमः' आ-काप्रत्योः स्यात्प्रयोगनियमः' इति पाठः ।
६ प्रतिपु 'सा च धारणानि इति पाठः ।

कम्मपयडिपाहुडस्स एदे चत्तारि वि अवयारा एदेण देसामासियसुत्तेण परूविदा। तं जहा— 'अग्गेणियस्स पुव्वस्स पंचमस्स वत्थुस्स चउत्थे पाहुडे कम्मपयडी णाम। तत्थ इमाणि चउवीसअणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति' त्ति एदेण सव्वेण वि सुत्तेण उवक्कमो पंचविहो परूविदो। एसो उवक्कमो सेसाणं तिण्णं अवयाराणं उवलक्खणो, तेण ते वि एत्थ दट्ठव्वा, एदस्स तदविणाभावित्तादो। एदमग्गेणियं णाम पुव्वं णाण-सुदंग-दिट्ठिवाद-पुव्वमिदि छप्पयारं, णाणादीहिंतो पुधभूद[1]ग्गेणियाभावादो। तेण सिस्समइविप्फारणट्ठं छण्णं पि चउव्विहो अवयारो उच्चदे। तं जहा — णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावभेएण चउव्विहं णाणं[2]। आदिल्ला तिण्णि वि णिक्खेवा दव्वट्ठियणयसंठिदा, तिण्णमण्णयदंसणादो। भावो पज्जवट्ठियणय-

....

कर्मप्रकृतिप्राभृतके ये चारों ही अवतार (उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय) इस देशामर्शक सूत्रके द्वारा प्ररूपित किये गये हैं। वह इस प्रकारसे— 'अग्रायणी पूर्वकी पंचम वस्तुके चतुर्थ प्राभृतका नाम कर्मप्रकृति है। उसमें ये चौबीस अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं' इस प्रकार इस समस्त ही सूत्रके द्वारा पांच प्रकारके उपक्रमकी प्ररूपणा की गई है। यह उपक्रम शेष तीन अवतारोंका उपलक्षण है, अत एव उन्हें भी यहां देखना चाहिये; क्योंकि, यह उनका अविनाभावी है। यह अग्रायणी पूर्व ज्ञान, श्रुत, अंग, दृष्टिवाद व पूर्वगतके अन्तर्गत होनेसे छह प्रकार है, क्योंकि, ज्ञानादिकोंसे पृथग्भूत अग्रायणी पूर्वका अभाव है। इसलिये शिष्योंकी बुद्धिको विकसित करनेके लिये उक्त छहोंके चार प्रकारका अवतार कहते हैं।

विशेषार्थ—यहां अग्रायणी पूर्वका उद्गम इस प्रकार बतलाया गया है – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय व केवलके भेदसे ज्ञान पांच प्रकार है। इनमें श्रुतज्ञान मुख्य है, क्योंकि, अग्रायणी पूर्वसे उसका ही सम्बन्ध है। वह श्रुतज्ञान भी अंगश्रुत और अनंगश्रुतके भेदसे दो प्रकार है। उनमें उक्त कारणसे ही अंगश्रुत मुख्य है। वह भी आचारांगादिके भेदसे बारह प्रकार है। इनमें बारहवां दृष्टिवादअंग मुख्य है जो पांच प्रकार है— परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। इनमें पूर्वगत विवक्षित है, क्योंकि, उसके उत्पादपूर्व आदि चौदह भेदोंमें द्वितीय अग्रायणी पूर्व ही है। अतएव अग्रायणी पूर्वसे सम्बद्ध होनेके कारण यहां क्रमसे ज्ञान, श्रुतज्ञान, अंगश्रुत, दृष्टिवादअंग, पूर्वगत और अग्रायणी पूर्वके उपक्रमादि चार प्रकार अवतारके कहनेकी प्रतिज्ञा की गई है।

वह इस प्रकार है— नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे ज्ञान चार प्रकार है। इनमें आदिके तीन निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके आश्रित हैं, क्योंकि, उन तीनके अन्वय देखा जाता है। भावनिक्षेप पर्यायार्थिक नयके निमित्तसे होनेवाला है, क्योंकि, वर्तमान पर्यायसे

....

१ प्रतिषु 'पुव्वभूद' इति पाठः। २ प्रतिषु 'चउव्विहाणं' इति पाठः।

णिबंधणो, वट्टमाणपज्जएणुवलक्खियदव्वत्तस्स भावत्तब्भुवगमादो । वुत्तं च—

णामं ठवणा दवियं ति एस[1] दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो ।
भावो दु पज्जवट्ठियपरूवणा एस परमट्ठो[2] ॥ ६५ ॥

संपहि णिक्खेवट्ठो वुच्चदे— णामणाणं णाणसद्दो अप्पाणम्मि वट्टमाणो । ठवणणाणं[3] सो एसो त्ति अभेदेण संकप्पिओ सब्भावासब्भावट्ठो । दुविहं दव्वणाणमागम-णोआगमभेएण । णाणपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो आगमदव्वणाणं, णेगमणयावलंबणादो । णोआगमदव्वणाणं तिविहं जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तणोआगमदव्वणाणभेएण । जाणुगसरीर-भवियदुगं सुगमं, बहुसो परूविदत्तादो । तव्वदिरित्तणोआगमदव्वणाणं णाणहेदुपोत्थयादिदव्वाणि । णाणपाहुड-जाणओ उवजुत्तो भावागमणाणं । एत्थ भावागमणाणे पयदं, सेसाणमसंभवादो । एदेण णय-णिक्खेवा दो वि परूविदा । अणुगमो वि परूविदो चेव, णय-णिक्खेवाणं तमहिकिच्च[4] परूविदत्तादो । एत्थ उवक्कमो आणुपुव्वी-णाम-पमाण-वत्तव्वदत्थाहियारभेएण पंचविहो

उपलक्षित द्रव्यको भाव स्वीकार किया गया है। कहा भी है—

नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन द्रव्यार्थिक नयके निक्षेप हैं, किन्तु भाव पर्यायार्थिक नयका निक्षेप है; यह परमार्थ सत्य है ॥ ६५ ॥

अब निक्षेपका अर्थ कहते हैं— नाम ज्ञान अपने आपमें रहनेवाला ज्ञान शब्द है। 'वह यह है' इस प्रकार अभेदसे संकल्पित सद्भाव व असद्भाव रूप अर्थ स्थापनाज्ञान है। द्रव्यज्ञान आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। ज्ञानप्राभृतका जानकार उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यज्ञान है, क्योंकि, यहां नैगम नयका अवलम्बन है। ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यज्ञानके भेदसे नोआगमद्रव्यज्ञान तीन प्रकार है। ज्ञायकशरीर और भव्य नोआगमद्रव्यज्ञान ये दो सुगम हैं, क्योंकि, इनकी प्ररूपणा बहुत-वार की गई है। ज्ञानकी हेतुभूत पुस्तक आदि द्रव्य तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यज्ञान है। ज्ञानप्राभृतका जानकार उपयोगयुक्त जीव भावागमज्ञान है। यहां भावागमज्ञान प्रकृत है, क्योंकि, शेष ज्ञानोंकी यहां सम्भावना नहीं है। इसके द्वारा नय और निक्षेप दोनोंकी प्ररूपणा की गई है। अनुगमकी भी प्ररूपणा की ही गई है, क्योंकि, उसका ही अधिकार करके नय और निक्षेपकी प्ररूपणा की गई है।

यहां आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकारके भेदसे पांच प्रकार

१ प्रतिषु 'ते सो' इति पाठः। २ ष. खं. पु, १, पृ. १५; पु. ४, पृ. ३. जयध. १, पृ. २६०.
३ प्रतिषु 'ठवणाणं' इति पाठः। ४ प्रतिषु 'तमइकिच्च' इति पाठः।

वुच्चदे। तत्थ आणुपुव्वीए एत्थ णत्थि संभवो, णाणेगत्तविवक्खादो। णज्जंते एदेण जीवादिपदत्था त्ति णाणमिदि गुणणामं। पमाणमेक्कं चेव, संगहणयावलंबणादो। अधवा पमाणं अणंतं, णाणस्स णेयप्पमाणत्तादो। वत्तव्वमेदस्स ससमय-परसमया। मदि-सुद-ओधि-मणपज्जव[१]-केवलणाणभेएण पंच अहियारा, ण वड्ढिमा ण चूणा; ववहारणयावलंबणादो।

संपदि सुदणाणमुहेण चउव्विहो वयारो वुच्चदे— णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावसुदणाण-भेएण चउव्विहं सुदणाणं। आदिल्ला तिण्णि वि दव्वट्ठियस्स णिक्खेवा। कधं णामं दव्व-ट्ठियस्स? ण, पज्जवट्ठिए खणक्खएण सद्दत्थविसेसभावेण संकेदकरणाणुववत्तीए वाचिय-वाचयभेदाभावादो। कधं सद्दणएसु तिसु वि सद्दववहारो? अणप्पिदअत्थगयभेयाणमप्पिद-सद्दणिबंधणभेयाणं तेसिं तदविरोहादो। कधं ट्ठवणा दव्वट्ठियणयविसओ? ण, अत्थम्हि[२]

उपक्रम कहा जाता है। उनमें आनुपूर्वीकी यहां सम्भावना नहीं है, क्योंकि, यहां ज्ञानके एकत्वकी विवक्षा है। चूंकि इससे जीवादि पदार्थ जाने जाते हैं अतः 'ज्ञान' यह गुणनाम है। प्रमाण— एक ही है, क्योंकि, यहां संग्रहनयका अवलम्बन है। अथवा प्रमाण अनन्त है, क्योंकि, ज्ञान ज्ञेयके प्रमाण हैं अर्थात् जितने (अनन्त) ज्ञेय हैं उतने ही ज्ञान भी हैं। वक्तव्य इसके स्वसमय और परसमय हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञानके भेदसे अधिकार पांच हैं। न वे अधिक हैं और न कम भी, क्योंकि, यहां व्यवहार-नयका अवलम्बन है।

अब श्रुतज्ञानकी मुख्यतासे चार प्रकारका अवतार कहते हैं— नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव श्रुतके भेदसे श्रुतज्ञान चार प्रकार है। इनमें आदिके तीनों ही निक्षेप द्रव्यार्थिकनयके हैं।

शंका— नाम द्रव्यार्थिकनयका निक्षेप कैसे है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पर्यायार्थिकनयमें क्षणक्षयी होनेसे शब्द और अर्थकी विशेषतासे संकेत करना न बन सकनेके कारण वाच्य-वाचकभेदका अभाव है।

शंका— तो फिर तीनों ही शब्दनयोंमें शब्दका व्यवहार कैसे होता है?

समाधान— अर्थगत भेदकी अप्रधानता और शब्दनिमित्तक भेदकी प्रधानता रखनेवाले उक्त नयोंके शब्दव्यवहारमें कोई विरोध नहीं है।

शंका— स्थापना द्रव्यार्थिकनयका विषय कैसे है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अर्थका उसके द्वारा ग्रहण होनेपर स्थापना

१ अ काप्रत्योः 'पज्जय' इति पाठः। २ अप्रतौ 'अतम्हि'; आ-काप्रत्योः 'अत्तम्हि' इति पाठः।

तग्गहे संते ठवणुववत्तीदो। दव्वसुदणाणं पि दव्वट्ठियणयविसओ, आहाराहेयाणमेयत्तकप्पणाए दव्वसुदग्गहणादो। भावणिक्खेवो पज्जवट्ठियणयविसओ, वट्टमाणपज्जाएणुवलक्खियदव्वग्गहणादो।

णिक्खेवट्ठो वुच्चदे— णाम-ट्ठवणा-आगम-णोआगमदव्वसुदणाणाणि सुगमाणि। णवरि सुदणाणहेदुभूदगुरु-कवलियादीणि तव्वदिरित्तणोआगमदव्वसुदणाणं ति वत्तव्वं। सुदोवजुत्तो पुरिसो भावसुदणाणं। एवं णिक्खेव-णयपरूवणाओ गदाओ।

सुदणाणं पमाणं, ण प्पमेओ; तेणेत्थ अणहियारादो। अणुगमो गदो।

पुव्वाणुपुव्वीए बिदियं, पच्छाणुपुव्वीए चउत्थं, जहा-तहाणुपुव्वीए पढमं बिदियं तदियं वा। सुदणाणं इदि णामं णोगोण्णं, सोदादिइंदिएहिंतो अणुप्पण्णस्स णाणस्स सुदणाणसण्णाए गोण्णत्ताभावादो। पमाणमेक्कं चेव, सुदत्तमेत्तविवक्खादो। अक्खर-पद-संघादपडिवत्ति-अणियोगद्दारविवक्खाए सुदणाणं संखेज्जं। अधवा अणंतं, पमेयाणंतियादो। वत्तव्वं स-परसमया, सुणय-दुण्णयसरूवपरूवणादो। अंगमणंगमिदि बे अत्थाहियारा। सामाइयं

बन सकती है।

द्रव्यश्रुतज्ञान भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, आधार और आधेयके एकत्वकी कल्पनासे द्रव्यश्रुतका ग्रहण किया गया है। भावनिक्षेप पर्यायार्थिक नयका विषय है, क्योंकि, वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यका यहां भाव रूपसे ग्रहण किया गया है।

निक्षेपका अर्थ कहते हैं— नाम, स्थापना तथा आगम व नोआगम द्रव्यश्रुतज्ञान सुगम हैं। विशेष इतना है कि श्रुतज्ञानके निमित्तभूत गुरु और कवलिआ (ज्ञानका एक उपकरण) आदि तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यश्रुतज्ञान हैं, ऐसा कहना चाहिये। श्रुतज्ञानके उपयोगसे युक्त पुरुष भावश्रुतज्ञान है। इस प्रकार निक्षेप और नयकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

श्रुतज्ञान प्रमाण है, प्रमेय नहीं है; क्योंकि, उसका यहां अधिकार नहीं है। अनुगमकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

वह श्रुतज्ञान पूर्वानुपूर्वीसे द्वितीय, पश्चादानुपूर्वीसे चतुर्थ और यथा-तथानुपूर्वीसे प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय है। श्रुतज्ञान यह नाम नोगोण्य है, क्योंकि, श्रोत्रादिक इन्द्रियोंसे नहीं उत्पन्न हुए ज्ञानकी श्रुतज्ञान संज्ञाके गोण्यताका अभाव है। प्रमाण एक ही है, क्योंकि, यहां श्रुतसामान्यकी विवक्षा है। अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारकी विवक्षासे श्रुतज्ञान संख्यात है। अथवा, प्रमेय अनन्त होनेसे वह अनन्त है। वक्तव्य स्वसमय और परसमय हैं, क्योंकि, सुनय और दुर्नयके स्वरूपकी यहां प्ररूपणा की गई है।

अंगश्रुत और अनंगश्रुत इस प्रकार अर्थाधिकार दो हैं। सामायिक, चतुर्विंशति-

चउवीसत्थओ वंदण पडिक्कमणं वेणइयं किदियम्मं दसवेयालियं उत्तरज्झयणं कप्पववहारो कप्पाकप्पियं महाकप्पियं पुंडरीयं महापुंडरीयं णिसिहियमिदि चोद्दसविहमणंगसुदं। तत्थ सामाइयं दव्व-खेत्त-काले अप्पिदूण पुरिसजादं आभोगिय परिमिदापरिमियकालसामाइयं परूवेदि[1]। चदुवीसत्थओ उसहादिजिणिंदाणं तच्चेइय-चेइयहराणं च कट्टिमाकट्टिमाणं दव्व-खेत्त-काल-भावपमादिवण्णणं कुणदि[2]। वंदणा एदेसिं वंदणविहाणं परूवेदि[3] दव्वट्ठियणयमवलंबिऊण। पडिक्कमणं दीवसिय-राइय-इरियावहिय-पक्खिय-चाउम्मासिय-संवच्छरिय-उत्तमट्ठमिदि सत्त-पडिक्कमणाणि भरहादिखेत्ताणि दुस्समादिकाले छसंघडणसमण्णियपुरिसे[4] च अप्पिदूण

स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निषिद्धिका, इस प्रकार अनंगश्रुत चौदह प्रकार है। उनमें सामायिक अनंगश्रुत द्रव्य, क्षेत्र और कालकी अपेक्षा करके एवं पुरुषवर्गका विचार करके परिमित एवं अपरिमित काल रूप सामायिकका प्ररूपण करता है। चतुर्विंशतिस्तव अधिकार वृषभादिक जिनेन्द्रों और उनकी कृत्रिम व अकृत्रिम प्रतिमाओं एवं चैत्यालयोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और प्रमाणादिका वर्णन करता है। वन्दना अधिकार द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करके उनकी वन्दनाकी विधिका प्ररूपण करता है। प्रतिक्रमण अधिकार दैवसिक, रात्रिक, ऐर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और उत्तमार्थ प्रतिक्रमण, इस प्रकार सात प्रतिक्रमणोंकी भरतादिक क्षेत्रों, दुःषमादिक कालों और छह संहनन युक्त पुरुषोंकी विवक्षाकर प्ररूपण करता है। वैनयिक

१ ष. खं. पु. १, पृ. ९६. जयध. १, पृ. ९७. तत्र समम् एकत्वेन आत्मनि आयः आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समायः, अयमहं ज्ञाता द्रष्टा चेति आत्मविषयोपयोग इत्यर्थः; आत्मनः एकस्यैव ज्ञेय-ज्ञायकत्वसम्भवात्। अथवा सं समे राग-द्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः, स प्रयोजनमस्येति सामायिकं नित्य-नैमित्तिकानुष्ठानम्, तत्प्रतिपादकं शास्त्रं वा सामायिकमित्यर्थः। गो. जी, जी. प्र ३६७. अंगपण्णत्ती. ३, ११-१३.

२ ष. खं. पु. १, पृ. ९६. जयध. १, पृ. १००. तत्तत्कालसम्बन्धिनां चतुर्विंशतितीर्थकराणां नाम-स्थापना-द्रव्य-भावानाश्रित्य पंचमहाकल्याण-चतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्य-परमौदारिकदिव्यदेह-समवसरणसभा-धर्मोपदेशनादितीर्थकरमहिमस्तुतिः चतुर्विंशतिस्तवः, तस्य प्रतिपादकं शास्त्रं वा चतुर्विंशतिस्तव इत्युच्यते। गो. जी. जी. प्र. ३६७. अं. प. ३, १४-१५.

३ ष. खं. पु. १, पृ. ९७. जयध. १, पृ. १११. तस्मात् परं एकतीर्थकरावलम्बना चैत्य-चैत्यालयादि-स्तुतिः वन्दना, तत्प्रतिपादकं शास्त्रं वा वन्दना इत्युच्यते। गो. जी. जी. प्र. ३६७. अं. प. ३-१६.

४ अप्रतौ 'उसंघडणसमाण्णिय', आ-काप्रत्योः 'उसंघणणसमण्णिय', मप्रतौ 'चसंघडणसमाण्णिय' इति पाठः।

परूवेदि[1]। वेणइयं भरहेरावद-विदेहसाहूणं दव्व-खेत्त-कालभावे पडुच्च णाण-दंसण-चारित्त-तवोवचारियविणयं वण्णेदि[2]। किदियम्मं अरहंत-सिद्धाइरिय-उवज्झाय[3]-गणचिंतय-गणवसहाईणं कीरमाणपूजाविहाणं वण्णेदि[4]। एत्थुववुज्जंती गाहा—

दुओणदं जहाजादं बारसावत्तमेव[5] वा।
चउसीसं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजए[6] ॥ ६४ ॥

....

अधिकार भरत, ऐरावत व विदेहमें साधुके योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका आश्रयकर ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, तपोविनय एवं औपचारिक विनयका वर्णन करता है। कृतिकर्म अधिकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गणचिन्तक (साधुसंघके कार्योंकी चिन्ता करनेवाले) और गणवृषभ (गणधर) आदिकोंकी की जानेवाली पूजाके विधानका वर्णन करता है। यहां उपयुक्त गाथा—

यथाजात अर्थात् जातरूपके सदृश क्रोधादि विकारोंसे रहित होकर दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धियोंसे संयुक्त कृतिकर्मका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६४ ॥

विशेषार्थ—अरहन्तादिकोंकी की जानेवाली पूजाके विधानका नाम कृतिकर्म है। इसमें कितनी अवनति, कितनी शिरोनति और कितने आवर्त किये जाते हैं, इसका निर्देश इस गाथामें किया गया है। दोनों हाथ जोड़कर शिरसे भूमिस्पर्श रूप नमस्कार करनेका

....

१ ष. खं. पु. १, पृ. ९७. जयध. १, पृ. ११३. अं. प. ३, १७-१९.

२ प्रतिषु 'वेण्णेदि' इति पाठः। ष. खं. पु. १. पृ ९७. विणओ पंचविहो — णाणविणओ दंसणविणओ चरित्तविणओ तवविणओ उवयारियविणओ चेदि। गुणाधिकेषु नीचैर्वृत्तिर्विनयः। एदेसिं पंचण्हं विणयाणं लक्खणं विहाणं फलं च वइणयियं परूवेदि। जयध. १, पृ. ११७. अं. प. ३, २०.

३ अ-आप्रत्योः 'चउझाय' इति पाठः।

४ ष. खं. पु. १, पृ. ९७. कृत्यते छिद्यते अष्टविधं कर्म येनाक्षरकदम्बकेन परिणामेन क्रियया वा तत् कृतिकर्म पापविनाशोपायः। मूला. टीका ७-७९. जिण-सिद्धाइरिय-बहुसुदेसु वंदिज्जमाणेसु जं कीरइ कम्मं तं किदियम्मं णाम। तस्स आदाहीण-तिक्खुत्त-पदाहिण-तिओणद-चदुसिर-बारसावत्तादिलक्खणं विहाणं फलं च किदियम्मं वण्णेदि। जयध. १, पृ. ११८. अं. प. ३, २२-२३.

५ प्रतिषु '-मेय वा' इति पाठः।

६ दोणदं तु जधाजादं बारसावत्तमेव य। चदुस्सिरं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजदे ॥ मूला. ७, १०४. चतु शिरस्त्रि-द्विनतं द्वादशावर्तमेव च। कृतिकर्माख्यमाचष्टे कृतिकर्मविधिं परम् ॥ ह. पु. १०, १३३. दुओणयं जहाजायं कितिकम्मं बारसावयं। चउसिरं तिगुत्तं च दुपवेसं एगणिक्खमणं ॥ समवायांग सूत्र १२.

दसवेयालियं दव्व-खेत्त-काल-भावे अस्सिदूण आयार-गोयरविहिं[1] वण्णेदि[2] । उत्तरज्झयणं उग्गमुप्पायणेसणदोसगयपायच्छित्तविहाणं कालादिविसेसिदं[3] परूवेदि[4] । कप्प-ववहारो साहूणं जं जम्हि काले कप्पदि पिच्छ-कमंडलु-कवली-पोत्थयादि परूवेदि, अकप्प-सेवणाए कप्पस्स असेवयणाए च पायच्छित्तं परूवेदि[5] । कप्पाकप्पियं साहूणं जं कप्पदि

....

नाम अवनति है । यह अवनति एक पंचनमस्कारके आदिमें और एक चतुर्विंशतिस्तवके आदिमें, इस प्रकार प्रकार दो वार की जाती है । मन, वचन व कायके संयमन रूप शुभ योगोंके वर्तनेका नाम आवर्त (दोनों हाथ जोड़कर उनको अग्रिम भागकी ओरसे चक्राकार घुमाना) है । पंचनमस्कारमंत्रोच्चारणके आदि व अन्तमें तीन-तीन तथा चतुर्विंशतिस्तवके आदि व अन्तमें तीन-तीन, इस प्रकार बारह आवर्त किये जाते हैं। अथवा, चारों दिशाओंमें घूमते समय प्रत्येक दिशामें एक-एक प्रणाम किया जाता है । इस प्रकार तीन वार घूमनेपर वे बारह होते हैं । दोनों हाथ जोड़कर शिरके नमानेका नाम शिरोनति है । यह क्रिया पंचनमस्कार और चतुर्विंशतिस्तवके आदि व अन्तमें एक एक वार करनेसे चार वार की जाती है । यह कृतिकर्म जन्मजात बालकके समान निर्विकार होकर मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक किया जाना चाहिये ।

दशवैकालिक अनंगश्रुत द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका आश्रयकर आचार-विषयक विधि व भिक्षाटनविधिकी प्ररूपणा करता है । उत्तराध्ययन अनंगश्रुत उद्गमदोष, उत्पादनदोष और एषणदोष सम्बन्धी प्रायश्चित्तकी विधिकी कालादिसे विशेषित प्ररूपणा करता है । कल्पव्यवहार श्रुत साधुओंको पीछी, कमण्डलु, कवली (ज्ञानोपकरणविशेष) और पुस्तकादि जो जिस कालमें योग्य हो उसकी प्ररूपणा करता है, तथा अयोग्य सेवन और योग्य सेवन न करनेके प्रायश्चित्तकी प्ररूपणा भी करता है । कल्पाकल्प्य श्रुत साधुओंको जो योग्य है [और जो योग्य नहीं है] उन

....

१ प्रतिषु ' गोयारविहिं ' इति पाठः ।

२ ष. खं. पु. १, पृ. ९७. साहूणमायार-गोयरविहिं दसवेयालीयं वण्णेदि। जयध. १, पृ. १२०. जदि-गोचारस्स विहिं पिंडविसुद्धिं च जं परूवेदि । दसवेयालियसुत्तं दह काला जत्थ संवुत्ता ॥ अं. प. ३, २४.

३ मप्रतौ ' विसेसिदव्व ' इति पाठः ।

४ ष. खं. पु. १, पृ. ९७. चउव्विहोवसग्गाणं बावीसपरिस्सहाणं च सहणविहाणं सहणफलमेदम्हादो एदमुत्तरमिदि च उत्तरज्झेणं वण्णेदि । जयध. १, पृ. १२०. अं. प. ३, २५–२६.

५ ष. खं. पु. १, पृ. ९७. रिसीणं जो कप्पइ ववहारो तम्हि खलिदे जं पायच्छित्तं तं च भणइ कप्पववहारो । जयध. १, पृ. १२०. कप्पव्ववहारो जहिं ववहिज्जइ जोग कप्पमाजोगा । सत्थं अवि इसिजोग्गं आयरणं कहदि सव्वत्थ । अं. प. ३, २७.

[जं च ण कप्पदि] तं दुविहं पि दव्व-खेत्त-कालमस्सिदूण परूवेदि[1]। महाकप्पियं भरह-इरावद[2]-विदेहाणं तत्थतणतिरिक्ख-मणुस्साणं देवाणमण्णेसिं दव्वाणं च सरूवं छक्काले अस्सिदूण परूवेदि[3]। पुंडरीयं देवेसु असुरेसु णेरइएसु च तिरिक्ख-मणुस्साणमुववादं छक्काल-विसेसिदं परूवेदि[4]। एदम्हि काले तिरिक्खा मणुस्सा च एदेसु कप्पेसु एदासु पुढवीसु उप्पज्जंति त्ति परूवेदि त्ति वुत्तं होदि। महापुंडरीयं देविंदेसु चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेवेसु च कालमस्सिदूण उववादं वण्णेदि[5]। णिसिहियं पायच्छित्तविहाणमण्णं पि आचरणविहाणं कालमस्सिदूण परूवेदि[6]।

दोनोंकी ही द्रव्य, क्षेत्र और कालका आश्रयकर प्ररूपणा करता है। महाकल्प्य श्रुत भरत, ऐरावत और विदेह तथा वहां रहनेवाले तिर्यंच व मनुष्योंके, देवोंके एवं अन्य द्रव्योंके भी स्वरूपका छह कालोंका आश्रयकर निरूपण करता है। पुण्डरीक श्रुत छह कालोंसे विशेषित देव, असुर एवं नारकियोंमें तिर्यंच व मनुष्योंकी उत्पत्तिकी प्ररूपणा करता है। इस कालमें तिर्यंच और मनुष्य इन कल्पों व इन पृथिवियोंमें उत्पन्न होते हैं, इसकी वह प्ररूपणा करता है; यह अभिप्राय है। महापुण्डरीक श्रुत कालका आश्रयकर देवेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव व वासुदेवोंमें उत्पत्तिका वर्णन करता है। निषिद्धिका कालका आश्रयकर प्रायश्चित्तविधि और अन्य आचरणविधिकी भी प्ररूपणा करता है।

१ ष. खं. पु. १. पृ. ९८. साहूणमसाहूणं च जं कप्पइ जं च ण कप्पइ तं सव्वं दव्व-खेत्त-काल-भावे अस्सिदूण भणइ कप्पाकप्पियं। जयध. १, पृ. १२१. गो. जी. जी. प्र. ३६८. कप्पाकप्पं तं चिय साहूणं जत्थ कप्पमाकप्पं। वण्णिज्जइ आसिच्चा दव्वं खेत्तं भवं कालं॥ अं. प. ३, २८.

२ प्रतिपु ' भवहइतावद ' इति पाठः।

३ ष. खं. पु. २, पृ. ९८. साहूणं गहण-सिक्खा-गणपोसणप्पसंसकरण-सल्लेहणुत्तमट्ठाणगयाणं जं कप्पइ तस्स चेव दव्व-खेत्त-काल-भावे अस्सिदूण परूवणं कुणइ महाकप्पियं। जयध. १, पृ. १२१. महतां कल्प्यम-स्मिन्निति महाकल्प्यं शास्त्रम्। तच्च जिनकल्पसाधूनामुत्कृष्टसंहननादिविशिष्टद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाववर्तिनां योग्यं त्रिकालयोग्याद्यनुष्ठानं स्थविरकल्पानां दीक्षा-शिक्षा-गणपोषणात्मसंस्कार-सल्लेखनोत्तमार्थस्थानगतोत्कृष्टाराधनाविशेषं च वर्णयति। गो. जी. जी. प्र. ३६८. अं. प. ३, २९-३१.

४ ष. खं. पु. १, पृ. ९८. भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-वेमाणियदेविंद-समाणियादिसु उप्पत्तिकारणदाण-पूजा-सील-तवोववास-सम्मत्त-अकाम-णिज्जराओ तेसिमुववादभवणसरूवाणि च वण्णेदि पुंडरीयं। जयध. १, पृ, १२१. गो. जी. जी. प्र. ३६८. अं. प. ३, ३१-३३.

५ ष. खं. पु. १, पृ. ९८. तेसिं चेव पुव्वुत्तदेवाणं देवीसु उप्पत्तिकारणतवोववासादियं महापुंडरीयं परूवेदि। जयध. १, पृ. १२१, महच्च तत्पुण्डरीकं महापुण्डरीकं शास्त्रम्। तच्च महर्द्धिकेषु इन्द्र-प्रतीन्द्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरणं वर्णयति। गो. जी. जी. प्र. ३६८.

६ ष. खं. पु. १, पृ. ९८. णाणाभेदभिण्णं पायच्छित्तविहाणं णिसीहियं वण्णेदि। जयध. १, पृ. १२१. णीसेहियं हि सत्थं पमाददोसस्स दूरपरिहरणं। पायच्छित्तविहाणं कहेदि कालादिभावेणं॥ अं. प. ३. ३४.

संपहि णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावंगसुदभेएण चउविहमंगसुदणाणं। आदिल्ला तिण्णि वि णिक्खेवा दव्वट्ठियणयपहवा, भावणिक्खेवो पज्जवट्ठियणयसमुब्भूदो। तत्थ णिक्खेवट्ठो वुच्चदे— अंगसद्दो अप्पाणम्मि वट्टमाणो णामंगं। तमेदं ति बुद्धीए अण्णत्थ समारोविदं ट्ठवणंगं। अंगसुदपारओ अणुवज्जुत्तो भट्ठाभट्ठसंसकारो[1] आगमदव्वंगं। जाणुगसरीरं भविय-वट्टमाण-समुज्झादं[2] णोआगमदव्वंगं। कधमेदिस्सि अंगसण्णा? आधारे आधेयोवयारादो। जदि एवं तो णोआगमत्तं ण घडदे, अंगागमाणमभेदादो? ण, जीवदव्वस्स सदो[3] अभिण्ण-आगमभावस्स भट्ठाभट्ठसंसकारस्स[1] आगमसण्णिदस्स पडिसेहफलत्तादो। होदु णाम सरीरस्स णोआगमत्तमंगसुदत्तं च, ण भविस्सकाले अंगसुदपारयस्स णोआगमत्तं, उवयारेण आगम-

अब नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव अंगश्रुतके भेदसे अंगश्रुतज्ञान चार प्रकार है। आदिके तीनों निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके निमित्तसे होनेवाले हैं, तथा भावनिक्षेप पर्यायार्थिक नयसे उत्पन्न है। उनमें निक्षेपके अर्थको कहते हैं— अपने आपमें रहनेवाला अंग शब्द नाम अंग है। 'वह यह है' इस प्रकार बुद्धिमें आरोपित अन्य अर्थका नाम स्थापना अंग है। जो जीव अंगश्रुतके पारंगत, उपयोग रहित व भ्रष्ट अथवा अभ्रष्ट संस्कारसे सहित है वह आगम द्रव्य अंग है। भव्य, वर्तमान और त्यक्त ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यअंग है।

शंका—इनकी अंग संज्ञा कैसे सम्भव है?

समाधान—आधारमें आधेयका उपचार करनेसे इनकी अंग संज्ञा उचित है।

शंका—यदि ऐसा है तो उनके नोआगमपना घटित नहीं होता, क्योंकि, अंगके आगमसे कोई भेद नहीं है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उसका प्रयोजन स्वतः आगमभावसे अभिन्न, भ्रष्ट व अभ्रष्ट संस्कारवाले तथा आगम संज्ञासे युक्त जीव द्रव्यका प्रतिषेध करना है।

शंका—शरीरके नोआगमत्व और अंगश्रुतत्व भले ही हो, किन्तु भविष्य कालमें अंगश्रुतके पारगामी होनेवाले जीवके नोआगमपना सम्भव नहीं है, क्योंकि, वहां उपचारसे

१ प्रतिषु 'भट्ठाभट्ठ' इति पाठः।

२ अ-काप्रत्योः 'समज्झादं' इति पाठः।　　३ आप्रतौ 'सद्दो' इति पाठः।

सण्णिदजीवदव्वस्स तत्थुवलंभादो ? ण एस दोसो, एदस्स जीवस्स अंगसुदसण्णा चेव, अणागयअंगसुदपज्जाएण भविस्समाणत्तादो। उवयारेण आगमसण्णा णत्थि, वट्टमाणादीदाणागयआगमाधारधम्माणमभावादो। तव्वदिरित्तणोआगमअंगसुदमंगसुदसद्दरयणा तस्स हेदुभूददव्वाणि वा। अंगसुदपारओ उवजुत्तो आगमभावंगसुदं। केवलणाणी आगमंगसुदणिमित्तभूदो णोआगमंगसुदं। कधं पज्जायणए उवयारो जुज्जदे ? ण, णेगमणयावलंबणेण दोसाभावादो। एवं णिक्खेव-णयपरूवणा कदा।

दोसु अणुगमेसु कस्सेत्थ गहणं ? [पमाणस्स], ण प्पमेयस्स; तेणेत्थ अहियाराभावादो। पुव्वाणुपुव्वीए पढमं। पच्छाणुपुव्वीए बिदियं, णोअंगसुदं पेक्खिदूण अंगम्मि दुब्भाउवलंभादो। जत्थ-तत्थाणुपुव्वी एत्थ ण संभवदि, दुब्भावादो। अंगसुदमिदि गुणणामं,

---

आगम संज्ञा युक्त जीव द्रव्य पाया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, इस जीवकी अंगश्रुत संज्ञा ही है, कारण कि वह भविष्यमें होनेवाली अंगश्रुत पर्यायसे भविष्यमान है। किन्तु उसकी उपचारसे आगम संज्ञा नहीं है, क्योंकि वर्तमान, अतीत और अनागत कालमें आगमके आधारभूत धर्मोंका वहां अभाव है।

अंगश्रुतकी शब्दरचना अथवा उसके हेतुभूत द्रव्य तद्व्यतिरिक्त नोआगम-अंगश्रुत कहलाते हैं। अंगश्रुतका पारगामी उपयोग युक्त जीव आगमभावअंगश्रुत है। आगमअंगश्रुतके निमित्तभूत केवलज्ञानी नोआगमअंगश्रुत कहे जाते हैं।

शंका—पर्यायनयमें उपचार कैसे योग्य है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नैगमनयका अवलम्बन करनेसे कोई दोष नहीं आता।

इस प्रकार निक्षेप और नयकी प्ररूपणा की गई है।

दो अनुगमोंमें किसका यहां ग्रहण है ? [प्रमाणका ग्रहण है], प्रमेयका ग्रहण नहीं है; क्योंकि, उसका यहां अधिकार नहीं है। पूर्वानुपूर्वीसे प्रथम और पश्चादानुपूर्वीसे द्वितीय है, क्योंकि, नोअंगश्रुतकी अपेक्षा करके अंगमें द्वित्व पाया जाता है। यत्र-तत्रानुपूर्वी यहां सम्भव नहीं है, क्योंकि, दो ही भेद हैं। अंगश्रुत यह गुणनाम है, क्योंकि, जो तीनों कालकी

---

१ प्रतिषु 'आगमसण्णिगद' इति पाठः। २ प्रतिषु 'अणागम' इति पाठः।

अंगति गच्छति व्याप्नोति त्रिकालगोचराशेषद्रव्य-पर्यायानित्यंगशब्दनिष्पत्तेः । दव्वट्ठियणए अवलंबिदे पमाणमेक्कं चेव, अंगत्तं पडुच्च भेदाभावादो । ववहारणयं[1] पडुच्च भण्णमाणे चउसट्ठी अंगसुदपमाणं होदि । कुदो ? चउसट्ठिअक्खरेहि णिप्पण्णत्तादो । काणि चउसट्ठि-अक्खराइं ? वुच्चदे — कादि-हकारांता तेत्तीसवण्णा, विसज्जणिज्ज-जिब्भामूलीयाणुस्सारुवधुमाणिया चत्तारि, सरा सत्तावीस, हरस-दीह-पुदभेएण एक्केक्कम्हि सरे तिण्णं सराणमुवलंभादो । एदे सव्वे वि वण्णा चउसट्ठी हवंति[2] । अक्खरसंजोगं[3] पडुच्च एक्कलक्ख-चउरासीदिसहस्स-चदुसद-सत्तसट्ठि-कोडाकोडीयो चोदालीसलक्ख-तेहत्तरिसद-सत्तरिकोडीओ पंचाणउदिलक्ख-एक्कवंचाससहस्स-पण्णारसुत्तरछस्सदाणि च अंगसुदपमाणं होदि । १८४४६७४४०७३-७०९५५१६१५ । चउसट्ठि-अक्खराणमेग-दुसंजोगआदिभंगेहिंतो एत्तियमेत्तसंजोगक्खराण-मुप्पत्तिदंसणादो[4] । पदं पडुच्च बारहुत्तरसदकोडि-तेसीदिलक्ख-पंचुत्तरअट्ठवंचाससहस्समेत्तमंग-

---

समस्त द्रव्य व पर्यायोंको ' अंगति ' अर्थात् प्राप्त होता है या व्याप्त करता है वह अंग है, इस प्रकार अंग शब्द सिद्ध हुआ है । द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर प्रमाण एक ही है, क्योंकि, अंगसामान्यकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है । व्यवहारनयकी अपेक्षा कथन करनेपर अंगश्रुतका प्रमाण चौंसठ है, क्योंकि, वह चौंसठ अक्षरोंसे उत्पन्न हुआ है ।

शंका—चौंसठ अक्षर कौनसे हैं ?

समाधान—क को आदि लेकर हकार तक तेतीस वर्ण, विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, अनुस्वार और उपध्मानीय ये चार; सत्ताईस स्वर, क्योंकि ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतके भेदसे एक एक स्वरमें तीन स्वर पाये जाते हैं । ये सब ही वर्ण चौंसठ होते हैं ।

अक्षरसंयोगकी अपेक्षा करके अंगश्रुतका प्रमाण एक लाख चौरासी हजार चार सौ सड़सठ कोड़ाकोड़ी चवालीस लाख तिहत्तर सौ सत्तर करोड़, पंचानबै लाख इक्यावन हजार छह सौ पन्द्रह १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ होता है, क्योंकि, चौंसठ अक्षरोंके एक दो संयोगादि रूप भंगोंसे इतने मात्र संयोगाक्षरोंकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

पदकी अपेक्षा करके अंगश्रुतका प्रमाण एक सौ बारह करोड़ तरासी लाख अट्ठा-

---

१ प्रतिषु ' ववहारेणयं ' इति पाठः ।

२ जयध. १, पृ. ८९. तेत्तीस वेंजणाइं सत्तावीसा सरा तहा भणिया । चत्तारि य जोगवहा चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥ गो. जी. ३५१.

३ प्रतिषु ' सजोगं ' इति पाठः ।

४ जयध. १, पृ. ८९. चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा । रूऊणं च कुए पुण सुद-णाणस्सक्खरा होंति ॥ एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्ण-सत्त-तिय-सत्ता । सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥ गो. जी. ३५२-३५३. पणदस सोलस पण पण णव णभ सग तिण्णि चेव सगं । सुण्णं चउ-चउ-सग-छ-चउ-चउ-अट्ठेक्क सव्वसुदवण्णा ॥ अं. प. १, १४.

सुदं[1] । ११२८३५८००५ । कधमेदेसिं पदाणुमुप्पत्ती ? सोलससदचोत्तीसकोडि-तेसीदि-लक्ख-अट्ठहत्तरिसदअट्ठासीदिसंजोगअक्खरेहि मज्झिमपदमेगं होदि[2] । १६३४८३०७८८८ । एदेहि एगमज्झिमपदसंजोगक्खरेहि पुव्विल्लसव्वसंजोगक्खरेसु विहत्तेसु पुव्विल्लअंगपदाणं [उप्पत्ती] होदि[3] । एदेसिमंगाणं णमोक्कारो—

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्या एतच्छ्रुतं पंच पदं नमामि ॥ ६७ ॥

एकपद-वर्णनमस्कारोऽयम्—

षोडशशतं चतुस्त्रिंशत्कोटीनां त्र्यशीतिमेव लक्षाणि ।
शतसंख्याष्टासप्ततिमष्टाशीतिं च पदवर्णान् ॥ ६८ ॥

वन हजार पांच पद मात्र है ११२८३५८००५ ।

शंका—इन पदोंकी उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान—सोलह सौ चोंतीस करोड़ तेरासी लाख अठत्तर सौ अठासी संयोगाक्षरोंसे एक मध्यम पद होता है । १६३४८३०७८८८ । इन एक मध्यम पदके संयोगाक्षरोंका पूर्वोक्त सब संयोगाक्षरोंमें भाग देनेपर पूर्वोक्त अंगपदोंकी उत्पत्ति होती है । इन अंग-पदोंको नमस्कार—

एक सौ बारह करोड़ तेरासी लाख अट्ठावन हजार पांच पद प्रमाण इस श्रुतको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६७ ॥

यह एकपद-वर्ण-नमस्कार है—

सोलह सौ चोंतीस करोड़ तेरासी लाख अठत्तर सौ अठासी मात्र एक पदके वर्णोंको [नमस्कार करता हूं] ॥ ६८ ॥

---

१ बारुत्तरसयकोडी तेसीदी तह य होंति लक्खाणं । अट्ठावण्णसहस्सा पंचेव पदाणि अंगाणं ॥ गो. जी. ३४९. सयकोडी बारुत्तर तेसीदीलक्खमंगगंथाणं । अट्ठावण्णसहस्सा पयाणि पंचेव जिणदिट्ठं ॥ अं. प. १, १२.

२ कोट्यश्चैव चतुस्त्रिंशत् तच्छतान्यपि षोडश । त्र्यशीतिश्च पुनर्लक्षाः शतान्यष्टौ च सप्ततिः ॥ अष्टाशीतिश्च वर्णाः स्युर्मध्यमे तु पदे स्थिताः । पूर्वांगपदसंख्या स्यान्मध्यमेन पदेन सा ॥ ह. पु. १०, २४–२५. सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव । सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥ गो. जी. ३३५. सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं जत्थ । सत्तसहस्सट्ठसया-ऽडसीदऽपुणरुत्तपदवण्णा ॥ अं. प. १, ५.

३ मज्झिमपदक्खरवहिदवण्णा ते अंग-पुव्वगपदाणि । गो. जी. ३५४.

अवसेसक्खरपमाणमेत्तियं होदि[1] । ८०१०८१७५ । पुणो एदेहि बत्तीसक्खरेहि भागे हिदे चोद्दसपइण्णयाणं पमाणपदपमाणमेत्तियं होदि । २५०३३८० । एदं खंडपदम् । $\frac{15}{32}$[2] । अत्थपदेहि गणिज्जमाणे संखेज्जमंगसुदं होदि । किमत्थपदम् ? जेत्तिएहि अक्खरेहि अत्थोवलद्धी होदि तमत्थपदं[3] । एत्थुवउज्जंती गाहा—

तिविहं तु पदं भणिदं अत्थपद-पमाण-मज्झिमपदं ति ।
मज्झिमपदेण भणिदा पुव्वंगाणं पदविभागा[4] ॥ ६९ ॥

संघाद-पडिवत्ति-अणिओगद्दारेहि वि संखेज्जमंगसुदं । अधवा अणंत, पमेयमेत्तंगसुद-

---

शेष अक्षरोंका प्रमाण इतना होता है ८०१०८१७५ । फिर इनमें बत्तीस अक्षरोंका भाग देनेपर चौदह प्रकीर्णकोंके प्रमाणपदोंका प्रमाण इतना होता है २५०३३८०, यह खण्डपद है $\frac{15}{32}$ । अर्थात् उक्त पदोंका प्रमाण २५०३३८० $\frac{15}{32}$ है ।

अर्थपदोंसे गणना करनेपर अंगश्रुतका प्रमाण संख्यात होता है ।

शंका—अर्थपद किसे कहते हैं ?

समाधान—जितने अक्षरोंसे अर्थकी उपलब्धि होती है उनका नाम अर्थपद है ।

यहां उपयोगी गाथा—

अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद, इस प्रकार पद तीन प्रकार कहा गया है । इनमें मध्यम पदसे पूर्व और अंगोंके पदविभाग कहे गये हैं ॥ ६९ ॥

संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारसे भी अंगश्रुत संख्यात है । अथवा प्रमेय मात्र

---

१ अडकोडि-एयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च । पण्णत्तरि वण्णाओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥ गो. जी ३५०. पण्णत्तरि वण्णाणं सयं सहस्साणि होदि अट्ठेव । इगिलक्खमट्ठकोडी पइण्णयाणं पमाणं हु ॥ अं. प. १, १३. जयध. १, पृ. ९३.

२ जयध. १, पृ, ९३.

३ जत्तिएहि अक्खरेहि अत्थोवलद्धी होदि तेसिमक्खराणं कलावो अत्थपदं णाम । जयध. १ पृ. ९१. एकं द्वि-त्रि-चतुः-पंच-षट्-सप्ताक्षरमर्थवत् । पदमाद्यं ... ॥ ह. पु. १०, २३. जाणदि अत्थं सत्थं अक्खरवृन्देण जेत्तिएणेव । अत्थपयं तं जाणइ घडमाणय सिग्घमिच्चादि ॥ अं. प. १, ३.

४ तिविहं पयं जिणेहिमत्थपदं खलु पमाणपदमुत्तं । तदियं मज्झपयं हु तत्थत्थपयं परूवेमो ॥ अं. प. १, २. जयध. १, पृ. ९२. पदमर्थपदं ज्ञेयं प्रमाणपदमित्यपि । मध्यमं पदमित्येवं त्रिविधं तु पदं स्थितम् ॥ ह. पु. १०–२२.

वियप्पुवलंभादो। वत्तव्वं स-परसमया[1] अत्थाहियारो बारसविहो। तद्यथा— आचारः सूत्रकृतं स्थानं समवायो व्याख्याप्रज्ञप्तिः ज्ञातृधर्मकथा उपासकाध्ययनं अन्तकृद्दशा अनुत्तरोपपादिकदशा प्रश्नव्याकरणं विपाकसूत्रं दृष्टिवाद इति। तत्र आचारे अष्टादशपदसहस्रे। १८००० । चर्याविधानं शुद्ध्यष्टकं पंचसमिति-त्रिगुप्तिविकल्पं कथ्यते[2]—

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सए।
कधं भुंजेज्ज भासेज्ज कधं पावं ण बज्झदि ॥ ७० ॥

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सए।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झदि[3] ॥ ७१ ॥

सूत्रकृते षट्त्रिंशत्पदसहस्रे। ३६००० । ज्ञानविनय-प्रज्ञापना-कल्प्याकल्प्य-छेदोप-

---

अंगश्रुतके विकल्पोंके पाये जानेसे वह अनन्त है। वक्तव्य स्वसमय और परसमय है। अर्थाधिकार बारह प्रकार है। वह इस प्रकारसे— आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग और दृष्टिवादांग। उनमेंसे आचारांगमें अठारह हजार पद हैं १८०००। इसमें चर्याविधि, आठ शुद्धियां, पांच समितियों और तीन गुप्तियोंके भेदोंकी प्ररूपणा की जाती है।

किस प्रकार चलना चाहिये या आचरण करना चाहिये, किस प्रकार ठहरना चाहिये, कैसे बैठना चाहिये, किस प्रकार सोना चाहिये, कैसे भोजन करना चाहिये और किस प्रकार भाषण करना चाहिये, जिससे कि पापका बन्ध न हो ? ॥ ७० ॥

यत्नपूर्वक चलना चाहिये, यत्नपूर्वक ठहरना चाहिये, यत्नपूर्वक बैठना चाहिये, यत्नपूर्वक सोना चाहिये, यत्नपूर्वक भोजन करना चाहिये और यत्नपूर्वक भाषण करना चाहिये, इस प्रकार पापका बन्ध नहीं होता ॥ ७१ ॥

छत्तीस हजार ३६००० पद प्रमाण सूत्रकृतांगमें ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्या-

---

१ प्रतिषु 'स-परसमत्थ' इति पाठः।

२ ष. खं. पु. १, पृ. ९९. आचारे चर्याविधानं शुद्ध्यष्टक-पंचसमिति-गुप्तिविकल्पं कथ्यते। त. रा. १, २०, १२, तत्थ आचारंगं 'जदं चरे जदं चिट्ठे ...' इच्चाइयं माहूणमायारं वण्णेदि। जयध. १, पृ. १२२. आचरन्ति समन्ततोऽनुतिष्ठन्ति मोक्षमार्गमाराधयन्ति अस्मिन्ननेनेति वा आचारः। तस्मिन् आचारांगे 'जदं चरे जदं चिट्ठे ...' इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादितमुनिजनसमस्ताचरणं वर्ण्यते। गो. जी. जी. प्र. ३५६. आयारं पढमंगं तत्थ-ट्ठारससहस्सपयमेत्तं। यत्थायरंति भव्वा मोक्खपहं तेण तं णाम। अं. प. १, १५.

३ कहं चरे कहं तिट्ठे कहमासे कहं सये। कहं भासे कहं भुंजे कहं पावं ण बंधइ ॥ जदं चरे जदं तिट्ठे जदमासे जदं सये। जदं भासे जदं भुंजे एवं पावं ण बंधइ ॥ अं. प. १, १६.

स्थापना-व्यवहारधर्मक्रियाः दिगन्तरशुद्धया प्ररूप्यन्ते[1]। स्थाने द्वाचत्वारिंशत्पदसहस्रे ४२०००। एकाद्येकोत्तरक्रमेण जीवादिपदार्थानां दश स्थानानि प्ररूप्यन्ते[2]। तस्योदाहरणगाथा —

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो त्तिलक्खणो भणिदो।
चदुसंकमणाजुत्तो पंचग्गगुणप्पहाणो य ॥ ७२ ॥

छक्कपक्कमजुत्तो उवजुत्तो सत्तभंगिसब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दसठाणिओ भणिदो[3] ॥ ७३ ॥

कल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहारधर्मक्रियाओंकी दिगन्तरशुद्धिसे प्ररूपणा की जाती है। ब्यालीस हजार ४२००० पद प्रमाण स्थानांगमें एकको आदि लेकर एक अधिक क्रमसे जीवादि पदार्थोंके दस स्थानोंकी प्ररूपणा की जाती है। उसके उदाहरणकी गाथायें —

वह जीव महात्मा अविनश्वर चैतन्य गुणसे अथवा सर्व जीव साधारण उपयोग रूप लक्षणसे युक्त होनेके कारण एक है। वह ज्ञान और दर्शन, संसारी और मुक्त, अथवा भव्य और अभव्य रूप दो भेदोंसे दो प्रकार है। ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कर्मफलचेतनाकी अपेक्षा; उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यकी अपेक्षा; ज्ञान, दर्शन व चारित्रकी अपेक्षा; अथवा द्रव्य, गुण व पर्यायकी अपेक्षा तीन प्रकार कहा गया है। नारकादि चार गतियोंमें परिभ्रमण करनेके कारण चार संक्रमणोंसे युक्त है। औपशमिकादि पांच भावोंसे युक्त होनेके कारण पांच भेद रूप है। मरण समयमें पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व

---

१ ष. खं. पु. १, पृ. ९९. सूदयडं बिदियंगं छत्तीससहस्सपयपमाणं खु। सूचयदि सुत्तत्थं संखेवा तस्स करणं तं ॥ णाणविणयादिविग्घादीदाज्झयणादिसव्वसक्किरिया। पण्णायणा (य) सुकथा कप्पं ववहारविसकिरिया ॥ छेदोवट्ठावणं जइण समयं यं परूवदि। परस्स समयं जत्थ किरियाभेया अणयसे ॥ अं. प. १, २०-१२. सूत्रकृते ज्ञानविनयप्रज्ञापना-कल्प्याकल्प्यच्छेदोपस्थापना-व्यवहारधर्मक्रियाः प्ररूप्यन्ते। त. रा. १, २०, १२. सूदयदं णाम अंगं ससमयं परसमयं थीपरिणामं क्लैव्यास्फुटत्व-मदनावेश-विभ्रमाऽऽस्फालनसुख-पुंस्कामितादिस्त्रीलक्षणं च प्ररूपयति। जयध. १, पृ. १२२, सूत्रयति संक्षेपेण अर्थं सूचयति इति सूत्रं परमागमः। तदर्थं कृतं करणं ज्ञानविनयादिनिर्विघ्नाध्ययनादिक्रिया, अथवा प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्यम्, छेदोपस्थापना व्यवहारधर्मक्रिया स्वसमय-परसमयस्वरूपं च: सूत्रैः कृतं करणं क्रियाविशेषो यस्मिन् वर्ण्यते तत् सूत्रकृतं नाम द्वितीयमंगम्। गो. जी. जी. प्र. ३५६..

२ ष. खं. पु. १, पृ. १००. स्थाने अनेकाश्रयाणामर्थानां निर्णयः क्रियते। त. रा. १, २०, १२. ट्ठाणं णाम जीव-पुग्गलादीणमेगादिएगुत्तरकमेण ठाणाणि वण्णेदि 'एक्को चेव महप्पा ... ...' एवमाइसरूवेण। जयध. १, पृ. १२३. तिष्ठन्ति अस्मिन् एकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थानम्। ...एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यन्ते इति स्थानं नाम तृतीयमंगं। गो. जी. जी. प्र. ३५६. बादालसहस्सपदं ठाणंगं ठाणभेयसंजुत्तं। चिट्ठंति ठाणभेया एयादी जत्थ जिणदिट्ठा ॥ अं- प. १, २३.

३ पंचा, ७१-७२.

समवाए सलक्षचतुःषष्टिपदसहस्रे । १६४००० । सर्वपदार्थानां समवायश्चिन्त्यते[1] । स चतुर्विधः द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावविकल्पैः । तत्र धर्माधर्मास्तिकाय-लोकाकाशैकजीवानां तुल्यासंख्येयप्रदेशत्वादेकेन प्रमाणेन द्रव्याणां समवायनात् द्रव्यसमवायः । जम्बूद्वीप--सर्वार्थसिद्धय-प्रतिष्ठाननरक-नन्दीश्वरैकवापीनां तुल्ययोजनशतसहस्रविष्कम्भप्रमाणेन क्षेत्रसमवायनात्क्षेत्रसमवायः । सिद्धि-मनुष्यक्षेत्रर्तुविमान-सीमन्तनरकाणां तुल्ययोजनपंचचत्वारिंशच्छतसहस्रविष्कम्भ-प्रमाणेन क्षेत्रसमवायः । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योस्तुल्यदशसागरोपमकोटाकोटिप्रामाण्यात् कालसमवायनात्कालसमवायः । क्षायिकसम्यक्त्व-केवलज्ञान-दर्शन-यथाख्यातचारित्राणं यो भावस्तदनु-

---

व अधः, इन छह दिशाओंमें गमन करने रूप छह अपक्रमोंसे सहित होनेके कारण छह प्रकार है । चूंकि सात भंगोंसे उसका सद्भाव सिद्ध है, अतः वह सात प्रकार है । ज्ञानावरणादिक आठ कर्मोंके आस्रवसे युक्त होने, अथवा आठ कर्मों या सम्यक्त्वादि आठ गुणोंका आश्रय होनेसे आठ प्रकार है । नौ पदार्थों रूप परिणमण करनेकी अपेक्षा नौ प्रकार है । पृथिवी, जल, तेज, वायु, प्रत्येक व साधारण वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय रूप दस स्थानोंमें प्राप्त होनेसे दस प्रकार कहा गया है ॥ ७२-७३ ॥

एक लाख चौंसठ हजार १६४००० पद प्रमाण समवायांगमें सब पदार्थोंके समवायका अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र व कालादि अपेक्षा समानताका विचार किया जाता है । वह समवाय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे चार प्रकार है । उनमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव, इन द्रव्योंके समान रूपसे असंख्यात प्रदेश होनेसे एक प्रमाणसे द्रव्योंका समवाय होनेके कारण द्रव्यसमवाय कहा जाता है । जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि, अप्रतिष्ठान नरक और नन्दीश्वरद्वीपस्थ एक वापी, इनके समान रूपसे एक लाख योजन विस्तारप्रमाणकी अपेक्षा क्षेत्रसमवाय होनेसे क्षेत्रसमवाय है । सिद्धिक्षेत्र, मनुष्यक्षेत्र, ऋतुविमान और सीमन्त नरक, इनके समान रूपसे पैंतालीस लाख योजन विस्तारप्रमाणसे क्षेत्रसमवाय है । उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालोंके समान दश सागरोपम कोड़ाकोड़ि प्रमाणकी अपेक्षा कालसमवाय होनेसे कालसमवाय है । क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथाख्यातचारित्र, इनका

---

१ ष. खं. पु. १, पृ. १०१. समवाये सर्वपदार्थानां समवायश्चिन्त्यते । त. रा. १, २०, १२. समवाओ णाम अंगं दव्व-खेत्त-काल-भावाणं समवायं वण्णेदि । जयध. १, पृ. १२४. सं संग्रहेण सादृश्यसामान्येन अवेयन्ते ज्ञायन्ते जीवादिपदार्था द्रव्य-क्षेत्र-कालभावानाश्रित्य अस्मिन्निति समवायांगम् । गो. जी. जी. प्र. ३५६. समवायंगं अडकदिसहस्सिगिलक्खमाणपयमेत्तं । संगहणयेण दव्वं खेत्तं कालं पडुच्च भवं ॥ दीवादी अवियंति अत्था णज्जंति सरित्थसामण्णा । अं. प. १, २९-३०.

भवस्य तुल्यानन्तप्रमाणत्वाद्भावसमन्वयनाद्भावसमवायः। व्याख्याप्रज्ञप्तौ स-द्वि-लक्षाष्टाविंशति-पदसहस्रायां | २२८००० | षष्टिर्व्याकरणसहस्राणि किमस्ति जीवो नास्ति जीवः क्वोत्पद्यते कुत आगच्छतीत्यादयो निरूप्यन्ते[1]। ज्ञातृधर्मकथायां सपंचलक्ष-षट्पंचाशत्सहस्रपदायां | ५५६००० | सूत्रपौरुषीषु भगवतस्तीर्थकरस्य ताल्वोष्ठपुटविचलनमन्तरेण सकलभाषास्वरूपदिव्यध्वनिधर्म-कथनविधानं जातसंशयस्य गणधरदेवस्य संशयच्छेदनविधानमाख्यानोपाख्यानानां च बहु-प्रकाराणां स्वरूपं कथ्यते[3]। उपासकाध्ययने सैकादशलक्ष-सप्ततिपदसहस्रे | ११७०००० | एका-

....

जो भाव है उसके अनुभयके तुल्य अनन्त प्रमाण होनेके कारण भावसमवाय होनेसे भाव-समवाय है।

दो लाख अट्ठाईस हजार पद प्रमाण व्याख्याप्रज्ञप्तिमें क्या जीव है, क्या जीव नहीं है, जीव कहां उत्पन्न होता है और कहांसे आता है, इत्यादिक साठ हजार प्रश्नोंके उत्तरोंका निरूपण किया जाता है। पांच लाख छप्पन हजार पद युक्त ज्ञातृधर्म-कथांगमें सूत्रपौरुषी अर्थात् सिद्धान्तोक्त विधिसे स्वाध्यायके प्रस्थापनमें भगवान् तीर्थ-करकी तालु व ओष्ठपुटके हलन-चलनके विना प्रवर्तमान समस्त भाषाओं स्वरूप दिव्य-ध्वनि द्वारा दी गई धर्मदेशनाकी विधिका, संशय युक्त गणधर देवके संशयको नष्ट करनेकी विधिका, तथा बहुत प्रकार कथा व उपकथाओंके स्वरूपका कथन किया जाता है। ग्यारह लाख सत्तर हजार पद प्रमाण उपासकाध्ययनांगमें ग्यारह प्रकार श्रावकधर्मका

....

१ त. रा. १, २०, १२. (शब्दशः सदृशोऽयं प्रबन्धः प्रायशोऽनेन । केवलमत्र सिद्धिक्षेत्रादीनामुदाहरणं नोपलभ्यते।). ष. खं. पु. १, पृ. १०१. जयध. १, पृ. १२४. ह. पु. १०, ३१-३३. गो. जी. जी. प्र. ३५६. अं. प. १, ३०-३५.

२ ष. खं. पु. १, पृ. १०१. व्याख्याप्रज्ञप्तौ षष्टिव्याकरणसहस्राणि ' किमस्ति जीवः, नास्ति ? ' इत्येवमादीनि निरूप्यन्ते । त. रा. १, २०, १२. वियाहपण्णत्ती नाम अंगं सट्ठिवायरणसहस्साणि छण्णउदिसहस्स-छिण्णछेयणजणि (ज्जणी) यसुहमसुहं च वण्णेदि । जयध. १, पृ. १२५. विशेषः— बहुप्रकारैः, आख्यातं ' किमस्ति जीवः, किं नास्ति जीवः, किमेको जीवः, किमनेको जीवः, किं नित्यो जीवः, किमनित्यो जीवः, किं वक्तव्यो जीवः, किमवक्तव्यो जीवः ? ' इत्यादीनि षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्थकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्न-वाक्यानि प्रज्ञाप्यन्ते कथ्यन्ते यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिर्नाम पंचमममंगम् । गो. जी. जी. प्र. ३५६. अं. प. १, ३६-३८.

३ ष. खं. पु. १, पृ. १०१. ज्ञातृधर्मकथायामाख्यानोपाख्यानानां बहुप्रकाराणां कथनम् । त. रा. १, २०, १२, णाहधम्मकहा णाम अंगं तित्थयराणं धम्मकहाणं सरूवं वण्णेदि। केण कहिंति ते? दिव्वज्झुणिणा। केरिसा सा ? सव्वभासासरूवा अक्खराणक्खरप्पिया अणंतत्थगब्भबीजपदघडियसरीरा तिसंज्झविसय-छघडियासु णिरंतरं पयट्टमाणिया इयरकालेसु संसय-विवज्जासाणज्झवसायभावगयगणहरदेवं पडि वट्टमाणसहावा संकर-वदि-गराभावादो विसदसरूवा एऊणवीसधम्मकहाकहणसहावा । जयध. १, पृ. १२५. अं. प. १, ३९-४४.

दशविधश्रावकधर्मो निरूप्यते[1] । अत्रोपयोगी गाथा—

> दंसण-वद-सामाइय-पोसह-सच्चित्त-रादिभत्ते य ।
> बम्हारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ-देसविरदी य[2] ॥ ७४ ॥

संसारस्य अन्तो कृतो यैस्तेऽन्तकृतः नमि-मतंग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलीक-किष्कंविल-पालंबाष्टपुत्रा[3] इत्येते दश वर्द्धमानतीर्थंकरतीर्थे, एवं वृषभादीनां त्रयोविंशतितीर्थेषु अन्येऽन्ये, एवं दश-दशानगाराः दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य कृत्स्नकर्मक्षयादन्तकृतः दश अस्यां वर्ण्यन्त इति अन्तकृद्दशा[5] । अस्यां सत्रयोविंशतिलक्षाष्टाविंशतिपदसहस्राणि

निरूपण किया जाता है । यहां उपयोगी गाथा—

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तविरति, रात्रिभक्तविरति, ब्रह्मचर्य, आरम्भविरति, परिग्रहविरति, अनुमतिविरति और उद्दिष्टविरति, यह ग्यारह प्रकारका देशचारित्र है ॥ ७४ ॥

जिन्होंने संसारका अन्त कर दिया है वे अन्तकृत् कहे जाते हैं । नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कंविल, पालम्ब और अष्टपुत्र, ये दस वर्धमान तीर्थंकरके तीर्थमें अन्तकृत् हुए हैं । इसी प्रकार वृषभादिक तेईस तीर्थंकरोंके तीर्थमें भिन्न भिन्न दश अन्तकृत् हुए हैं । इस प्रकार दस दस अनगार घोर उपसर्गोंको जीतकर समस्त कर्मोंके क्षयसे अन्तकृत् होते हैं । चूंकि इस अंगमें उन दस दसका वर्णन किया जाता है अतएव वह अन्तकृद्दशांग कहलाता है । इस अंगमें तेईस लाख अट्ठाईस

१ ष. खं. पु. १, पृ. १०२. उपासकाध्ययनं श्रावकधर्मलक्षणम् । त. रा. १, २०, १२. उवासयज्झयणं णाम अंगं दंसण-वय-सामाइय-पोसहोववास-सचित्त-रायिभत्त-बंभारंभ-परिग्गहाणुमणुद्दिट्ठणामाणमेक्कारसण्हमुवासयाणं धम्ममेक्कारसविहं वण्णेदि । जयध. १, पृ. १२९. गो. जी. जी. प्र. ३५७. अं. प. १, ४५-४५.

२ चारित्रप्राभृत २२. गो. जी. ४७६. अं. प. १, ४६.

३ प्रतिषु ' पालम्बष्टपुत्रा ' इति पाठः ।

४ प्रतिषु ' तयोविंशति ' इति पाठः ।

५ त. रा. १, २०, १२. तत्र ' यमलीक-वलीक-किष्कंविल-पालम्बाष्टपुत्राः ' इत्येतस्य स्थाने ' यम-वाल्मीक-वलीक-निष्कंबल-पालम्बष्टपुत्राः ': 'एवं' इत्येतस्य स्थाने 'च' इति पाठभेदः । ष. खं. पु. १, पृ. १०२. अंतयडदसा णाम अंगं चउव्विहोवसग्गे दारुणे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण णिव्वाणं गदे सुदंसणादिदस-दस-साहू तित्थं पडि वण्णेदि । जयध. १, पृ. १३०. प्रतितीर्थं दश दश मुनीश्वरा तीव्रं चतुर्विधोपसर्गं सोढ्वा इन्द्रादिभिर्विरचितां पूजादिप्रातिहार्यसम्भावनां लब्ध्वा कर्मक्षयान्तरं संसारस्यान्तं अवसानं कृतवन्तोऽन्तकृतः । श्रीवर्धमानतीर्थे नमि-मतंग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलीक-किष्कंबिल-पालम्बाष्ट-पुत्रा इति दश । एवं वृषभादितीर्थेष्वपि दश-दशान्तकृतो वर्ण्यन्ते यस्मिंस्तदन्तकृद्दशनामाष्टममंगम् । गो. जी. जी. प्र. ३५७. ... ...मायंग रामपुत्तो सोमिल जमलीक णाम किक्कंबी । सुदंसणो बलीको य णमी अलंबद्ध पुत्तलया ॥ अं. प. १, ४८-५१.

२३२८००० । उपपादो जन्म प्रयोजनमेषां त इमे औपपादिकाः, विजय-वैजयन्त-जयन्ता-पराजित-सर्वार्थसिद्धयाख्यानि पंचानुत्तराणि, अनुत्तरेषु[1] औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः । ऋषिदास-धन्य-सुनक्षत्र-कार्तिक-नन्द-नन्दन-शालिभद्राभय-वारिषेण-चिलातपुत्रा इति एते दश वर्द्धमानतीर्थंकरतीर्थे । एवमृषभादीनां त्रयोविंशतितीर्थेषु अन्येऽन्ये । एवं दश-दशानगाराः दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य विजयाद्यनुत्तरेषूत्पन्ना इति । एवमनुत्तरौपपादिकाः दश अस्यां वर्ण्यन्त इति अनुत्तरौपपादिकदशा[2] । अस्यां सद्वानवतिलक्ष-चतुश्चत्वारिंशत्पदसहस्राणि ९२४४००० । प्रश्नानां व्याकरणं प्रश्नव्याकरणम्, तस्मिन् सत्रिनवतिलक्ष-षोडशपदसहस्रे ९३१६००० प्रश्ना-न्नष्ट-मुष्टि-चिन्ता-लाभालाभ-सुख-दुख-जीवित-मरण-जय-पराजय-नाम-द्रव्यायुस्संख्यानानि लौकिक-वैदिकानामर्थानां निर्णयश्च प्ररूप्यते, आक्षेपणी-विक्षेपणी-संवेदनी-निर्वेदन्यश्चेति

....

हजार पद हैं २३२८००० ।

उपपाद अर्थात् जन्म ही जिनका प्रयोजन है वे औपपादिक कहलाते हैं । विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि, ये पांच अनुत्तर हैं । अनुत्तरोंमें उत्पन्न होनेवाले अनुत्तरौपपादिक कहे जाते हैं । ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण और चिलातपुत्र, ये दस वर्धमान तीर्थंकरके तीर्थमें अनुत्तरौप-पादिक हुए हैं । इसी प्रकार ऋषभादिक तेईस तीर्थंकरोंके तीर्थमें भिन्न भिन्न दस अनुत्तरौपपादिक हुए हैं । इस प्रकार दस दस अनगार भयानक उपसर्गोंको जीतकर विजयादिक अनुत्तरोंमें उत्पन्न हुए हैं । चूंकि इस प्रकार इसमें दस दस अनुत्तरौपपादिक अनगारोंका वर्णन किया जाता है अतः वह अनुत्तरौपपादिकदशांग कहलाता है । इसमें बानबै लाख चवालीस हजार पद हैं ९२४४००० ।

प्रश्नोंका व्याकरण अर्थात् उत्तर जिसमें हो वह प्रश्नव्याकरण है । तेरानबै लाख सोलह हजार ९३१६००० पद युक्त उसमें प्रश्नके आश्रयसे नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु व संख्याकी तथा लौकिक एवं वैदिक अर्थोंके निर्णयकी प्ररूपणा की जाती है । इसके अतिरिक्त आक्षेपणी, विक्षेपणी,

....

१ प्रतिषु 'अनुत्तरे' इति पाठः ।

२ त. रा. १, २०, १२. (शब्दशः सदृशोऽयं प्रबन्धः प्रायशस्तत्र) । ष. खं. पु. १, पृ. १०३. अणुत्तरोववादियदसा णाम अंगं चउव्विहोवसग्गे दारुणे सहियूण चउवीसण्हं तित्थयराणं तित्थेसु अणुत्तरविमाणं गदे दस दस मुणिवसहे वण्णेदि । जयध. १, पृ. १३०. गो. जी. जी. प्र. ३५७. अं. प. १, ५२-५५.

चतस्रः कथाः एताश्च निरूप्यन्ते[1]। विपाकसूत्रे चतुरशीतिशतपदलक्षे १८४०००००० सुकृत-दुःकृतविपाकश्चिन्त्यते[2]। एकादशांगानामियत्पदैं[3]समासः ४१५०२०००। द्वादशममंगं दृष्टिप्रवाद इति। कौत्कल-काणविद्धि-कौशिक-हरिश्मश्रु-मांथपिक-रोमश-हारित-मुण्डाश्वलायनादीनां क्रिया-वाददृष्टीनामशीतिशतम्, मरीचिकुमार-कपिलोलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाद्वलि-माठर-मौद्गल्याय-नादीनामक्रियावाददृष्टीनां चतुरशीतिः, शाकल्य-बल्कलि-कुथुमि-सात्यमुग्रि-नारायण-कण्व-माध्यंदिनं[4]-मोद-पिप्पलाद-बादरायण-स्विष्टिकृत्-ऐतिकायन-वसु-जैमिन्यादीनामज्ञानिकदृष्टीनां सप्त-षष्टिः, वशिष्ठ-पाराशर-जतुकर्ण-वाल्मीकि-रोमहर्षणि-सत्यदत्त-व्यासैलापुत्रौपमन्यवैन्द्रदत्ताय-स्थूणादीनां वैनयिकदृष्टीनां द्वात्रिंशत्, एषां दृष्टिशतानां त्रयाणां त्रिशष्ठ्युत्तराणां प्ररूपणं

....

संवेदनी और निर्वेदनी, इन चार कथाओंकी भी प्ररूपणा की जाती है।

एक सौ चौरासी लाख १८४००००० पद प्रमाण विपाकसूत्रमें पुण्य और पापके विपाकका विचार किया जाता है। ग्यारह अंगोंके पदोंका जोड़ इतना है ४१५०२०००।

बारहवां अंग दृष्टिप्रवाद है। कौत्कल, काणविद्धि, कौशिक, हरिश्मश्रु, मांथपिक, रोमश, हारित, मुण्ड और अश्वलायनादिक क्रियावाददृष्टियोंके एक सौ अस्सी; मरीचि-कुमार, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाद्वलि, माठर और मौद्गल्यायन आदि अक्रियावाददृष्टियोंके चौरासी; शाकल्य, बल्कलि, कुथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कण्व, माध्यंदिन, मोद, पिप्पलाद, बादरायण, स्विष्टिकृत्, ऐतिकायन, वसु और जैमिनी आदि अज्ञानिकदृष्टियोंके सड़सठ; वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, रोमहर्षणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, ऐन्द्रदत्त और अयस्थूण आदि वैनयिकदृष्टियोंके बत्तीस; इन तीन सौ तिरेसठ मतोंकी प्ररूपणा और उनका निग्रह दृष्टिवाद अंगमें किया जाता है।

....

१ ष. खं. पु. १, पृ. १०४. आक्षेप-विक्षेपैर्हेतु-नयाश्रितानां प्रश्नानां व्याकरणं प्रश्नव्याकरणम्, तस्मिं-ल्लौकिक-वैदिकानामर्थानां निर्णयाः। त. रा. १, २०, १२. पण्हवायरणं णाम अंगं अक्खेवणी विक्खेवणी संवेयणी-णिव्वेयणीणामाओ चउव्विहं कहाओ पण्हादो णट्ठ मुट्ठि-चिंता लाहालाह-सुख-दुख-जीविय मरणाणि च वण्णेदि। जयध. १, पृ. १३१. गो. जी. जी. प्र. ३५७. अं. प. १, ५६–६७.

२ ष. खं. पु. १, पृ. १०७. विपाकसूत्रे सुकृत-दुष्कृतानां विपाकश्चिन्त्यते। त. रा. १, २०, १२. विवायसुत्तं णाम अंगं दव्व-क्खेत्त-काल-भावे अस्सिदूण सुहासुहकम्माणं विवायं वण्णेदि। जयध. १, पृ. १३२. चुलसीदिलक्खकोडी पयाणि णिच्चं विवागसुत्ते य। कम्माणं बहुसत्ती सुहासुहाणं हु मज्झिमया॥ तिव्व-मंदाणुभावा दव्वे खेत्तेसु काल भावे य। उदयो विवायरूवो भणिज्जइ जत्थ वित्थारा॥ अं. प. १, ६८–६९.

३ अप्रतौ 'एकादशागनामियात्पद-', आ-काप्रत्योः 'एकादशांगानामियात्पद-' इति पाठः।

४ प्रतिषु 'कण्ठ-माध्यंदिन' इति पाठः।

निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते[1]। एवमंगश्रुतस्य द्वादश अधिकाराः। अत्र दृष्टिवादे प्रयोजनम्, स्वकुक्षिस्थितमहाकर्मप्रकृतिप्राभृतत्वात्[2]।

संपहि दिट्ठिवादस्स अवयारो वुच्चदे — णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावभेएण चउव्विहो ट्ठिदिवादो। तत्थ आदिल्ला तिण्णि वि णिक्खेवा दव्वट्ठियणयसंभवा, अंतिमो पज्जवट्ठियणयसंभवो। एदेसु णामणिक्खेवो दिट्ठिवादसद्दो बज्झत्थणिरवेक्खो अप्पाणम्हि वट्टमाणो। सो एसो त्ति एयत्तणेण संकप्पिओ अत्थो ट्ठवणादिट्ठिवादो। दव्वदिट्ठिवादो आगम-णोआगमदिट्ठिवादभेएण दुविहो। तत्थ दिट्ठिवादजाणओ अणुवजुत्तो भट्ठाभट्ठसंसकारो पुरिसो आगमदव्वदिट्ठिवादो। णोआगमदव्वदिट्ठिवादो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण तिविहो। आदिमं सुगमं, बहुसो उत्तत्थादो। णोआगमदिट्ठिवादसरूवेण परिणमंतओ जीवो णोआगमभवियदिट्ठिवादो। दिट्ठिवादसुदहेदुभूददव्वाणि आहारादीणि तव्वदिरित्तणोआगमदव्वदिट्ठिवादो।

इस प्रकार अंगश्रुतके बारह अधिकार हैं। यहां दृष्टिवादसे प्रयोजन है, क्योंकि, उसकी कुक्षिमें महाकर्मप्रकृतिप्राभृत स्थित है।

अब दृष्टिवादका अवतार कहते हैं — नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे दृष्टिवाद चार प्रकार है। इनमें आदिके तीनों निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके निमित्तसे होनेवाले हैं, और अन्तिम पर्यायार्थिक नयके निमित्तसे होनेवाला है। इनमें बाह्यार्थसे निरपेक्ष अपने आपमें प्रवर्तमान दृष्टिवाद शब्द नामदृष्टिवाद है। 'वह यह है' इस प्रकार एक रूपसे संकल्पित पदार्थ स्थापनादृष्टिवाद है। आगमदृष्टिवाद और नोआगमदृष्टिवादके भेदसे द्रव्यदृष्टिवाद दो प्रकार है। उनमें दृष्टिवादका जानकार उपयोग रहित भ्रष्ट व अभ्रष्ट संस्कारवाला पुरुष आगमद्रव्यदृष्टिवाद है। नोआगमद्रव्यदृष्टिवाद ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है। ज्ञायकशरीर सुगम है, क्योंकि, बहुत वार उसका अर्थ कहा जा चुका है। नोआगमदृष्टिवाद स्वरूपसे परिणमन करनेवाला जीव नोआगमभाविदृष्टिवाद है। दृष्टिवाद श्रुतके हेतुभूत द्रव्य आहारादिक तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यदृष्टिवाद है।

१ ष. खं. पु. १, पृ. १०७. द्वादशमंगं दृष्टिवाद इति। कौत्कल-कांडेविद्धि-कौशिक-हरिश्मश्रु-मांछपिक-रोमस-हारीत-मुंडाश्वलायनादीनां क्रियावाददृष्टीनामशीतिशतम्, मरीचकुमार कपिलोलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाद्वलि-माठर-मौद्गल्यायनादीनामक्रियावाददृष्टीनां चतुरशीतिः, शकल्य-वाल्कल-कुथुमि-सात्यमुद्रि-नारायण-कण्ठ-माध्यंदिन-मौद-पैप्पलाद-बादरायणाम्बष्ठीकृदैरिकायन-वसु-जैमिन्यादीनामज्ञानकुदृष्टीनां सप्तषष्ठिः, वशिष्ठ-पाराशर जतुकीर्ण-वाल्मीकि-रोमर्षि-सत्यदत्त-व्यासैलापुत्रौपमन्यवैन्द्रदत्तायस्थूणादीनां वैनयिकदृष्टीनां द्वात्रिंशत्; एषां दृष्टिशतानां त्रयाणां त्रिषष्ठ्युत्तराणां प्ररूपणं निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते। त. रा. १, २०, १२.

२ प्रतिषु 'प्राभृतवात्' इति पाठः।

भावदिट्ठिवादो आगम-णोआगमभेदेण दुविहो । दिट्ठिवादजाणओ उवजुत्तो आगमभावदिट्ठिवादो । आगमेण विणा केवलोहि-मणपज्जवणाणेहि दिट्ठिवादवुत्तत्थपरिच्छेदओ णोआगमभावदिट्ठिवादो । एत्थ आगमभावदिट्ठिवादेण अहियारो । दव्वदिट्ठिवादं पडुच्च तव्वदिरित्तणोआगमदव्वदिट्ठिवादेण अहियारो, दिट्ठिवादहेदुसद्दाणं अक्खरट्ठवणाकलावस्स वि उवयारेण दिट्ठिवादत्तुवलंभादो । एवं णिक्खेव-णएहि दिट्ठिवादस्स अवयारो कदो । दिट्ठिवादणाणे तदट्ठे च अणुगमसद्दो वट्टदे । तेहि दोहि वि एत्थ अहियारो, णाण-णेयाणं दोण्णमण्णोण्णाविणाभावादो । पुव्वाणुपुव्वीए दिट्ठिवादो बारसमो, पच्छाणुपुव्वीए पढमो; जत्थ-तत्थाणुपुव्वीए अवत्तव्वो, एक्कारसमो दसमो णवमो अट्ठमो सत्तमो छट्ठो पंचमो चउत्थो तदिओ बिदिओ पढमो वा त्ति णियमाभावादो । दिट्ठिवादो त्ति गुणणामं, दिट्ठीओ वददि त्ति सद्दणिप्पत्तीदो । दव्वट्ठियणयं पडुच्च दिट्ठिवादमेक्कं चेव । पदं पडुच्च दिट्ठिवादमेत्तियं होदि १०८६८५६००५ । अत्थदो अणंतं वा होदि । वत्तव्वं स-परसमया । अर्थाधिकारः पंचविधः परिकर्म सूत्रं प्रथमानुयोगः पूर्वकृतं चूलिका चेति । तत्र परिकर्म्मणि चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः द्वीप-

भावदृष्टिवाद आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है । दृष्टिवादका जानकार उपयोग युक्त जीव आगमभावदृष्टिवाद है । आगमके विना केवलज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानसे दृष्टिवादमें कहे हुए पदार्थोंका जाननेवाला नोआगमभावदृष्टिवाद है । यहां आगमभावदृष्टिवादका अधिकार है । द्रव्यदृष्टिवादकी अपेक्षा तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यदृष्टिवादका अधिकार है, क्योंकि, दृष्टिवादके हेतुभूत शब्दों और अक्षरस्थापनाकलापके भी उपचारसे दृष्टिवादपना पाया जाता है । इस प्रकार निक्षेप व नयोंसे दृष्टिवादका अवतार किया है ।

दृष्टिवादका ज्ञान और उसके अर्थमें अनुगम शब्द रहता है । उन दोनोंका ही यहां अधिकार है, क्योंकि, ज्ञान और ज्ञेय दोनोंके परस्परमें अविनाभाव है ।

दृष्टिवाद पूर्वानुपूर्वीसे बारहवां, पश्चादानुपूर्वीसे प्रथम और यत्र-तत्रानुपूर्वीसे अवक्तव्य है; क्योंकि, ग्यारहवां, दशवां, नौवां, आठवां, सातवां, छठा, पांचवां, चौथा, तीसरा, दूसरा अथवा पहिला है, इस प्रकारके नियमका यहां अभाव है ।

दृष्टिवाद यह गुणनाम है, क्योंकि, दृष्टियोंको जो कहता है वह दृष्टिवाद है, इस प्रकार दृष्टिवाद शब्दकी सिद्धि है । द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा दृष्टिवाद एक ही है । पदकी अपेक्षा करके दृष्टिवाद इतना है १०८६८५६००५ । अथवा अर्थकी अपेक्षा वह अनन्त है । वक्तव्य स्वसमय और परसमय हैं ।

अर्थाधिकार पांच प्रकार है— परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वकृत और चूलिका । उनमेंसे परिकर्ममें चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति और

सागरप्रज्ञप्तिः जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः व्याख्याप्रज्ञप्तिरिति पंचाधिकाराः। तत्र चन्द्रप्रज्ञप्तौ पंचसहस्राधिकषट्त्रिंशच्छतसहस्रपदायां चन्द्रबिम्ब-तन्मार्गायुःपरिवारप्रमाणं चन्द्रलोकः तद्गतिविशेषः तस्मादुत्पद्यमानचन्द्रदिनप्रमाणं राहु-चन्द्रबिम्बयोः प्रच्छाद्य-प्रच्छादकविधानं तत्रोत्पत्तेः कारणं च निरूप्यते[1]। पदस्थापनात् ३६०५००० । सूर्यप्रज्ञप्तौ त्रिसहस्राधिकपंचशतसहस्रपदायां सूर्यबिम्ब-मार्ग-परिवारायुःप्रमाणं तत्प्रभावृद्धि-ह्रासकारणं सूर्यदिन-मास-वर्ष-युगायनविधानं राहु-सूर्यबिम्ब-प्रच्छाद्यप्रच्छादकविधानं च निरूप्यते[2]। पदांकन्यासः ५०३००० । द्वीप-सागरप्रज्ञप्तौ षट्त्रिंशत्सहस्राधिकद्वापंचाशच्छतसहस्र[3]पदायां ५२३६००० द्वीप-सागराणामियत्ता तत्संस्थानं तद्विस्तृतिः तत्रस्थजिनालया व्यन्तरावासाः समुद्राणां उदकविशेषाश्च निरूप्यन्ते[4]। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ पंचविंशतिसहस्राधिकत्रिशतसहस्रपदायां ३२५००० वर्षधर-वर्षा

व्याख्याप्रज्ञप्ति, इस प्रकार पांच अधिकार हैं। उनमें छत्तीस लाख पांच हजार पद प्रमाण चन्द्रप्रज्ञप्तिमें चन्द्रबिम्ब, उसके मार्ग, आयु व परिवारका प्रमाण; चन्द्रलोक, उसका गमनविशेष, उससे उत्पन्न होनेवाले चन्द्रदिनका प्रमाण, राहु और चन्द्रबिम्बमें प्रच्छाद्य-प्रच्छादकविधान अर्थात् राहु द्वारा होनेवाले चन्द्रके आवरणकी विधि और वहां उत्पन्न होनेका कारण, इस सबकी प्ररूपणा की जाती है। पदोंकी स्थापना ३६०५०००। पांच लाख तीन हजार पद प्रमाण सूर्यप्रज्ञप्तिमें सूर्यबिम्ब, उसके मार्ग, परिवार और आयुका प्रमाण, उसकी प्रभाकी वृद्धि एवं ह्रासका कारण, सूर्यसम्बन्धी दिन, मास, वर्ष और युगके निकालनेकी विधि, तथा राहु व सूर्यबिम्बकी प्रच्छाद्य प्रच्छादकविधि, इस सबका निरूपण किया जाता है। पदके अंकोंकी स्थापना ५०३०००। बावन लाख छत्तीस हजार ५२३६००० पद प्रमाण द्वीप-सागरप्रज्ञप्तिमें द्वीप-समुद्रोंकी संख्या, उनका आकार, विस्तार, उनमें स्थित जिनालय, व्यन्तरोंके आवास, तथा समुद्रोंके जलविशेषोंका निरूपण किया जाता है। तीन लाख पच्चीस हजार ३२५००० पद प्रमाण जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें

---

१ ष. खं. पु. १, पृ. १०९. तत्थ चंदपण्णत्ती चंदविमाणाउ-परिवारिद्धि-गमण-हाणि-वड्डि-सयलद्ध-चउत्थभागग्गहणादीणि वण्णेदि। जयध. १, पृ, १३२. चंदस्सायु-विमाणे परिया रिद्धी च अयण गमणं च। सयलद्ध-पायगहणं वण्णेदि त्ति चंदपण्णत्ती ॥ छत्तीसलक्ख-पंचसहस्सपयग्याण चंदपण्णत्ती। अं. प. २, २–३.

२ ष. खं. पु. १, पृ. ११०. सूराउ-मंडल-परिवारिद्धि-पमाण-गमणायणुप्पत्ति-कारणादीणि सूरसंबधाणि सूरपण्णत्ती वण्णेदि। जयध. १, पृ. १३२. सहस्सतियं पणलक्खा पयाणि पण्णत्तियाक्कस्स ॥ सूरस्सायु-विमाणे परिया रिद्धी य अयणपरिमाणं। तत्तात्रमेत्तगहणं वण्णेदि त्ति सूरपण्णत्ती ॥ अं. प. २, ३–४.

३ प्रतिषु ' द्वापंचाशच्छहस ' इति पाठः।

४ ष. खं. पु. १, पृ. ११०. जा दीव-सागरपण्णत्ती सा दीव-सायराणं तत्थट्ठियजोयिस-वण-भवणावासाणं आवासं पडि संठिदअकट्टिमजिणभवणाणं च वण्णणं कुणइ। जयध. १, पृ. १३३. अं. प. २, ८–११.

ह्रद-चैत्य-चैत्यालय-भरतैरावतगतसरित्संख्याश्च निरूप्यन्ते[1]। व्याख्याप्रज्ञप्तौ षट्त्रिंशत्सहस्राधिकचतुरशीतिशतसहस्रपदायां ८४३६००० रूपिअजीवद्रव्यं अरूपिअजीवद्रव्यं भव्याभव्यजीवस्वरूपं च निरूप्यते[2]।

सूत्रे अष्टाशीतिशतसहस्रपदैः ८८००००० पूर्वोक्तसर्वदृष्टयो निरूप्यन्ते, अबन्धकः अलेपकः अभोक्ता अकर्ता निर्गुणः सर्वगतः अद्वैतः नास्ति जीवः समुदयजनितः सर्वं नास्ति बाह्यार्थो नास्ति सर्वं निरात्मकं सर्वं क्षणिकं अक्षणिकमद्वैतमित्यादयो दर्शनभेदाश्च निरूप्यन्ते[3]। अत्रत्येष्वष्टाशीत्यधिकारेषु चतुर्णामधिकाराणां प्रमेयप्रतिपादिकेयं गाथा—

कुलाचल, क्षेत्र, तालाब, चैत्य, चैत्यालय तथा भरत व ऐरावतमें स्थित नदियोंकी संख्याका निरूपण किया जाता है। चौरासी लाख छत्तीस हजार पद प्रमाण ८४३६००० व्याख्याप्रज्ञप्तिमें रूपी अजीव द्रव्य, अरूपी अजीव द्रव्य तथा भव्य एवं अभव्य जीवोंके स्वरूपका निरूपण किया जाता है।

सूत्र अधिकारमें अठासी लाख ८८००००० पदों द्वारा पूर्वोक्त सब मतोंका निरूपण किया जाता है। इसके अतिरिक्त जीव अबन्धक हैं, अलेपक हैं, अभोक्ता है, अकर्ता है, निर्गुण है, व्यापक है, अद्वैत है, जीव नहीं है, जीव [पृथिवी आदि चार भूतोंके] समुदायसे उत्पन्न होता है, सब नहीं है अर्थात् शून्य है, बाह्य पदार्थ नहीं हैं, सब निरात्मक है, सब क्षणिक है, सब अक्षणिक अर्थात् नित्य है, अथवा अद्वैत है, इत्यादि दर्शनभेदोंका भी इसमें निरूपण किया जाता है। इसके अठासी अधिकारोंमें चार अधिकारोंके प्रमेयकी प्रतिपादक यह गाथा है—

१ ष. खं. पु. १, पृ. ११०. जंबूदीवपण्णत्ती जंबूदीवगयकुलसेल-मेरु-दह-वस्स-वेइया-वणसंड-वेंतरावास-महाणइयाईणं वण्णणं कुणइ। जयध. १, पृ. १३२. अ. प. २, ५–८.

२ ष. खं. पु, १, पृ. ११०. जा पुण वियाहपण्णत्ती सा रूवि-अरूविजीवाजीवदव्वाणं भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणं पमाणस्स तल्लक्खणस्स अणंतर-परंपरसिद्धाणं च अण्णेसिं च वत्थूणं वण्णणं कुणइ। जयध. १, पृ. १३३. अं. प. २, १२–१३.

३ ष. खं. पु. १, पृ. ११०. जं सुत्तं णाम तं जीवो अबंधओ अलेवओ अकत्ता णिग्गुणो अभोत्ता सव्वगओ अणुमेत्तो णिच्चेयणो सपयासओ परप्पयासओ णत्थि जीवो त्ति य णत्थिपवादं किरियावादं अकिरियावादं अण्णाणवादं णाणवादं वेणइयवादं अणेयपयारं गणिदं च वण्णेदि। " असीदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं च आहु चुलसीदिं। सत्तट्ठण्णाणीणं वेणइयाणं च बत्तीसं ॥ " एदीए गाहाए भणिदतिण्णिसयतिसट्ठिसमयाणं वण्णणं कुणदि त्ति भणिदं होदि। जयध. १, पृ. १३३.

४ प्रतिषु ' अत्रेत्य- ' इति पाठः।

पढमो अबंधयाणं बिदियो तेरासियाण बोद्धव्वो ।
तदियो य णियदिपक्खे हवदि चउत्थो ससमयम्मि ॥ ७५ ॥

त्रयीगतमिथ्यात्वसंख्याप्रतिपादिकेयं गाथा —

एक्केक्कं तिण्णि जणा दो दो यण इच्छदे तिवग्गम्मि ।
एक्को तिण्णि ण इच्छइ सत्त वि पावेंति मिच्छत्तं[1] ॥ ७६ ॥

प्रथमानुयोगे[2] पंचपदसहस्रे ५००० चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां द्वादशचक्रवर्तिनां बलदेव-वासुदेव-तच्छत्रूणां चरितं निरूप्यते[3] । अत्रोपयोगी गाथा —

इनमें प्रथम अधिकार अबन्धकोंका और द्वितीय त्रैराशिक अर्थात् आजीविकोंका जानना चाहिये । तृतीय अधिकार नियतिपक्षमें और चतुर्थ अधिकार स्वसमयमें है ॥७५॥ (विशेषके लिये देखिये पु. २ की प्रस्तावना पृ. ४६ आदि) ।

त्रिवर्गगत मिथ्यात्वकी संख्याको बतलानेवाली यह गाथा है —

तीन जन त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काममें एक एककी इच्छा करते हैं, अर्थात् कोई धर्मको, कोई अर्थको और कोई कामको ही स्वीकार करते हैं । दूसरे तीन जन उनमें दो-दोकी इच्छा करते हैं; अर्थात् कोई धर्म और अर्थको, कोई धर्म और कामको तथा कोई अर्थ और कामको ही स्वीकार करते हैं । कोई एक तीनोंकी इच्छा नहीं करता अर्थात् तीनमेंसे एकको भी नहीं चाहता है । इस प्रकार ये सातों जन मिथ्यात्वको प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥

पांच हजार ५००० पद प्रमाण प्रथमानुयोगमें चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और उनके शत्रु प्रतिवासुदेवोंके चरित्रका निरूपण किया जाता है । यहां उपयोगी गाथायें —

१ धर्मं यशः शर्म च सेवमानाः केऽप्येकशो जन्म विदुः कृतार्थम् । अन्ये द्विशो विद्म वयं त्वमोघान्यह्नानि यान्ति त्रयसेवयैव ॥ सागारधर्मामृत १, १४.

२ अ-आप्रत्योः ' प्रथमानियोगे ', ' काप्रतौ ' प्रथमनुयोगे ' इति पाठः ।

३ प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् । बोधि-समाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥ एकपुरुषाश्रिता कथा चरितम्, त्रिषष्टिशलाकापुरुषाश्रिता कथा पुराणम्, तदुभयमपि प्रथमानुयोगशब्दाभिधेयम् । र. क. श्रा. २, २. जो पुण पढमाणिओओ सो चउवीसतित्थयर-बारहचक्कवट्टि-णवबल-णवणारायण-णवपडिसत्तूणं पुराणं जिणविज्जाहर-चक्कवट्टि-चारण-रायादीणं वंसे च वण्णेदि । जयध. १, पृ. १३८. अं. प. २, ३५-३७.

बारसविहं पुराणं जं दिट्ठं[1] जिणवरेहि सव्वेहिं ।
तं सव्वं वण्णेदि हु जिणवंसे रायवंसे य ॥ ७७ ॥

पढमो अरहंताणं बिदिओ पुण चक्कवट्टिवंसो दु ।
तदिओ वसुदेवाणं चउत्थो विज्जाहराणं तु ॥ ७८ ॥

चारणवंसो तह पंचमो दु छट्ठो य पण्णसमणाणं ।
सत्तमगो कुरुवंसो अट्ठमओ चापि हरिवंसो ॥ ७९ ॥

णवमो अइक्खुवाणं वंसो दसमो हु कासियाणं तु ।
वाई एक्कारसमो बारसमो णाहवंसो दु[2] ॥ ८० ॥

पूर्वकृते पंचनवतिकोटिपंचाशच्छतसहस्रपंचपदे ९५५००००५ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यादयो निरूप्यन्ते । चूलिका पंचप्रकारा जल-स्थल-माया-रूपाकाशभेदेन । तत्र जलगतायां द्विकोटि-नवशतसहस्रैकान्नवतिसहस्रद्विशतपदायां २०९८९२०० जलगमनहेतवो मंत्रौषध-तपोविशेषा निरूप्यन्ते[3] । स्थलगतायां द्विकोटिनवशतसहस्रैकान्नवतिसहस्रद्विशतपदायां २०९८९२००

बारह प्रकारका पुराण, जिनवंशों और राजवंशोंके विषयमें जो सब जिनेन्द्रोंने देखा है या उपदेश किया है, उस सबका वर्णन करता है । इनमें प्रथम पुराण अरहन्तोंका, द्वितीय चक्रवर्तियोंके वंशका, तृतीय वासुदेवोंका, चतुर्थ विद्याधरोंका, पांचवां चारणवंशका, छठा प्रज्ञाश्रमणोंका, सातवां कुरुवंशका, आठवां हरिवंशका, नौवां इक्ष्वाकुवंशजोंका, दशवां काश्यपोंका या काशिकोंका, ग्यारहवां वादियोंका और बारहवां नाथवंशका है ॥ ७७–८० ॥

पंचानबै करोड़ पचास लाख पांच पद प्रमाण ९५५००००५ पूर्वकृतमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदिका निरूपण किया जाता है ।

जल, स्थल, माया, रूप और आकाशके भेदसे चूलिका पांच प्रकार है । उनमें दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदोंसे युक्त २०९८९२०० जलगता चूलिकामें जलगमनके कारण मंत्र, औषधि एवं तपविशेषका निरूपण किया जाता है । दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदोंसे संयुक्त स्थलगता चूलिकामें हजारों योजन जानेकी

---

१ प्रतिषु ' जगदिट्ठं ' इति पाठः ।　　　　२ ष. खं. पु. १, पृ. ११२.

३ ष. खं. पु. १, पृ. ११३. तत्थ जलगया जलत्थंभण-जलगमणहेदुभूदमंत-तंत-तवच्छरणाणं अग्गि-त्थंभण-भक्खणासण-पवणादिकारणपओए च वण्णेदि । जयध. १, पृ. १३९.

योजनसहस्रादिगतिहेतवो विद्या-मंत्र-तंत्रविशेषा निरूप्यन्ते[1]। मायागतायां द्विकोटि-नवशतसहस्रै-कान्नवतिसहस्रद्विशतपदायां २०९८९२०० मायाकरणहेतुविद्या-मंत्र-तंत्र-तपांसि निरूप्यन्ते[2]। रूपगतायां द्विकोटिनवशतसहस्रैकान्नवतिसहस्रद्विशतपदायां २०९८९२०० चेतनाचेतनद्रव्याणां रूपपरावर्तनहेतुविद्या-मंत्र-तंत्र-तपांसि नरेन्द्रवाद-चित्र-चित्राभासादयश्च निरूप्यन्ते[3]। आकाशगतायां द्विकोटिनवशतसहस्रैकान्नवतिसहस्रद्विशतपदायां २०९८९२०० आकाशगमनहेतुभूत-विद्या-मंत्र-तंत्र-तपोविशेषा निरूप्यन्ते[4]। अत्र पूर्वकृताधिकारे प्रयोजनम्, स्वान्तर्भूतमहाकर्म-प्रकृतिप्राभृतत्वात्।

पुव्वगयस्स अवयारो वुच्चदे— णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावभेएण चउव्विहं पुव्वगयं। आदिल्ला तिण्णि वि णिक्खेवा दव्वट्ठियणयप्पहवा, भावणिक्खेवो पज्जवट्ठियणयप्पहवो। णिक्खेवट्ठो वुच्चदे। तं जहा— णामपुव्वगयं पुव्वगयसद्दो बज्झत्थणिरवेक्खो अप्पाणम्हि

कारणभूत विद्या, मंत्र व तंत्र विशेषोंका निरूपण किया जाता है। दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदोंसे संयुक्त मायागता चूलिकामें माया करनेकी हेतुभूत विद्या, मंत्र, तंत्र एवं तपका निरूपण किया जाता है। दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदोंसे संयुक्त रूपगता चूलिकामें चेतन और अचेतन द्रव्योंके रूप बदलनेकी कारणभूत विद्या, मंत्र, तंत्र एवं तपका तथा नरेन्द्रवाद, चित्र और चित्राभासादिका निरूपण किया जाता है। दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदोंसे संयुक्त आकाशगता चूलिकामें आकाश-गमनकी कारणभूत विद्या, मंत्र, तंत्र व तपविशेषका निरूपण किया जाता है। यहां पूर्वकृत अधिकारसे प्रयोजन है, क्योंकि, वह महाकर्मप्रकृतिप्राभृतको अपने अन्तर्गत करता है।

पूर्वगतका अवतार कहते हैं— नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे पूर्वगत चार प्रकार है। आदिके तीन निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके निमित्तसे होनेवाले हैं, किन्तु भावनिक्षेप पर्यायार्थिक नयके निमित्तसे होनेवाला है। निक्षेपका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है— बाह्य अर्थसे निरपेक्ष अपने आपमें प्रवर्तमान पूर्वगत शब्द नामपूर्वगत है।

---

१ ष. खं. पु. १, पृ. ११३. थलगया कुलसेल-मेरु-महीहर-गिरि-वसुंधरादिसु चदुलगमणकारणमंत-तंत-तवच्छरणाणं वण्णणं कुणइ। जयध. १, पृ. १३९.

२ ष. खं. पु. १, पृ. ११३. मायागया पुण माहिंदजालं वण्णेदि। जयध. १, पृ. १३९.

३ ष. खं. पु. १, पृ. ११३. रूवगया हरि-करि-तुरय-रुरु-णर-तरु-हरिण-वसह-सस-पसयादिसरूवेण परावत्तणविहाणं णरिंदवायं च वण्णेदि। जयध. १, पृ. १३९.

४ ष. खं. पु. १, पृ. ११३. जा आयासगया सा आयासगमणकारणमंत-तंत-तवच्छरणाणि वण्णेदि। जयध. १, पृ. १३९.

वट्टमाणो। सो एसो त्ति एयत्तेण संकप्पियदव्वं ठवणापुव्वगयं। दव्वपुव्वगयं दुविहं आगम-णोआगमभेएण। पुव्वमण्णवपारओ अणुवजुत्तो आगमदव्वपुव्वगयं। णोआगमदव्वपुव्वगयं जाणुग-संरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण तिविहं। आदिल्लदुगं सुगमं, बहुसो परूविदत्तादो। पुव्व-गयसद्दसंघाओ णोआगमतव्वदिरित्तदव्वपुव्वगयं, पुव्वगयकारणत्तादो। भावपुव्वगयमागम-णोआगमभेएण दुविहं। चोद्दसविज्जाठाणपारओ उवजुत्तो आगमभावपुव्वगयं। आगमेण विणा केवलेहि-मणपज्जवणाणेहि पुव्वगयत्थपरिच्छेदओ णोआगमभावपुव्वगयं।

एत्थ केण णिक्खेवेण पयदं ? पज्जवट्ठियणयं पडुच्च आगमभावणिक्खेवेण पयदं। दव्वट्ठियणयं पडुच्च णोआगमतव्वदिरित्तदव्वपुव्वगयेण अक्खरट्ठवणापुव्वगएण च पयदं। णइगमणयं पडुच्च पुव्वगयणाणजणियसंसकारविसिट्ठजीवदव्वस्स गहणं। एवं णिक्खेव-णएहि पुव्वगयस्स अवयारो कदो।

पमाण-पमेयाणं दोण्णं पि एत्थाणुगमो, करण-कम्मकारएसु अणुगमसद्दणिप्पत्तीदो।

....

'वह यह है' इस प्रकार अभेद रूपसे संकलिपत द्रव्य स्थापनापूर्वगत है। द्रव्यपूर्वगत आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। पूर्वरूप समुद्रके पारको प्राप्त हुआ उपयोग रहित जीव आगमद्रव्यपूर्वगत है। नोआगमद्रव्यपूर्वगत ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है। इनमें आदिके दो सुगम हैं, क्योंकि, उनका बहुत बार निरूपण किया जा चुका है। पूर्वगतका शब्दसमूह नोआगमतद्व्यतिरिक्तद्रव्य-पूर्वगत है, क्योंकि, वह पूर्वगतका कारण है। भावपूर्वगत आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। चौदह विद्याओंका जानकार उपयोग युक्त जीव आगमभावपूर्वगत है। आगमके बिना केवलज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानसे पूर्वगतके अर्थका जाननेवाला नोआगमभावपूर्वगत है।

शंका—यहां कौनसा निक्षेप प्रकृत है ?

समाधान—पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा आगमभावनिक्षेप प्रकृत है। द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा नोआगमतद्व्यतिरिक्तद्रव्यपूर्वगत और अक्षरस्थापनापूर्वगत प्रकृत है। नैगम नयकी अपेक्षा पूर्वगतके ज्ञानसे उत्पन्न हुए संस्कारसे विशिष्ट जीव द्रव्यका ग्रहण है।

इस प्रकार निक्षेप और नयसे पूर्वगतका अवतार किया है।

प्रमाण और प्रमेय दोनोंका ही यहां अनुगम है, क्योंकि, करण और कर्म कारकमें अनुगम शब्द सिद्ध हुआ है। [अर्थात् करणकारकमें सिद्ध हुए अनुगम शब्दसे ज्ञान और कर्मकारकमें सिद्ध हुए उक्त शब्दसे ज्ञेयका ग्रहण होता है।]

पुव्वाणुपुव्वीए पुव्वगयं चउत्थं, पच्छाणुपुव्वीए बिदियं। जत्थ-तत्थाणुपुव्वीए अवत्तव्वं, पढमं बिदियं तदियं चउत्थं पंचमं वा त्ति णियमाभावादो। पुव्वेहि कयं पुव्वगयमिदि णिप्पत्तीदो गुणणामं। अक्खर-पद-संघाय-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जं। अत्थदो अणंतं, पमेयाणंतियादो। वत्तव्वं ससमयो, ण परसमयो; तस्सेत्थपरूवणाभावादो। अत्थाहियारो चोद्दसविहो। तं जहा— उत्पादपूर्वं अग्रायणं वीर्यप्रवादं अस्ति-नास्तिप्रवादं ज्ञानप्रवादं सत्यप्रवादं आत्मप्रवादं कर्मप्रवादं प्रत्याख्याननामधेयं विद्यानुप्रवादं कल्याणनामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं लोकविन्दुसारमिति। पुद्गल-काल-जीवादीनां यदा यत्र यथा च पर्यायेणोत्पादा वर्ण्यन्ते तदुत्पादपूर्वं एककोटिपदम्[1] १००००००० । अग्राणि चांगानां स्वसमयविषयश्च यत्राख्यापितस्तदग्रायणं षण्णवतिशतसहस्रपदम्[2] ९६००००० । छद्मस्थनां केवलिनां वीर्यं सुरेन्द्र-दैत्याधिपानां वीर्यर्द्धयो नरेन्द्र-चक्रधर-बलदेवानां वीर्यलाभो द्रव्याणां आत्म-परोभय-

---

पूर्वानुपूर्वीसे पूर्वगत चतुर्थ और पश्चादानुपूर्वीसे वह द्वितीय है। यत्र-तत्रानुपूर्वीसे वह अवक्तव्य है, क्योंकि प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ अथवा पंचम है, ऐसे नियमका अभाव है। पूर्वोंसे जो कृत है वह पूर्वकृत है, इस प्रकार सिद्ध होनेसे पूर्वकृत शब्द गुणनाम है। अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा वह संख्यात है। अर्थकी अपेक्षा वह अनन्त है, क्योंकि, उसके प्रमेय अनन्त हैं। वक्तव्य स्वसमय है। परसमय वक्तव्य नहीं है, क्योंकि, यहां उसकी प्ररूपणाका अभाव है।

अर्थाधिकार चौदह प्रकार है। वह इस प्रकारसे— उत्पादपूर्व, अग्रायण, वीर्यप्रवाद, अस्ति-नास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान नामक, विद्यानुप्रवाद, कल्याण नामक, प्राणावाद, क्रियाविशाल और लोकविन्दुसार। जिसमें पुद्गल, काल और जीव आदिकोंके जब, जहांपर और जिस प्रकारसे पर्याय रूपसे उत्पादोंका वर्णन किया जाता है वह उत्पादपूर्व कहलाता है। इसमें एक करोड़ पद हैं १००००००० । जिसमें अंगोंके अग्र अर्थात् मुख्य पदार्थोंका तथा स्वसमयके विषयका वर्णन किया गया हो वह अग्रायणपूर्व है। वह छयानवै लाख पदोंसे संयुक्त है ९६००००० । जिसमें छद्मस्थ व केवलियोंके वीर्यका; सुरेन्द्र व दैत्येन्द्रोंके वीर्य एवं ऋद्धिका; राजा, चक्रवर्ती और बलदेवोंके वीर्यलाभका; द्रव्योंका आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य,

---

१ ष. खं. पु. १, पृ. ११४. काल-पुद्गल जीवादीनां यदा यत्र यथा च पर्यायेणोत्पादो वर्ण्यते तदुत्पादपूर्वम्। त. रा. १, २०, १२. जमुप्पायपुव्वं तमुप्पाय-वय-धुवभावाणं कमाकमसरूवाणं णाणाणयविसयाणं वण्णणं कुणइ। जयध. १, पृ. १३९. अं. प. २-३८.

२ ष. खं. पु. १, पृ, ११५. क्रियावादादीनां प्रक्रिया अग्रायणी चांगादीनां स्वसमवायविषयश्च यत्र ख्यापितस्तदग्रायणम्। त. रा. १, २०, १२. अग्गेणियं णाम पुव्वं सत्तसयसुणय-दुण्णयाणं छद्दव्व-णवपयत्थ-पंचत्थियाणं च वण्णणं कुणइ। जयध. १, पृ. १४०. अं. प. २, ३९-४१.

क्षेत्र-भवर्षितपोवीर्यं सम्यक्त्वलक्षणं च यत्राभिहितं तद्वीर्यप्रवादं[1] सप्ततिशतसहस्रपदम् ७०००००० । षण्णामपि द्रव्याणां भावाभावपर्यायविधिना स्व-परपर्यायाभ्यामुभयनयवशीकृताभ्यामर्पितानर्पितसिद्धाभ्यां यत्र निरूपणं षष्टिपदशतसहस्रैः ६०००००० क्रियते तदस्ति-नास्तिप्रवादम्[2] । तद्यथा— स्वरूपादिचतुष्टयेनास्ति घटः, तथाविधरूपेण प्रतिभासनात् । पररूपादिचतुष्टयेन नास्ति घटः, तद्रूपतया घटस्याप्रतिभासनात् । ताभ्यामन्योन्यात्मकत्वेन प्राप्तजात्यन्तराभ्यामर्थपर्यायरूपाभ्यां वा आदिष्टोऽवक्तव्यः । अथवा मृद्घटो मृद्घटरूपेणास्ति, न कल्याणादिरूपेण; तथानुपलम्भात् । ताभ्यां विधि-निषेधधर्माभ्यामन्योन्यात्मकत्वेन प्राप्त-

---

क्षेत्रवीर्य, भववीर्य, ऋषियोंके तपोवीर्य एवं सम्यक्त्वके लक्षणका कथन किया गया हो वह वीर्यप्रवाद है । यह सत्तर लाख पदोंसे संयुक्त है ७०००००० । जिसमें छहों द्रव्योंका भाव व अभाव रूप पर्यायके विधानसे द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयोंके अधीन एवं प्रधान व अप्रधान भावसे सिद्ध स्वपर्याय और परपर्याय द्वारा साठ लाख ६०००००० पदोंसे निरूपण किया जाता है वह अस्ति-नास्तिप्रवाद पूर्व है । [अर्थात् जिसमें स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल व भावके द्वारा छह द्रव्योंके अस्तित्व और पर द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावके द्वारा उनके नास्तित्वका निरूपण किया जाता है वह अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्व है ।] इसीको स्पष्ट करते हैं—स्वरूपादि चतुष्टय अर्थात् स्व-द्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल व स्व-भावके द्वारा 'घट है', क्योंकि, वैसे स्वरूपसे प्रतिभासमान है । पररूपादि चतुष्टयसे 'घट नहीं है', क्योंकि, उन चारोंसे घटका प्रतिभास नहीं होता । परस्पर एक दूसरे रूप होनेसे जात्यन्तर भावको प्राप्त अथवा द्रव्य-पर्याय रूप स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी अपेक्षा एक साथ कहनेपर 'घट अवक्तव्य है' । अथवा मिट्टीका घट मृद्घट रूपसे है, सुवर्णादि रूपसे नहीं है, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता । अन्योन्यस्वरूप होनेसे जात्यन्तर भावको प्राप्त

---

१ ष. खं. पु. १ पृ. ११५. छद्मस्थ-केवलिनां वीर्यं सुरेन्द्र-दैत्याधिपानां ऋद्धयो नरेन्द्र-चक्रधर-बलदेवानां च वीर्यलाभो द्रव्याणां सम्यक्त्वलक्षणं च यत्राभिहितं च तद्वीर्यप्रवादम् । त. रा. १, २०, १२. विरियाणुपवादपुव्वं अप्पविरिय-परविरिय-तदुभयविरिय-खेत्तविरिय-कालविरिय-भवविरिय-तवविरियादीणं वण्णणं कुणइ । जयध. १, पृ. १४०. अं. प. २, ४९–५१.

२ ष. खं. पु. १, पृ. ११५. पंचानामस्तिकायानामर्थो नयानां चानेकपर्यायैरिदमस्तीदं नास्तीति च कात्स्न्येन यत्रावभासितं तदस्ति-नास्तिप्रवादम् । अथवा, षण्णामपि द्रव्याणां भावाभावपर्यायविधिना स्व-पर-पर्यायाभ्यामुभयनयवशीकृताभ्यामर्पितानर्पितसिद्धाभ्यां यत्र निरूपणं तदस्ति-नास्तिप्रवादम् । त. रा. १, २०, १२. अत्थि-णत्थिपवादो सव्वदव्वाणं सरूवादिचउक्केण अत्थित्तं पररूवादिचउक्केण णत्थित्तं च परूवेदि । विहि-पडिसेहधम्मे णयगहणलीणे णाणादुण्णयणिराकरणदुवारेण परूवेदि त्ति भणिदं होदि । जयध. १, पृ. १४०. अं. प. २, ५२–५७,

जात्यन्तराभ्यामादिष्टो वक्तव्यः। रूपघटो रूपघटरूपेणास्ति, न रसादिघटरूपेण। ताभ्यामक्रमेणादिष्टः अवक्तव्यः। एवं रसादिघटानामपि योज्यम्। रक्तघटो रक्तघटरूपेणास्ति, न कृष्णादिघटरूपेण, तथाप्रतिभासाभावात्। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा नवघटो नवघटरूपेणास्ति, न पुराणादिघटरूपेण, अवस्थासांकर्यप्रसंगात्। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। एवं पुराणादिघटनामपि योज्यम्। अथवा अर्पितसंस्थानघटः अस्ति स्वरूपेण, नानर्पितसंस्थानघटरूपेण, विरोधात्। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवार्पितक्षेत्रवृत्तिर्घटोऽस्ति स्वरूपेण, नानर्पितक्षेत्रवृत्तैर्घटैः[1], अनुपलम्भात्। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा पर्यायघटः पर्यायघटरूपेणास्ति, न द्रव्यघटरूपेण घटप्रत्ययाभिधान-व्यवहाराहेतुपर्यायघटरूपेण च। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा तत्परिणतरूपेणास्ति घटः, न नामादिघटरूपेण। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा घटपर्यायेणास्ति घटः, न पिण्ड-कपालादिप्राक्-प्रध्वंसाभावैः

उन विधि व निषेध रूप धर्मोंसे कहा गया घट अवक्तव्य है। रूपघट रूपघट स्वरूपसे है, रसादि घट रूपसे नहीं है। उन दोनों धर्मोंसे एक साथ कहा गया घट अवक्तव्य है। इसी प्रकार रसादि घटोंके भी कहना चाहिये। रक्तघट रक्तघटरूपसे है, कृष्णादिघट रूपसे नहीं है, क्योंकि, वैसा प्रतिभास नहीं होता। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा नवीन घट नवीन घट स्वरूपसे है, पुराने आदि घट स्वरूपसे नहीं है, क्योंकि, अन्यथा दोनों (नवीन व पुरानी) अवस्थाओंके सांकर्यका प्रसंग आता है। उन दोनोंकी अपेक्षा युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। इसी प्रकार पुराने आदि घटोंके भी कहना चाहिये। अथवा विवक्षित आकार युक्त घट स्वरूपसे है, अविवक्षित आकार युक्त घट रूपसे नहीं है; क्योंकि, ऐसा होनेमें विरोध है। उन दोनोंकी अपेक्षा युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है।

अथवा विवक्षित क्षेत्रमें रहनेवाला घट अपने स्वरूपसे है, अविवक्षित क्षेत्रमें रहनेवाले घटोंकी अपेक्षा वह नहीं है; क्योंकि, उस रूपसे वह पाया नहीं जाता। उन दोनोंसे एक साथ कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा पर्यायघट पर्यायघट रूपसे है, द्रव्यघट रूपसे और 'घट' इस प्रकारके प्रत्यय एवं 'घट' इस शब्दके व्यवहारके अहेतुभूत पर्यायघट रूपसे भी वह नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा घट रूप पर्यायसे परिणत स्वरूपसे घट है, नामादि घट रूपसे वह नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा घटपर्यायसे घट है, प्रागभाव रूप पिण्ड और प्रध्वंसाभाव रूप कपाल पर्यायसे वह नहीं है; क्योंकि, वैसा होनेमें विरोध है। उन दोनोंसे युग-

1 अ-आप्रत्योः '-क्षेत्रवृत्तेर्घटैः अनुप-'; काप्रतौ 'क्षेत्रवृत्तेर्घटैरनुप-' इति पाठः।

विरोधात्। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। वर्तमानघटो वर्तमानघटरूपेणास्ति, नातीतानागतघटैः, विरोधात्। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यो घटः। अथवा चक्षुरिन्द्रियग्राह्यघटः स्वरूपेणास्ति, न तदग्राह्यघटरूपेण, विरोधात्। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा व्यञ्जनपर्यायेणास्ति घटः, नार्थपर्यायेण। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा ऋजुसूत्रनयविषयीकृतपर्यायैरस्ति घटः, न शब्दादिनयविषयीकृतपर्यायैः। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा शब्दनयविषयीकृतपर्यायैरस्ति घटः, न शेषनयविषयीकृतपर्यायैः। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा समभिरूढनयविषयीकृतपर्यायैरस्ति घटः, न शेषनयविषयैः। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा एवम्भूतनयविषयीकृतपर्यायैरस्ति घटः, न शेषनयविषयैः। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवोपयोगरूपेणास्ति घटः, नार्थाभिधानाभ्याम्। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवोपयोगघटोऽपि वर्त्तमानरूपतयास्ति, नातीतानागतोपयोगघटैः। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। अथवा घटोपयोगघटः स्वरूपेणास्ति, न पटोपयोगादिरूपेण। ताभ्यामक्रमेणादिष्टोऽवक्तव्यः। इत्यादिप्रकारेण सकलार्थानामस्तित्व-नास्तित्वावक्तव्यभंगा योज्याः। अस्तित्व-नास्तित्वाभ्यां क्रमेण

....

पत् कहा गया घट अवक्तव्य है।

वर्तमानघट वर्तमानघट रूपसे है, अतीत व अनागत घटोंकी अपेक्षा वह नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेमें विरोध है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा चक्षु इन्द्रियसे ग्राह्य घट स्वरूपसे है, चक्षु इन्द्रियसे अग्राह्य घट रूपसे वह नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेमें विरोध है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा व्यञ्जन पयार्यसे घट है, अर्थपर्यायसे नहीं है। उन दोनों धर्मोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा ऋजुसूत्र नयसे विषय की गई पर्यायोंसे घट है, शब्दादि नयोंसे विषय की गई पर्यायोंसे वह नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा शब्दनयसे विषय की गई पर्यायोंसे घट है, शेष नयोंसे विषय की गई पर्यायोंसे वह नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा समभिरूढनयसे विषय की गई पर्यायोंसे घट है, शेष नयोंसे विषय की गई पर्यायोंसे वह नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा एवम्भूत नयसे विषय की गई पर्यायोंसे घट है, शेष नयोंसे विषय की गई पर्यायोंसे वह नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा उपयोग रूपसे घट है, अर्थ और अभिधानकी अपेक्षा वह नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया अवक्तव्य है। अथवा उपयोगघट भी वर्तमान स्वरूपसे है, अतीत व अनागत उपयोगघटोंकी अपेक्षा वह नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। अथवा घटोपयोगस्वरूपसे घट है, पटोपयोगादि रूपसे नहीं है। उन दोनोंसे युगपत् कहा गया घट अवक्तव्य है। इत्यादि प्रकारसे सब पदार्थोंके अस्तित्व, नास्तित्व व अवक्तव्य भंगोंको कहना चाहिये।

विशेषितः अस्ति च नास्ति च घटः । अस्तित्वावक्तव्याभ्यां क्रमेणादिष्टः अस्ति चावक्तव्यश्च घटः । नास्तित्वावक्तव्याभ्यां क्रमेणादिष्टः नास्ति चावक्तव्यश्च घटः । अस्ति-नास्त्यवक्तव्यैः क्रमेणादिष्टः अस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च घटः । एवं शेषधर्माणामपि सप्तभंगी योज्या ।

पंचानामपि ज्ञानानां प्रादुर्भाव-विषयायतनानां[1] ज्ञानिनामज्ञानिनामिन्द्रियाणां च प्राधान्येन यत्र विभागोऽनाद्यनिधनानादिसनिधन-साद्यनिधन-सादिसनिधनादिविशेषैर्विभावितस्तद्ज्ञान-प्रवादम्[2] । तच्चैकोनकोटिपदम् ९९९९९९९[3] । [3]वाग्गुप्तिः संस्कारकारणं प्रयोगो द्वादशधा भाषा वक्तारश्चानेकप्रकारं मृषामिधानं दशप्रकारश्च सत्यसद्भावो यत्र प्ररूपितस्तत्सत्यप्रवादम्[4] । एतस्य पदप्रमाणं षडधिकैककोटी १००००००६ । व्यलीकनिवृत्तिर्वाचंयमत्वं वा वाग्गुप्तिः ।

अस्तित्व और नास्तित्व धर्मोंसे क्रमशः विशेषित घट 'है भी और नहीं भी है'। अस्तित्व और अवक्तव्य धर्मों द्वारा क्रमसे कहा गया घट 'है भी और अवक्तव्य भी है'। नास्तित्व और अवक्तव्य धर्मों द्वारा क्रमसे कहा गया घट 'नहीं भी है और अवक्तव्य भी है'। अस्तित्व, नास्तित्व और अवक्तव्य धर्मों द्वारा क्रमसे कहा गया घट 'है भी, नहीं भी है और अवक्तव्य भी है'। इसी प्रकार शेष धर्मोंकी भी सप्तभंगी जोड़ना चाहिये ।

जिसमें अनाद्यनिधन, अनादि-सनिधन, सादि-अनिधन और सादि-सनिधन आदि विशेषोंसे पांचों ज्ञानोंका प्रादुर्भाव, विषय व स्थान इनका तथा ज्ञानियोंका, अज्ञानियोंका और इन्द्रियोंका प्रधानतासे विभाग बतलाया गया हो वह ज्ञानप्रवाद कहलाता है। इसमें एक कम एक करोड़ पद हैं ९९९९९९९ ।

जिसमें वाग्गुप्ति, वचनसंस्कारके कारण, प्रयोग, बारह भाषा, वक्ता, अनेक प्रकारका असत्यवचन और दश प्रकारका सत्यसद्भाव, इनकी प्ररूपणा की गई हो वह सत्यप्रवादपूर्व है। इसके पदोंका प्रमाण एक करोड़ छह है १००००००६। असत्य वचनके त्याग अथवा वचनके संयमको वाग्गुप्ति कहते हैं। शिर व कण्ठादिक आठ स्थान

---

१ प्रतिषु 'प्रागभावविषयायतनाना-' इति पाठः ।

२ ष. खं. पु. १, पृ. ११६. पंचानामपि ज्ञानानां प्रादुर्भावविषयायतनानां ज्ञानिनां अज्ञानिनामिन्द्रियाणां प्राधान्येन यत्र विभागो विभावितस्तज्ज्ञानप्रवादम् । त. रा. १, २०, १२. णाणप्पवादो मदि-सुद-ओहि-मणपज्जव-केवलणाणाणि वण्णेदि । जयध. १, पृ. १४१. अं. प. २–५९.

३ सत्यप्रवादप्ररूपणान्तर्गतोऽयं सकलः प्रबन्धः षट्खंडागमस्य प्रथमपुस्तके (११६ पृष्ठतः) तत्त्वार्थराजवार्तिके (१, २०, १२) च प्रायेण शब्दशः समानः समुपलभ्यते ।

४ सच्चपवादो ववहारसच्चादिदसविहसच्चाणं सत्तभंगीए सयलवत्थुनिरूवणविहाणं च भणइ । जयध. १, पृ. १४१. अं. प. २, ७८–८४.

वाक्संस्कारकारणाणि शिरःकंठादीन्यष्टौ स्थानानि । वाक्प्रयोगः शुभेतरलक्षणः सुगमः । अभ्याख्यान-कलह-पैशून्याबद्धप्रलाप-रत्यरत्युपधि-निकृत्यप्रणति-मोष-सम्यग्मिथ्यादर्शनात्मिका भाषा द्वादशधा । अयमस्य कर्तेति अनिष्टकथनमभ्याख्यानम् । कलहः प्रतीतः । पृष्ठतो दोषाविष्करणं पैशून्यम् । धर्मार्थ-काम-मोक्षासम्बद्धा वागबद्धप्रलापः । शब्दादिविषयेषु रत्युत्पादिका रतिवाक् । शब्दादिविषयेष्वरत्युत्पादिका अरतिवाक् । यां वाचं श्रुत्वा परिग्रहार्जन-रक्षणादिष्वासज्यते सोपधिवाक् । वणिग्व्यवहारे यामवधार्य निकृतिप्रवण आत्मा भवति सा निकृतिवाक् । यां श्रुत्वा तपोविज्ञानाभ्यधिकेष्वपि[1] न प्रणमति सा अप्रणतिवाक्[2] । यां श्रुत्वा स्तेये प्रवर्तते सा मोषवाक् । सम्यङ्मार्गस्योपदेष्ट्री[3] सम्यग्दर्शनवाक् । तद्विपरीता मिथ्यादर्शनवाक् । वक्तारश्चाविष्कृतवक्तृत्वपर्याया द्वीन्द्रियादयः[4] । द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावाश्रयमनेकप्रकारमनृतम् ।

वचनसंस्कारके कारण हैं । शुभ या अशुभ रूप वचनका प्रयोग सुगम है ।

अभ्याख्यान, कलह, पैशून्य, अबद्धप्रलाप, रति, अराति, उपधि, निकृति, अप्रणति, मोष, सम्यग्दर्शन व मिथ्यादर्शन स्वरूप भाषा बारह प्रकार है । यह इसका कर्ता है इस प्रकार अनिष्ट कथनका नाम अभ्याख्यान है । कलह प्रसिद्ध है । पीछे दोषोंका प्रगट करना पैशून्य कहा जाता है । धर्म, अर्थ, काम व मोक्षसे असम्बद्ध वचनका नाम अबद्धप्रलाप है । शब्दादिक विषयोंमें रतिको उत्पन्न करनेवाला वचन रतिवाक् है । शब्दादिक विषयोंमें अरतिको उत्पन्न करनेवाला वचन अरतिवाक् है । जिस वचनको सुनकर परिग्रहके उपार्जन करने और उसके रक्षणादिकमें आसक्त होता है वह उपधिवाक् कहलाता है । जिस वचनको सुनकर आत्मा वणिग्व्यवहार अर्थात् व्यापारमें कपटपरायण होता है वह निकृतिवाक् है । जिस वचनको सुनकर प्राणी तप और विज्ञानसे अधिक जीवोंको भी प्रणाम नहीं करता है वह अप्रणतिवाक् है । जिस वचनको सुनकर चौर्य कार्यमें प्रवृत्त होता है वह मोषवचन है । समीचीन मार्गका उपदेश करनेवाला वचन सम्यग्दर्शनवाक् है । इससे विपरीत अर्थात् मिथ्यामार्गका उपदेश करनेवाला वचन मिथ्यादर्शनवाक् है ।

वक्ता प्रगट हुई वक्तृत्व पर्यायसे संयुक्त द्वीन्द्रियादिक जीव हैं । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका आश्रयकर असत्य वचन अनेक प्रकार है ।

---

१ प्रतिषु ' तपोविज्ञानाभ्यां कम्र्वापि ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' अप्रणमतिवाक् ' इति पाठः । ३ प्रतिषु ' सम्यक्मार्गस्योपदेष्ट ' इति पाठः ।

४ हिंसादेः कर्मणः कर्तुः विरतस्य विरताविरतस्य वाऽयमस्य कर्तेत्यभिधानमभ्याख्यानम् । त. रा. १, २०, १२. हिंसाद्यकर्तुः कर्तुर्वा कर्तव्यमिति भाषणम् । अभ्याख्यानं प्रसिद्धो हि वागादिकलहः पुनः ॥ दोषाविष्करणं दुष्टैः पश्चात्पैशून्यभाषणम् । भाषाबद्धप्रलापाख्या चतुर्वर्गविवर्जिता ॥ रत्यरत्यभिधे वोभे [चोभे] रत्यरत्युपपादिके । आसज्यते जयार्थेषु श्रोता सोपधिवाक् पुनः ॥ वंचनाप्रवणं

दशविधः सत्यसद्भावः नाम-रूप-स्थापना-प्रतीत्य-संवृति-संयोजना-जनपद-देश-भाव-समय-सत्यभेदेन[1]। तत्र सचेतनेतरद्रव्यस्य असत्यप्यर्थे संव्यवहारार्थं संज्ञाकरणं तन्नामसत्यम्, इन्द्र इत्यादि[2]। यदर्थेऽसन्निधानेऽपि रूपमात्रेणोच्यते तद्रूपसत्यम्, यथा चित्रपुरुषादिष्वसत्यपि चैतन्योपयोगादावर्थे पुरुष इत्यादि[3]। असत्यप्यर्थे यत्कार्यार्थं स्थापितं द्यूताक्षनिक्षेपादिषु तत्स्थापनासत्यम्[4]। साद्यनादीन् भावान् प्रतीत्य यद्वचस्तत्प्रतीत्यसत्यम्[5]। यल्लोकसंवृतौ श्रुतं वचस्तत्संवृतिसत्यम्[6], यथा पृथिव्याद्यनेककारणत्वेऽपि सति पंके जातं पंकजमित्यादि।

नाम, रूप, स्थापना, प्रतीत्य, संवृति, संयोजना, जनपद, देश, भाव और समय सत्यके भेदसे सत्यसद्भाव दश प्रकार है। उनमें पदार्थके न होनेपर भी व्यवहारके लिये सचेतन और अचेतन द्रव्यकी संज्ञा करनेको नामसत्य कहते हैं, जैसे इन्द्र इत्यादि। पदार्थका सन्निधान न होनेपर भी रूपमात्रकी अपेक्षा जो कहा जाता है वह रूपसत्य है, जैसे चित्रपुरुषादिकोंमें चैतन्य उपयोगादि रूप पदार्थके न होनेपर भी 'पुरुष' इत्यादि कहना। पदार्थके न होनेपर भी कार्यके लिये जो जुएके पाँसे आदि निक्षेपोंमें स्थापना की जाती है वह स्थापनासत्य है। सादि व अनादि आदि भावोंकी अपेक्षा करके जो वचन कहा जाता है वह प्रतीत्यसत्य है। जो वचन लोकरूढ़िमें सुना जाता है वह संवृतिसत्य है, जैसे पृथिवी आदि अनेक कारणोंके होनेपर भी पंक अर्थात् कीचड़में उत्पन्न होनेसे 'पंकज'

जीवं कर्ता निःकृतिवाक्यतः। न नमत्यधिकेष्वात्मा सा च [चा] प्रणतिवागभूत्॥ या प्रवर्तयति स्तेयं मोघ [मोष] वाक् सा समीरिता। सम्यग्मार्गं नियोक्त्री या सम्यग्दर्शनवागसौ॥ मिथ्यादर्शनवाक् सा या मिथ्यामार्गोपदेशिनी। वाचो द्वादशभेदाया वक्तारो द्वीन्द्रियादयः॥ ह. पु. १०, ९२-९७.

१ जणवद-संमदि ठवणा णामे रूवे पडुच्च ववहारे। संभावणववहारे भावेणोपम्मसच्चेण॥ भ. आ. ११९३. गो. जी. २२२.

२ ह. पु. १०-९८. तथा च यथा 'भातु' इत्यादि नाम देशापेक्षया सत्यं तथा अन्यनिरपेक्षतयैव संव्यवहारार्थं कस्यचित्प्रयुक्तं संज्ञाकर्म नामसत्यम्। यथा कश्चित् पुरुषो जिनदत्त इति। गो. जी. जी. प्र. २२३.

३ ह. पु. १०-९९. चक्षुर्व्यवहारप्रचुरत्वेन रूपादिपुद्गलगुणेषु रूपप्राधान्येन तदाश्रितं वचनं रूपसत्यम्। यथा कश्चित् पुरुषः श्वेत इति। गो. जी. जी. प्र. २२३.

४ ह. पु. १०-१००. अन्यत्रान्यवस्तुनः समारोपः स्थापना, तदाश्रितं मुख्यवस्तुनो नाम स्थापनासत्यम्। यथा चन्द्रपभप्रतिमा चन्द्रप्रभ इति। गो. जी. जी. प्र. २२३.

५ ह. पु. १०-१०१. आदिमदनादिमदौपशमिकादीन् भावान् प्रतीत्य यद्वचनं तत्प्रतीत्यसत्यम्। त. रा. १, २०, १२. प्रतीत्य विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यम्— आपेक्षिकसत्यमित्यर्थः। यथा कश्चिद्दीर्घ इति, अन्यस्य ह्रस्वत्वमपेक्ष्य प्रकृतस्य दीर्घत्वकथनात्। एवं स्थूल-सूक्ष्मादिवचनान्यपि प्रतीत्यसत्यानि ज्ञातव्यानि। गो. जी. जी. प्र. २२३.

६ ह. पु. १०-१०२. यल्लोके संवृत्यानीतं वचस्तत्संवृतिसत्यम्। यथा... । त. रा. १, २०, १२. तथा संवृत्या कल्पनया सम्मत्या वा बहुजनाभ्युपगमेन सर्वदेशसाधारणं यन्नाम रूढं तत्संवृतिसत्यं सम्मतिसत्यं वा। यथा अग्रमहिषीत्वाभावेऽपि कस्याश्चिद्देवीति नाम। गो. जी. जी. प्र. २२३.

धूपचूर्णवासानुलेपनप्रघर्षादिषु पद्म-मकर-हंस-सर्वतोभद्र-क्रौंचव्यूहादिषु इतरेतरद्रव्याणां यथा-विभागविधिसन्निवेशाविर्भावकं यद्वचस्तत्संयोजनासत्यम्[1]। द्वात्रिंशज्जनपदेषु आर्यानार्यभेदेषु धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां प्रापकं यद्वचस्तज्जनपदसत्यम्[2]। ग्राम-नगर-राज-गण-पाखण्ड-जाति-कुलादिधर्माणां व्यपदेष्टृ यद्वचस्तद्देशसत्यम्[3]। छद्मस्थज्ञानस्य द्रव्ययाथात्म्यादर्शनेऽपि संयतस्य [संयतासंयतस्य] वा स्वगुणपरिपालनार्थं प्रासुकमिदमप्रासुकमित्यादि यद्वचस्तद् भावसत्यम्[4]। प्रतिनियतषट्तयद्रव्यपर्यायाणामागमगम्यानां याथात्म्याविष्करणं यद्वचस्तत्समयसत्यम्।

यत्रात्मनोऽस्तित्व-नास्तित्वादयो धर्माः षड्जीवनिकायभेदाश्च युक्तितो निर्दिष्टास्तदात्म-

इत्यादि वचनप्रयोग। सुगन्धित धूपचूर्णके लेपन और घिसनेमें [अथवा] पद्म, मकर, हंस, सर्वतोभद्र और क्रौंच रूप व्यूह (सैन्यरचना) आदिकोंमें भिन्न भिन्न द्रव्योंकी विभागविधिके अनुसार की जानेवाली रचनाको प्रगट करनेवाला जो वचन है वह संयोजनासत्यवचन कहलाता है। आर्य व अनार्य भेद युक्त बत्तीस जनपदोंमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका प्रापक जो वचन है वह जनपदसत्य है। जो वचन, ग्राम, नगर, राजा, गण, पाखण्ड, जाति एवं कुल आदि धर्मोंका व्यपदेश करनेवाला है वह देशसत्य है। छद्मस्थज्ञानीके द्रव्यके यथार्थ स्वरूपका दर्शन न होनेपर भी संयत अथवा [संयता-संयत] के अपने गुणोंका पालन करनेके लिये 'यह प्रासुक है और यह अप्रासुक है' इत्यादि जो वचन कहा जाता है वह भावसत्य है। जो वचन आगमगम्य प्रतिनियत छह द्रव्य व उनकी पर्यायोंकी यथार्थताको प्रगट करनेवाला है वह समयसत्य है।

जिसमें आत्माके अस्तित्व व नास्तित्व आदि गुणोंका तथा छह कायके जीवोंके

१ त. रा. वार्तिके मूलाराधनायां (११९३) च '-व्यूहादिषु इतरेतरद्रव्याणां यथाविभागविधि-' अस्य स्थाने '-व्यूहादिषु वा सचेतनेतरद्रव्याणां यथाभागविधि-' इति पाठः। चेतनाचेतनद्रव्यसंनिवेशाविभागकृत्। वचः संयोजनासत्यं क्रौंचव्यूहादिगोचरम्। ह. पु. १०-१०३.

२ ह. पु. १०-१०४. जनपदेषु तत्रतन तत्रतनव्यवहर्तृजनानां रूढं यद्वचनं तज्जनपदसत्यम्। यथा महाराष्ट्रदेशे भातु भेट्टु, अंध्रदेशे वंटक मुकुडु, कर्णाटदेशे कूलु, द्रविडदेशे चोरु। गो. जी, जी. प्र. २२३.

३ यद् ग्राम-नगराचार-राजधर्मोपदेशकृत्। गणाश्रमपदोद्भासि देशसत्यं तु तन्मतम्॥ ह. पु. १०-१०५.

४ मूलाराधना ११९३. ह. पु. १०-१०७. अतीन्द्रियार्थेषु प्रवचनोक्तविधि-निषेधसंकल्पपरिणामो भावः, तदाश्रितं वचनं भावसत्यम्। यथा शुष्क-पक्व-ध्वस्ताम्ल-लवणसंमिश्रदग्धादिद्रव्यं प्रासुकम्, ततस्तत्सेवने पापबन्धो नास्तीति पापवर्जनवचनम्। अत्र सूक्ष्मप्राणिनामिन्द्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्येन प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूप-भावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात्, समस्तातीन्द्रियार्थज्ञानिप्रणीतप्रवचनस्य सत्यत्वादेव कारणात्। गो. जी. जी. प्र. २२४.

प्रवादम्[1] । एतस्य पदप्रमाणं षड्विंशतिः कोट्यः २६०००००० । अत्रोपयोगी गाहा—

जीवो कत्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पोग्गलो ।
वेदो विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणओ ॥ ८१ ॥

सत्ता जंतू य माई य माणी जोगी य संकटो ।
असंकटो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य[2] ॥ ८२ ॥

एतयोरर्थमुच्यते— जीवति जीविष्यति अजीवीदिति जीवः[3] । शुभमशुभं करोतीति कर्ता[4] । सत्यमसत्यं ब्रवीतीति वक्ता[5] । प्राणा अस्य सन्तीति प्राणी[6] । चतुर्गतिसंसारे कुशल-

---

भेदोंका युक्तिसे निर्देश किया गया हो वह आत्मप्रवादपूर्व कहा जाता है। इसके पदोंका प्रमाण छब्बीस करोड़ है २६०००००००। यहां उपयोगी गाथायें—

जीव कर्ता, वक्ता, प्राणी, भोक्ता, पुद्गल, वेद, विष्णु, स्वयंभू, शरीरी, मानव, सक्त, जन्तु, मायी, मानी, योगी, संकट, असंकट, क्षेत्रज्ञ और अन्तरात्मा है ॥८१-८२॥

इन दोनों गाथाओंका अर्थ कहते हैं— जो जीता है, जीता रहेगा और जीता था वह जीव है। चूंकि जीव शुभ और अशुभ कार्योंको करता है अतः वह कर्ता है। सत्य और असत्य वचन बोलनेके कारण वक्ता है। व्यवहारनयसे आयु व इन्द्रियादि दश प्राणोंसे तथा निश्चय नयकी अपेक्षा ज्ञान-दर्शनादि रूप प्राणोंसे संयुक्त होनेके कारण प्राणी है। चूंकि वह चतुर्गति रूप संसारमें शुभ और अशुभ कर्मके फल स्वरूप सुख-दुखको भोगता है

---

१ ष. खं. पु. १, पृ. ११८. त. रा. १, २०, १२. आदपवादो णाणाविहदुण्णए जीवविसए णिराकरिय जीवसिद्धिं कुणइ। अत्थि जीवो तिलक्खणो सरीरमेत्तो स-परप्पयासओ सुहुमो अमुत्तो भोत्ता कत्ता अणाइबंधणबद्धो णाण-दंसणलक्खणो उड्ढगमणसहावो एवमाइसरूवेण जीवं साहेदि त्ति वुत्तं होदि। जयध. १, पृ. १४१. अं. प. २, ८५.

२ अं. प. २, ८६-८७.

३ ववहारेण जीवदि दसपाणेहि, णिच्छयणएण य केवलणाण-दंसण-सम्मत्तरूपपाणेहिं जीवदिदि जीविद-पुव्वो जीवदि त्ति जीवो। अं. प. २, ८६-८७.

४ ववहारेण सुहासुहं कम्मं णिच्छयणएण चिप्पज्जयं च करेदि त्ति कत्ता, णो किमवि करेदि इदि अकत्ता। अं. प, २, ८६-८७.

५ सच्चमसच्चं च वचि त्ति वत्ता, णिच्छयदो अवत्ता। अं. प. २, ८६. ८७.

६ णयदुगउत्तपाणा अस्स अत्थि इदि पाणी। अं. प. २, ८६-८७.

मकुशलं भुंक्ते इति भोक्ता[1]। पूरण-गलनात्पुद्गलः[2]। सुखमसुखं वेदयतीति वेदः[3]। स्वशरीराशेषावयवान्वेवेष्टीति विष्णुः[4]। स्वयमेव भूतवानिति स्वयम्भूः[5]। शरीरमस्यास्तीति शरीरी[6]। मनौ भवः मानवः[7]। स्वजन-सम्बन्धि-मित्रवर्गादिषु सजतीति सक्ता[8]। चतुर्गतिसंसारे आत्मानं जनयति जायत इति वा जन्तुः[9]। माया अस्यास्तीति मायी[10]। मानोऽस्यास्तीति मानी[11]। योगोऽस्यास्तीति योगी[12]। संहरधर्मत्वात्संकटः[13]। विसर्पणधर्म्मत्वादसंकटः[14]। षड्द्रव्याणि क्षियन्ति निवसन्ति यस्मिन् तत्क्षेत्रम्, षड्द्रव्यस्वरूपमित्यर्थः; तज्जानातीति क्षेत्रज्ञः[15]। अथवा,

अतः भोक्ता है। चूंकि वह कर्म रूप पुद्गलको पूरा करता और गलाता है अतः पुद्गल है। सुख और दुखका चूंकि वेदन करता है अतः वेद है। चूंकि अपने शरीरके समस्त अवयवोंको पुनः पुनः वेष्टित करता है अतः वह विष्णु है। स्वयं ही उत्पन्न होनेके कारण स्वयम्भू है। शरीर होनेके कारण शरीरी है। मनु अर्थात् ज्ञानमें उत्पन्न होनेसे मानव है। चूंकि अपने कुटुम्बी जन, सम्बन्धी एवं मित्रवर्गादिकोंमें आसक्त रहता है अतः सक्ता कहा जाता है। चतुर्गति रूप संसारमें चूंकि अपनेको उत्पन्न कराता है या उत्पन्न होता है अतः जन्तु है। माया युक्त होनेसे मायी है। मान युक्त होनेसे मानी है। योग युक्त होनेसे योगी है। संकोच रूप स्वभावके कारण संकट है। फैलने रूप धर्मसे संयुक्त होनेके कारण असंकट कहलाता है। छह द्रव्य जिसमें रहते हैं अर्थात् वास करते हैं वह क्षेत्र कहलाता है, अर्थात् जो छह द्रव्य स्वरूप है उसका नाम क्षेत्र है; और उसको जो जानता है वह

१ कम्मफलं सस्सरूवं च भुंजदि इदि भोत्ता। अं. प. २, ८६, ८७.
२ कम्म-पोग्गलं पूरेदि गालेदि य पोग्गलो, णिच्छयदो अपोग्गलो। अं. प. ८६, ८७.
३ सव्वं वेद इदि वेदो। अं. प. २, ८६–८७.
४ प्रतिषु ' सशरीर ' इति पाठः। वावणसीलो विण्हू। अं. प. २, ८६–८७.
५ सयंभुवणसीलो सयंभू। अं. प. २, ८६–८७.
६ सरीरमस्सत्थि त्ति सरीरी, णिच्छयदो असरीरी। अं. प. २, ८६–८७.
७ माणवादिपज्जयजुत्तो माणवो, णिच्छएण अमाणवो। अं. प. २, ८६–८७.
८ परिग्गहेसु सजदि त्ति सत्ता, णिच्छयदो असत्ता। अं. प. २, ८६–८७.
९ णाणाजोणिसु जायइ त्ति जंतू, णिच्छएण अजंतू। अं. २, ८६–८७.
१० मायास्सत्थि त्ति मायी, णिच्छयदो अमायी। अं. प. २, ८६–८७.
११ माणो अहंकारो अस्सत्थि त्ति माणी, णिच्छयदो अमाणी। अं. प. २, ८६–८७.
१२ जोगो मण-वयण-कायलक्खणो अस्सत्थि त्ति जोगी, णिच्छयदो अजोगी। अं. प. २, ८६–८७.
१३ जहण्णेण संकुइदपदेसो संकुडो। अं. प. २, ८६–८७.
१४ समुग्घादे लोयं वाप्पइ त्ति असंकुडो। अं. प. २, ८६–८७.
१५ खेत्तं लोयालोयं सस्सरूवं च जाणदि त्ति खेत्तण्हू। अं. प. २, ८६–८७.

प्रदेशज्ञः[1] जीव इत्ययमस्यार्थः, क्षेत्रज्ञशब्दस्य कुशलशब्दवत् जहत्स्वार्थवृत्तित्वात् । अन्तश्चासौ आत्मा च अन्तरात्मा[2] इति ।

बन्धोदयोपशमनिर्जरापर्यायाः अनुभवप्रदेशाधिकरणानि स्थितिश्च जघन्य-मध्यमोत्कृष्टा यत्र निर्दिश्यन्त तत्कर्म्मप्रवादम्; अथवा ईर्यापथकर्मादिसप्तकर्माणि यत्र निर्दिश्यन्ते तत्कर्मप्रवादम्[3] । तत्र पदप्रमाणमशीतिशतसहस्राधिका एका कोटी १८००००००। व्रत-नियम-प्रतिक्रमण-प्रतिलेखन-तपःकल्पोपसर्गाचार-प्रतिमाविराधनाराधनविशुद्ध्युपक्रमाः श्रामण्यकारणं च परिमितापरिमितद्रव्य-भावप्रत्याख्यानं च यत्राख्यातं तत्प्रत्याख्याननामधेयम्[4][5] । तत्र चतुरशीतिशतसहस्रपदानि ८४००००० । समस्तविद्या अष्टौ महानिमित्तानि तद्विषयो[6] रज्जुराशिविधिः

क्षेत्रज्ञ कहा जाता है । अथवा जीव प्रदेशज्ञ है, यह इसका अर्थ है, क्योंकि, क्षेत्रज्ञ शब्द कुशल शब्दके समान जहत्स्वार्थवृत्ति लक्षणा रूप है । अभ्यन्तर होनेसे वह अन्तरात्मा कहा जाता है ।

जिसमें बन्ध, उदय, उपशम और निर्जरा रूप पर्यायोंका, अनुभाग, प्रदेश व अधिकरण तथा जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट स्थितिका निर्देश किया जाता है वह कर्मप्रवाद है; अथवा जिसमें ईर्यापथकर्म आदि सात कर्मोंका निर्देश किया जाता है वह कर्मप्रवादपूर्व कहलाता है । उसमें पदोंका प्रमाण एक करोड़ अस्सी लाख है १८०००००० ।

जिसमें व्रत, नियम, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, तप, कल्प, उपसर्ग, आचार, प्रतिमा-विराधन, आराधन और विशुद्धिका उपक्रम, श्रमणताका कारण तथा द्रव्य और भावकी अपेक्षा परिमित व अपरिमित काल रूप प्रत्याख्यानका कथन हो वह प्रत्याख्यान नामक पूर्व है । उसमें चौरासी लाख पद हैं ८४००००० । जिसमें समस्त विद्याओं, आठ महानिमित्तों, उनके विषय, राजुराशिविधि,

१ प्रतिषु ' प्रदेशः ' इति पाठः ।

२ अट्ठकम्माब्भंतरवत्तीसभावादो चेदणाब्भंतरवत्तीसभावादो च अंतरप्पा । अं. प. २, ८६-८७.

३ ष. खं. पु. १. पृ. १२१. त. रा. १, २०, १२. कम्मपवादो समोदाणिरियावहकिरिया-तवाहाकम्माणं वण्णणं कुणइ । जयध. १, पृ. १४२. अं. प. २-८८.

४ प्रतिषु ' प्रतिलेखनलपन्कल्पोप- ', मप्रतौ ' पतिलेखनलयन्मल्पोप- ' इति पाठः ।

५ ष. खं. पु. १, पृ. १२१. त. रा. १, २०, १२. पच्चक्खाणपवादो णाम-ट्ठवणा-दव्व-खेत्त-काल-भावभेदभिण्णं परिमियमपरिमियं च पच्चक्खाणं वण्णेदि जयध. १, पृ. १४३. अं. प. २, ९५-१००.

६ प्रतिषु ' तद्धियो ' इति पाठः ।

क्षेत्रं श्रेणि लोकप्रतिष्ठा संस्थानं समुद्घातश्च यत्र कथ्यते तद्विद्यानुप्रवादम्[1]। तत्राङ्गुष्ठप्रसेनादीनां अल्पविद्यानां सप्तशतानि, महाविद्यानां रोहिण्यादीनां पंचशतानि। अन्तरिक्ष-भौमाङ्ग-स्वर-स्वप्न-लक्षण-व्यञ्जन-चिह्नान्यष्टौ महानिमित्तानि। तेषां विषयो लोकः। क्षेत्रमाकाशम्। पट-सूत्रवच्चर्मावयवैवद्वानुपूर्व्विणोर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यवस्थिताः आकाशप्रदेशपंक्तयः श्रेणयः। अन्यत्सुगमम्। अत्र पदानि दशशतसहस्राधिका एका कोटी ११०००००० । रवि-शशि-ग्रह-नक्षत्र-तारागणानां चारोपपाद-गतिविपर्य्ययफलानि शकुनव्याहृतिमर्हद्-बलदेव-वासुदेव-चक्रधरादीनां गर्भावतरणादिमहाकल्याणानि च यत्रोक्तानि तत्कल्याणनामधेयम्[4]। तत्र पदप्रमाणं षड्विंशतिकोट्यः २६०००००००। कायचिकित्साद्यष्टांगः आयुर्वेदः[5] भूतिकर्म जाङ्गुलिप्रक्रमः

क्षेत्र, श्रेणि, लोकप्रतिष्ठा, संस्थान और समुद्घातका वर्णन किया जाता है वह विद्यानुप्रवाद पूर्व कहलाता है। उनमें अंगुष्ठप्रसेनादिक अल्पविद्यायें सात सौ और रोहिणी आदि महाविद्यायें पांच सौ हैं। अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यञ्जन और चिह्न, ये आठ महानिमित्त हैं। उनका विषय लोक है। क्षेत्रका अर्थ आकाश है। वस्त्रतन्तुके समान अथवा चर्मके अवयवके समान अनुक्रमसे ऊपर, नीचे और तिरछे रूपसे व्यवस्थित आकाशप्रदेशोंकी पंक्तियां श्रेणियां कहलाती हैं। शेष सुगम है। इसमें एक करोड़ दश लाख पद हैं ११००००००। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारागणोंका संचार, उत्पत्ति व विपरीत गतिका फल, शकुनव्याहृति अर्थात् शुभाशुभ शकुनोंका फल, अरहन्त, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदिकोंके गर्भमें आने आदिके महाकल्याणकोंकी जिसमें प्ररूपणा की गई हो वह कल्याणवाद नामक पूर्व है। उसमें पदोंका प्रमाण छब्बीस करोड़ है २६००००००० ।

जिसमें शरीरचिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म अर्थात् भस्मलेपनादि,

१ ष. खं. पु. १, पृ. १२१. त. रा. १, २०, १२. विज्जाणुपवादो अंगुट्ठपसेणादिसत्तसयमंते रोहिणि-आदिपंचसयमहाविज्जाओ च तासिं साहणविहाणं सिद्धाणं फलं च वण्णेदि। जयध. १, पृ. १४४.

२ त. रा. १, २०, १२. तत्र ' चिह्नान्यष्टौ ' इत्येतस्य स्थाने ' छिन्नानि अष्टौ '; ' -वद्वानुपूर्व्विणो- ' स्थाने ' वद्वानुपूर्व्येणो- इति पाठभेदः। ' -व्यवस्थिताः ' अतोऽग्रे तत्र ' असंख्यानाः ' पदमधिकं चोपलभ्यते।

३ प्रतिषु ' धर्मावयव- ' इति पाठः।

४ ष. खं. पु. १. पृ. १२१. त. रा. १, २०, १२. कल्लाणपवादो गह-णक्खत्त-चंद-सूरचारविसेसं अट्ठंगमहाणिमित्तं तित्थयर-चक्कवट्टि-बल-णारायणादीणं कल्लाणाणि च वण्णेदि। जयध. १, पृ. १४५. अं. प. २, १०४-१०६.

५ ' शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यमगदतंत्रं रसायनतंत्रं वाजीकरणतंत्रमिति ' सुश्रुत पृ. १.

प्राणापानविभागो यत्र विस्तरेण वर्णितस्तत्प्राणावायम्[१]। अत्रोपयोगी गाहा—

उस्सासाउअपाणा इंदियपाणा परक्कमो पाणो।
एदेसिं पाणाणं वड्ढी-हाणीओ वण्णेदि ॥ ८३ ॥

अत्र पदानां त्रयोदशकोट्यः १३००००००० । लेखादिकाः कलाः द्वासप्ततिः गुणाश्चतुःषष्टिः स्त्रैणाः शिल्पानि काव्यगुण-दोषक्रिया-छन्दोविचितिक्रिया-फलोपभोक्तारश्च यत्र ख्यातास्तत्क्रियाविशालम्[२]। अत्र पदानां नव कोट्यो भवन्ति ९००००००० । यत्राष्टौ[३] व्यवहाराश्चत्वारि बीजानि क्रियाविभागश्चोपदिष्टः तल्लोकबिन्दुसारम्[४]। तत्र पंचाशच्छतसहस्राधिकद्वादशकोट्यः पदानां १२५०००००० ।

.. ..

जांगुलिप्रक्रम अर्थात् विषचिकित्सा और प्राण व अपान वायुओंका विभाग, इनका विस्तारसे वर्णन किया गया हो वह प्राणावाय पूर्व है। यहां उपयोगी गाथा—

प्राणावाय पूर्व उच्छ्वास, आयुप्राण, इन्द्रिय प्राण और पराक्रम अर्थात् बलप्राण, इन प्राणोंकी वृद्धि एवं हानिका वर्णन करता है ॥ ८३ ॥

इसमें तेरह करोड़ पद हैं १३००००००० । जिसमें लेखन आदि बहत्तर कलाओंका, स्त्रीसम्बन्धी चौंसठ गुणोंका, शिल्पोंका, काव्य सम्बन्धी गुण-दोषक्रियाका, छन्दरचनेकी क्रिया और उसके फलके उपभोक्ताओंका वर्णन किया गया हो वह क्रियाविशालपूर्व कहलाता है। इसमें नौ करोड़ पद हैं ९००००००० । जिसमें आठ प्रकारके व्यवहारों, चार बीजों और क्रियाविभागका उपदेश किया गया हो वह लोकबिन्दुसार है। उसमें बारह करोड़ पचास लाख पद हैं १२५०००००० ।

१ ष. खं. पु. १, पृ. १२२. त. रा. १, २०, १२. पाणावायपवादो दसविहपाणाणं हाणि-वड्ढीओ वण्णेदि। × × × काणि आउव्वेयस्स अट्ठंगाणि ? वुच्चदे— शालाक्यं कायचिकित्सा भूततंत्रं रसायनतंत्रं बालरक्षा बीजवर्द्धनमिति आयुर्वेदस्य अष्टाङ्गानि। जयध. १, पृ. १४६. अं. प. २, १०७–११०.

२ ष. खं. पु. १, पृ. १२२. त. रा. १, २०, १२. तत्र '-विचितिक्रियाफलोप-' इत्येतस्य स्थाने '-विचितिक्रिया क्रियाफलोप-' इति पाठभेदः। किरियाविसालो णट्ट-गेय-लक्खण-छंदालंकार-संढ-त्थी-पुरुस-लक्खणादीणं वण्णणं कुणइ। जयध. १. पृ. १४८. अं. प. २, ११०–११३.

३ प्रतिषु 'अत्राष्टौ' इति पाठः।

४ ष. खं. पु. १, पृ. १२२. यत्राष्टौ व्यवहाराश्चत्वारि बीजानि परिकर्मराशिक्रियाविभागश्च सर्वश्रुतसंपदुपदिष्टा तत्खलु लोकबिन्दुसारम्। त. रा. १, २०, १२. लोकबिंदुसारो परियम्म ववहार-रज्जुरासि-कलासवण्ण-जावंताव-वग्ग-घण-बीजगणिय-मोक्खाणं सरूवं वण्णेदि। जयध. १, पृ. १४८. अं. प. २, ११४–११६.

अत्र अग्रायणेन अधिकारः, तत्र महाकर्मप्रकृतिप्राभृतस्यावस्थानात् । एत्थ अग्गेणियस्स पुव्वस्स चदुहि पयारेहि अवयारो होदि । तं जहा— णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावभेएण चउव्विहमग्गेणियं । तत्थ आदिल्ला तिण्णि वि णिक्खेवा दव्वट्ठियणयणिबंधणा, धउविएण विणा तेसिं सरूवोवलंभाभावादो । भावणिक्खेवो पज्जवट्ठियणयणिबंधणो, वट्टमाणपज्जाएण पडिगददव्वस्स भावत्तब्भुवगमादो । णिक्खेवट्ठो वुच्चदे— अग्गेणियसद्दो बज्झत्थं मोत्तूण अप्पाणम्हि वट्टमाणो णामग्गेणियं । सो एसो त्ति बुद्धीए[1] अग्गेणिएण पत्तेयत्तट्ठो ट्ठवणा-अग्गेणियं । दव्वग्गेणियमागम-णोआगमभेएण दुविहं । तत्थ अग्गेणियपुव्वहरो अणुवजुत्तो आगमदव्वग्गेणियं । णोआगमदव्वग्गेणियं जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तग्गेणियभेएण तिविहं । तत्थ जाणुगसरीर-भवियणोआगमदव्वग्गेणियदुगं सुगमं, बहुसो उत्तत्थादो । तव्वदिरित्त-णोआगमदव्वग्गेणियमग्गेणियसद्दागमो तक्कारणदव्वाणि वा । भावग्गेणियं दुविहं आगम-णोआगमभेएण[2] । तत्थ अग्गेणियपुव्वहरो उवजुत्तो आगमभावग्गेणियं । अग्गेणियपुव्वत्थ-विसओ केवलोहि-मणपज्जवणाणोवयोगो णोआगमभावग्गेणियं । एत्थ दव्वट्ठियणयं पडुच्च

यहां अग्रायणपूर्वका अधिकार है, क्योंकि, उसमें महाकर्मप्रकृतिप्राभृतका अवस्थान है। यहां अग्रायणीयपूर्वका चार प्रकारसे अवतार होता है। वह इस प्रकार है— नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे अग्रायणीयपूर्व चार प्रकार है। इनमें आदिके तीन निक्षेप द्रव्यार्थिकनयके निमित्तसे हैं, क्योंकि, ध्रौव्यके विना उनका स्वरूप नहीं पाया जाता। भाव-निक्षेप पर्यायार्थिकनयके निमित्तसे होनेवाला है, क्योंकि, वर्तमान पर्यायसे युक्त द्रव्यको भाव माना गया है। निक्षेपका अर्थ कहते हैं— बाह्यार्थको छोड़कर अपने आपमें रहनेवाला अग्रायणीय शब्द नामअग्रायणीय है। 'वह यह है' इस बुद्धिसे अग्रायणीयके साथ एकताको प्राप्त पदार्थ स्थापनाअग्रायणीय है। द्रव्यअग्रायणीय आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। उनमें अग्रायणीयपूर्वधारक उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यअग्रायणीय है। नोआगमद्रव्यअग्रायणीय ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त अग्रायणीयके भेदसे तीन प्रकार है। उनमें ज्ञायकशरीर और भावी नोआगमद्रव्यअग्रायणीय ये दो सुगम हैं, क्योंकि, बहुत वार उनका अर्थ कहा जा चुका है। अग्रायणीय रूप शब्दागम अथवा उसके कारण-भूत द्रव्य तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यअग्रायणीय है। भावअग्रायणीय आगम और नोआगम भावअग्रायणीयके भेदसे दो प्रकार है। उनमें अग्रायणीपूर्वका धारक उपयोग युक्त जीव आगमभावअग्रायणीय कहलाता है। अग्रायणीय पूर्वके अर्थको विषय करने-वाला केवलज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान रूप उपयोग नोआगमभावअग्रायणीय है। यहां द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा करके तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यअग्रायणीय और अक्षर-

१ प्रतिषु 'बुद्धी' इति पाठः। २ अ-काप्रत्योः 'भविण' इति पाठः।

तव्वदिरित्तणोआगमदव्वग्गेणिए अक्खरट्ठवणग्गेणिए च पयदं । पज्जवट्ठियणयं पडुच्च आगमभावग्गेणिए पयदं । णइगमणयं पडुच्च अग्गेणियपुव्वहर-तिकोडिपरिणयजीवदव्वेण पयदं । एवं णिक्खेव-णएहि अवयारो परूविदो ।

पमाण-पमेयाणं दोण्हं पि एत्थ गहणं कायव्वं, अण्णोण्णाविणाभावादो ।

पुव्वाणुपुव्वीए बिदियमग्गेणियं । पच्छाणुपुव्वीए तेरसमं । जत्थ-तत्थाणुपुव्वीए अवत्तव्वं, पढमं बिदियं तदियं चउत्थं पंचमं छट्ठं सत्तममट्ठमं णवमं दसममेक्कारसमं बारसमं वा त्ति णियमाभावादो । अंगानामग्रमेति गच्छति प्रतिपादयतीति गोण्णणाममग्गेणियं । अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणिओगद्दारेहि संखेज्जमणंतं वा अत्थाणंतियादो[1] । वत्तव्वं ससमओ, परसमयपरूवणाभावादो । अत्थाहियारो चोद्दसविहो । तं जहा— पुव्वंते अवरंते धुवे अद्धुवे चयणलद्धी अद्धुवसंपणिधाणे कप्पे अट्ठे भोम्मावयादीए[2] सव्वट्ठे कप्पणिज्जाणे तीदाणगय-

---

स्थापना रूप अग्रायणीय प्रकृत है । पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा करके आगमभावअग्रायणीय प्रकृत है । नैगमनयकी अपेक्षा करके अग्रायणीयपूर्वका धारक त्रिकोटिपरिणत (उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य; अथवा द्रव्य, गुण व पर्याय; अथवा सत्, असत् व उभय स्वरूप) जीव द्रव्य प्रकृत है । इस प्रकार निक्षेप और नयसे अवतारकी प्ररूपणा की है ।

प्रमाण और प्रमेय दोनोंका ही यहां ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, वे परस्परमें अविनाभावी हैं ।

पूर्वानुपूर्वीसे अग्रायणीयपूर्व द्वितीय है । पश्चादानुपूर्वीसे वह तेरहवां है । यत्र-तत्रानुपूर्वीसे वह अवक्तव्य है, क्योंकि, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, आठवां, नौवां, दशवां, ग्यारहवां, अथवा बारहवां है, इस प्रकार उक्त आनुपूर्वीकी अपेक्षा कोई नियम नहीं है ।

अंगोंके अग्र अर्थात् प्रधान पदार्थको वह प्राप्त होता है अर्थात् प्रतिपादन करता है अतः अग्रायणीय यह गौण्य नाम है । अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा संख्यात है, अथवा अर्थोंकी अनन्तताकी अपेक्षा वह अनन्त है । वक्तव्य स्वसमय है, क्योंकि, परसमयकी प्ररूपणाका यहां अभाव है । अर्थाधिकार चौदह प्रकार है । वह इस प्रकारसे है— पूर्वान्त, अपरान्त, ध्रुव, अध्रुव, चयनलब्धि, अध्रुवसंप्रणिधान, कल्प, अर्थ, भौमावयाद्य, सर्वार्थ, कल्पनिर्याण, (सर्वार्थकल्प, निर्वाण,) अतीतकाल और अनागत

---

१ प्रतिषु ' अत्थाणंतियालो ' इति पाठः ।　　२ प्रतिषु ' भोम्भावयाधीए ' इति पाठः ।

काले सिज्झए बुज्झए[1] त्ति । चोद्दसण्हं पुव्वाणमहियारपमाणपरूवणागाहाओ । तं जहा —

दस चोद्दस अट्ठट्ठारस बारस य दोसु पुव्वेसु ।
सोलस वीसं तीसं दसमम्मि य पण्णरस वत्थू ॥ ८४ ॥

एदेसिं पुव्वाणं एवदिओ वत्थुसंगहो भणिदो ।
सेसाणं पुव्वाणं दस दस वत्थू पणिवयामि[2] ॥ ८५ ॥

एदेसिमंकविण्णासो जहाकमेण—

१०	१४	८	१८	१२	१२	१६	२०	३०	१५	१०	१०	१०	१०

एत्थ चयणलद्धीए अहियारो, संगहिदमहाकम्मपयडिपाहुडत्तादो । संपधि चयणलद्धीए

काल, सिद्ध और बुद्ध । चौदह पूर्वोंके अधिकारोंके प्रमाणको बतलानेवाली गाथायें इस प्रकार हैं—

दश, चौदह, आठ, अठारह, दो पूर्वोंमें बारह, सोलह, बीस, तीस और दशवेंमें पन्द्रह, इस प्रकार क्रमसे आदिके इन दश पूर्वोंकी इतनी मात्र वस्तुओंका संग्रह कहा गया है । शेष चार पूर्वोंके दश दश वस्तु हैं । इनको मैं नमस्कार करता हूं ॥८४-८५॥

यथाक्रमसे इनके अंकोंकी रचना—

१०	१४	८	१८	१२	१२	१६	२०	३०	१५	१०	१०	१०	१०

यहां चयनलब्धिका अधिकार है, क्योंकि, उसमें महाकर्मप्रकृतिप्राभृत संगृहीत है ।

१ ष. खं. पु. १, पृ. १२३. अग्रायणीयपूर्वस्य यान्युक्तानि चतुर्दश । विज्ञातव्यानि वस्तूनि तानीमानि यथाक्रमम् ॥ पूर्वान्तमपरान्तं च ध्रुवमध्रुवमेव च । तथा च्यवनलब्धिश्च पंचमं वस्तु वर्णितम् ॥ अध्रुवं संप्रणध्यन्तं कल्पाश्चार्थश्च नामतः । भौमावयाद्यमित्यन्यत् तथा सर्वार्थकल्पकम् ॥ निर्वाणं च तथा ऽयाऽतीतानागतकल्पता । सिद्धयाख्यं चाप्युपाध्याख्यं ख्यापितं वस्तु चान्तिमम् ॥ ह. पु. १०, ७७-८०. पुव्वंतं अवरंतं धुवाधुवच्चवणलद्धि-णामाणि । अद्धुवसंपगही च अत्थं भोमावयज्जं च ॥ सव्वत्थकप्पणायं णाणमदीदं अणागदं कालं । सिद्धिमुवज्जं वंदे चउदहवत्थूणि बिदियस्स ॥ अं. प. २, ४२-४३.

२ प्रतिपूर्वं च वस्तूनि ज्ञातव्यानि यथाक्रमम् ॥ दश चतुर्दशाष्टौ चाष्टादश द्वादश द्वयोः । दशषड् विंशतिस्त्रिंशत् तस्मात् पंचदशैव तु ॥ दशैवोत्तरपूर्वाणां चतुर्णां वर्णितानि वै । ह. पु. १०, ७२-७४. दस चोद्दसट्ठ अट्ठारसयं बारं च बार सोलं च । वीसं तीसं पण्णारसं च दस चदुसु वत्थूणं ॥ गो. जी. ३४४.

चउव्विहो अवयारो होदि । तं जहा— चयणलद्धी चउव्विहो णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावचयण-लद्धिभेएण । तत्थ चयणलद्धिसद्दो बज्झत्थं मोत्तूण अप्पाणम्हि वट्टमाणो णामचयणलद्धी होदि । सा एसा त्ति चयणलद्धीए एयत्तेण संकप्पियत्थो ट्ठवणाचयणलद्धी । दव्वचयणलद्धी दुविहो आगम-णोआगमचयणलद्धिभेएण । तत्थ चयणलद्धिवत्थुपारओ अणुवजुत्तो आगमदव्व-चयणलद्धी । [णोआगमदव्वचयणलद्धी] तिविहा जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तदव्वचयण-लद्धिभेएण । जाणुगसरीर-भवियणोआगमदव्वचयणलद्धिदुगं सुगमं, बहुसो उत्तत्थत्तादो । तव्वदिरित्तणोआगमदव्वचयणलद्धी चयणलद्धीए सद्दरयणा । भावचयणलद्धी आगम-णोआगम-भावचयणलद्धिभेएण दुविहा । तत्थ चयणलद्धिवत्थुपारओ उवजुत्तो आगमभावचयणलद्धी । आगमेण विणा अत्थोवजुत्तो णोआगमभावचयणलद्धी । एदेसु णिक्खेवेसु दव्वट्ठियणयं पडुच्च णोआगमतव्वदिरित्तदव्वचयणलद्धीए अहियारो । पज्जवट्ठियणयं पडुच्च आगमभावचयणलद्धीए अहियारो । णइगमणयं पडुच्च चयणलद्धिवत्थुपारएण तिकोडिपरिणामेण जीवदव्वेण अहि-यारो । एवं णिक्खेव-णएहि चयणलद्धीए अवयारो परूविदो ।

पमाण-पमेयाणि अणुगमो चयणलद्धीए, कम्म-करणेसु अणुगमसद्दणिप्पत्तीदो ।

चयनलब्धिका चार प्रकार अवतार है । वह इस प्रकार है— चयन-लब्धि नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चयनलब्धिके भेदसे चार है । उनमें बाह्य अर्थको छोड़कर अपने आपमें रहनेवाला चयनलब्धि शब्द नामचयनलब्धि है । 'वह यह है' इस प्रकार चयनलब्धिके साथ अभेद रूपसे संकल्पित अर्थ स्थापनाचयनलब्धि है । द्रव्यचयनलब्धि आगमचयनलब्धि और नोआगमचयनलब्धिके भेदसे दो प्रकार है । उनमें चयनलब्धि वस्तुका पारगामी उपयोग रहित जीव आगमद्रव्यचयनलब्धि कहलाता है । [नोआगमद्रव्यचयनलब्धि] ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त द्रव्यचयनलब्धिके भेदसे तीन प्रकार है । ज्ञायकशरीर और भावी नोआगमद्रव्यचयनलब्धि ये दो सुगम हैं, क्योंकि, उनका अर्थ बहुत बार कहा जा चुका है । तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यचयनलब्धि चयन-लब्धिकी शब्दरचना है । भावचयनलब्धि आगम और नोआगम भावचयनलब्धिके भेदसे दो प्रकार है । उनमें चयनलब्धि वस्तुका पारगामी उपयोग युक्त जीव आगमभावचयन-लब्धि है । आगमके विना अर्थमें उपयोग रखनेवाला जीव नोआगमभावचयनलब्धि है ।

इन निक्षेपोंमें द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा करके नोआगमतद्व्यतिरिक्तद्रव्यचयन-लब्धिका अधिकार है । पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा करके आगमभावचयनलब्धिका अधि-कार है । नैगमनयकी अपेक्षाकर चयनलब्धि वस्तुके पारगामी त्रिकोटिपरिणाम रूप जीव द्रव्यका अधिकार है । इस प्रकार निक्षेप और नयसे चयनलब्धिके अवतारकी प्ररूपणा की है ।

चयनलब्धिका अनुगम प्रमाण और प्रमेय है, क्योंकि, कर्म और करण कारकमें

पुव्वाणुपुव्वीए चयणलद्धी पंचमी। पच्छाणुपुव्वीए दसमं। जत्थ-तत्थाणुपुव्वीए अवत्तव्वा, पढमा बिदिया तदिया चउत्थी पंचमी छट्टी वा त्ति णियमाभावादो। चयणलद्धि त्ति गुणणामं, चयणलद्धिपरूवणादो। अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्ज- [मत्थदो अणंतं, पमेयाण-] माणंतियादो। वत्तव्वं ससमओ, परसमयपरूवणाभावादो। अत्थाधियारो वीसदिविधो, सव्ववत्थुसु पाहुडसण्णिदवीस-वीसाहियारसंभवादो। एत्थुवउज्जंती गाहा—

एक्केक्कम्हि य वत्थू वीसं वीसं च पाहुडा भणिदा[1]।
विसम-समा हि य वत्थू सव्वे पुण पाहुडेहि समा ॥ ८६ ॥

पुव्वाणं पुध पुध पाहुडसमासो एसो— २००, २८०, १६०, ३६०, २४०, २४०, ३२०, ४००, ६००, ३००, २००, २००, २००, २००। सव्ववत्थुसमासो पंचाणउदिसदमेत्तो |१९५|। सव्वपाहुडसमासो तिसहस्स-णवसदमेत्तो[2] |३९००|।

एत्थ वीसपाहुडेसु चउत्थेण[3] कम्मपयडिपाहुडेण अहियारो। तस्स वि उवक्कमो

अनुगम शब्द सिद्ध हुआ है। पूर्वानुपूर्वीसे चयनलब्धि पांचवीं है। पश्चादानुपूर्वीसे वह दसमी है। यत्र-तत्रानुपूर्वीसे वह अवक्तव्य है, क्योंकि प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पांचवीं अथवा छठी है, ऐसे नियमका यहां अभाव है। चयनलब्धि यह गुणनाम है, क्योंकि, इसमें चयनलब्धिकी प्ररूपणा है। अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा संख्यात और अर्थकी अपेक्षा वह अनन्त है, क्योंकि, उसके प्रमेय अनन्त हैं। वक्तव्य स्वसमय है, क्योंकि, परसमयप्ररूपणाका यहां अभाव है। अर्थाधिकार बीस प्रकार है, क्योंकि, सब वस्तुओंमें प्राभृत संज्ञावाले बीस बीस अधिकार सम्भव हैं। यहां उपयुक्त गाथा—

एक एक वस्तुमें बीस बीस प्राभृत कहे गये हैं। पूर्वोंमें वस्तुएं सम व विसम हैं, किन्तु वे सब वस्तुएं प्राभृतोंकी अपेक्षा सम हैं ॥ ८६ ॥

पूर्वोंके पृथक् पृथक् प्राभृतोंका योग यह है— २००, २८०, १६०, ३६०, २४०, २४०, ३२०, ४००, ६००, ३००, २००, २००, २००, २००। सब वस्तुओंका योग एक सौ पंचानबै मात्र होता है १९५। सब प्राभृतोंका योग तीन हजार नौ सौ मात्र होता है ३९००।

यहां चयनलब्धिके बीस प्राभृतोंमेंसे चतुर्थ कर्मप्रकृतिप्राभृतका अधिकार है।

---

१ प्रत्येकं विंशतिस्तेषां वस्तूनां प्राभृतानि तु ॥ ह. पु. १०, ७८. वीसं वीसं पाहुडअहियारे एक्कवत्थु-अहियारो। गो. जी. ३४२.

२ पणणउदिसया वत्थू पाहुडया तियसहस्सणवसया। एदेसु चोद्दसेसु वि पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि ॥ गो. जी. ३४६. ३ प्रतिषु 'चउत्थेसु' इति पाठः।

णिक्खेवो अणुगमो णओ त्ति चउव्विहो अवयारो। तत्थ ताव णिक्खेवो वुच्चदे— णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावकम्मपयडिपाहुडमिदि चउव्विहं कम्मपयडिपाहुडं। तत्थ आदिल्ला तिण्णि वि णिक्खेवा दव्वट्ठियणयसंभवा, भावणिक्खेवो पज्जवट्ठियणयप्पहवो। कम्मपयडिपाहुडसद्दो बज्झत्थणिरवेक्खो अप्पाणम्हि वट्टमाणो णामकम्मपयडिपाहुडं। तमेसो त्ति बुद्धीए कम्मपयडि-पाहुडेण एगत्तमुवगयत्थो ट्ठवणाकम्मपयडिपाहुडं। दव्वकम्मपयडिपाहुडमागम-णोआगमकम्म-पयडिपाहुडं इदि दुविहं। कम्मपयडिपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो आगमदव्वकम्मपयडिपाहुडं। णोआगमदव्वकम्मपयडिपाहुडं जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तणोआगमदव्वकम्मपयडिपाहुडं ति तिविहं। आदिल्लं दुगं सुगमं, बहुसो उत्तत्थादो। कम्मपयडिपाहुडसद्दरयणा तट्ठवणरयणा वा णोआगमतव्वदिरित्तदव्वकम्मपयडिपाहुडं। [भावकम्मपयडिपाहुडं] दुविहं आगम-णोआगम-भेएण। कम्मपयडिपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावकम्मपयडिपाहुडं। आगमेण विणा तदट्ठुवजुत्तो णोआगमभावकम्मपयडिपाहुडमुवयारादो। एत्थ दव्वट्ठियणयं पडुच्च तव्वदिरित्त-णोआगमदव्वकम्मपयडिपाहुडेण अहियारो। पज्जवट्ठियणयं पडुच्च आगमभावकम्मपयडि-पाहुडेण अहियारो। णइगमणयं पडुच्च कम्मपयडिपाहुडजाणओ तिकोडिपरिणामजुत्तो जीवो

उसका भी उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय, इस प्रकारसे चार प्रकारका अवतार है। उनमें निक्षेपको कहते हैं— कर्मप्रकृतिप्राभृतके नामकर्मप्रकृतिप्राभृत, स्थापनाकर्मप्रकृति-प्राभृत, द्रव्यकर्मप्रकृतिप्राभृत और भावकर्मप्रकृतिप्राभृत इस प्रकार चार भेद हैं। इनमें आदिके तीनों ही निक्षेप द्रव्यार्थिकनयके निमित्तसे होनेवाले हैं, किन्तु भावनिक्षेप पर्याया-र्थिकनयके निमित्तसे होनेवाला है। बाह्य अर्थकी अपेक्षा न रखकर अपने आपमें रहनेवाला कर्मप्रकृतिप्राभृत यह शब्द नामकर्मप्रकृतिप्राभृत है। 'वह यह है' इस प्रकारकी बुद्धिसे कर्मप्रकृतिप्राभृतके साथ एकताको प्राप्त पदार्थ स्थापनाकर्मप्रकृतिप्राभृत कहा जाता है। द्रव्यकर्मप्रकृतिप्राभृत आगमकर्मप्रकृतिप्राभृत और नोआगमकर्मप्रकृतिप्राभृतके भेदसे दो प्रकार है। कर्मप्रकृतिप्राभृतका जानकार उपयोग रहित जीव आगमद्रव्यकर्मप्रकृतिप्राभृत कहलाता है। नोआगमद्रव्यकर्मप्रकृतिप्राभृत ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्मप्रकृतिप्राभृतके भेदसे तीन प्रकार है। इनमेंसे आदिके दो सुगम हैं, क्योंकि, उनका अर्थ बहुत वार कहा जा चुका है। कर्मप्रकृतिप्राभृतकी शब्दरचना अथवा उसकी स्थापना रूप रचना नोआगमतद्व्यतिरिक्तद्रव्यकर्मप्रकृतिप्राभृत है। [भावकर्म-प्रकृतिप्राभृत] आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। कर्मप्रकृतिप्राभृतका जानकार उपयोग युक्त जीव आगमभावकर्मप्रकृतिप्राभृत कहलाता है। आगमके विना उसके अर्थमें उपयोग युक्त जीव उपचारसे नोआगमभावकर्मप्रकृति कहलाता है।

यहां द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा करके तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकर्मप्रकृति-प्राभृतका अधिकार है। पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा करके आगमभावकर्मप्रकृतिप्राभृतका अधिकार है। नैगमनयकी अपेक्षा कर्मप्रकृतिप्राभृतका जानकार त्रिकोटिपरिणाम युक्त

अहियट्ठिदो होदि। एवं कम्मपयडिपाहुडस्स णिक्खेव-णएहि अवयारो कदो।

पमाण-पमेयाणं दोण्णं पि एत्थाणुगमो, एक्काणुगमस्स इदराणुगमाविणाभावादो। पुव्वाणुपुव्वीए कम्मपयडिपाहुडं चउत्थं। पच्छाणुपुव्वीए सत्तारसमं। जत्थ-तत्थाणुपुव्वीए अवत्तव्वं। कम्मपयडिपरूवणादो कम्मपयडिपाहुडमिदि गुणणामं। अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणिओगद्दारेहि संखेज्जमणंतं वा, अत्थाणंतियादो। वत्तव्वं ससमओ, परसमयपरूवणाभावादो। अत्थाधियारो चदुवीसदिविधो 'कदि वेदणाए पस्से कम्मे पयडीसु बंधणे णिबंधणे पक्कमे उवक्कमे उदए मोक्खे पुण संकमे लेस्सा लेस्साकम्मे लेस्सापरिणामे तत्थेव सादमसादे दीहे-रहस्से भवधारणीए तत्थ पोग्गलअत्ता णिधत्तमणिधत्तं णिकाचिदमणिकाचिदं कम्मट्ठिदि-पच्छिमक्खंधे अप्पाबहुगं च सव्वत्थ' इदि सुत्तणिबद्धो[1]।

जीव अधिकृत है। इस प्रकार निक्षेप और नयसे कर्मप्रकृतिप्राभृतके अवतारकी प्ररूपणा की है।

प्रमाण और प्रमेय दोनोंका ही यहां अनुगम है, क्योंकि, एक अनुगमका दूसरे अनुगमके साथ अविनाभाव है। पूर्वानुपूर्वीसे कर्मप्रकृतिप्राभृत चतुर्थ है। पश्चादानुपूर्वीसे यह सत्तरहवां है। यत्र-तत्रानुपूर्वीसे अवक्तव्य है। कर्मप्रकृतियोंकी प्ररूपणा करनेसे कर्मप्रकृतिप्राभृत यह गुणनाम है। अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा वह संख्यात अथवा अर्थकी अनन्तताकी अपेक्षा अनन्त है। वक्तव्य स्वसमय है, क्योंकि, इसमें परसमयकी प्ररूपणाका अभाव है।

कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बन्धन, निबन्धन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम, वहां ही सात-असात, दीर्घ-ह्रस्व, भवधारणीय, पुद्गलात्म, निधत्त-अनिधत्त, निकाचित-अनिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिमस्कन्ध और सर्वत्र अल्पबहुत्व, इस प्रकार सूत्रनिबद्ध अर्थाधिकार चौबीस प्रकार है।

---

१ वस्तुनः पंचमस्यात्र चतुर्थे प्राभृते पुनः। कर्मप्रकृतिसंज्ञे तु योगद्वाराण्यमूनि तु॥ कृतिश्च वेदना स्पर्शः कर्माख्यं च पुनः परम्। प्रकृतिश्च तथैवान्यद् बन्धनं च निबन्धनम्॥ प्रक्रमोपक्रमौ प्रोक्तावुदयो मोक्ष एव च। संक्रमश्च तथा लेश्या लेश्याकर्म च वर्णितम्॥ लेश्यायाः परिणामश्च सातासातं तथैव च। दीर्घं ह्रस्वमपि तथा भवधारणमेव च॥ पुद्गलात्माभिधानं च तन्निधत्तानिधत्तकम्। सनिकाचितनामान्यन्यदनिकाचितमंयुतम्॥ कर्मस्थितिकमित्युक्तं पश्चिमं स्कन्ध एव च। समस्तविषयार्थानां बोध्याल्पबहुता तथा॥ ह. पु. १०, ८१-८६. पंचमवत्थु-चउत्थपाहुडयस्साणुयोगणामाणि। कियंवयणं तहेव फंसण-कम्मपयडिकं तह। बंधण णिबंधण-पाक्कमाणुक्कम-महब्भुदय-मोक्खा। संकम लेस्सा च तहा लेस्साए कम्म-परिणामा॥ सादमसादं दिग्घं हस्सं भवं धारणीयसण्णं च। पुरुपोग्गलप्पणामं णिहत्त-अणिहत्तणामाणि॥ सणिकाचिदमणिकाचिदमह कम्मट्ठिदि-पच्छिमक्खंधा। अप्पबहुत्तं च तहा तद्दाराणं च चउवीसं॥ अं. प. २, ४४-४७.

एदेसिं चदुवीसण्णमणिओगद्दाराणं वत्तव्वपरूवणा कीरदे । तं जहा— कदीए ओरालिय-वेउव्विय-तेजाहार-कम्मइयसरीराणं संघादण-परिसादणकदीओ भवपढमापढम-चरिमम्मिट्ठिदजीवाणं कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंखाओ च परूविज्जंति । वेदणाए कम्म-पोग्गलाणं वेदणासण्णिदाणं वेदणणिक्खेवादिसोलसेहि अणिओगद्दारेहि परूवणा कीरदे । पासणिओगद्दारम्मि कम्म-पोग्गलाणं णाणावरणादिभेएण अट्ठभेदमुवगयाणं फासगुणसंबंधेण पत्तफासणामाण पासणिक्खेवादिसोलसेहि अणियोगद्दारेहि परूवणा कीरदे । कम्मे त्ति अणियोगद्दारे पोग्गलाणं णाणावरणादिकम्मकरणक्खमत्तणेण पत्तकम्मसण्णाणं कम्मणिक्खेवादिसोलसेहि अणियोगद्दारेहि परूवणा कीरदे । पयडि त्ति अणियोगद्दारम्हि[1] पोग्गलाणं कदिम्हि परूविदसंघादाणं वेदणाए पण्णविदावत्थाविसेस-पच्चयादीणं पासम्मि परूविदजीवसंबंधाणं जीवसंबंधगुणेण कम्मम्मि णिरूविदवावाराणं पयडिणिक्खेवादिसोलसअणियोगद्दारेहि सहाव-

इन चौबीस अनुयोगद्वारोंकी विषयप्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— कृतिअनुयोगद्वारमें औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, आहारक और कार्मण शरीरोंकी संघातन और परिशातन रूप कृतिकी तथा भवके प्रथम, अप्रथम और चरम समयमें स्थित जीवोंकी कृति, नोकृति एवं अवक्तव्य रूप संख्याओंकी प्ररूपणा की जाती है। वेदना अनुयोगद्वारोंमें वेदना संज्ञावाले कर्मपुद्गलोंकी वेदनानिक्षेप आदि सोलह अनुयोगद्वारोंके द्वारा प्ररूपणा की जाती है। स्पर्श अनुयोगद्वारमें स्पर्श गुणके सम्बन्धसे स्पर्श नामको व ज्ञानावरणादिके भेदसे आठ भेदको भी प्राप्त हुए कर्मपुद्गलोंकी स्पर्शनिक्षेप आदि सोलह अनुयोगद्वारोंसे प्ररूपणा की जाती है। कर्म अनुयोगद्वारमें कर्मनिक्षेप आदि सोलह अनुयोगद्वारोंके द्वारा ज्ञानके आवरण आदि कार्योंके करनेमें समर्थ होनेसे कर्म संज्ञाको प्राप्त पुद्गलोंकी प्ररूपणा की जाती है। प्रकृति अनुयोगद्वारमें—कृति अधिकारमें जिनके संघातन स्वरूपकी प्ररूपणा की गई है, वेदना अधिकारमें जिनके अवस्थाविशेष व प्रत्ययादिकोंकी प्ररूपणा की गई है, स्पर्श अधिकारमें जिनके जीवके साथ सम्बन्धकी प्ररूपणा की गई है, तथा जीवसम्बन्ध गुणसे कर्म अधिकारमें जिनके व्यापारकी प्ररूपणा की गई है— उन पुद्गलोंके स्वभावकी प्रकृतिनिक्षेप आदि सोलह अनुयोगद्वारोंसे प्ररूपणा की जाती है।

१ प्रतिषु ' अणियोगद्दारेहि इति पाठः।

परूवणा कीरदे । जं तं बंधणं तं चउव्विहो बंधो बंधगा बंधणिज्जं बंधविधाणमिदि । तत्थ बंधो जीव-कम्मपदेसाणं सादियमणादियं च बंधं वण्णेदि । बंधगाहियारो अट्ठविहकम्मबंधगे परूवेदि । सो च खुद्दाबंधे परूविदो । बंधणिज्जं बंधपाओग्ग-तदपाओग्गपोग्गलदव्वं परूवेदि । बंधविहाणं पयडिबंधं ट्ठिदिबंधं अणुभागबंधं पदेसबंधं च परूवेदि ।

णिबंधणं मूलुत्तरपयडीणं णिबंधणं वण्णेदि । जहा चक्खिदियं रूवम्मि णिबद्धं, सोदिंदियं सद्दम्मि णिबद्धं, घाणिंदियं गंधम्मि णिबद्धं, जिब्भिदियं रसम्मि णिबद्धं, पासिंदियं कक्खदादिपासेसु णिबद्धं, तहा इमाओ पयडीओ एदेसु अत्थेसु णिबद्धाओ त्ति णिबंधणं परूवेदि, एसो भावत्थो ।

पक्कमे त्ति अणियोगद्दारं अकम्मसरूवेण ट्ठिदाणं कम्मइयवग्गणाखंधाणं मूलुत्तरपयडिसरूवेण परिणममाणाणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभागविसेसेण विसिट्ठाणं पदेसपरूवणं कुणदि ।

उवक्कमे त्ति अणियोगद्दारस्स चत्तारि अहियारा बंधणोवक्कमो उदीरणोवक्कमो उवसामणोवक्कमो विपरिणामोवक्कमो चेदि । तत्थ बंधोवक्कमो बंधबिदियसमयप्पहुडि

जो बन्धन अनुयोगद्वार है वह बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्धविधान इस तरह चार प्रकार है । उनमें बन्ध अधिकार जीव और कर्मके प्रदेशोंके सादि व अनादि बन्धका वर्णन करता है । बन्धक अधिकार आठ प्रकारके कर्मोंको बांधनेवाले जीवोंकी प्ररूपणा करता है । उसकी क्षुद्रकबन्धमें प्ररूपणा की जा चुकी है । बन्धनीय अधिकार बन्धके योग्य और उसके अयोग्य पुद्गल द्रव्यकी प्ररूपणा करता है । बन्धविधान प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धकी प्ररूपणा करता है ।

निबन्धन अनुयोगद्वार मूल और उत्तर प्रकृतियोंके निबन्धनका वर्णन करता है । जैसे चक्षु इन्द्रिय रूपमें निबद्ध है, श्रोत्र इन्द्रिय शब्दमें निबद्ध है, घ्राण इन्द्रिय गन्धमें निबद्ध है, जिह्वा इन्द्रिय रसमें निबद्ध है और स्पर्श इन्द्रिय कर्कशादि स्पर्शोंमें निबद्ध है; उसी प्रकार ये प्रकृतियां इन अर्थोंमें निबद्ध हैं, इस प्रकार निबन्धनकी प्ररूपणा करता है; यह भावार्थ है ।

प्रक्रम अनुयोगद्वार अकर्म स्वरूपसे स्थित, मूल व उत्तर प्रकृतियोंके स्वरूपसे परिणमन करनेवाले, तथा प्रकृति, स्थिति व अनुभागके भेदसे विशेषताको प्राप्त हुए कार्मणवर्गणास्कन्धोंके प्रदेशोंकी प्ररूपणा करता है ।

उपक्रम अनुयोगद्वारके बन्धनोपक्रम, उदीरणोपक्रम, उपशामनोपक्रम और विपरिणामोपक्रम, ये चार अधिकार हैं । उनमें बन्धोपक्रम अधिकार बन्धके द्वितीय समयसे लेकर

अट्ठण्णं कम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणं बंधवण्णणं कुणदि । उदीरणोवक्कमो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणमुदीरणं परूवेदि । उवसामणोवक्कमो पसत्थोवसामणमप्पसत्थोवसामणं[1] च पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसभेदभिण्णं परूवेदि । विपरिणाममुवक्कमो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणं देसणिज्जरं सयलणिज्जरं च परूवेदि ।

उदयाणिओगद्दारं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसुदयं परूवेदि । मोक्खे त्ति अणिओगद्दारं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणं मोक्खं वण्णेदि । मोक्ख-विपरिणामोवक्कमाणं को भेदो ? वुच्चदे — विपरिणामोवक्कमो देस-सयलणिज्जराओ परूवेदि । मोक्खो पुण देस-सयलणिज्जराहि परपयडिसंकमोकड्डणुक्कड्डण-अद्धट्ठिदिगलणेहि पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसभिण्णं मोक्खं वण्णेदि त्ति अत्थि भेदो । संकमे त्ति अणियोगद्दारं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससंकमे परूवेदि । लेस्से त्ति अणियोगद्दारं छदव्वलेस्साओ परूवेदि । लेस्सयम्मे त्ति अणियोगद्दारमंतरंगछलेस्सा-परिणयजीवाणं बज्झकज्जपरूवणं कुणइ । लेस्सापरिणामे त्ति अणियोगद्दारं जीव-पोग्गलाणं

आठ कर्मोंके प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका वर्णन करता है। उदीरणोपक्रम अधिकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी उदीरणाकी प्ररूपणा करता है। उपशामनोपक्रम अधिकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे भेदको प्राप्त प्रशस्तोपशामना एवं अप्रशस्तोपशामनाकी प्ररूपणा करता है। विपरिणामोपक्रम अधिकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी देशनिर्जरा और सकलनिर्जराकी प्ररूपणा करता है।

उदयानुयोगद्वार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके उदयकी प्ररूपणा करता है। मोक्षानुयोगद्वार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके मोक्षका वर्णन करता है।

शंका — मोक्ष और विपरिणामोपक्रमके क्या भेद है ?

समाधान — इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि विपरिणामोपक्रम अधिकार देशनिर्जरा और सकलनिर्जराकी प्ररूपणा करता है, परन्तु मोक्षानुयोगद्वार देशनिर्जरा व सकलनिर्जराके साथ परप्रकृतिसंक्रमण, अपकर्षण, उत्कर्षण और कालस्थितिगलनसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्धके भेदसे भेदको प्राप्त मोक्षका वर्णन करता है, यह दोनोंमें भेद है।

संक्रम अनुयोगद्वार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके संक्रमणकी प्ररूपणा करता है। लेश्यानुयोगद्वार छह द्रव्यलेश्याओंकी प्ररूपणा करता है। लेश्याकर्मानुयोगद्वार अन्तरंग छह लेश्याओंसे परिणत जीवोंके बाह्य कार्यकी प्ररूपणा करता है। लेश्यापरि-

---

१ अ-आप्रत्योः ' -वसामण्णाणं ', ' काप्रतौ ' -वसामणाणं ' इति पाठः ।

दव्व-भावलेस्साहि परिणमणविहाणं वण्णेदि । सादमसादे त्ति अणियोगद्दारमेयंतसाद-अणेयंत-सादमेयंतासादमणेयंतासादाणं[1] गदियादिमग्गणाओ अस्सिदूण परूवणं कुणइ । दीहेरहस्से त्ति अणियोगद्दारं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसे अस्सिदूण दीह-रहस्सत्तं परूवेदि । भवधारणीए त्ति अणियोगद्दारं केण कम्मेण णेरइय-तिरिक्ख-मणुस-देवभवा धरिज्जंति त्ति परूवेदि । पोग्गल-अत्ते त्ति अणियोगद्दारं गहणादो अत्ता पोग्गला परिणामदो अत्ता पोग्गला उवभोगदो अत्ता पोग्गला आहारदो अत्ता पोग्गला ममत्तादो[2] अत्ता पोग्गला परिग्गहादो अत्ता पोग्गला त्ति अप्पणिज्जाणप्पणिज्जपोग्गलाणं पोग्गलाणं संबंधेण पोग्गलत्तं पत्तजीवाणं च परूवणं कुणदि । णिधत्तमणिधत्तमिदि अणियोगद्दारं पयडि-ट्ठिदि-अणुभागाणं णिधत्तमणिधत्तं च परूवेदि । णिधत्तमिदि किं ? जं पदेसग्गं ण सक्कमुदए दादुं अण्णपयडिं वा संकामेदुं तं णिधत्तं णाम । तव्विवरीयमणिधत्तं । णिकाचिदमणिकाचिदमिदि अणियोगद्दारं पयडि-ट्ठिदि-अणुभागाणं

णामानुयोगद्वार जीव और पुद्‌गलोंके द्रव्य और भाव लेश्या रूपसे परिणमन करनेके विधानका वर्णन करता है।

सातासातानुयोगद्वार एकान्त सात, अनेकान्त सात, एकान्त असात और अनेकान्त असातकी गति आदि मार्गणाओंका आश्रय करके प्ररूपणा करता है। दीर्घ-ह्रस्वानुयोगद्वार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका आश्रय करके दीर्घता और ह्रस्वताकी प्ररूपणा करता है। भवधारणीय अनुयोगद्वार किस कर्मसे नारकी पर्याय, किस कर्मसे तिर्यंच पर्याय, किस कर्मसे मनुष्य पर्याय और किस कर्मसे देव पर्याय धारण की जाती है, इसकी प्ररूपणा करता है। पुद्‌गलात्त अनुयोगद्वार ग्रहणसे आत्त पुद्‌गल, परिणामसे आत्त पुद्‌गल, उपभोगसे आत्त पुद्‌गल, आहारसे आत्त पुद्‌गल, ममत्वसे आत्त पुद्‌गल और परिग्रहसे आत्त पुद्‌गल, इस प्रकार विवक्षित और अविवक्षित पुद्‌गलोंका तथा पुद्‌गलोंके सम्बन्धसे पुद्‌गलत्वको प्राप्त जीवोंकी भी प्ररूपणा करता है। निधत्तानिधत्त अनुयोगद्वार प्रकृति, स्थिति और अनुभागके निधत्त एवं अनिधत्तकी प्ररूपणा करता है।

शंका—निधत्त किसे कहते हैं ?

समाधान—जो प्रदेशाग्र उदयमें देनेके लिये अथवा अन्य प्रकृति रूप परिणमानेके लिये शक्य नहीं है वह निधत्त कहलाता है। इससे विपरीत अनिधत्त है।

निकाचितानिकाचित अनुयोगद्वार प्रकृति, स्थिति और अनुभागके निकाचन और

---

१ प्रतिषु ' -अणेयंततोदाणं ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' ममत्तीदो ' इति पाठः ।

णिकाचणाणिकाचणं परूवेदि । णिकाचणमिदि किं ? जं पदेसग्गं ण सक्कमोकड्डिदुमुक्कड्डिदुमण्णपयडिसंकामेदुमुदए दादुं वा तण्णिकाचिदं णाम । तव्विवरीदमणिकाचिदं । एत्थुवउज्जंती गाहा—

> उदए संकम-उदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्कं ।
> उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्मं[1] ॥ ८७ ॥

कम्मट्ठिदि त्ति अणियोगद्दारं सव्वकम्माणं सत्तिकम्मट्ठिदिमुक्कड्डणोकड्डणजणिदट्ठिदिं च परूवेदि । पच्छिमक्खंधे त्ति अणिओगद्दारं दंड-कवाट-पदर-लोगपूरणाणि तत्थ ट्ठिदि-अणुभागखंडयघादणविहाणं जोगकिट्टीओ काऊण जोगणिरोहसरूवं कम्मक्खवणविहाणं च परूवेदि । अप्पाबहुगाणिओगद्दारं अदीदसव्वाणियोगद्दारेसु अप्पाबहुगं परूवेदि ।

जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति कट्टु कदिअणिओगद्दारपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

अनिकाचनकी प्ररूपणा करता है ।

शंका — निकाचन किसे कहते हैं ?

समाधान — जो प्रदेशाग्र अपकर्षणके लिये, उत्कर्षणके लिये, अन्य प्रकृति रूप परिणमानेके लिये और उदयमें देनेके लिये शक्य नहीं है वह निकाचित कहलाता है । इससे विपरीत अनिकाचित है । यहां उपयुक्त गाथा —

जो कर्म उदयमें नहीं दिया जा सके वह उपशान्त कहलाता है । जो कर्म संक्रमण व उदयमें नहीं दिया जा सके उसे निधत्त कहते हैं । जो कर्म उदय, संक्रमण, उत्कर्षण व अपकर्षण, इन चारोंमें ही नहीं दिया जा सकता है वह निकाचित कहा जाता है ॥८७॥

कर्मस्थिति अनुयोगद्वार सब कर्मोंकी शक्ति रूप कर्मस्थिति और उत्कर्षण-अपकर्षणसे उत्पन्न स्थितिकी भी प्ररूपणा करता है । पश्चिमस्कन्ध अनुयोगद्वार दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातोंकी, उनमें स्थितिकाण्डक व अनुभागकाण्डकोंके घातनेके विधानकी, योगकृष्टियोंको करके होनेवाले योगनिरोधके स्वरूपकी, तथा कर्मोंके क्षय करनेकी विधिकी प्ररूपणा करता है । अल्प-बहुत्व अनुयोगद्वार पिछले सब अनुयोगद्वारोंमें अल्प-बहुत्वकी प्ररूपणा करता है ।

'जैसा उद्देश होता है वैसा ही निर्देश होता है' ऐसा समझ कर कृति अनुयोगद्वारकी प्ररूपणाके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं —

---

१ गो. क. ४४०.

कदि त्ति सत्तविहा कदी— णामकदी ठवणकदी दव्वकदी गणणकदी गंधकदी करणकदी भावकदी चेति ॥ ४६ ॥

कदि त्ति एत्थ जो इदिसद्दो तस्स अट्ठ अत्था —

> हेतावेवंप्रकारादौ[1] व्यवच्छेदे विपर्यये ।
> प्रादुर्भावे समाप्तौ च इति-शब्दः प्रकीर्तितः[2] ॥ ८८ ॥ इति वचनात् ।

एतेष्वर्थेषु क्वायमितिशब्दः प्रवर्तते ? स्वरूपावधारणे । ततः किं सिद्धम् ? कृतिरित्यस्य शब्दस्य योऽर्थः सोऽपि कृतिः, अर्थाभिधान-प्रत्ययास्तुल्यनामधेया[3] इति न्यायात्तस्य ग्रहणं सिद्धम् । स च कृत्यर्थः सप्तविधः नामकृत्यादिभेदेन । कधमेगो कदिसद्दो अणेगेसु

कृति सात प्रकार है— नामकृति, स्थापनाकृति, द्रव्यकृति, गणनकृति, ग्रन्थकृति, करणकृति और भावकृति ॥ ४६ ॥

' कदि त्ति ' यहां जो इति शब्द है उसके आठ अर्थ हैं, क्योंकि,

हेतु, एवं, प्रकार, आदि, व्यवच्छेद, विपर्यय, प्रादुर्भाव और समाप्ति, इन अर्थोंमें इति शब्द कहा गया है ॥ ८८ ॥ ऐसा वचन है ।

शंका — इन अर्थोंमेंसे कौनसे अर्थमें यहां इति शब्दकी प्रवृत्ति है ?

समाधान — यहां स्वरूपके अवधारणमें इति शब्दकी प्रवृत्ति हुई है ।

शंका— इससे क्या सिद्ध होता है ?

समाधान—कृति इस शब्दका जो अर्थ है वह भी कृति है, क्योंकि अर्थ, अभिधान और प्रत्यय ये तुल्य नाम हैं ' इस न्यायसे उसका ग्रहण सिद्ध है ।

वह कृत्यर्थ नामकृति आदिके भेदसे सात प्रकार है ।

शंका—एक कृति शब्द अनेक अर्थोंमें कैसे रहता है ?

---

१ प्रतिषु ' प्रकारादि ' इति पाठः ।

२ अने. ना. ३९. इति हेतौ प्रकारे च प्रकाशाद्यनुकर्षयोः । इति प्रकरणेऽपि स्यात्समाप्तौ च निदर्शने ॥ विश्वलोचन (अव्ययवर्ग) २१. ३ स. त. ७ (उद्धृतमिदं तत्र टीकायाम्).

अत्थेसु वट्टदे ? ण, अणेयसहकारिकारणसण्णिहाणवसेण एयादो वि बहूणं कज्जाणमुप्पत्ति-दंसणादो । दृष्टाश्च क्रमाक्रमाभ्यामनेकधर्मैः परिणमन्तोऽर्थाः[१] । न च दृष्टस्यापलापः शक्यते कर्तुमतिप्रसंगात् । एष कृतिशब्दः कर्तृवर्जितेषु त्रिकालगोचराशेषकारकेषु वर्तत इति सप्तस्वपि[२] कृतिषु यथासम्भवकारकयोजना विधेया । सत्तण्णं कदीणमंते ट्ठिदइदिसद्दो आदीए आद्यर्त्वे वट्टदि त्ति घेत्तव्वो, सत्त चेव कदीए णिक्खेवा होंति त्ति णियमाभावादो ।

कदिणयविभासणदाए को णओ काओ कदीओ इच्छदि ? ॥ ४७ ॥

सत्तण्णं णिक्खेवाणं णामणिद्देसं काऊण तेसिमट्ठपरूवणमकाऊण किमट्ठं णय-विभासणदा कीरदे ? जहा सव्वे लोगववहारा दव्व-पज्जवट्ठियणयं अस्सिदूण ट्ठिदा तहा एसो वि णामादिववहारो दव्व-पज्जवट्ठियणयं अस्सिदूण ट्ठिदो त्ति जाणावणट्ठं कीरदे । एदेसिं

समाधान—नहीं, क्योंकि, अनेक सहकारी कारणोंकी समीपता होनेसे एकसे भी बहुत कार्योंकी उत्पत्ति देखी जाती है । तथा क्रम और अक्रमसे अनेक धर्म रूपसे परिणमन करनेवाले पदार्थ देखे भी जाते हैं । और देखे गये पदार्थका अपह्नव नहीं किया जा सकता, क्योंकि, ऐसा होनेपर अतिप्रसंग दोष आता है ।

यह कृति शब्द कर्ता कारकको छोड़कर तीनों काल विषयक समस्त कारकोंमें है, अतएव सातों कृतियोंमें यथासम्भव कारकोंकी योजना करना चाहिये । सात कृतियोंके अन्तमें स्थित इति शब्द आदि अर्थात् आद्यत्व अर्थमें है ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, सात ही कृतियोंके निक्षेप हैं, ऐसा नियम नहीं है ।

कृतियोंके नयोंके व्याख्यानमें कौन नय किन कृतियोंकी इच्छा करता है ? ॥४७॥

शंका—सात निक्षेपोंका नामनिर्देश करके उनके अर्थकी प्ररूपणा न कर नयोंका व्याख्यान किस लिये किया जाता है ?

समाधान—जिस प्रकार सब लोकव्यवहार द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयका आश्रय करके स्थित हैं उसी प्रकार यह नामादिक व्यवहार भी द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नयका आश्रय करके स्थित है, यह जतलानेके लिये नयोंका व्याख्यान किया जाता है ।

---

१ प्रतिषु ' -धर्मः परिणमन्तोर्थः ' इति पाठः ।   २ प्रतिषु ' सत्स्वपि ' इति पाठः ।

णामादिववहाराणं दुविहणयावलंबणत्तजाणावणं किंफलं । एदेसिं ववहाराणं सच्चत्तपण्णवण-फलं[1] । ण च दुविहणयणिबंधणो संववहारो चप्पलओ, अणुवलंभादो । ण च दुण्णयाणं सच्चत्तमत्थि, णिसिद्धपडिवक्खविसयाणं सगविसयाभावादो सच्चत्ताभावादो । तदो ण दुण्णया संववहारकारणं । सुणया कधं सविसया ? एयंतेण पडिवक्खणिसेहाकारणादो गुण-पहाणभावेण ओसारिदपमाणबाहादो । एयंतो अवत्थू कधं ववहारकारणं ? एयंतो अवत्थू ण संववहारकारणं किंतु तक्कारणमणेयंतो पमाणविसईकओ, वत्थुत्तादो । कधं पुण णओ सव्वसंववहाराणं कारण-मिदि ? वुच्चदे— को एवं भणदि णओ सव्वसंववहाराणं कारणमिदि । पमाणं पमाणविसई-

शंका—ये नामादिक व्यवहार दो प्रकारके नयोंके आश्रित हैं, यह बतलानेका क्या प्रयोजन है ?

समाधान—इसका प्रयोजन नामादिक व्यवहारोंकी सत्यता प्रगट करना है ।

यदि कहा जाय कि दोनों प्रकारके नयोंके निमित्तसे होनेवाला संव्यवहार मिथ्या है, सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता । और दुर्नयोंके सत्यता हो नहीं सकती, क्योंकि, वे प्रतिपक्षभूत विषयोंका सर्वथा निषेध करते हैं । इसीलिये स्वविषयोंका भी अभाव होनेसे उनके सत्यता रह नहीं सकती । इसी कारण दुर्नय संव्यवहारके कारण नहीं है ।

शंका – सुनयोंके अपने विषयोंकी व्यवस्था कैसे सम्भव है ?

समाधान—चूंकि सुनय सर्वथा प्रतिपक्षभूत विषयोंका निषेध नहीं करते, अतः उनके गौणता और प्रधानताकी अपेक्षा प्रमाणबाधाके दूर कर देनेसे उक्त विषयव्यवस्था भले प्रकार सम्भव है ।

शंका—जब कि एकान्त अवस्तु स्वरूप है तब वह व्यवहारका कारण कैसे हो सकता है ?

समाधान—अवस्तु स्वरूप एकान्त संव्यवहारका कारण नहीं है, किन्तु उसका कारण प्रमाणसे विषय किया गया अनेकान्त है; क्योंकि वह वस्तु स्वरूप है ।

शंका—यदि ऐसा है तो फिर सब संव्यवहारोंका कारण नय कैसे हो सकता है ?

समाधान—इसका उत्तर कहते हैं, कौन ऐसा कहता है कि नय सब संव्यवहारोंका

१ प्रतिषु ' -पण्णवण्णफलं ' इति पाठः ।

कयट्ठा च सयलसंववहारकारणं ? किंतु सव्वो संववहारो पमाणणिबंधणो णयसरूवो त्ति परूवेमो, सव्वसंववहारेसु गुण-पहाणभावोवलंभादो । अधवा पमाणादो णयाणमुप्पत्ती, अणवगट्ठे[1] गुण-प्पहाणभावाहिप्पायाणुप्पत्तीदो । णएहिंतो संववहारुप्पत्ती, अप्पणो अहिप्पायवसेण एगाणेगववहारुवलंभादो । तदो णओ वि संववहारकारणमिदि वुत्ते ण कोच्छि दोसो । किमर्थं संव्यवहारो नयात्मक एव ? न, स्वाभाव्यात्, अन्यथा व्यवहर्तुमुपायाभावात् । णिक्खेवट्ठ-परूवणाए कदाए पच्छा णयविभासणा किण्ण कीरदे ? ण, णयपरूवणाए विणा दुविहणयट्ठियजीवाणं परूविज्जमाणणिक्खेवपरूवणाए संकर-वदिकरभावेण अत्थसमप्पणं कुणंतीए वइफल्लप्पसंगादो । णेदं पुच्छासुत्तं, किंतु आइरियासंकासुत्तं; पुव्विल्लसुत्तचालणवसेण एदस्स सुत्तस्स अवयारादो ।

णइगम-ववहार-संगहा सव्वाओ ॥ ४८ ॥

कारण है, प्रमाण और प्रमाणसे विषय किये गये पदार्थ भी समस्त संव्यवहारोंके कारण हैं। किन्तु प्रमाणनिमित्तक सब संव्यवहार नय स्वरूप हैं, ऐसा हम कहते हैं; क्योंकि, सब संव्यवहारोंमें गौणता और प्रधानता पायी जाती है । अथवा, प्रमाणसे नयोंकी उत्पत्ति होती है, क्योंकि, वस्तुके अज्ञात होनेपर उसमें गौणता और प्रधानताका अभिप्राय बनता नहीं है । और नयोंसे संव्यवहारकी उत्पत्ति होती है, क्योंकि, अपने अभिप्रायके वशसे एक व अनेक रूप व्यवहार पाया जाता है । इस कारण नय भी संव्यवहारका कारण है, ऐसा कहनेमें कोई दोष नहीं है ।

शंका—संव्यवहार नय स्वरूप ही है, ऐसा क्यों है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है, तथा अन्य प्रकारसे व्यवहार करनेके लिये और कोई उपाय भी नहीं है ।

शंका—निक्षेपोंके अर्थकी प्ररूपणा कर चुकनेपर पीछे नयोंका व्याख्यान क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नयप्ररूपणाके विना दो प्रकारके नयोंके आश्रित जीवोंके लिये कही जानेवाली निक्षेपप्ररूपणा संकर व व्यतिकर रूपसे अर्थका समर्पण करनेवाली होगी, अतः उसके निष्फल होनेका प्रसंग आता है ।

यह पृच्छासूत्र नहीं है, किन्तु आचार्यका आशंकासूत्र है, क्योंकि, पूर्वोक्त सूत्रकी चालनाके वशसे इस सूत्रका अवतार हुआ है ।

नैगम, व्यवहार और संग्रह नय सब कृतियोंको स्वीकार करते हैं ॥ ४८ ॥

१ प्रतिषु ' अणवगए ' इति पाठः ।

एत्थ इच्छंति त्ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्टदे । ण तमेगवयणं, अत्थवसादो विहत्ति[1]-परिणामो होदि[2] त्ति बहुवयणं संपज्जदे । णामकदी एदेसिं तिण्णं णयाणं विसया[3] होदु णाम, आजम्मा आमरणादो अवट्ठिदत्थे सव्वकालमवट्ठिदत्तणेण अज्झवसिदसद्दत्थेसु सण्णासण्णि-संबंधुवलंभादो । ठवणकदी वि दव्वट्ठियणयविसया चेव होदि, पुधभूददव्वाणमेगत्तज्झवसाएण विणा ट्ठवणाणुववत्तीदो । दव्वकदी वि दव्वट्ठियणयविसया, आगम-णोआगमदव्वेसु पच्च-हिण्णापच्चयगेज्झत्तणेण अवगयावट्ठाणेसु दव्वकइत्तदंसणादो । कधं गणणकई दव्वट्ठियणय-विसया ? ण, गणंत-गणिज्जमाणाणं धुवावट्ठाणेण[4] विणा गणणकदीए असंभवादो । ण च एक्कमिदि गणिय तत्थेव विणट्ठो दुवादिगणणकारओ होदि, असंतस्स कत्तारत्तविरोहादो । ण च बिदियक्खणसमुप्पण्णो दुसंखमवहारयदि, अगहिदेक्कसंखस्स दुसंखावहारणाणुववत्तीदो । ण च गणिज्जमाणे अणिच्चे संते गणणकदी जुज्जदे, एक्कमिदि गणिददव्वे विणट्ठे दुवादि-

यहां ‘ इच्छन्ति ’ अर्थात् स्वीकार करते हैं इस पदकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति आती है । वह एकवचन नहीं है, किन्तु ‘ अर्थके वशसे विभक्तिका परिवर्तन होता है ’ इस न्यायसे बहुवचन सिद्ध होता है । अर्थात् यद्यपि पूर्व सूत्रमें ‘ इच्छति ’ ऐसा एकवचन है, परन्तु, उक्त न्यायसे अर्थके वश यहां ‘ इच्छंति ’ ऐसे बहुवचन पदकी अनुवृत्ति है ।

शंका—नामकृति इन तीन नयोंकी विषय भले ही हो, क्योंकि, जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त स्थिर अर्थमें सर्व काल अवस्थित स्वरूपसे निश्चित शब्द और अर्थमें संज्ञा-संज्ञी रूप सम्बन्ध पाया जाता है । स्थापनाकृति भी द्रव्यार्थिक नयकी विषय ही है, क्योंकि, पृथग्भूत द्रव्योंके एकत्वके निश्चय विना स्थापना बन नहीं सकती । द्रव्यकृति भी द्रव्यार्थिक नयकी विषय है, क्योंकि, प्रत्यभिज्ञान प्रत्ययके विषय रूपसे जिनका अव-स्थान अर्थात् स्थिरता अवगत है ऐसे आगम व नोआगम रूप द्रव्योंमें द्रव्यकृतिपना देखा जाता है । किन्तु गणनकृति द्रव्यार्थिक नयकी विषय कैसे हो सकती है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, गिननेवाले व्यक्ति और गिनी जानेवाली वस्तुओंकी स्थिरताके विना गणनकृति सम्भव ही नहीं है । कारण कि ‘ एक ’ इस प्रकार गिनकर यदि गणना करनेवाला वहां ही नष्ट हो जाय तो फिर वह ‘ दो ’ आदि गिनतीका करनेवाला नहीं हो सकता, क्योंकि, असत्के कर्ता होनेका विरोध है । और द्वितीय क्षणमें उत्पन्न व्यक्ति ‘ दो ’ संख्याका निश्चय नहीं कर सकता, क्योंकि, ‘ एक ’ संख्याको जिसने नहीं जाना है उसके ‘ दो ’ संख्याका निश्चय बन नहीं सकता । इसी प्रकार गिनी जाने-वाली वस्तुके भी अनित्य होनेपर गणनकृति उचित नहीं है, क्योंकि, ‘ एक ’ इस प्रकार

१ प्रतिषु ‘ विहिथि ’ इति पाठः । २ अर्थवशाद् विभक्तिपरिणामः । स. सि. २–२.
३ प्रतिषु ‘ विसए ’ इति पाठः । ४ प्रतिषु ‘ धुवट्ठाणेण ’ इति पाठः ।

गणणकरणाणुववत्तीदो । तदो गणणकदी दव्वट्ठियणयविसया ।

गंथकदीए दव्वट्ठियणयविसयत्तमेवं चेव वत्तव्वं, सद्दत्थकत्ताराणं णिच्चत्तेण[1] विणा गंथकदीए असंभवादो । करणकदी वि दव्वट्ठियणयविसया, छिंदंत-छिंदमाणदव्वाणं असि-वासिआदिकरणाणं च अणिच्चत्ते तदणुववत्तीदो । भावकदी दव्वट्ठियणयविसया ण होदि ।

णामट्ठवणादवियं एसो दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो ।
भावो दु पज्जवट्ठियपरूवणा एस परमत्थो[2] ॥ ८९ ॥

इदि वयणादो । किं च वट्टमाणपज्जाएणुवलक्खियं दव्वं भावो त्ति भण्णदि । ण च एसो भावो दव्वट्ठियणयविसओ होदि, पज्जवट्ठियणयस्स णिव्विसयत्तप्पसंगादो त्ति ? एत्थ परिहारो वुच्चदे — पज्जाओ दुविहो अत्थ-वंजणपज्जायभेएण । तत्थ अत्थपज्जाओ[3] एगादिसमयावट्ठाणो सण्णा-सण्णिसंबंधवज्जिओ अप्पकालावट्ठाणादो अइविसेसादो वा । तत्थ

गिने जानेवाले द्रव्यके नष्ट हो जानेपर ' दो ' आदि गिनती करना बन नहीं सकता । इस कारण गणनकृति द्रव्यार्थिक नयकी विषय है ।

ग्रन्थकृतिके भी द्रव्यार्थिक नयकी विषयताका इसी प्रकार कथन करना चाहिये, क्योंकि शब्द, अर्थ और कर्ताके नित्य होनेके विना ग्रन्थकृति सम्भव नहीं है । करणकृति भी द्रव्यार्थिक नयकी विषय है, क्योंकि, छेदनेवाले व्यक्ति, छेदे जानेवाले काष्ठादि द्रव्य और तलवार एवं वसूला आदि करणोंके अनित्य होनेपर वह बन नहीं सकती ।

शंका — भावकृति द्रव्यार्थिक नयकी विषय नहीं है, क्योंकि,

नाम, स्थापना और द्रव्य, यह द्रव्यार्थिक नयका निक्षेप है । किन्तु भावनिक्षेप पर्यायार्थिक नयका निक्षेप है, यह परमार्थ सत्य है ॥ ८९ ॥

ऐसा वचन है । दूसरी बात यह कि वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्य भाव कहा जाता है । सो यह भाव द्रव्यार्थिक नयका विषय नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा होनेपर पर्यायार्थिक नयके निर्विषय होनेका प्रसंग आता है ?

समाधान — यहां इस शंकाका परिहार कहते हैं, अर्थ और व्यञ्जन पर्यायके भेदसे पर्याय दो प्रकार हैं । उनमें अर्थपर्याय थोड़े समय तक रहनेसे अथवा अति विशेष होनेसे एक आदि समय तक रहनेवाली और संज्ञा-संज्ञी सम्बन्धसे रहित है । और उनमें जो

---

१ प्रतिषु ' णिधत्तेण ' इति पाठः । २ स. त. १-६.

३ तत्रार्थपर्यायाः सूक्ष्माः क्षणक्षयिणस्तथावाग्गोचरा विषया भवन्ति । पंचा. ता. टीका. १६.

जो सो वंजणपज्जाओ[1] [सो] जहण्णुक्कस्सेहि अंतोमुहुत्तासंखेज्जलोगमेत्तकालावट्ठाणो अणाइ-अणंतो वा । तत्थ वंजणपज्जाएण पडिगहियं दव्वं भावो होदि । एदस्स वट्टमाणकालो जहण्णुक्कस्सेहि अंतोमुहुत्तो संखेज्जालोगमेत्तो अणाइणिहणो वा, अप्पिदपज्जायपढमसमय-प्पहुडि आचरिमसमयादो एसो वट्टमाणकालो त्ति णायादो । तेण भावकदीए दव्वट्ठियणय-विसयत्तं ण विरुज्झदे । ण च सम्मइसुत्तेण सह विरोहो, सुद्धुज्जुसुत्त[2]णयविसयीकयपज्जाएणुव-लक्खियदव्वस्स सुत्ते भावत्तब्भुवगमादो[3] । एवं वुत्तासेसत्थं मणम्मि काऊण णेगम-ववहार-संगहा[4] सव्वाओ कदीओ इच्छंति त्ति भूदबलिभडारएण उत्तं ।

उजुसुदो ट्ठवणकदिं णेच्छदि ॥ ४९ ॥

अवसेसाओ कदीओ इच्छदि । कधमेदं सुत्तम्मि अवुत्तं णव्वदे ? अत्थावत्तीदो । उजु-सुदणओ णाम पज्जवट्ठियो, कधं तस्स णाम-दव्व-गणण-गंथकदी होंति त्ति, विरोहादो ।

व्यञ्जनपर्याय है वह जघन्य और उत्कर्षसे क्रमशः अन्तर्मुहूर्त और असंख्यात लोक मात्र काल तक रहनेवाली अथवा अनादि-अनन्त है। उनमें व्यञ्जनपर्यायसे स्वीकृत द्रव्य भाव होता है । इसका वर्तमान काल जघन्य और उत्कर्षसे क्रमशः अन्तर्मुहूर्त और संख्यात लोक मात्र अथवा अनादिनिधन है, क्योंकि, विवक्षित पर्यायके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक यह वर्तमान काल है, ऐसा न्याय है । इस कारण भावकृतिकी द्रव्यार्थिक नयविषयता विरुद्ध नहीं है । यदि कहा जाय कि ऐसा माननेपर सन्मतिसूत्रके साथ विरोध होगा सो भी नहीं है, क्योंकि, शुद्ध ऋजुसूत्र नयसे विषय की गई पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको सूत्रमें भाव स्वीकार किया गया है । इस प्रकार कहे हुए सब अर्थको मनमें करके ' नैगम, व्यवहार और संग्रह नय सब कृतियोंको स्वीकार करते हैं ' ऐसा भूतबलि भट्टारकने कहा है ।

ऋजुसूत्र नय स्थापनाकृतिको स्वीकार नहीं करता है ॥ ४९ ॥

ऋजुसूत्र स्थापनाकृतिको छोड़ शेष कृतियोंको स्वीकार करता है ।

शंका — यह सूत्रमें न कहा हुआ अर्थ कैसे जाना जाता है ?

समाधान — यह अर्थापत्तिसे जाना जाता है ।

शंका — ऋजुसूत्र नय पर्यायार्थिक है, अतः वह नामकृति, द्रव्यकृति, गणनकृति और ग्रन्थकृतिको कैसे विषय कर सकता है, क्योंकि, इसमें विरोध है । अथवा इसमें यदि कोई

---

१ व्यञ्जनपर्यायाः पुनः स्थूलाश्चिरकालस्थायिनो वाग्गोचराश्छद्मस्थदृष्टिविषयाश्च भवन्ति । पंचा. ता. टीका. १६.

२ प्रतिषु ' -सुद्ध ' इति पाठः । ३ जयध. १, पृ. २६१. ४ प्रतिषु ' संगह ' इति पाठः ।

अविरोहे वा ट्ठवणकदी वि इच्छिज्जउ, विसेसाभावादो त्ति? एत्थ परिहारो वुच्चदे— उजुसुदो दुविहो सुद्धो असुद्धो चेदि। तत्थ सुद्धो विसईकयअत्थपज्जाओ पडिक्खणं विवट्टमाणासेसत्थो अप्पणो विसयादो ओसारिदसारिच्छ-तब्भावलक्खणसामण्णो। एदस्स भावं मोत्तूण अण्णकदीओ ण संभवंति, विरोहादो। तत्थ जो सो असुद्धो उजुसुदणओ सो चक्खु-पासियवेंजणपज्जयविसओ। तेसिं कालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कस्सेण छम्मासा संखेज्जा वासाणि वा। कुदो? चक्खिदियगेज्झवेंजणपज्जायाणमप्पहाणीभूददव्वाणमेत्तियं कालमवट्ठाणुवलंभादो। जदि एरिसो वि पज्जवट्ठियणओ अत्थि तो—

उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं[1] ॥ ९० ॥

इच्चेएण सम्मइसुत्तेण सह विरोहो होदि त्ति उत्ते ण होदि, एदेण असुद्धउजुसुदेण

विरोध नहीं है तो फिर स्थापनाकृतिको भी ऋजुसूत्र नयका विषय स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि; उसमें कोई विशेषता नहीं है?

समाधान—यहां इस शंकाका परिहार कहते हैं— ऋजुसूत्र नय शुद्ध और अशुद्ध ऋजुसूत्र नयके भेदसे दो प्रकार है। उनमें अर्थपर्यायको विषय करनेवाला शुद्ध ऋजुसूत्र नय प्रत्येक क्षणमें परिणमन करनेवाले समस्त पदार्थोंको विषय करता हुआ अपने विषयसे सादृश्य सामान्य और तद्भाव रूप सामान्यको दूर करनेवाला है। अतः भावकृतिको छोड़कर अन्य कृतियां इसकी विषय सम्भव नहीं है, क्योंकि, इसमें विरोध है। उनमें जो अशुद्ध ऋजुसूत्र नय है वह चक्षु इन्द्रियकी विषयभूत व्यञ्जनपर्यायोंको विषय करनेवाला है। उन पर्यायोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे छह मास अथवा संख्यात वर्ष है, क्योंकि, चक्षु इन्द्रियसे ग्राह्य व्यञ्जन पर्यायें द्रव्यकी प्रधानतासे रहित होती हुई इतने काल तक अवस्थित पायी जाती हैं।

शंका— यदि ऐसा भी पर्यायार्थिक नय है तो—

पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा पदार्थ नियमसे उत्पन्न होते हैं और नष्ट भी होते हैं। किन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा सब पदार्थ सदा उत्पाद और विनाशसे रहित हैं ॥ ८८ ॥

इस सन्मतिसूत्रके साथ विरोध होगा?

समाधान— नहीं होगा, क्योंकि, अशुद्ध ऋजुसूत्रके द्वारा व्यञ्जनपर्यायें ही

---

१ स. सू. १-११; ष. खं. पु. १, पृ. १३.

विसईकयवेंजणपज्जाए अप्पहाणीकयसेसपज्जाए पुव्वावरकोटीणमभावेण उप्पत्ति-विणासे मोत्तूण अवट्ठाणाणुवलंभादो। तम्हा उजुसुदे ट्ठवणं मोत्तूण सव्वणिक्खेवा संभवंति त्ति वुत्तं। कधं ठवणणिक्खेवो णत्थि? संकप्पवसेण अण्णस्स दव्वस्स अण्णसरूवेण परिणामाणुवलंभादो सरिसत्तणेण दव्वाणमेगत्ताणुवलंभादो। सारिच्छेण एगत्ताणब्भुवगमे कधं णाम-गणण-गंथ-कदीणं संभवो? ण, तब्भाव-सारिच्छसामण्णेहि विणा वि वट्टमाणकालविसेसप्पणाए वि तासिमत्थित्तं पडि विरोहाभावादो। उजुसुदस्स ण गणणकदी तस्साणेयमवत्थु इदि वयणादो त्ति वुत्ते ण, पज्जवट्ठिय-णइगमे अवलंबिज्जमाणे अणेयसंखाए वि वत्थुत्तुवलंभादो।

सद्दादओ णामकदिं भावकदिं च इच्छंति ॥ ५० ॥

होदु भावकदी सद्दणयाणं विसओ, तेसिं विसए दव्वादीणमभावादो। किंतु ण तेसिं

....

विषय की जाती हैं और शेष पर्यायें अप्रधान हैं; [किन्तु प्रस्तुत सन्मतिसूत्रसे शुद्ध ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा होनेसे] पूर्वापर कोटियोंका अभाव होनेके कारण उत्पत्ति व विनाशको छोड़कर अवस्थान पाया ही नहीं जाता।

इस कारण ऋजुसूत्रमें स्थापनाको छोड़कर सब निक्षेप संभव हैं, ऐसा कहा गया है।

शंका — स्थापनानिक्षेप ऋजुसूत्रनयका विषय कैसे नहीं है?

समाधान — क्योंकि, इस नयकी अपेक्षा संकल्पके वशसे एक द्रव्यका अन्य स्वरूपसे परिणमन नहीं पाया जाता, कारण कि सादृश्य रूपसे द्रव्योंके एकता नहीं पायी जाती। अतः स्थापनानिक्षेप यहां सम्भव नहीं है।

शंका — सादृश्य सामान्यसे एकताके स्वीकार न करनेपर नामकृति, गणनकृति और ग्रन्थकृतिकी सम्भावना कैसे हो सकती है?

समाधान — नहीं, क्योंकि, तद्भावसामान्य और सादृश्य सामान्यके विना भी वर्तमान काल विशेषकी विवक्षासे भी उनके अस्तित्वके प्रति कोई विरोध नहीं है।

शंका — ऋजुसूत्र नयके गणनकृति सम्भव नहीं है, क्योंकि, इस नयकी दृष्टिमें 'अनेक संख्या अवस्तु है' ऐसा वचन है?

समाधान — नहीं, क्योंकि, पर्यायार्थिक नैगमनयका अवलम्बन करनेपर अनेक संख्याके भी वस्तुपना पाया जाता है।

शब्दादिक नय नामकृति और भावकृतिको स्वीकार करते हैं ॥ ५० ॥

शंका — भावकृति शब्दनयोंकी विषय भले ही हो, क्योंकि, उनके विषयमें द्रव्यादिक कृतियोंका अभाव है। परन्तु नामकृति उनकी विषय नहीं हो सकती, क्योंकि,

णामकदी जुज्जदे, दव्वट्ठियणयं मोत्तूण अण्णत्थ सण्णासण्णिसंबंधाणुववत्तीदो ? खणक्खइभावमिच्छंताणं सण्णासण्णिसंबंधा मा घडंतु णाम । किंतु जेण सद्दणया सद्दजणिद-भेदपहाणा तेण [1]सण्णासण्णिसंबंधाणमघडणाए अणत्थिणो । सगब्भुवगमम्हि सण्णासण्णि-संबंधो अत्थि चेवे त्ति अज्झवसायं काऊण ववहरणसहावा सद्दणया, तेसिमण्णहा सद्दणयत्ताणुव-वत्तीदो । तेण तिसु सद्दणएसु णामकदी वि जुज्जदे । संपधि णिक्खेवत्थपरूवणत्थमुवरिमसुत्तं भणदि—

जा सा णामकदी णाम सा जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, जीवस्स च अजीवस्स च, जीवस्स च अजीवाणं च, जीवाणं च अजीवस्स [च], जीवाणं च अजीवाणं च[2] ॥ ५१ ॥

जस्स णामं कीरदि कदि त्ति सा सव्वा णामकदी णाम । सत्तसु कदीसु जा सा

द्रव्यार्थिक नयको छोड़कर अन्य नयोंमें संज्ञा-संज्ञी सम्बन्ध बन नहीं सकता।

समाधान — पदार्थको क्षणक्षयी स्वीकार करनेवालोंके यहां संज्ञा-संज्ञी सम्बन्ध भले ही घटित न हो, किन्तु चूंकि शब्दनय शब्द जनित भेदकी प्रधानता स्वीकार करते हैं अतः वे संज्ञा-संज्ञी सम्बन्धोंके अघटनको स्वीकार नहीं कर सकते। इसीलिये स्वमतमें संज्ञा-संज्ञी सम्बन्ध है ही, ऐसा निश्चय करके शब्दनय भेद करने रूप स्वभाववाले हैं, क्योंकि, इसके विना उनके शब्दनयत्व ही नहीं बन सकता। अत एव तीन शब्दनयोंमें नामकृति भी उचित है। अब निक्षेपार्थकी प्ररूपणाके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

जो वह नामकृति है वह एक जीवके, एक अजीवके, वहुत जीवोंके, बहुत अजीवोंके, एक जीव और एक अजीवके, एक जीव और बहुत अजीवोंके, बहुत जीव और एक अजीवके अथवा बहुत जीवों और बहुत अजीवोंके होती है ॥ ५१ ॥

जिसका 'कृति' ऐसा नाम किया जाता है वह सब नामकृति कहलाती है। सात

---

१ इतः प्रारभ्य सगब्भुवगमम्हि-पर्यन्तः पाठः प्रतिषु नास्ति, मप्रतौ तूपलभ्यते ।

२ ष. खं. पु. १, पृ. १९. से किं तं नामावस्सयं ? जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सए त्ति नामं कज्जइ से तं नामावस्सयं । अनु. सू. ९.

पढममुद्दिट्ठा णामकदी तिस्से अत्थपरूवणे भण्णमाणे ताव विसयपरूवणा कीरदे — सा णामकदी अट्ठविसया, एयाणेयजीवाजीवेसु सण्णिवादभंगाणं[1] अट्ठसंखादो अहियाणमणुवलंभा। एदेसु अट्ठभंगेसु जस्स णामं कीरदि कदि त्ति सा कदिसण्णा अप्पाणम्हि वट्टमाणा आहार-भेदेण अट्ठपयारा अवंतरभेदेण बहुकोडिभेदमावण्णा सा सव्वा णामकदी णाम। एषा पि न क्षणिकैकान्तवादे घटते, तत्र संज्ञासंज्ञिसम्बन्धग्रहणानुपपत्तेः। न नित्यैकान्तवादिमते, तत्र अनाधेयातिशये प्रतिपाद्य-पतिपादकभेदाभावात्। नोभयपक्षोऽपि, विरोधादुभयदोषानुषंगात्। नानुभयपक्षोऽपि, निःस्वभावतापत्तेः। न शब्दार्थयोरैक्यपक्षोऽपि, कारण-करणदेशादिभेदा-भावासंजनात्[2]। ततस्त्रिकोटीपरिणामात्मकाशेषार्थवादिनां जैनवादिनामेवैतद् घटते, नान्येषाम्। न स्फोटोऽर्थप्रतिपादकः, तस्यानुपलंभतोऽसत्वात्[3]। ततो बहिरंगवर्णजनितमन्तरंगवर्णात्मकं पदं

कृतियोंमें जो वह पहिले निर्दिष्ट की गई नामकृति है उसके अर्थकी प्ररूपणा करनेपर प्रथमतः विषयकी प्ररूपणा की जाती है। उस नामकृतिके विषय आठ हैं— क्योंकि, एक व अनेक जीव एवं अजीवमें संयोगसे होनेवाले भंगोंकी आठ ही संख्या है; इससे अधिक अधिक संख्या पायी नहीं जाती। इन आठ भंगोंमें जिसका 'कृति' ऐसा नाम किया जाता है वह अपने आपमें रहनेवाली कृति संज्ञा आधारके भेदसे आठ प्रकार और अवान्तर भेदसे अनेक करोड़ भेदोंको प्राप्त है, वह सब नामकृति कहलाती है।

यह नामकृति भी क्षणिक एकान्तवादमें घटित नहीं होती, क्योंकि, उसमें संज्ञा-संज्ञी सम्बन्धका ग्रहण नहीं बनता। और न वह सर्वथा नित्यताको माननेवालोंके मतमें बनती है, क्योंकि, उनके यहां पदार्थके अनाधेयातिशय अर्थात् निरतिशय होनेसे यह प्रतिपाद्य है और यह प्रतिपादक है, ऐसा भेद सम्भव नहीं है। उभय पक्ष अर्थात् परस्पर निरपेक्ष नित्यानित्य पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध है, तथा दोनों पक्षोंमें कहे हुए दोषोंका प्रसंग भी आता है। अनुभय पक्ष (न नित्य और न अनित्य) भी घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर वस्तुके निःस्वभावताकी आपत्ति आती है। शब्द और अर्थका अभेद पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि, ऐसा होनेपर कारण, करण और देश आदिके भेदके अभावका प्रसंग आता है। अत एव त्रिकोटिपरिणाम स्वरूप समस्त पदार्थोंको माननेवाले जैन वादियोंके यहां ही वह घटित होता है, दूसरोंके नहीं होता।

स्फोट भी अर्थका प्रतिपादक नहीं है, क्योंकि, अनुपलब्ध होनेसे उसका सत्व ही सम्भव नहीं है। इस कारण बहिरंग वर्णोंसे उत्पन्न अन्तरंग वर्णों स्वरूप पद अथवा

---

१ अ-काप्रत्योः ' संपादसण्णिवादभंगाणं ', अप्रतौ ' सपादसण्णिवादभंगाणं ' इति पाठः।

२ प्रतिषु ' भेदाभावासंजननात् ' इति पाठः।

३ न च वर्ण-पद-वाक्यव्यतिरिक्तः नित्योऽक्रमः अमूर्तो निरवयवः सर्वगतः अर्थप्रतिपत्तिनिमित्तं स्फोट इति, अनुपलम्भात्। जयध. १, पृ. २६६.

वाक्यं वा अर्थप्रतिपादकमिति निश्चेतव्यम् ।

जा सा ठवणकदी णाम सा कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेण्णकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया ठवणाए ठविज्जंति कदि त्ति सा सव्वा ठवणकदी णाम[1] ॥ ५२ ॥

एतस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे— जा सा ठवणकदी णामे त्ति वयणेण इमा परूवणा ट्ठवणकदिविसया त्ति जाणावणट्ठं पुव्वुद्दिट्ठट्ठवणकदी पुणो वि उद्दिट्ठा । जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो ट्ठवणकदिपरूवणा चेव णामकदिपरूवणाणंतरं होदि त्ति णव्वदे । तदो णेदं वत्तव्वमिदि चे होदि एसो णाओ पुव्वाणुपुव्विविवक्खाए, ण सेसदोसु परूवणासु;

वाक्य अर्थ प्रतिपादक है, ऐसा निश्चय करना चाहिये ।

जो वह स्थापनाकृति है वह काष्ठकर्मोंमें, अथवा चित्रकर्मोंमें, अथवा पोतकर्मोंमें, अथवा लेप्यकर्मोंमें, अथवा लयनकर्मोंमें, अथवा शैलकर्मोंमें, अथवा गृहकर्मोंमें, अथवा भित्तिकर्मोंमें, अथवा दन्तकर्मोंमें, अथवा भेंडकर्मोंमें, अथवा अक्ष या वराटक; तथा इनको आदि लेकर अन्य भी जो 'कृति' इस प्रकार स्थापनामें स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनाकृति कही जाती है ॥ ५२ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— 'जो वह स्थापनाकृति है' इस वचनसे यह प्ररूपणा स्थापनाकृतिविषयक है, इसके जतलानेके लिये पूर्वमें निर्दिष्ट की गई स्थापनाकृतिका फिरसे भी निर्देश किया गया है ।

शंका— 'जैसा उद्देश होता है वैसा ही निर्देश होता है' इस न्यायसे नामकृतिकी प्ररूपणाके पश्चात् स्थापनाकृतिकी ही प्ररूपणा है, यह स्वयं जाना जाता है। इस कारण उक्त वाक्यांश नहीं कहना चाहिये ?

समाधान— यह न्याय पूर्वानुपूर्वीकी विवक्षामें भले ही लागू हो, किन्तु शेष दो

१ ष. खं. पु. ३, पृ. ११. से किं तं ठवणावस्सयं ? जण्णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सब्भावठवणा वा असब्भावठवणा वा आवस्सए त्ति ठवणा ठविज्जइ से तं ठवणावस्सयं । अनु. सू. १०.

तदो सेसदोपरूवणापडिसेहकरणादो ण णिप्फला ट्ठवणकदिसंभालणा। तत्थ ताव सब्भावट्ठवणाहारदेसामासो कीरदे— सा सब्भावट्ठवणकदी कट्ठकम्मेसु वा त्ति वुत्ते काष्ठे क्रियन्त इति निष्पत्तेः देव-णेरइय-तिरिक्ख-मणुस्साणं णच्चण-हसण-गायण-तूर-वीणादिवायणकिरियावावदाणं कट्ठघडिदपडिमाओ कट्ठकम्मे त्ति भणंति[1]। पड-कुड्ड-फलहियादीसु णच्चणादिकिरियावावददेव-णेरइय-तिरिक्ख-मणुस्साणं पडिमाओ चित्तकम्मं[2], चित्रेण क्रियन्त इति व्युत्पत्तेः। पोत्तं वस्त्रम्, तेण कदाओ पडिमाओ पोत्तकम्मं[3]। कड-सक्खर-मट्टियादीणं लेवो लेप्पं, तेण घडिदपडिमाओ लेप्पकम्मं। लेणं पव्वओ, तम्हि घडिदपडिमाओ लेणकम्मं। सेलो पत्थरो, तम्हि घडिदपडिमाओ सेलकम्मं[4]। गिहाणि जिणघरादीणि, तेसु कदपडिमाओ गिहकम्मं, हय-हत्थि-

(द्रव्य व भाव) प्ररूपणाओंमें वह नहीं है; अत एव शेष दो प्ररूपणाओंका प्रतिषेध करनेसे स्थापनाकृतिका स्मरण कराना निष्फल नहीं है।

उसमें पहिले सद्भावस्थापनाके आधारभूत देशामर्शको करते हैं अर्थात् कुछ दृष्टान्त देते हैं— 'वह स्थापनाकृति काष्ठकर्मोंमें है' ऐसा कहनेपर 'काष्ठमें जो किये जाते हैं वे काष्ठकर्म हैं' इस निरुक्तिके अनुसार नाचना, हँसना, गाना तथा तुरई एवं वीणा आदि वाद्योंके बजाने रूप क्रियाओंमें प्रवृत्त हुए देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्योंकी काष्ठसे निर्मित प्रतिमाओंको काष्ठकर्म कहते हैं।

पट, कुड्य (भित्ति), एवं फलहिका (काष्ठ आदिका तख्ता) आदिमें नाचने आदि क्रियामें प्रवृत्त देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्योंकी प्रतिमाओंको चित्रकर्म कहते हैं, क्योंकि, 'चित्रसे जो किये जाते हैं वे चित्रकर्म हैं' ऐसी व्युत्पत्ति है।

पोत्तका अर्थ वस्त्र है, उससे की गई प्रतिमाओंका नाम पोतकर्म है। कट (तृण), शर्करा (बालु) व मृत्तिका आदिके लेपका नाम लेप्य है। उससे निर्मित प्रतिमायें लेप्यकर्म कही जाती हैं। लयनका अर्थ पर्वत है, उसमें निर्मित प्रतिमाओंका नाम लयनकर्म है। शैलका अर्थ पत्थर है, उसमें निर्मित प्रतिमाओंका नाम शैलकर्म है। गृहोंसे अभिप्राय जिनगृहादिकोंका है, उनमें की गई प्रतिमाओंका नाम गृहकर्म है; घोड़ा,

१ तत्र क्रियत इति कर्म, काष्ठे कर्म काष्ठकर्म। काष्ठनिकुट्टितं रूपकमित्यर्थः। अनु. टीका सू. १०.

२ चित्रकर्म चित्रलिखितं रूपकम्। अनु. टीका सू. १०.

३ 'पोत्थकम्मे व' त्ति अत्र पोत्थं पोतं वस्त्रमित्यर्थः। तत्र कर्म तत्पल्लवनिष्पन्नं धीउल्लिकारूपकमित्यर्थः। अथवा पोत्थं पुस्तकम्, तच्चेह संपुटकरूपं ग्राह्यते। तत्र कर्म तन्मध्ये वर्तिकालिखितं रूपकमित्यर्थः। अथवा पोत्थं ताडपत्रादि। तत्र कर्म तच्छेदनिष्पन्नं रूपकम्। अनु. टीका सू. १०.

४ लेप्यकर्म लेप्यरूपकम्। अनु. टीका. सू. १०.

णर-वराहादिसरूवेण घडिदघराणि गिहकम्ममिदि वुत्तं होदि। घरकुड्डेसु तदो अभेदेण चिद-पडिमाओ[1] भित्तिकम्मं। हत्थिदंतेसु किण्णपडिमाओ दंतकम्मं। भेंडो सुप्पसिद्धो, तेण घडिद-पडिमाओ भेंडकम्मं। एदे सब्भावट्ठवणा। एदे देसामासया दस परूविदा।

संपहि असब्भावट्ठवणाविसयस्सुवलक्खणट्ठं भणदि— अक्खे त्ति वुत्ते जूवक्खो[2] सयडक्खो वा घेत्तव्वो[3]। वराडओ त्ति वुत्ते कवड्डिया घेत्तव्वा[4]। जे च अण्णे एवमादिया त्ति वयणं दोण्णं अवहारणपडिसेहफलं। तेण थंभ-तुला-हल-मुसलकम्मादीणं गहणं। स्थाप्यतेऽस्मिन्निति स्थापना। अमा अभेदेण, ठवणाए सद्भावासद्भावस्थापनायाम्, ठविज्जंति कृतिरिति स्थाप्यन्ते, सा सव्वा ठवणकदी णाम।

जा सा दव्वकदी णाम सा दुविहा आगमदो दव्वकदी चेव णोआगमदो दव्वकदी चेव ॥ ५३ ॥

हाथी, मनुष्य एवं वराह (शूकर) आदिके स्वरूपसे निर्मित घर गृहकर्म कहलाते हैं, यह अभिप्राय है। घरकी दीवालोंमें उनसे अभिन्न रची गई प्रतिमाओंका नाम भित्तिकर्म है। हाथी दांतोंपर खोदी हुई प्रतिमाओंका नाम दन्तकर्म है। भेंड सुप्रसिद्ध है। उससे निर्मित प्रतिमाओंका नाम भेंडकर्म है। ये सद्भावस्थापनाके उदाहरण हैं। ये दस देशामर्शक कहे गये हैं।

अब असद्भावस्थापनासम्बन्धी विषयके उपलक्षणार्थ कहते हैं—अक्ष ऐसा कहनेपर द्यूताक्ष अथवा शकटाक्षका ग्रहण करना चाहिये। वराटक ऐसा कहनेपर कपर्दिकाका ग्रहण करना चाहिये।'इस प्रकार इनको आदि लेकर और भी जो अन्य हैं' इस वचनका प्रयोजन दोनों (अक्ष व वराटक) के अवधारणका प्रतिषेध करना है। इसलिये स्तम्भकर्म, तुलाकर्म, हलकर्म व मूसलकर्म आदिकोंका ग्रहण होता है। जिसमें स्थापित किया जाता है वह स्थापना है। अमा अर्थात् अभेद रूपसे, स्थापना अर्थात् सद्भाव व असद्भाव रूप स्थापनामें ' कृति है ' इस प्रकार जो स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनाकृति कही जाती है।

जो वह द्रव्यकृति है वह दो प्रकार है— आगमसे द्रव्यकृति और नोआगमसे द्रव्यकृति ॥ ५३ ॥

---

१ आ-काप्रत्योः ' चित्तपडिमाओ ' इति पाठः। २ प्रतिषु ' जोवक्खो ' इति पाठः।
३ अक्षः चन्दनकः। अनु. टीका सू. १०. ४ वराटकः कपर्दकः। अनु. टीका सू. १०.

आगमो सिद्धंतो सुदणाणमिदि एयट्ठो । अत्रोपयोगी श्लोकः—

पूर्वापरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः ।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः ॥ ९१ ॥

एदम्हादो आगमादो जं तं दव्वं तमागमदव्वं, तस्स कदी आगमदव्वकदी णाम । आगमादण्णो णोआगमो । तदो जं दव्वं तण्णोआगमदव्वं, तस्स कदी णोआगम [दव्वकदी णाम । एवं] दव्वकदीए दुविहत्तं परूविय आगमवियप्पपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

जा सा आगमदो दव्वकदी णाम तिस्से इमे अट्ठाहियारा भवंति— ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोपगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं । एवं णव अहियारा आगमस्स होंति[1] ॥ ५४ ॥

तत्थ ट्ठिदस्स आगमस्स सरूवपरूवणा कीरदे— अवधृतमात्रं स्थितम्, जो पुरिसो

....

आगम, सिद्धान्त व श्रुतज्ञान, इन शब्दोंका एक ही अर्थ है । यहां उपयोगी श्लोक—

जो आप्तवचन पूर्वापरविरुद्ध आदि दोषोंके समूहसे रहित और सब पदार्थोंका प्रकाशक है वह आगम कहलाता है ॥ ९१ ॥

इस आगमसे जो द्रव्य है वह आगमद्रव्य है, उसकी कृति आगमद्रव्यकृति कहलाती है । आगमसे भिन्न नोआगम कहा जाता है, उससे जो द्रव्य है वह नोआगमद्रव्य और उसकी कृति नोआगमद्रव्यकृति कहलाती है । इस तरह दो प्रकार कृतिकी प्ररूपणा करके आगमभेदोंके प्ररूपणार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

जो वह आगमसे द्रव्यकृति है उसके ये अर्थाधिकार हैं— स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम । इस प्रकार आगमके नौ अधिकार हैं ॥ ५४ ॥

उनमें स्थित आगमके स्वरूपकी प्ररूपणा करते हैं— अवधारण किये हुए मात्रका

....

१ से किं तं आगमओ दव्वावस्सयं ? जस्स णं आवस्सए त्ति पदं सिक्खितं ठितं जितं मितं परिजितं नामसमं घोससमं अहीणक्खरं अणच्चक्खरं अव्वाइद्धक्खरं अक्खलिअं अमिलिअं अवच्चामेलियं पडिपुण्णं पडिपुण्णघोसं कंठोट्ठविप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं × × × । अनु. टीका सू. १३.

भावागमम्मि वुड्ढओ[1] गिलाणो व्व[2] सणिं सणिं संचरदि सो तारिससंसकारजुत्तो पुरिसो तब्भावागमो च स्थित्वा वृत्तेः ट्ठिदं[3] णाम। नैसर्ग्यवृत्तिर्जितम्, जेण संसकारेण पुरिसो भावागमम्मि अक्खलिओ संचरइ तेण संजुत्तो पुरिसो तब्भावागमो च जिदमिदि[4] भण्णदे। यत्र यत्र प्रश्नः क्रियते तत्र तत्र आशुतमवृत्तिः परिचितम्, क्रमेणोत्क्रमेणानुभयेन च भावागमाम्भोधौ मत्स्यवच्चटुलतमवृत्तिर्जीवो भावागमश्च परिचितम्[5]। शिष्याध्यापनं वाचना। सा चतुर्विधा नंदा भद्रा जया सौम्या चेति। पूर्वपक्षीकृतपरदर्शनानि निराकृत्य स्वपक्षस्थापिका व्याख्या नन्दा। युक्तिभिः प्रत्यवस्थाय पूर्वापरविरोधपरिहारेण तंत्रस्थाशेषार्थव्याख्या भद्रा। पूर्वापरविरोधपरिहारेण विना तंत्रार्थकथनं जया। क्वचित् क्वचित् स्खलितवृत्तेर्व्याख्या सौम्या। एतासां वाचनानामुपगतं

नाम स्थित आगम है। अर्थात् जो पुरुष भाव आगममें वृद्ध व व्याधिपीडित मनुष्यके समान धीरे धीरे संचार करता है वह उस प्रकारके संस्कारसे युक्त पुरुष और वह भावागम भी स्थित होकर प्रवृत्ति करनेसे अर्थात् रुक रुक कर चलनेसे स्थित कहलाता है। स्वाभाविक प्रवृत्तिका नाम जित है। अर्थात् जिस संस्कारसे पुरुष भावागममें अस्खलित रूपसे संचार करता है उससे युक्त पुरुष और वह भावागम भी 'जित' इस प्रकार कहा जाता है। जिस जिस विषयमें प्रश्न किया जाता है उस उसमें शीघ्रतापूर्ण प्रवृत्तिका नाम परिचित है। अर्थात् क्रमसे, अक्रमसे और अनुभय रूपसे भावागम रूपी समुद्रमें मछलीके समान अत्यन्त चंचलतापूर्ण प्रवृत्ति करनेवाला जीव और भावागम भी परिचित कहा जाता है। शिष्योंको पढ़ानेका नाम वाचना है। वह चार प्रकार है— नन्दा, भद्रा, जया और सौम्या। अन्य दर्शनोंको पूर्वपक्ष करके उनका निराकरण करते हुए अपने पक्षको स्थापित करनेवाली व्याख्या नन्दा कहलाती है। युक्तियों द्वारा समाधान करके पूर्वापर विरोधका परिहार करते हुए सिद्धान्तमें स्थित समस्त पदार्थोंकी व्याख्याका नाम भद्रा है। पूर्वापर विरोधके परिहारके विना सिद्धान्तके अर्थोंका कथन करना जया वाचना कहलाती है। कहीं कहीं स्खलनपूर्ण वृत्तिसे जो व्याख्या की जाती है वह सौम्या वाचना कही जाती है। इन चार प्रकारकी वाचनाओंको प्राप्त वाचनोपगत कहलाता है। अभिप्राय

---

१ प्रतिषु 'वुद्धओ' इति पाठः। २ काप्रतौ 'च' इति पाठः।

३ तत्रादित आरभ्य पठनाक्रियया यावदन्तं नीतं तच्छिक्षितमुच्यते। तदेवाविस्मरणतश्चेतसि स्थितं स्थितत्वात् स्थितमप्रच्युतमित्यर्थः। अनु. टीका सू. १३.

४ परावर्त्तनं कुर्वतः परेण वा क्वचित् पृष्टस्य यच्छीघ्रमागच्छति तज्जितम्। अनु. टीका सू. १३.

५ परि समन्तात् सर्वप्रकारैर्जितं परिजतम्, परावर्त्तनं कुर्वतो यत् क्रमेणोत्क्रमेण वा समागच्छतीत्यर्थः। अनु. टीका सू. १३.

वाचनोपगतं[1] परप्रत्यायनसमर्थं इति यावत् । एत्थ वक्खाणंतेहि सुणंतेहि वि दव्व-खेत्त-काल-भावसुद्धीहि वक्खाण-पढणवावारो कायव्वो । तत्र ज्वर-कुक्षि-शिरोरोग-दुःस्वप्न-रुधिर-विट्-मूत्र-लेपातीसार-पूयस्रावादीनां शरीरे अभावो द्रव्यशुद्धिः[1] । व्याख्यातृव्यावस्थितप्रदेशात् चतसृष्वपि दिक्ष्वष्टाविंशतिसहस्रायतासु विण्मूत्रास्थि-केश-नख-त्वगाद्यभावः षष्ठातीतवाचनातः आरात्पंचेन्द्रियशरीरार्द्रास्थि[2]-त्वग्मांसासृक्संबंधाभावश्च क्षेत्रशुद्धिः[3] । विद्युदिन्द्रधनुर्ग्रहोपरागा[4]-कालवृष्ट्यभ्रगर्जन-जीमूतव्रातप्रच्छाद-दिग्दाह-धूमिकापात-संन्यास-महोपवास-नन्दीश्वर-जिनमहि-माद्यभावः कालशुद्धिः[5] ।

अत्र कालशुद्धिकरणविधानमभिधास्ये । तं जहा— पच्छिमरत्तिसज्झायं खमाविय

यह है कि जो दूसरोंको ज्ञान करानेके लिये समर्थ है वह वाचनोपगत है ।

यहां व्याख्यान करनेवालों और सुननेवालोंको भी द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, काल-शुद्धि और भावशुद्धिसे व्याख्यान करने या पढ़नेमें प्रवृत्ति करना चाहिये । उनमें ज्वर, कुक्षिरोग, शिरोरोग, कुत्सित स्वप्न, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, लेप, अतीसार और पीवका बहना, इत्यादिकोंका शरीरमें न रहना द्रव्यशुद्धि कही जाती है । व्याख्यातासे अधिष्ठित प्रदेशसे चारों ही दिशाओंमें अट्ठाईस हजार [धनुष] प्रमाण क्षेत्रमें विष्ठा, मूत्र, हड्डी, केश, नख और चमड़े आदिके अभावको; तथा छह अतीत वाचनाओंसे (?) समीपमें [या दूरी तक] पंचेन्द्रिय जीवके शरीर सम्बन्धी गीली हड्डी, चमड़ा, मांस और रुधिरके सम्बन्धके अभावको क्षेत्रशुद्धि कहते हैं । बिजली, इन्द्र-धनुष, सूर्य-चन्द्रका ग्रहण, अकालवृष्टि, मेघगर्जन, मेघोंके समूहसे आच्छादित दिशायें, दिशादाह, धूमिकापात (कुहरा), सन्यास, महोपवास, नन्दीश्वरमहिमा और जिनमहिमा, इत्यादिके अभावको कालशुद्धि कहते हैं ।

यहां कालशुद्धि करनेके विधानको कहते हैं । वह इस प्रकार है— पश्चिम रात्रिके

---

१ गुरुप्रदत्तया वाचनया उपगतं प्राप्तं गुरुवाचनोपगतम्, न तु कर्णाघाटकेन शिक्षितं न वा पुस्तकात्; स्वयमेवाधीतमिति भावः : अनु. टीका सू. १३.

२ अ-काप्रत्योः ' शहिर्द्रास्थि- ', आप्रतौ ' शहिर्हाद्रास्थि- ' इति पाठः ।

३ तिरिपंचिंदिय दव्वे खेत्ते सट्ठिहत्थ पोग्गलाइन्नं । तिकुरत्थ महंतेगा नगरे बाहिं तु गामस्स ॥ × × × क्षेत्रे क्षेत्रतः षष्टिहस्ताभ्यन्तरे परिहरणीयम्, न परतः । × × × (टीका) प्रवचनसारोद्धार गाथा १४६४.

४ प्रतिषु ' -ग्राहोप- ' इति पाठः ।

५ दिसदाह-उक्कपडणं विज्जु चड्डक्कासणिंदधणुगं च । दुग्गंध-सज्झ-दुद्दिण-चंद-ग्गह-सूर-राहुजुज्झं च ॥ कलहादिधूमकेदू धरणीकंपं च अब्भगज्जं च । इच्चेवमाइबहुया सज्झाए वज्जिदा दोसा ॥ मूला. ५, ७७-७८.

बहिं णिक्कलिय पासुवे भूमिपदेसे काओसग्गेण पुव्वाहिमुहो ट्ठाइदूण णवगाहापरियट्टणकालेण[1] पुव्वदिसं सोहिय पुणो पदाहिणेण पल्लट्टिय एदेणेव कालेण जम-वरुण-सोमदिसासु सोहिदासु छत्तीसगाहुच्चारणकालेण |३६| अट्ठसदुस्सासकालेण वा कालसुद्धी समप्पदि |१०८|। अवरण्हे वि एवं चेव कालसुद्धी कायव्वा। णवरि एक्केक्काए दिसाए सत्त-सत्तगाहापरियट्टणेण परिच्छिण्णकाला त्ति णायव्वा। एत्थ सव्वगाहापमाणमट्ठावीस |२८| चउरासीदिउस्सासा |८४|। पुणो अणत्थमिदे दिवायरे खेत्तसुद्धिं कादूण अत्थमिदे कालसुद्धिं पुव्वं व कुज्जा। णवरि एत्थ कालो वीसगाहुच्चारणमेत्तो |२०| सट्ठिउस्सासमेत्तो वा |६०|। अवररत्ते णत्थि वायणा, खेत्तसुद्धिकरणोवायाभावादो। ओहि-मणपज्जवणाणीणं सयलंगसुदधराणमागासट्ठिय-चारणाणं मेरु-कुलसेलगब्भट्ठियचारणाणं च अवररत्तियवाचणा वि अत्थि अवगयखेत्तसुद्धीदो। अवगयराग-दोसाहंकारट्ट-रुद्दज्झाणस्स पंचमहव्वयकलिदस्स तिगुत्तिगुत्तस्स णाण-दंसण-चरणादिचारणवड्ढिदस्स भिक्खुस्स भावसुद्धी होदि। अत्रोपयोगिश्लोकाः। तद्यथा—

....

सन्धिकालमें क्षमा कराकर बाहिर निकल प्राशुक भूमिप्रदेशमें कायोत्सर्गसे पूर्वाभिमुख स्थित होकर नौ गाथाओंके उच्चारणकालसे पूर्व दिशाको शुद्ध करके फिर प्रदक्षिण रूपसे पलटकर इतने ही कालसे दक्षिण, पश्चिम व उत्तर दिशाओंको शुद्ध कर लेनेपर छत्तीस ३६ गाथाओंके उच्चारणकालसे अथवा एक सौ आठ १०८ उच्छ्वासकालसे कालशुद्धि समाप्त होती है। अपराह्नकालमें भी इसी प्रकार ही कालशुद्धि करना चाहिये। विशेष इतना है कि इस समयकी कालशुद्धि एक एक दिशामें सात सात गाथाओंके उच्चारण-कालसे सीमित है, ऐसा जानना चाहिये। यहां सब गाथाओंका प्रमाण अट्ठाईस २८ अथवा उच्छ्वासोंका प्रमाण चौरासी ८४ है। पश्चात् सूर्यके अस्त होनेसे पहिले क्षेत्रशुद्धि करके सूर्यके अस्त हो जानेपर पूर्वके समान कालशुद्धि करना चाहिये। विशेष इतना है कि यहां काल बीस २० गाथाओंके उच्चारण प्रमाण अथवा साठ ६० उच्छ्वास प्रमाण है। अपर-रात्र अर्थात् रात्रिके पिछले भागमें वाचना नहीं है, क्योंकि, उस समय क्षेत्रशुद्धि करनेका कोई उपाय नहीं है। अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, समस्त अंगश्रुतके धारक, आकाश-स्थित चारण तथा मेरु व कुलाचलोंके मध्यमें स्थित चारण ऋषियोंके अपररात्रिक वाचना भी है, क्योंकि, वे क्षेत्रशुद्धिसे रहित हैं, अर्थात् भूमिपर न रहनेसे उन्हें क्षेत्र-शुद्धि करनेकी आवश्यकता नहीं होती। राग, द्वेष, अहंकार, आर्त व रौद्र ध्यानसे रहित; पांच महाव्रतोंसे युक्त, तीन गुप्तियोंसे रक्षित; तथा ज्ञान, दर्शन व चारित्र आदि आचारसे वृद्धिको प्राप्त भिक्षुके भावशुद्धि होती है। यहां उपयोगी श्लोक इस प्रकार हैं—

....

१ णव-सत्त-पंचगाहापरिमाणं दिसिविभागसोधीए। पुव्वण्हे अवरण्हे पदोसकाले य सज्झाए॥ मूला. ५-७६.

यमपटहरवश्रवणे[1] रुधिरस्रावेऽङ्गतोऽतिचारे च ।
दातृष्वशुद्धकायेषु भुक्तवति चापि नाध्येयम् ॥ ९२ ॥

तिलपलल-पृथुक-लाजा-पूपादिस्निग्धसुरभिगंधेषु ।
भुक्तेषु भोजनेषु च दावाग्निधूमे च नाध्येयम् ॥ ९३ ॥

योजनमण्डलमात्रे संन्यासविधौ महोपवासे च ।
आवश्यकक्रियायां केशेषु च लुच्यमानेषु ॥ ९४ ॥

सप्तदिनान्यध्ययनं प्रतिषिद्धं स्वर्गगते श्रमणसूरौ[2] ।
योजनमात्रे दिवसत्रितयं त्वतिदूरतो दिवसम् ॥ ९५ ॥

प्राणिनि च तीव्रदुःखान्म्रियमाणे स्फुरति चातिवेदनया ।
एकनिवर्तनमात्रे तिर्यक्षु चरत्सु च न पाठ्यम्[3] ॥ ९६ ॥

तावन्मात्रे स्थावरकायक्षयकर्मणि प्रवृत्ते च ।
क्षेत्राशुद्धौ दूराद् दुर्गंधे वातिकुणपे वा ॥ ९७ ॥

यमपटहका शब्द सुननेपर, अंगसे रक्तस्रावके होनेपर, अतिचारके होनेपर, तथा दाताओंके अशुद्धकाय होते हुए भोजन कर लेनेपर स्वाध्याय नहीं करना चाहिये ॥ ९२ ॥

तिलमोदक, चिउड़ा, लाई और पुआ आदि चिक्कण एवं सुगन्धित भोजनोंके खानेपर तथा दावानलका धुआं होनेपर अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥ ९३ ॥

एक योजनके घेरेमें सन्यासविधि, महोपवासविधि, आवश्यकक्रिया एवं केशोंका लोंच होनेपर तथा आचार्यका स्वर्गवास होनेपर सात दिन तक अध्ययनका प्रतिषेध है। उक्त घटनाओंके योजन मात्रमें होनेपर तीन दिन तक तथा अत्यन्त दूर होनेपर एक दिन तक अध्ययन निषिद्ध है ॥ ९४-९५ ॥

प्राणीके तीव्र दुःखसे मरणासन्न होनेपर या अत्यन्त वेदनासे तड़फड़ानेपर तथा एक निवर्तन (एक वीघा या गुंठा) मात्रमें तिर्यंचोंका संचार होनेपर अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥ ९६ ॥

उतने मात्रमें स्थावरकाय जीवोंके घात रूप कार्यमें प्रवृत्त होनेपर, क्षेत्रकी अशुद्धि होनेपर, दूरसे दुर्गन्ध आनेपर अथवा अत्यन्त सड़ी गन्धके आनेपर, ठीक अर्थ समझमें न

---

१ प्रतिषु ' स्रवणे ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' श्रवणसूरौ ' इति पाठः । ३ प्रतिषु ' याग्यं ' इति पाठः ।

विगतार्थागमने[1] वा स्वशरीरे शुद्धिवृत्तिविरहे वा ।
नाध्येयः सिद्धान्तः शिवसुखफलमिच्छता व्रतिना ॥ ९८ ॥

प्रमितिररत्निशतं स्यादुच्चारविमोक्षणक्षितेरारात् ।
तनुसलिलमोक्षणेऽपि च पंचाशदरत्निरेवातः ॥ ९९ ॥

मानुषशरीरलेशावयवस्याप्यत्र दण्डपंचाशत् ।
संशोध्या[2] तिरश्चां तदर्द्धमात्रैव भूमिः स्यात् ॥ १०० ॥

व्यन्तरभेरीताडन-तत्पूजासंकटे कर्षणे वा ।
संमृक्षण-संमार्ज्जनसमीपचाण्डालबालेषु ॥ १०१ ॥

अग्निजलरुधिरदीपे मांसास्थिप्रजनने तु जीवानां ।
क्षेत्रविशुद्धिर्न स्याद्यथोदितं सर्वभावज्ञैः ॥ १०२ ॥

क्षेत्रं संशोध्य पुनः स्वहस्तपादौ विशोध्य शुद्धमनाः ।
प्राशुकदेशावस्थो[3] गृह्णीयाद् वाचनां पश्चात् ॥ १०३ ॥

आने पर (?) अथवा अपने शरीरके शुद्धिसे रहित होनेपर मोक्षसुखके चाहनेवाले व्रती पुरुषको सिद्धान्तका अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥ ९७-९८ ॥

मल छोड़नेकी भूमिसे सौ अरत्नि प्रमाण दूर, तनुसलिल अर्थात् मूत्रके छोड़नेमें भी इस भूमिसे पचास अरत्नि दूर, मनुष्यशरीरके लेशमात्र अवयवके स्थानसे पचास धनुष, तथा तिर्यंचोंके शरीरसम्बन्धी अवयवके स्थानसे उससे आधी मात्र अर्थात् पच्चीस धनुष प्रमाण भूमिको शुद्ध करना चाहिये ॥ ९९-१०० ॥

व्यन्तरोंके द्वारा भेरीताड़न करनेपर, उनकी पूजाका संकट होनेपर, कर्षणके होनेपर, चाण्डालबालकोंके समीपमें झाड़ा-बुहारी करनेपर; अग्नि, जल व रुधिरकी तीव्रता होनेपर; तथा जीवोंके मांस व हड्डियोंके निकाले जानेपर क्षेत्रकी विशुद्धि नहीं होती जैसा कि सर्वज्ञोंने कहा है ॥ १०१-१०२ ॥

क्षेत्रकी शुद्धि करनेके पश्चात् अपने हाथ और पैरोंको शुद्ध करके तदनन्तर विशुद्ध मन युक्त होता हुआ प्राशुक देशमें स्थित होकर वाचनाको ग्रहण करे ॥ १०३ ॥

१ प्रतिषु ' विनतार्थागमने ' इति पाठः ।
२ प्रतिषु ' संशोध्यां ' इति पाठः । ३ प्रतिषु ' -देशावस्था ' इति पाठः ।

युक्त्या समधीयानो वक्षणकक्षाद्यमस्पृशन् स्वाङ्गम् ।
यत्नेनाधीत्य पुनर्यथाश्रुतं वाचनां मुंचेत् ॥ १०४ ॥

तपसि द्वादशसंख्ये स्वाध्यायः श्रेष्ठ उच्यते सद्भिः ।
अस्वाध्यायदिनानि ज्ञेयानि ततोऽत्र विद्वद्भिः ॥ १०५ ॥

पर्वसु नन्दीश्वरवरमहिमादिवसेषु चोपरागेषु ।
सूर्याचन्द्रमसोरपि नाध्येयं जानता व्रतिना ॥ १०६ ॥

अष्टम्यामध्ययनं गुरु-शिष्यद्वयवियोगमावहति ।
कलहं तु पौर्णमास्यां करोति विघ्नं चतुर्दश्याम् ॥ १०७ ॥

कृष्णचतुर्दश्यां यद्यधीयते साधवो ह्यमावस्याम् ।
विद्योपवासविधयो विनाशवृत्तिं प्रयान्त्यशेषं सर्वे ॥ १०८ ॥

मध्याह्ने जिनरूपं नाशयति करोति संध्ययोर्व्याधिम् ।
तुष्यन्तोऽप्यप्रियतां मध्यमरात्रौ समुपयान्ति ॥ १०९ ॥

बाजू और कांख आदि अपने अंगका स्पर्श न करता हुआ उचित रीतिसे अध्ययन करे और यत्नपूर्वक अध्ययन करके पश्चात् शास्त्रविधिसे वाचनाको छोड़ दे ॥ १०४ ॥

साधु पुरुषोंने बारह प्रकारके तपमें स्वाध्यायको श्रेष्ठ कहा है। इसीलिये विद्वानोंको स्वाध्याय न करनेके दिनोंको जानना चाहिये ॥ १०५ ॥

पर्वदिनों (अष्टमी व चतुर्दशी आदि), नन्दीश्वरके श्रेष्ठ महिमदिवसों अर्थात् अष्टाह्निक दिनोंमें और सूर्य-चन्द्रका ग्रहण होनेपर विद्वान् व्रतीको अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥१०६॥

अष्टमीमें अध्ययन गुरु और शिष्य दोनोंके वियोगको करता है। पूर्णमासीके दिन किया गया अध्ययन कलह और चतुर्दशीके दिन किया गया अध्ययन विघ्नको करता है ॥ १०७ ॥

यदि साधु जन कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्याके दिन अध्ययन करते हैं तो विद्या और उपवासविधि सब विनाशवृत्तिको प्राप्त होते हैं ॥ १०८ ॥

मध्याह्न कालमें किया गया अध्ययन जिनरूपको नष्ट करता है, दोनों संध्या-कालोंमें किया गया अध्ययन व्याधिको करता है, तथा मध्यम रात्रिमें किये गये अध्ययनसे अनुरक्त जन भी द्वेषको प्राप्त होते हैं ॥ १०९ ॥

---

१ प्रतिपु 'वंक्षण-' इति पाठः ।

अतितीव्रदुःखितानां रुदतां संदर्शने समीपे च ।
स्तनयित्नुविद्युदभ्रेष्वतिवृष्ट्या उल्कानिर्घाते ॥ ११० ॥

प्रतिपद्येकः पादो ज्येष्ठामूलस्य पौर्णमास्यां तु ।
सा वाचनाविमोक्षे छाया पूर्वाह्णवेलायाम् ॥ १११ ॥

सैवापराह्णकाले वेला स्याद्वाचनाविधौ विहिता ।
सप्तपदी पूर्वाह्णापराह्णयोर्ग्रहण-मोक्षेषु ॥ ११२ ॥

ज्येष्ठामूलात्परतोऽप्यापौषाद्द्व्यंगुला[1] हि वृद्धिः स्यात् ।
मासे मासे विहिता क्रमेण सा वाचनाछाया ॥ ११३ ॥

एवं क्रमप्रवृद्ध्या पादद्वयमत्र हीयते पश्चात् ।
पौषादाज्येष्ठान्ताद्[2] द्व्यंगुलमेवेति विज्ञेयम्[3] ॥ ११४ ॥

अतिशय तीव्र दुखसे युक्त और रोते हुए प्राणियोंको देखने या समीपमें होनेपर मेघोंकी गर्जना व बिजलीके चमकनेपर और अतिवृष्टिके साथ उल्कापात होनेपर [अध्ययन नहीं करना चाहिये] ॥ ११० ॥

जेठ मासकी प्रतिपदा एवं पूर्णमासीको पूर्वाह्ण कालमें वाचनाकी समाप्तिमें एक पाद अर्थात् एक वितस्ति प्रमाण [जांघोंकी] वह छाया कही गई है । अर्थात् इस समय पूर्वाह्ण कालमें बारह अंगुल प्रमाण छायाके रह जानेपर अध्ययन समाप्त कर देना चाहिये ॥१११॥

वही समय (एक पाद) अपराह्णकालमें वाचनाकी विधिमें अर्थात् प्रारम्भ करनेमें कहा गया है । पूर्वाह्णकालमें वाचनाका प्रारम्भ करने और अपराह्णकालमें उसके छोड़नेमें सात पाद (वितास्ति) प्रमाण छाया कही गई है (अर्थात् प्रातःकाल जब सात पाद छाया हो जावे तब अध्ययन प्रारम्भ करे और अपराह्णमें सात पाद छाया रहजानेपर समाप्त करे) ॥ ११२ ॥

ज्येष्ठ मासके आगे पौष मास तक प्रत्येक मासमें दो अंगुल प्रमाण वृद्धि होती है । यह क्रमसे वाचना समाप्त करनेकी छायाका प्रमाण कहा गया है ॥ ११३ ॥

इस प्रकार क्रमसे वृद्धि होनेपर पौष मास तक दो पाद हो जाते हैं । पश्चात् पौष माससे ज्येष्ठ मास तक दो अंगुल ही क्रमशः कम होते जाते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ११४ ॥

---

१ प्रतिपु ' -प्यापौषाद्व्यंगुला ' इति पाठः ।　　२ प्रतिपु ' पौषाघाज्येष्ठान्ता ' इति पाठः ।

३ सज्झाये पट्ठवणे जंघच्छायं वियाण सत्तपयं । पुव्वण्हे अवरण्हे तावदियं चेव णिट्ठवणे ॥ आसाढे दुपदा छाया पुस्समासे चदुप्पदा । वड्ढदे हीयदे चावि मासे मासे दुअंगुला ॥ मूला. ५, ७४-७५.

दव्वादिवदिक्कमणं करेदि सुत्तत्थसिक्खलोहेण ।
असमाहिमसज्झायं[1] कलहं वाहिं वियोगं च[2] ॥ ११५ ॥

विणएण सुदमधीतं किह वि पमादेण होइ विस्सरिदं ।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आवहदि[3] ॥ ११६ ॥

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम् ।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रमिच्युते बुधैः[4] ॥ ११७ ॥

इदि वयणादो तित्थयरवयणविणिग्गयबीजपदं सुत्तं । तेण सुत्तेण समं वट्टदि उप्पज्जदि त्ति गणहरदेवम्मि ट्ठिदसुदणाणं सुत्तसमं । अर्यते परिच्छिद्यते गम्यते इत्यर्थो द्वादशांगविषयः, तेण अत्थेण समं सह वट्टदि त्ति अत्थसमं । दव्वसुदाइरिए अणवेक्खिय संजमजणिदसुदणाणावरणक्खओवसमसमुप्पण्णबारहंगसुदं सयंबुद्धाधारमत्थसममिदि वुत्तं होदि । गणहर-

सूत्र और अर्थकी शिक्षाके लोभसे किया गया द्रव्यादिकका अतिक्रमण असमाधि अर्थात् सम्यक्त्वादिकी विराधना, अस्वाध्याय अर्थात् शास्त्रादिकोंका अलाभ, कलह, व्याधि और वियोगको करता है ॥ ११५ ॥

विनयसे पढ़ा गया श्रुत यदि किसी प्रकार भी प्रमादसे विस्मृत हो जाता है तो परभवमें वह उपस्थित हो जाता है और केवलज्ञानको भी प्राप्त कराता है ॥ ११६ ॥

जो थोड़े अक्षरोंसे संयुक्त हो, सन्देहसे रहित हो, परमार्थ सहित हो, गूढ़ पदार्थोंका निर्णय करनेवाला हो, निर्दोष हो, युक्ति युक्त हो और यथार्थ हो उसे पण्डित जन सूत्र कहते हैं ॥ ११७ ॥

इस वचनके अनुसार तीर्थंकरके मुखसे निकला बीजपद सूत्र कहलाता है । उस सूत्रके साथ चूंकि रहता अर्थात् उत्पन्न होता है, अतः गणधर देवमें स्थित श्रुतज्ञान सूत्रसम कहा गया है ।

जो ' अर्यते ' अर्थात् जाना जाता है वह द्वादशांगका विषयभूत अर्थ है । उस अर्थके साथ रहनेके कारण अर्थसम कहलाता है । द्रव्यश्रुत आचार्योंकी अपेक्षा न करके संयमसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमसे जन्य स्वयंबुद्धोंमें रहनेवाला द्वादशांगश्रुत अर्थसम है, यह अभिप्राय है । गणधर देवसे रचा गया द्रव्यश्रुत ग्रन्थ कहा

१ प्रतिपु ' असमाहियसज्झायां ' इति पाठः । २ मूला. ४, १७१. ३ मूला. ५, ८९.

४ सुत्तं गणधरकथिदं तहेव पत्तेयबुद्धिकथिदं च । सुदकेवलिणा कथिदं अभिण्णदसपुव्विकधिदं च ॥ मूला. ५, ८०. अप्पग्गंथमहत्थं बत्तीसादोसविरहियं जं च । लक्खणजुत्तं सुत्तं अट्ठेहि च गुणेहि उववेयं ॥ आव. सू. ८८०. अप्पक्खरमसंदिद्धं सारवं विस्सओमुहं । अत्थोममणवज्जं च सुत्तं सव्वण्णुभासियं ॥ आव. सू. ८८६.

देवविरइददव्वसुदं गंथो, तेण सह वट्टदि उप्पज्जदि त्ति बोहियबुद्धाइरिएसु ट्ठिदबारहंगसुदणाणं गंथसमं। नाना मिनोतीति नाम। अणेगेहि पयारेहि अत्थपरिच्छित्तिं णामभेदेण[1] कुणदि त्ति एगादिअक्खराण बारसंगाणिओगाणं मज्झट्ठिददव्वसुदणाणवियप्पा णाममिदि वुत्तं होदि। तेण णामेण दव्वसुदेण समं सह वट्टदि उप्पज्जदि त्ति सेसाइरिएसु ट्ठिदसुदणाणं णामसमं[2]।

अणियोगो य नियोगो भास विहासा य वट्टिया चेव।
एदे अणियोगस्स दु णामा एयट्टया पंच ॥ ११८ ॥
सूई मुद्दा पडिघो संभवदल-वट्टिया[3] चेव।
अणियोगणिरुत्तीए दिट्ठंता होंति पंचैते[4] ॥ ११९ ॥

इदि वयणादो अणियोगस्स घोससण्णो णामेगदेसेण[5] अणिओगो वुच्चदे। सच्चभामापदेण[6] अवगम्ममाणत्थस्स तदेगदेसभामासद्दादो वि अवगमादो। कधं दिट्ठंतसण्णा अणि-

---

जाता है। उसके साथ रहने अर्थात् उत्पन्न होनेके कारण बोधितबुद्ध आचार्योंमें स्थित द्वादशांग श्रुतज्ञान ग्रन्थसम कहलाता है। 'नाना मिनोति' अर्थात् नाना रूपसे जो जानता है उसे नाम कहते हैं; अर्थात् अनेक प्रकारोंसे अर्थज्ञानको नामभेद द्वारा करनेके कारण एक आदि अक्षरों स्वरूप बारह अंगोंके अनुयोगोंके मध्यमें स्थित द्रव्य श्रुतज्ञानके भेद नाम है, यह अभिप्राय है। उस नामके अर्थात् द्रव्यश्रुतके साथ रहने अर्थात् उत्पन्न होनेके कारण शेष आचार्योंमें स्थित श्रुतज्ञान नामसम कहलाता है।

अनुयोग, नियोग, भाषा, विभाषा और वर्त्तिका, ये पांच अनुयोगके समानार्थक नाम हैं ॥ ११८ ॥

अनुयोगकी निरुक्तिमें सूची, मुद्रा, प्रतिघ, सम्भवदल और वार्त्तिका, ये पांच दृष्टान्त हैं ॥ ११९ ॥ (देखिये पु. १, पृ. १५४)।

इस वचनसे घोष संज्ञावाला अनुयोगका अनुयोग (घोषानुयोग) नामका एक देश होनेसे अनुयोग कहा जाता है, क्योंकि, सत्यभामा पदसे अवगम्यमान अर्थ उक्त पदके एक देशभूत भामा शब्दसे भी जाना ही जाता है।

शंका — अनुयोगकी दृष्टान्त संज्ञा कैसे सम्भव है ?

---

१ प्रतिषु 'णाणभेदेन' इति पाठः।

२ नाम अभिधानम्, तेन समं नामसमम्। इदमुक्तं भवति— यथा स्वनाम कस्याचिच्छिक्षितं जितं मितं परिजितं भवति तथैतदपीत्यर्थः। अनु. टीका सू. १३.

३ प्रतिषु 'सम्भवदअवट्टिया' इति पाठः। ४ ष. खं. पु. १, पृ. १५४.

५ प्रतिषु 'घोससण्णामेगदेसेण' इति पाठः। ६ प्रतिषु 'वुच्चदे ण च सच्चभामापदेणं' इति पाठः।

ओगस्स ? उवमेये उवमाणोवयारादो । घोसेण दव्वाणिओगद्दारेण समं सह वट्टदि उप्पज्जदि त्ति घोससमं[1] णाम अणियोगसुदणाणं ।

विभक्त्यन्तभेदेन पठनं सूत्रसमम्, कारकभेदेनार्थसमम्, विभक्त्यन्ताभेदेन[2] ग्रन्थसमम् ।

लिंगत्तियं वयणसमं अवणिदुवणिदमिस्सयं चेय ।
अज्झत्थं च बहित्थं पच्चक्खपरोक्ख सोलसिमे ॥ १२० ॥

एदेहि सोलसवयणेहि पढणं णामसमं । उदात्त-अणुदात्त-सरिदसरभेएण पढणं घोससममिदि के वि आइरिया परूवेंति । तण्ण घडदे, अणवत्थापसंगादो । कुदो ? विहत्ति-लिंग-कारय-काल-पच्चक्ख-परोक्खज्झत्थ-बहित्थभेदाभेदेहि सुदणाणस्स अणेयविहत्तप्पसंगादो । ण च लिंगादीहि सुदणाणभेदो होदि, तेहि विणा पढणाणुववत्तीदो । एदे आगमस्स णव अत्थाहि-

समाधान — उपमेयमें उपमानका उपचार करनेसे वह भी सम्भव ही है । अर्थात् अनुयोग उपमेय है और दृष्टान्त उपमान है । उनके इस सम्बन्धके कारण अनुयोगको भी दृष्टान्त संज्ञा प्राप्त है ।

घोष अर्थात् द्रव्यानुयोगद्वारके समं अर्थात् साथ रहता है अर्थात् उत्पन्न होता है, इस कारण अनुयोगश्रुतज्ञान घोषसम कहलाता है ।

विभक्त्यन्तभेदसे पढ़ना सूत्रसम, कारकभेदसे अर्थसम और विभक्त्यन्तके अभेदसे पढ़ना ग्रन्थसम है ।

[तीनों] वचनोंके साथ तीन लिंग, अपनीत, उपनीत व मिश्र अर्थात् उदात्त, अनुदात्त व स्वरित (?), अभ्यन्तर, बाह्य, प्रत्यक्ष और परोक्ष, ये सोलह हैं ॥ १२० ॥

इन सोलह वचनोंसे पढ़ना नामसम है । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरोंके भेदसे पढ़नेका नाम घोषसम है, ऐसा कितने ही आचार्य प्ररूपण करते हैं । किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर अनवस्थाका प्रसंग आता है; कारण कि इस प्रकार विभक्ति, लिंग, कारक, काल, प्रत्यक्ष, परोक्ष, अभ्यन्तर और बाह्यके भेदाभेदोंसे श्रुतज्ञानके अनेक प्रकार होनेका प्रसंग आता है । और लिंगादिकोंसे श्रुतज्ञानका भेद होता नहीं है, क्योंकि, उनके विना पढ़ना बन नहीं सकता । ये आगमके नौ अर्थाधिकार

१ घोषा — उदात्तादयः, तैर्वाचनाचार्याभिहितघोषैः समं घोषसमम् । यथा गुरुणा अभिहितास्तथा शिष्योऽपि यत्र शिक्षते तद् घोषसममिति भावः । अनु. टीका सू. १३.

२ आ काप्रत्योः ' विभक्त्यन्तभेदेन ' इति पाठः ।

यारा परूविदा। एसो अत्थो पयदकदीए जोजेयव्वो। कधमणियोगस्सणियोगा ? ण, कदीए वि संतादिणाणाणियोगसंभवादो। संपधि एदेसु जो उवजोगो तस्स भेदपरूवणट्ठमुत्तर-सुत्तमागदं —

जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा वा अणुपेक्खणा वा थय-थुदि-धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया[1] ॥ ५५ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे— जा तत्थ णवसु आगमेसु वायणा अण्णेसिं भवियाणं जहा-सत्तीए गंथत्थपरूवणा उवजोगो णाम। तत्थ आगमे अमुणिदत्थपुच्छा वा उवजोगो। आइ-रियभडारएहि परूविज्जमाणत्थावहारणं पडिच्छणा णाम। सा[2] वि उवजोगो। एत्थ सव्वत्थ वासद्दो समुच्चयट्ठो घेत्तव्वो। अविस्सरणट्ठं पुणो पुणो भावागमपरिमलणं परियट्टणा णाम।

कहे गये हैं। यह अर्थ प्रकृत कृतिमें जोड़ना चाहिये।

शंका — अनुयोगके अनुयोग कैसे सम्भव हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, कृतिअनुयोगके भी सत् संख्या आदि नाना अनुयोग सम्भव हैं।

अब इन आगमोंमें जो उपयोग है उसके भेदोंकी प्ररूपणाके लिये उत्तर सूत्र प्राप्त होता है—

उन नौ आगमोंमें जो वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा तथा और भी इनको आदि लेकर जो अन्य हैं वे उपयोग हैं ॥ ५५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं — जो उन नौ आगमोंमें वाचना अर्थात् अन्य भव्य जीवोंके लिये शक्त्यनुसार ग्रन्थके अर्थकी प्ररूपणा की जाती है वह उपयोग है। वहां आगममें नहीं जाने हुए अर्थके विषयमें पूछना भी उपयोग है। आचार्य भट्टारकों द्वारा कहे जानेवाले अर्थके निश्चय करनेका नाम प्रतीच्छना है। वह भी उपयोग है। यहां सब जगह वा-शब्दको समुच्चयार्थक ग्रहण करना चाहिये। ग्रहण किया हुआ अर्थ विस्मृत न हो जावे, एतदर्थ वार वार भावागमका परिशीलन करना परिवर्तना है। यह भी उपयोग

---

१ परियट्टणा य वायण पडिच्छणाणुपेहणा य धम्मकहा। थुदिमंगलसंयुत्तः [संजुत्तो] पंचविहो होइ सज्झाओ। मूला. ५-१९६. × × × से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परिअट्टणाए धम्मकहाए। नो अणुप्पेहाए। कम्हा ? अणुवओगो दव्वमिति कट्टु ॥ अनु. सू. १३. २ अप्रतौ 'सो' इति पाठः।

एसा[1] वि उवजोगो। कम्मणिज्जरणट्ठमट्ठि-मज्जाणुगयस्स सुदणाणस्स परिमलणमणुपेक्खणा णाम। एसा[2] वि सुदणाणोवजोगो। बारसंगसंघारो सयलंगविसयप्पणादो थवो णाम। तम्हि जो उवजोगो वायण-पुच्छण-परियट्टणाणुवेक्खणसरूवो सो वि थओवयारेण। बारसंगेसु एक्कंगोवसंघारो थुदी णाम। तम्हि जो उवजोगो सो वि थुदि[3] त्ति घेत्तव्वो। एक्कंगस्स एगाहियारोवसंहारो धम्मकहा। तत्थ जो उवजोगो सो वि धम्मकहा त्ति घेत्तव्वो। जे च अमी अण्णे एवमादिया त्ति वुत्ते कदि-वेदणादिउवसंघारविसया उवजोगा घेत्तव्वा। उवजोग-सद्दो जदि वि सुत्ते णत्थि तो वि अत्थावत्तीदो अज्झाहारेदव्वो। एवमेदे अट्ठ सुदणाणोव-जोगा परूविदा।

संपहि कदीए अट्ठविहोपजोगपरूवणा कीरदे— अण्णेसिं जीवाणं कदीए अत्थ-परूवणा वायणा। अणवगयत्थपुच्छा पुच्छणा। कहिज्जमाणअत्थावहारणं पडिच्छणा। अविस्सरणट्ठं पुणो पुणो कदियट्ठपरिमलणं परियट्टणा। सांगीभूदकदीए कम्मनिज्जरट्ठमणुसरण-मणुवेक्खणा। कदीए उवसंहारस्स सयलाणियोगद्दारेसु उवजोगो थवो णाम। तत्थेगणि-

है। कर्मोंकी निर्जराके लिए अस्थि-मज्जानुगत अर्थात् पूर्ण रूपसे हृदयंगम हुए श्रुतज्ञानके परिशीलन करनेका नाम अनुप्रेक्षणा है। यह भी श्रुतज्ञानका उपयोग है। सब अंगोंके विषयोंकी प्रधानतासे बारह अंगोंके उपसंहार करनेको स्तव कहते हैं। उसमें जो वाचना, पृच्छना, परिवर्तना और अनुप्रेक्षणा स्वरूप उपयोग है वह भी उपचारसे स्तव कहा जाता है। बारह अंगोंमें एक अंगके उपसंहारका नाम स्तुति है। उसमें जो उपयोग है वह भी स्तुति है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। एक अंगके एक अधिकारके उपसंहारका नाम धर्म-कथा है। उसमें जो उपयोग है वह भी धर्मकथा है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। 'इनको आदि लेकर और जो वे अन्य हैं' इस प्रकार कहनेपर कृति व वेदना आदिके उपसंहार-विषयक उपयोगोंको ग्रहण करना चाहिये। उपयोग शब्द यद्यपि सूत्रमें नहीं है तो भी अर्थापत्तिसे उसका अध्याहार करना चाहिये। इस प्रकार ये आठ श्रुतज्ञानोपयोग कहे गये हैं।

अब कृतिके विषयमें आठ प्रकार उपयोगोंकी प्ररूपणा करते हैं— अन्य जीवोंके लिये कृतिके अर्थकी प्ररूपणा करना वाचना कहलाती है। अज्ञात अर्थके विषयमें पूछना पृच्छना है। प्ररूपित किये जानेवाले अर्थका निश्चय करनेको प्रतीच्छना कहते हैं। विस्मरण न होने देनेके लिये वार वार कृतिके अर्थका परिशीलन करना परिवर्तना है। सांगीभूत कृतिका कर्मनिर्जराके लिये अनुस्मरण अर्थात् विचार करना अनुप्रेक्षणा कही जाती है। समस्त अनुयोगोंमें कृतिके उपसंहारविषयक उपयोगका नाम स्तव है। कृतिके एक अनुयोगद्वार

१ प्रतिषु 'एसो' इति पाठः। २ काप्रतौ 'एसो' इति पाठः।
३ प्रतिषु 'मदि' इति पाठः।

योगद्दारुवजोगो थुदी णाम । एगमग्गणोवजोगो धम्मकहा णाम । एवमेदे कदीए अट्ठुवजोगा परूविदा । सेसं सुगमं । एदेहि वदिरित्तजीवो सुदणाणक्खओवसमसहिओ णट्ठक्खओवसमो वा अणुवजुत्तो णाम । सुत्तम्मि अणुवजुत्तजीवलक्खणमपरूविदं कधं णव्वदे ? ण, उवजुत्त-परूवणाए तदवगमादो । अणुवजुत्तपरूवणट्ठमुत्तरसुत्ताणि आगयाणि—

णेगम-ववहाराणमेगो अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी अणेया वा अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी ॥ ५६ ॥

एत्थ पढमो सुत्तावयवो घडदे, एगस्साणुवजुत्तो त्ति एगवयणेण णिद्देसादो । ण बिदिओ, अणेयाणमणुवजुत्तो त्ति एगवयणपओगादो ? ण एस दोसो, अणेयाणं पि आगमदव्व-कदित्तणेण एयत्तमावण्णाणं एगवयणविसयसंभवेण अणुवजुत्तो त्ति एगवयणणिद्देसोववत्तीदो ।

विषयक उपयोगका नाम स्तुति है । एक मार्गणाविषयक उपयोग धर्मकथा कहलाता है । इस प्रकार ये कृतिके आठ उपयोग कहे गये हैं । शेष प्ररूपणा सुगम है ।

इन उपयोगोंसे भिन्न श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमसे सहित अथवा नष्ट हुए क्षयोपशमवाला जीव अनुपयुक्त कहलाता है ।

शंका—सूत्रमें अप्ररूपित यह अनुपयुक्त जीवका लक्षण कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपयुक्त जीवकी प्ररूपणा करनेसे उसका ज्ञान स्वय-मेव हो जाता है ।

अनुपयुक्त जीवकी प्ररूपणाके लिये उत्तर सूत्र प्राप्त होते हैं—

नैगम और व्यवहार नयकी अपेक्षा एक अनुपयुक्त जीव आगमसे द्रव्यकृति है अथवा अनेक अनुपयुक्त जीव आगमसे द्रव्यकृति हैं ॥ ५६ ॥

शंका—यहां सूत्रका प्रथम अवयव घटित होता है, क्योंकि, उसमें एकके लिये 'अणुवजुत्तो' इस प्रकार एक वचनका निर्देश किया गया है । किन्तु द्वितीय अवयव घटित नहीं होता, क्योंकि, उसमें अनेकोंके लिये 'अणुवजुत्तो' इस प्रकार एक वचनका प्रयोग किया गया है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, आगमद्रव्यकृति रूपसे एकताको प्राप्त अनेकोंके भी एक वचन विषयके सम्भव होनेसे 'अणुवजुत्तो' ऐसा एक वचनका निर्देश घटित होता ही है ।

संगहणयस्स एयो वा अणेया वा अणुवजुत्तो[1] आगमदो दव्वकदी ॥ ५७ ॥

एसो संगहिदत्थग्गाहि त्ति संगहणओ भण्णदि । तेणेत्थसंगहपरूवणाए होदव्वमिदि । अत्थि एत्थ संगहो, जादि-वत्तिएयत्तवाचियाणं दोण्णं पि आगमदो दव्वकदीणमेयत्तब्भुवगमादो । पुव्विल्लणएहि एदासिं दोण्णं कदीणमेयत्तं किण्ण इच्छिदं ? जादि-वत्तिगयएगत्ताणमेगाणेयदव्वाहाराणं एगजोग-क्खेमविरहिदाणं एगत्तविरोहादो । एसो णओ पुण संगहणसहाओ जादिव्वत्तिट्ठियसंखाणं[2] एगत्तेण भेदाभावादो दोण्णमागमदो दव्वकदीणं एयत्तमिच्छदे ।

उजुसुदस्स एओ अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी ॥ ५८ ॥

अणेया इदि अवत्थु । कधमुज्जुसुदस्स पज्जवट्ठियस्स दव्वसंभवो ? ण, असुद्धम्मि

संग्रहनयकी अपेक्षा एक अथवा अनेक अनुपयुक्त जीव आगमसे द्रव्यकृति हैं ॥५७॥

चूंकि यह संगृहीत अर्थोंको ग्रहण करता है इसीलिये संग्रहनय कहा जाता है । इसी कारण यहां संग्रहकी प्ररूपणा होना चाहिये । यहां संग्रह है ही, क्योंकि, जाति और व्यक्तिकी एकताकी वाचक दोनों ही आगमसे द्रव्यकृतियोंको एक स्वीकार किया गया है ।

शंका -- पूर्वोक्त नयोंसे इन दोनों कृतियोंको एक क्यों नहीं स्वीकार किया ?

समाधान -- एक व अनेक द्रव्योंके आश्रित रहनेवालीं तथा एक योग-क्षेम (ईप्सित वस्तुका लाभ और उसका संरक्षण) से रहित जाति व व्यक्तिगत एकताओंकी एकताका विरोध होनेसे उक्त नयोंसे उन दोनों कृतियोंको एक नहीं स्वीकार किया गया । परन्तु यह नय संग्रहण स्वभाव होता हुआ जाति व व्यक्तिगत संख्याओंके एकताकी अपेक्षा कोई भेद न होनेसे दोनों आगमद्रव्यकृतियोंकी एकताको स्वीकार करता है ।

ऋजुसूत्रकी अपेक्षा एक अनुपयुक्त जीव आगमसे द्रव्यकृति है ॥ ५८ ॥

इस नयकी दृष्टिमें ' अनेक ' अवस्तु है ।

शंका -- पर्यायार्थिक ऋजुसूत्रके द्रव्यकी सम्भावना कैसे हो सकती है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अशुद्ध ऋजुसूत्रनयमें द्रव्यकी सम्भावनाके प्रति कोई

१ प्रतिषु ' अणुवजुत्ता वा ' इति पाठः ।

२ अप्रतौ ' जादिव्वट्ठिदिसंखाणं ', आ-काप्रत्योः ' जादिव्वट्ठियसंखाणं ' इति पाठः ।

दव्वसंभवं पडि विरोहाभावादो । उजुसुदे किमिदि अणेयसंखा णत्थि ? एयसद्दस्स एय-पमाणस्स य एगत्थं मोत्तूण अणेगत्थेसु एक्ककाले पवुत्तिविरोहादो । ण च सद्द-पमाणाणि बहुसत्तिजुत्ताणि अत्थि, एक्कम्हि विरुद्धाणेयसत्तीणं संभवविरोहादो एयसंखं मोत्तूण अणेय-संखाभावादो वा ।

सद्दणयस्स अवत्तव्वं ॥ ५९ ॥

कुदो ? एदस्स विसए दव्वाभावादो ।

सा सव्वा आगमदो दव्वकदी णाम ॥ ६० ॥

सा सव्वा इदि वयणेण पुव्वुत्तासेसकदीणं गहणं कायव्वं । कधं बहूणमेगवयण-णिद्देसो ? ण एस दोसो, बहूणं पि कदित्तणेण एगत्तमावण्णाणमेगवयणणिद्देसोववत्तीदो ।

विरोध नहीं है ।

शंका—ऋजुसूत्रनयमें अनेक संख्या क्यों नहीं सम्भव है ?

समाधान—चूंकि इस नयकी अपेक्षा एक शब्द और एक प्रमाणकी एक अर्थको छोड़कर अनेक अर्थोंमें एक कालमें प्रवृत्तिका विरोध है, अतः उसमें अनेक संख्या सम्भव नहीं है । और शब्द व प्रमाण बहुत शक्तियोंसे युक्त हैं नहीं, क्योंकि, एकमें विरुद्ध अनेक शक्तियोंके होनेका विरोध है, अथवा एक संख्याको छोड़ अनेक संख्याओंका वहां अभाव है ।

शब्दनयकी अपेक्षा अवक्तव्य है ॥ ५९ ॥

इसका कारण शब्दनयके विषयमें द्रव्यका अभाव है ।

वह सब आगमसे द्रव्यकृति कहलाती है ॥ ६० ॥

'वह सब' इस वचनसे पूर्वोक्त समस्त कृतियोंका ग्रहण करना चाहिये ।

शंका—बहुत कृतियोंके लिये एक वचनका निर्देश कैसे किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, कृतिस्वरूपसे अभेदको प्राप्त बहुत कृतियोंके लिये भी एक वचनका निर्देश युक्तिसंगत है ।

जा सा णोआगमदो दव्वकदी णाम सा तिविहा– जाणुगसरीर-दव्वकदी भवियदव्वकदी जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वकदी चेदि ॥ ६१ ॥

जा सा णोआगमदो दव्वकदि त्ति वयणेण पुव्वुद्दिट्ठा णोआगमदो दव्वकदी संभालिदा अत्थपरूवणट्ठं । जाणयस्स सरीरं जाणयसरीरं । कस्स जाणओ ? कदिपाहुडस्स । कधमेदं णव्वदे ? पयरणवसादो । तदेव दव्वकदी जाणुगसरीरदव्वकदी । भविस्सदि त्ति भविया । केण भविस्सदि ? कदिपज्जाएण । कुदो णव्वदे ? पयरणादो । सा चेव दव्वकदी भविय-दव्वकदी । ताहिंतो वदिरित्ता तव्वदिरित्ता, [सा चेव दव्वकदी] तव्वदिरित्तदव्वकदी ।

....

जो वह नोआगमसे द्रव्यकृति है वह तीन प्रकार है— ज्ञायकशरीर द्रव्यकृति, भावी द्रव्यकृति और ज्ञायकशरीर-भाविव्यतिरिक्त द्रव्यकृति ॥ ६१ ॥

'जो वह नोआगमसे द्रव्यकृति है' इस वचनसे पूर्वोद्दिष्ट नोआगमसे द्रव्य-कृतिका अर्थप्ररूपणाके लिये स्मरण कराया गया है । ज्ञायकका शरीर ज्ञायकशरीर है ।

शंका— किसका ज्ञायक ?

समाधान— कृतिप्राभृतका ज्ञायक ।

शंका— यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— प्रकरणके सम्बन्धसे वह जाना जाता है ।

वही (ज्ञायकशरीर स्वरूप) द्रव्यकृति ज्ञायकशरीरद्रव्यकृति कहलाती है । जो आगे होनेवाली है उसका नाम भावी है ।

शंका— किस रूपसे होनेवाली है ?

समाधान— कृतिपर्यायसे होनेवाली है ।

शंका— यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान— वह प्रकरणसे जाना जाता है ।

वही द्रव्यकृति भावी द्रव्यकृति है ।

इन दोनों कृतियोंसे व्यतिरिक्त तद्व्यतिरिक्त है, तद्व्यतिरिक्त ऐसी जो कृति

तिण्णं णोआगमदव्वकदीणं सरूवं भणिय तासिं विसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

जा सा जाणुगसरीरदव्वकदी णाम तिस्से इमे अत्थाहियारा भवंति– ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं[1] सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं ॥ ६२ ॥

तत्थ सणिं सणिं सगविसए वट्टमाणो कदिअणियोगो ट्ठिदं णाम। पडिक्खलणेण विणा मंथरगईए सगविसए संचरमाणो कदिअणियोगो जिदं णाम। अइतुरियाए गईए पडिक्खलणेण विणा आइद्धकुलालचक्कं व सगविसए परिब्भमणक्खमो कदिअणियोगो परिजिदं णाम। पत्तणंदादिसरूवं कदिसुदणाणं वायणोवगयं णाम। जिणवयणविणिग्गयबीजपदादो अणंतत्थावगहणेण अपक्खरणिद्देसत्तणेण य पत्तसुत्तणामादो गणहरदेवेसुप्पण्णकदिअणिओगो सुत्तेण सह वुत्तीदो सुत्तसमं। गंथ-बीजपदेहि विणा संजमबलेण केवलणाणं व सयंबुद्धेसुप्पण्ण-कदिअणियोगो अत्थेण सह वुत्तीदो अत्थसमं णाम। अरहंतवुत्तत्थो गणहरदेवगंथिओ सद्द-कलावो गंथो णाम। तत्तो समुप्पणो भद्दबाहुआदिथेरेसु वट्टमाणो कदिअणियोगो गंथेण सह

....

वह तद्व्यतिरिक्तकृति है। अब तीन नोआगमकृतियोंका स्वरूप कहकर उनकी विशेष प्ररूपणाके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

जो वह ज्ञायकशरीर द्रव्यकृति है उसके ये अर्थाधिकार हैं— स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम ॥ ६२ ॥

उनमेंसे धीरे धीरे अपने विषयमें वर्तमान कृतिअनुयोग स्थित कहलाता है। विना रुकावटके मन्द गतिसे अपने विषयमें संचार करनेवाला कृतिअनुयोग जित कहलाता है। रुकावटके विना अति शीघ्र गतिसे घुमाए हुए कुम्हारके चक्रके समान अपने विषयमें जो संचार करनेमें समर्थ है वह कृतिअनुयोग परिजित है। नन्दा आदिके स्वरूपको प्राप्त कृतिश्रुतज्ञानका नाम वाचनोपगत है। अनन्त पदार्थोंका ग्रहण करने और अक्षर-निर्देशसे रहित होनेके कारण सूत्र नामको प्राप्त हुए जिन भगवान्के मुखसे निकले बीजपदसे गणधर देवोंमें उत्पन्न हुआ कृतिअनुयोग सूत्रके साथ रहनेसे सूत्रसम कहा जाता है। ग्रन्थ और बीजपदोंके विना संयमके प्रभावसे केवलज्ञानके समान स्वयंबुद्धोंमें उत्पन्न कृतिअनुयोग अर्थके साथ रहनेसे अर्थसम कहलाता है। अरहन्त देवके द्वारा जिसका अर्थ कहा गया है तथा जो गणधरोंसे गूंथित है ऐसे शब्दकलापको ग्रन्थ कहते हैं। उससे उत्पन्न हुआ भद्रबाहु आदि स्थविरोंमें रहनेवाला कृतिअनुयोग ग्रन्थके

....

१ प्रतिषु 'वायणोवकदं' इति पाठः।

वुत्तीदो गंथसमं णाम । बुद्धिविहूणपुरिसभेदेण एगक्खरादीहि ऊणकदिअणियोगो णाणा मिणोदीदि वुप्पत्तीदो णाममिदि भण्णदे । तेण सह वट्टमाणो भावकदिअणियोगो णामसमं णाम । तस्स कदिअणिओगद्दारस्स एगाणियोगो घोसो । तत्तो समुप्पण्णो कदिअणिओगो तत्तो असमुप्पज्जिय एदेण समो वि घोससमो । एवं णवविहो कदिअणिओगो परूविदो । जाणया वि एत्तिया चेव, दोण्हं भेदाभावादो ।

तस्स कदिपाहुडजाणयस्स चुद-चइद-चत्तदेहस्स इमं सरीर-मिदि सा सव्वा जाणुगसरीरदव्वकदी णाम ॥ ६३ ॥

सयमेव आउक्खएण पदिदसरीरो चुददेहो णाम[2] । उवसग्गेण पादिदसरीरो कदि-पाहुडजाणओ साहू चइददेहो णाम । भत्तपच्चक्खाणिंगिणि-पाओवगमणविहाणेहि छंडिदसरीरो साहू कदिप्पाहुडजाणओ चत्तदेहो णाम[3] । एदेसिं कदिपाहुडजाणयाणं चुद-चइद-चत्तदेहाणं

साथ रहनेसे ग्रन्थसम कहलाता है । बुद्धिविहीन पुरुषोंके भेदसे एक-दो अक्षर आदिकोंसे हीन कृतिअनुयोग 'नाना मिनोति' अर्थात् जो नाना अर्थोंको ग्रहण करता है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'नाम' कहा जाता है । उसके साथ रहनेवाले भावकृतिअनुयोगको नामसम कहते हैं । उस कृतिअनुयोगद्वारका एक अनुयोग घोष कहलाता है । उससे उत्पन्न कृतिअनुयोगको और उससे न उत्पन्न होकर उसके समान भी कृतिअनुयोगको घोषसम कहते हैं । इस तरह नौ प्रकार कृतिअनुयोगकी प्ररूपणा की है । ज्ञायक भी इतने ही हैं, क्योंकि, उन दोनोंमें कोई भेद नहीं है ।

च्युत, च्यावित और त्यक्त देहवाले उस कृतिप्राभृतज्ञायकका यह शरीर है, ऐसा समझकर वह सब ज्ञायकशरीरद्रव्यकृति कहलाती है ॥ ६३ ॥

आयुके क्षयसे स्वयं ही गिरे हुए (निर्जीव हुए) शरीरवाला ज्ञायक जीव च्युत-देह कहलाता है । उपसर्गसे गिराये गये शरीरवाला कृतिप्राभृतका जानकार साधु च्यावितदेह कहा जाता है । भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनि और प्रायोपगमन विधानसे शरीरको छोड़नेवाला कृतिप्राभृतका जानकार साधु त्यक्तदेह कहा जाता है । च्युत, च्यावित और त्यक्त

१ जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं तु होदि जं बिदियं । तत्थ सरीरं तिविहं तियकालगयं ति दो सुगमा ॥ भूदं तु चुदं चइदं चदं ति तेधा × × × । गो. क. ५५-५६. से किं तं जाणयसरीरदव्वावस्सयं ? आवस्सए त्ति पयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगदचुत-चावित-चत्तदेहं × × × । अनु. सू. १६.

२ × × × चुदं सपाकेण । पडिदं कदलीघाद-परिच्चागेणूणयं होदि ॥ गो. क. ५६.

३ कदलीघादसमेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि । घादेण अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि ॥ गो. क. ५८.

इमं सरीरमिदि कट्टु ताणि सव्वसरीराणि जाणुगसरीरदव्वकदी णाम[1]। कधं सरीराणं णोआगम-दव्वकदिव्ववएसो ? आधारे आधेओवयारादो । जदि एवं तो सरीराणमागमत्तमुवयारेण किण्ण वुच्चदे ? आगम-णोआगमाणं भेदपदुप्पायणट्ठं ण वुच्चदे पओजणाभावादो च । भविय-वट्टमाणजाणुगसरीरणोआगमदव्वकदीओ सुत्ते केण णएण ण वुत्ताओ ? सरीर-सरीरीणमभेद-पण्णावएण । कधं सरीरादो सरीरी अभिण्णो ? सरीरदाहे जीवे दाहोवलंभादो, सरीरे भिज्जमाणे छिज्जमाणे च जीवे वेयणोवलंभादो, सरीरागरिसणे जीवागरिसणदंसणादो, सरीरगमणागमणेहि जीवस्स गमणागमणदंसणादो, पडियारखंडयाणं व[2] दोण्णं भेदाणुवलंभादो, एगीभूददुद्धोदयं व

देहवाले कृतिप्राभृतके ज्ञायकोंका यह शरीर है, ऐसा जानकर वे सब शरीर ज्ञायकशरीर-द्रव्यकृति कहलाते हैं ।

शंका — शरीरोंकी नोआगमद्रव्यकृति संज्ञा कैसे सम्भव है ?

समाधान — चूंकि शरीर नोआगमद्रव्यकृतिके आधार हैं, अतः आधारमें आधेयका उपचार करनेसे शरीरोंकी उक्त संज्ञा सम्भव है ।

शंका — यदि ऐसा है तो शरीरोंको उपचारसे आगम क्यों नहीं कहते ?

समाधान — आगम और नोआगमका भेद बतलानेके लिये तथा कोई प्रयोजन न होनेसे भी शरीरोंको आगम नहीं कहते ।

शंका — भावी और वर्तमान ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यकृतियोंको सूत्रमें किस नयसे नहीं कहा ?

समाधान — शरीर और शरीरीका अभेद बतलानेवाले नयसे उन्हें सूत्रमें नहीं कहा।

शंका — शरीरसे शरीरधारी जीव अभिन्न कैसे है ?

समाधान — चूंकि शरीरका दाह होनेपर जीवमें दाह पाया जाता है, शरीरके भेदे जाने और छेदे जानेपर जीवमें वेदना पायी जाती है, शरीरके खींचनेमें जीवका आकर्षण देखा जाता है, शरीरके गमनागमनमें जीवका गमनागमन देखा जाता है, प्रत्याकार (म्यान) और खण्डक (तलवार) के समान दोनोंके भेद नहीं पाया जाता है, तथा एक रूप हुए दूध और पानीके समान दोनों एक रूपसे पाये जाते हैं । इस कारण

१ प्रतिषु 'णाम' इति पाठः ।　　२ प्रतिषु 'च' इति पाठः ।

एगत्तेणुवलंभादो। तदो कदिपाहुडजाणओ चेव सरीरमिदि जाणुगभविय-वट्टमाणसरीराणि आगमदव्वकदीए पविट्ठाणि त्ति णएण पुध ण वुत्ताओ।

जीव-सरीराणं भेदपण्णवणिज्जेण णएण ताओ दो वि कदीओ परूविज्जंति। तं जहा— जीवो सरीरादो भिण्णो, अणादि-अणंतत्तादो सरीरे सादि-सांतभावदंसणादो; सव्व-सरीरेसु जीवस्स अणुगमदंसणादो सरीरस्स तदणुवलंभादो; जीव-सरीराणमकारणत्त [-सकारणत्त] दंसणादो। सकारणं सरीरं, मिच्छत्तादिआसवफलत्तादो; णिक्कारणो जीवो, जीवभावेण धुवत्तादो सरीरदाहच्छेद-भेदे हि जीवस्स तदणुवलंभादो। तेण दो वि कदीओ मंगलादीसु परूविदाओ।

जा सा भवियदव्वकदी णाम– जे इमे कदि त्ति अणिओगद्दारा भविओवकरणदाए जो ट्ठिदो जीवो ण ताव[1] तं करेदि सा सव्वा भवियदव्वकदी[2] णाम ॥ ६४ ॥

शरीरसे शरीरधारी अभिन्न है।

इस कारण चूंकि कृतिप्राभृतका जानकार जीव ही शरीर है, अतः भावी और वर्तमान ज्ञायकशरीरोंके आगमद्रव्यकृतिमें प्रविष्ट होनेसे [जीव और शरीरके अभेद प्रज्ञापक] नयसे उन्हें पृथक् नहीं कहा।

जीव और शरीरके भेदप्रज्ञापनीय नयसे उन दोनों कृतियोंकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— जीव शरीरसे भिन्न है, क्योंकि, वह अनादि-अनन्त है, परन्तु शरीरमें सादि-सान्तता पायी जाती है; सब शरीरोंमें जीवका अनुगम देखा जाता है, किन्तु शरीरके जीवका अनुगम नहीं पाया जाता; तथा जीव अकारण और शरीर सकारण देखा जाता है। शरीर सकारण है, क्योंकि, वह मिथ्यात्व आदि आस्रवोंका कार्य है। जीव कारण रहित है, क्योंकि, वह चेतनभावकी अपेक्षा नित्य है, तथा शरीरके दाह, छेदन और भेदनसे जीवका दहन, छेदन एवं भेदन नहीं पाया जाता। इसीलिये दोनों ही कृतियोंकी मंगल आदिकोंमें प्ररूपणा की गई है।

जो वह भावी द्रव्यकृति है— जो वे कृतिअनुयोगद्वार हैं उनके भविष्यमें होनेवाले उपादान कारण रूपसे जो जीव स्थित होकर उसे उस समय नहीं करता है वह सब भावी नोआगमद्रव्यकृति कहलाती है ॥ ६४ ॥

---

१ प्रतिषु 'भविओवकरणदाए णो यए ण ताव' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'भविओ दव्वकदी' इति पाठः।

एदस्स अत्थो वुच्चदे — 'जे इमे कदि त्ति अणियोगद्दारा' एदेण बहुवयणंत-सुत्तावयवेण कदिअणिओगद्दाराणं बहुत्तं परूविदं । तेसिमणिओगद्दाराणमिदि संबंधो कायव्वो, अण्णहा अत्थाणुववत्तीदो । भविओवकरणदाए त्ति उवयरणं कारणं । तं च तिविहं भूदं भवियं वट्टमाणमिदि । तत्थ जो कदिअणिओगद्दाराणं भवियोवकरणदाए भविस्सकाले एदेसिमणिओगद्दाराणमुवायाणकारणदाए जो ट्ठिदो जीवो ण ताव तं करेदि सा सव्वा भविय-दव्वकदी णाम ।

जा सा जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वकदी णाम सा अणेय-विहा । तं जहा — गंथिम-वाइम-वेदिम-पूरिम-संघादिम-अहोदिम-णिक्खोदिम-ओवेल्लिम-उव्वेल्लिम-वण्ण-चुण्ण-गंधविलेवणादीणि जे चामण्णे एवमादिया सा सव्वा जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वकदी णाम ॥ ६५ ॥

'जा सा जाणुगसरीरभवियवदिरित्तदव्वकदी णाम' एदं पुव्वुद्दिट्ठवियप्पसंभालणट्ठं परूविदं । तत्थ गंथणकिरियाणिप्फण्णं फुल्लमादिदव्वं गंथिमं णाम । वायणकिरियाणिप्फण्णं सुप्प-पच्छिया-चंगेरि-किदय-चालणि-कंबल-वत्थादिदव्वं वाइमं णाम । सुत्ति थुवकोसपल्लादि-

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं — 'जो ये कृतिअनुयोगद्वार हैं' इस बहुवचनान्त सूत्रांशसे कृतिअनुयोगद्वारोंकी अधिकता बतलाई है। यहां 'उन अनुयोगद्वारोंकी' ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये, क्योंकि, इसके विना अर्थ नहीं बनता। 'भविओवकरणदाए' यहां उपकरणका अर्थ कारण है। वह तीन प्रकार है — भूत, भविष्यत और वर्तमान। उनमें जो कृतिअनुयोगद्वारोंके 'भवियोवकरणदाए' अर्थात् भविष्य कालमें इन अनुयोगद्वारोंके उपादान कारण स्वरूपसे जो जीव स्थित होता हुआ उस समय उसे नहीं करता है वह सब भावी द्रव्यकृति है।

जो वह ज्ञायकशरीर और भावीसे भिन्न द्रव्यकृति है वह अनेक प्रकार है। वह इस प्रकारसे है — ग्रन्थिम, वाइम, वेदिम, पूरिम, संघातिम, अहोदिम, णिक्खोदिम, ओवेल्लिम, उद्वेल्लिम, वर्ण, चूर्ण, गन्ध और विलेपन आदि तथा और जो इसी प्रकार अन्य हैं वह सब ज्ञायकशरीर-भाविव्यतिरिक्तद्रव्यकृति कही जाती है ॥ ६५ ॥

'जो वह ज्ञायकशरीर-भाविव्यतिरिक्त द्रव्यकृति है' यह पूर्वोक्त विकल्पोंका स्मरण करानेके लिये प्ररूपणा की है। उनमें गूंथने रूप क्रियासे सिद्ध हुए फूल आदि द्रव्यको ग्रन्थिम कहते हैं। बुनना क्रियासे सिद्ध हुए सूप, टिपारी, चंगेर (एक प्रकारकी बड़ी टोकरी), किदय (कृतक ?), चालनी, कम्बल और वस्त्रादि द्रव्य वाइम कहलाते हैं। वेधन क्रियासे

दव्वं वेदणकिरियाणिप्फण्णं वेदिमं णाम । तलावालि-जिणहराहिट्ठाणादिदव्वं पूरणकिरिया-णिप्फण्णं पूरिमं णाम । कट्टिमजिणभवण-घर-पायार-थूहादिदव्वं कट्ठिट्टय-पत्थरादिसंघादणकिरिया-णिप्पणं संघादिमं णाम । णिंबंब-जंबु-जंबीरादिदव्वं अहोदिमकिरियाणिप्फण्णमहोदिमं णाम । अहोदिमकिरिया सचित्त-अचित्तदव्वाणं रोवणकिरिए त्ति वुत्तं होदि । पोक्खरिणी-वावी-कूव-तलाय-लेण-सुरुंगादिदव्वं णिक्खोदणकिरियाणिप्फण्णं णिक्खोदिमं णाम । णिक्खोदणं खणण-मिदि वुत्तं होदि । एक्क-दु-तिउणंसुत्त-डोरा-वेट्ठादिदव्वमोवेल्लणकिरियाणिप्पण्णमोवेल्लिमं णाम । गंथिम-वाइमादिदव्वाणमुव्वेल्लणेण जाददव्वमुव्वेल्लिमं णाम । चित्तारयाणमण्णेसिं च वण्णु-प्पायणकुसलाणं किरियाणिप्पण्णदव्वं णर-तुरयादिबहुसंठाणं वण्णं णाम । पिट्ठ-पिट्ठिया-कणिकादिदव्वं चुण्णणकिरियाणिप्फण्णं चुण्णं णाम । बहूणं दव्वाणं संजोगेणुप्पाइदगंधपहाणं दव्वं गंधं णाम । घुट्टं-पिट्ठ-चंदण-कुंकुमादिदव्वं विलेवणं णाम । 'जे च अमी अण्णे एवमादिया' एदेण वयणेण ओहाणत्थुरणादीणं दुसंजोगादिदव्वाणं च अत्थित्तं परूविदं होदि । कधमेदेसिं

सिद्ध हुए सूति (सोम निकालनेका स्थान), इंधुव (पंधी अर्थात् भट्टी), कोश और पल्य आदि द्रव्य वेधिम कहे जाते हैं। पूरण क्रियासे सिद्ध हुए तालावका बांध व जिनग्रहका चबूतरा आदि द्रव्यका नाम पूरिम है। काष्ठ, ईंट और पत्थर आदिकी संघातन क्रियासे सिद्ध हुए कृत्रिम जिनभवन, ग्रह, प्राकार और स्तूप आदि द्रव्य संघातिम कहलाते हैं। नीम, आम, जामुन और जंबीर आदि अधोधिम क्रियासे सिद्ध हुए द्रव्यको अधोधिम कहते हैं। अधोधिम क्रियाका अर्थ सचित्त व अचित्त द्रव्योंकी रोपन क्रिया है, यह तात्पर्य है। पुष्करिणी, वापी, कूप, तड़ाग, लयन और सुरंग आदि निष्खनन क्रियासे सिद्ध हुए द्रव्य णिक्खोदिम कहलाते हैं। णिक्खोदनसे अभिप्राय खोदना क्रियासे है। उपवेल्लन क्रियासे सिद्ध हुए एकगुणे, दुगुणे एवं तिगुणे सूत्र, डोरा व वेष्ट आदि द्रव्य उपवेल्लन कहलाते हैं। ग्रन्थिम व वाइम आदि द्रव्योंके उद्वेलनसे उत्पन्न द्रव्य उद्वेल्लिम कहे जाते हैं। चित्रकार एवं वर्णोंके उपादनमें निपुण दूसरोंकी क्रियासे सिद्ध मनुष्य व तुरग आदि अनेक आकार रूप द्रव्य वर्ण कहे जाते हैं। चूर्णन क्रियासे सिद्ध हुए पिष्ट, पिष्टिका और कणिका आदि द्रव्यको चूर्ण कहते हैं। बहुत द्रव्योंके संयोगसे उत्पादित गन्धकी प्रधानता रखनेवाले द्रव्यका नाम गन्ध है। घिसे व पीसे गये चन्दन और कुंकुम आदि द्रव्य विलेपन कहे जाते हैं। 'इनको आदि लेकर जो वे और द्रव्य हैं' इस वचनसे अवधान व सुरण अर्थात् जोड़कर व काटकर बनाने व द्विसंयोगादि द्रव्योंके अस्तित्वकी प्ररूपणा होती है।

१ प्रतिषु '-तिउद-' इति पाठः। २ प्रतिषु 'पुट्ठ' इति पाठः।

दव्वाणं कदिसद्दो परूवओ ? ण एस दोसो, कम्मकारए वि कदिसद्दणिप्फत्तीदो । एसा सव्वा वि जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वकदी णाम ।

जा सा गणणकदी णाम सा अणेयविहा । तं जहा— एओ णोकदी, दुवे अवत्तव्वा कदि त्ति वा णोकदि त्ति वा, तिप्पहुडि जाव संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा कदी, सा सव्वा गणणकदी णाम ॥ ६६ ॥

एगो णोकदी । कुदो ? जो रासी वग्गिदो संतो वड्ढदि सगवग्गादो सगवग्गमूलमवणिय वग्गिज्जमाणो वुड्ढिमल्लियइ सो कदी णाम[1] । एगो वग्गिज्जमाणो ण वड्ढदि, मूले अवणिदे णिम्मूलं फिट्टदि । तेण एगो णोकदि त्ति वुत्तं । एसो एगो गणणपयारो दरिसिदो । दोरूवेसु वग्गिदेसु वड्ढिदंसणादो दोण्णं ण णोकदित्तं । तत्तो मूलमवणिय वग्गिदे ण वड्ढदि, पुव्विल्ल-रासी चेव होदि; तेण दोण्णं ण कदित्तं पि अत्थि । एदं मणेण अवहारिय दुवे अवत्तव्वमिदि

शंका—कृति शब्द इन सब द्रव्योंका प्ररूपक कैसे है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, कर्म कारकमें भी कृति शब्द सिद्ध है ।

यह सब ही ज्ञायकशरीर-भाविव्यतिरिक्त द्रव्यकृति कहलाती है ।

जो वह गणनकृति है वह अनेक प्रकार है । वह इस प्रकारसे है— एक संख्या नोकृति है, दो संख्या कृति और नोकृति रूपसे अवक्तव्य है, तीनको आदि लेकर संख्यात, असंख्यात व अनन्त कृति कहलाते हैं; वह सब गणनकृति है ॥ ६६ ॥

एक यह नोकृति है, क्योंकि, जो राशि वर्गित होकर वृद्धिको प्राप्त होती है और अपने वर्गमेंसे अपने वर्गके मूलको कम कर वर्ग करनेपर वृद्धिको प्राप्त होती है उसे कृति कहते हैं । एक संख्याका वर्ग करनेपर वृद्धि नहीं होती तथा उसमेंसे वर्गमूलके कम कर देनेपर वह निर्मूल नष्ट हो जाती है । इस कारण एक संख्या नोकृति है, ऐसा सूत्रमें कहा है । यह 'एक' गणनाका प्रकार बतलाया गया है ।

दो रूपोंका वर्ग करनेपर चूंकि वृद्धि देखी जाती है अतः दोको नोकृति नहीं कहा जा सकता है । और चूंकि उसके वर्गमेंसे मूलको कम करके वर्गित करनेपर वह वृद्धिको प्राप्त नहीं होती, किन्तु पूर्वोक्त राशि ही रहती है, अतः 'दो' कृति भी नहीं हो सकता । इस बातको मनसे निश्चित कर ' दो संख्या अवक्तव्य है ' ऐसा सूत्रमें निर्दिष्ट किया है ।

---

१ यस्य कृतौ मूलमपनीय शेषे वर्गिते वर्धिते (वर्धते) सा कृतिरिति । त्रि. सा. (टीका) १६.

वुत्तं । एसा बिदियगणणजाई । तिप्पहुडि जा संखा वग्गिदे वड्ढदि, तत्थ मूलमवणिय वग्गिदे वि वड्ढिमल्लियइ; तेण सा कदि त्ति वुत्ता । एदं तदियगणणकदिविहाणं । ण चउत्थी गणण-कदी अत्थि, तीहिंतो वदिरित्तगणणाणुवलंभादो । एगो एगो त्ति गणिज्जमाणे णोकदिगणणा । दो-दो त्ति गणिज्जमाणे अवत्तव्वा गणणा । तिण्णि-चत्तारि-पंचादिक्कमेण गणिज्जमाणे कदि-गणणा त्ति । तेण गणणाकदी तिविधा चेव । अधवा कदिगयसंखेज्जासंखेज्ज-अणंतभेदेहि अणेयविहा । तत्थ एगादिएगुत्तरकमेण वड्ढिदरासी णोकदिसंकलणा । दोआदिदोउत्तरकमेण वड्ढिं गदा अवत्तव्वसंकलणा । तिण्णि-चत्तारिआदीसु अण्णदरमादिं कादूण तेसु चेव वण्णदरुत्तर-कमेण गदवड्ढी कदिसंकलणा । एदेसिं दुसंजोगेण अण्णाओ छस्संकलणाओ उप्पाएअव्वाओ । एवं रिणगणणाओ णवविहा उप्पाएयव्वा ।

....

यह द्वितीय गणनाकी जाति है । तीनको आदि लेकर जो संख्या वर्गित करनेपर चूंकि बढ़ती है और उसमेंसे वर्गमूलको कम करके पुनः वर्ग करनेपर भी वृद्धिको प्राप्त होती है इसी कारण उसे कृति ऐसा कहा है । यह तृतीय गणनकृतिका विधान है । चतुर्थ कोई गणन-कृति नहीं है, क्योंकि, तीनसे अतिरिक्त गणना पायी नहीं जाती । एक-एक ऐसी गणना करनेपर नोकृतिगणना, दो-दो इस प्रकार गणना करनेपर अवक्तव्यगणना, तथा तीन चार व पांच इत्यादि क्रमसे गणना करनेपर कृतिगणना कहलाती है । अत एव गणना-कृति तीन प्रकार ही है । अथवा कृतिगत संख्यात, असंख्यात व अनन्त भेदोंसे गणना-कृति अनेक प्रकार है । उनमें एकको आदि लेकर एक अधिक क्रमसे वृद्धिको प्राप्त राशि नोकृतिसंकलना है । दोको आदि लेकर दो अधिक क्रमसे वृद्धिको प्राप्त राशि अवक्तव्य-संकलना है । तीन व चार इत्यादिकोंमें अन्यतरको आदि करके उनमें ही अन्यतरके अधिक क्रमसे वृद्धिगत राशि कृतिसंकलना है । इनके द्विसंयोगसे अन्य छह संकलनाओंको उत्पन्न कराना चाहिये । इसी प्रकार नौ ऋणगणनाओंको उत्पन्न कराना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां नौ संकलनाओंका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया प्रतीत होता है—

१ नोकृतिसंकलना— जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७ आदि ।

२ अवक्तव्यसंकलना— २, ४, ६, ८, १०, १२, १४ आदि ।

३ कृतिसंकलना— ३, ६, ९, १२ आदि; ४, ८, १२, १६ आदि; ५, १०, १५, २० इत्यादि ।

इन तीनोंके ६ द्विसंयोगी भंग— ४ नोकृति-अवक्तव्य ५ नोकृति-कृति ६ अवक्तव्य-कृति ७ अवक्तव्य-नोकृति ८ कृति-नोकृति ९ कृति-अवक्तव्य ।

इन्हीं नौ संकलनाओंको विपरीत क्रमसे ग्रहण करनेपर ऋणगणनाओंके नौ प्रकार उत्पन्न होते हैं ।

जेणेदं सुत्तं देसामासियं तेणेत्थ धण-रिण-धणरिणगणिदं सव्वं वत्तव्वं। संकलणा-वग्ग-वग्गावग्ग-घण-घणाघणरासिउप्पत्तिणिमित्तगुणयारो कलासवण्णा[1] जाव ताव भेयपइण्णय-जाईओ तेरासिय-पंचरासियादि सव्वं धणगणिदं। वोकलणा भागहारो खयकं च कलासवणादिसुत्त-पडिबद्धसंखा[2] च रिणगणिदं। गइणिवित्तिगणिदं[3] कुट्टाकारादिगणिदं[4] च धण-रिणगणिदं। एवं तिविहं पि गणिदमेत्थ परूवेदव्वं।

अधवा कदिमुवलक्खणं काऊण गणणा-संखेज्ज-कदीणं पि एत्थ लक्खणं वत्तव्वं। तं जहा— एक्कमादिं कादूण जाव उक्कस्साणंते त्ति ताव गणणा त्ति वुच्चदे। दोआदिं कादूण जाउक्कस्साणंते त्ति जा गणणा संखेज्जमिदि भण्णदे। तिण्णिआदिं कादूण जाउक्कस्साणंते त्ति गणणा कदि त्ति भण्णदे। वुत्तं च—

एयादीया गणणा दोआदीया वि जाण संखे त्ति।
तीयादीणं णियमा कदि त्ति सण्णा दु बोद्धव्वा[5] ॥ १२१ ॥

चूंकि यह सूत्र देशामर्शक है अत एव यहां धन, ऋण और धन-ऋण गणित सबको कहना चाहिये। संकलना, वर्ग, वर्गावर्ग, घन व घनाघन राशियोंकी उत्पत्तिमें निमित्त-भूत गुणकार और कलासवर्ण तक भेदप्रकीर्णक जातियां (देखो गणितसारसंग्रह द्वितीय कलासवर्ण व तृतीय प्रकीर्णक व्यवहार), त्रैराशिक व पंचराशिक आदि सब धन-गणित हैं। व्युत्कलना, भागहार और क्षय रूप कलासवर्ण आदि सूत्रप्रतिबद्ध संख्यायें ऋणगणित हैं। गतिनिवृत्तिगणित और कुट्टिकार आदि गणित धन-ऋणगणित है। इस प्रकार तीनों ही प्रकारके गणितकी यहां प्ररूपणा करना चाहिये।

अथवा कृतिका उपलक्षण कर गणना, संख्यात व कृति, इनका भी यहां लक्षण कहना चाहिये। वह इस प्रकार है—

एकको आदि करके उत्कृष्ट अनन्त तक 'गणना' कही जाती है। दोको आदि करके उत्कृष्ट अनन्त तककी गणना 'संख्यात' कहलाती है। तीनको आदि करके उत्कृष्ट अनन्त तककी गणना 'कृति' कहलाती है। कहा भी है—

एक आदिकको गणना और दो आदिको संख्या समझो। तथा तीन आदिककी नियमसे 'कृति' यह संज्ञा जानना चाहिये ॥ १२१ ॥

---

१ प्रतिषु 'कलासवण्णणा' इति पाठः। भाग-प्रभागावथ भागभागो भागानुबन्धः परिकीर्तितोऽतः। भागापवाहः सह भागमात्रः षड् जातयोऽमुत्र कलासवर्णे ॥ गणितसारसंग्रह २-५४.

२ प्रतिषु 'णसंवग्गादिसुत्त-' इति पाठः।

३ गतिनिवृत्तौ सूत्रम्— निज-निजकालोद्धृतयोर्गमनानिवृत्त्योर्विशेषणाज्जाताम्। दिनशुद्धगतिं न्यस्य त्रैराशिकविधिमतः कुर्यात् ॥ गणितसारसंग्रह ४-२३.

४ गणितसारसंग्रह ५, ७९-२०८. लीलावती २. ६५-७७ ५ त्रि. सा. १६.

एत्थ ताव कदि-णोकदि-अवत्तव्वाणमुदाहरणट्ठमिमा परूवणा कीरदे । तीए कीरमाणाए ओघाणुगमो पढमाणुगमो चरिमाणुगमो संचयाणुगमो चेदि चत्तारि अणिओगद्दाराणि । तत्थ ताव ओघाणुगमो वुच्चदे— सो दुविहो मूलोघाणुगमो चेदि आदेसोघाणुगमो चेदि । तत्थ मूलोघाणुगमो वुच्चदे । तं जहा— जीवा कदी । कुदो एदस्स मूलोघत्तं ? सुद्धसंगहवयणादो । आदेसोघो वुच्चदे— गदियादिचोद्दसमग्गणट्ठाणेसु ट्ठिदजीवा कदी, तत्थ सुद्धेगदोजीवाणुवलंभादो । णवरि मणुसअपज्जत्त-वेउव्वियमिस्साहारदुग-सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-उवसम-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिजीवा सिया कदी, तिप्पहुडिउवरिमसंखाए कदाचिदुवलंभादो । सिया णोकदी, एदेसु अट्ठसु कदाचि एगस्सेव जीवस्स दंसणादो । सियावत्तव्वकदी, कदाचि दोण्णं चेवुवलंभादो । एवमोघाणुगमो समत्तो ।

पढमाणुगमो वुच्चदे— कस्स पढमसमए एसो अणुगमो कीरदे ? मग्गणाणं । एत्थ

यहां कृति, नोकृति और अवक्तव्यके उदाहरणोंके लिये यह प्ररूपणा की जाती है । उक्त प्ररूपणाके करनेमें ओघानुगम, प्रथमानुगम, चरमानुगम और संचयानुगम, ये चार अनुयोगद्वार हैं । उनमें पहले ओघानुगमको कहते हैं। वह दो प्रकार है— मूलौघानुगम और आदेशौघानुगम । उनमें मूलौघानुगमको कहते हैं । वह इस प्रकार है— जीव कृति हैं ।

शंका— यह मूलौघ कैसे है ?

समाधान— चूंकि यह कथन शुद्ध संग्रहनयकी अपेक्षा किया गया है, अतः वह मूलौघ है ।

आदेशौघकी प्ररूपणा करते हैं— गति आदि चौदह मार्गणास्थानोंमें स्थित जीव कृति हैं, क्योंकि, उनमें शुद्ध एक दो जीव नहीं पाये जाते । विशेषता इतनी है कि मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्र, आहारद्विक, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कथंचित् कृति हैं, क्योंकि, वे तीन आदि उपरिम संख्यामें कभी पाये जाते हैं । कथंचित् वे नोकृति हैं, क्योंकि, इन आठ स्थानोंमें कभी एक ही जीव देखा जाता है । कथंचित् अवक्तव्य कृति हैं, क्योंकि, कभी वहां दो ही जीव पाये जाते हैं । इस प्रकार ओघानुगम समाप्त हुआ ।

प्रथमानुगमकी प्ररूपणा करते हैं—

शंका— किसके प्रथम समयमें यह अनुगम किया जाता है ?

समाधान— मार्गणाओंके प्रथम समयमें यह अनुगम किया जाता है ।

अपढमाणुगमो वि कायव्वो । कुदो ? पढमापढमाणमण्णोण्णाविणाभावादो । णेरइया पढमसमए सिया कदी । कुदो ? णेरइयाणमुवक्कमणंतरं जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जावलियाओ, एदेणंतरेणुप्पज्जमाणणेरइयाणं तिप्पहुडिसंखेज्जाणमप्पणो आउपढमसमए उवलंभादो । सिया णोकदी, एदेणेवंतरेणुप्पण्णपढमसमए कदाचि एक्कस्सेव जीवस्सुवलंभादो । सियावत्तव्वकदी, कदाचि णेरइयपढमसमए दोण्णं जीवाणं उवलंभादो । अपढमा कदी चेव, सगाउअबिदियसमयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति एसो अपढमकालो; एत्थ ट्ठिदजीवाणं णियमेण सव्वकालमसंखेज्जत्तवलंभादो । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेव-मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणी-एइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-तस-तसपज्जत्तापज्जत्त-पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-इत्थि-पुरिस-णवुंसयावगदवेद-अकसाय-सव्वणाण-सामाइयच्छेदोवट्ठावण-परिहार-जहाक्खाद-संजमासंजम-संजम-चक्खुदंसणी-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सिय-सम्माइट्ठि-खइय-वेदगसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठि-सण्णि-असण्णीणं पि वत्तव्वमेदेसिमुवक्कमणंतरदंसणादो ।

यहां अप्रथमानुगम भी करना चाहिये, क्योंकि, प्रथम और अप्रथमके परस्पर अविनाभाव है । नारकी जीव प्रथम समयमें कथंचित् कृति हैं, क्योंकि, नारकियोंके उपक्रमका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे संख्यात आवलियां है; इस अन्तरसे उत्पन्न होनेवाले नारकी अपनी आयुके प्रथम समयमें तीनको आदि लेकर संख्यात पाये जाते हैं । कथंचित् वे नोकृति हैं, क्योंकि, इसी अन्तरसे उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें कभी एक ही जीव पाया जाता है । कथंचित् वे अवक्तव्यकृति हैं, क्योंकि, कदाचित् नारकी होनेके प्रथम समयमें दो जीव पाये जाते हैं । अप्रथमसमयवर्ती नारकी कृति ही हैं, क्योंकि, अपनी आयुके द्वितीय समयसे लेकर अन्तिम समय तक यह अप्रथम काल है, इस कालमें स्थित जीव नियमसे सर्व काल असंख्यात पाये जाते हैं ।

इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यंच, सब देव, मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, अपगतवेद, अकषाय, सर्व ज्ञान, सामायिकछेदोपस्थापनासंयम, परिहारशुद्धिसंयम, यथाख्यातसंयम, संयमासंयम, संयम, चक्षुदर्शनी, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और असंज्ञी, इनके भी कहना चाहिये, क्योंकि, इनके उपक्रमणका अन्तर देखा जाता है ।

कधमेइंदियाणं कायजोगीणं च णोकदि-अवत्तव्वकदीओ होंति ? ण, तसेहि पंचमण-वचि-जोगेहि य सांतरमेइंदिय-कायजोगेसुप्पज्जंताणं तदुवलंभादो। मणुसापज्जत्त-वेउव्वियमिस्साहार-दुग-सुहुमसांपराइय-उवसमसम्माइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठी पढमापढमसमएसु सिया कदी सिया णोकदी सिया अवत्तव्वा। कुदो ? सांतररासित्तादो। सव्वबादरेइंदिय-सव्वसुहुमे-इंदिय-पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-सव्वसुहुम-बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-बादर-णिगोदजीव-पत्तेयसरीरा तेसिं सव्वेसिमपज्जत्ता ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्म-इयकायजोगि-चत्तारिकसाय-किण्ण-णील-काउलेस्सिय-आहार-अणाहारा पढमापढमसमएसु णियमा कदी, एदेसु एग-दोजीवाणं[1] केवलाणं सव्वकालं पवेसाभावादो। अचक्खुदंसणीसु पढमापढम-वियप्पो णत्थि, केवलदंसणीणमचक्खुदंसणीसरूवेण परिणामाभावादो। भवाभवसिद्धियाणं पि पढमापढमभंगो णत्थि, सिद्धाणं भवसिद्धियसरूवेण परिणामाभावादो, भवसिद्धियाणमभव-

शंका — एकेन्द्रियों और काययोगियोंके नोकृति और अवक्तव्यकृति कैसे सम्भव है?

समाधान — नहीं, क्योंकि, क्रमसे त्रसों और पांच मनोयोगी एवं पांच वचन-योगियोंसे अन्तर सहित एकेन्द्रियों और काययोगियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके नोकृति और अवक्तव्यकृति पायी जाती है।

मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्र, आहारकद्विक, सूक्ष्मसाम्परायिक, उपशमसम्य-ग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि प्रथम और अप्रथम समयोंमें कथंचित् कृति, कथंचित् नोकृति और कथंचित् अवक्तव्यकृति हैं, क्योंकि, ये सान्तर राशियां हैं। सब बादर एकेन्द्रिय, सब सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायु-कायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, सब सूक्ष्म और बादर पृथिवीकायिक, बादर जल-कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद जीव और प्रत्येकशरीर तथा उन सबके अपर्याप्त, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्र-काययोगी, कार्मणकाययोगी, चार कषाय, कृष्ण, नील व कापोत लेश्यावाले, आहारक और अनाहारक, ये प्रथम व अप्रथम समयमें नियमसे कृति हैं, क्योंकि, इनमें सर्व काल केवल एक दो जीवोंके प्रवेशका अभाव है। अचक्षुदर्शनियोंमें प्रथम व अप्रथम विकल्प नहीं है, क्योंकि, केवलदर्शनी जीव अचक्षुदर्शनी रूपसे परिणमन नहीं करते। भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंके भी प्रथम व अप्रथम विकल्प नहीं है, क्योंकि, सिद्ध जीवोंका भव्यसिद्धिक रूपसे परिणमन नहीं होता, तथा भव्यसिद्धिकोंका अभव्यसिद्धिक रूपसे

१ प्रतिषु ' एदेसु गदो जीवाणं ' इति पाठः।

सिद्धियसरूवेण परिणामाभावादो । खइयसम्मादिट्ठि-केवलणाणि-केवलदंसणि-णेवभवसिद्धि-णेव-अभवसिद्धि-णेवसण्णि-णेवअसण्णीणं पढमापढमभंगो अत्थि । कारणं सुगमं । एवं पढमाणु-गमो समत्तो ।

चरिमाणुगमं वत्तइस्सामो— चरिमाणुगमो अचरिमाणुगमेण सह वत्तव्वो, दोण्ण-मण्णोण्णाविणाभावादो । णेरइया चरिमसमए सिया कदी, तिप्पहुडिसंखेज्जासंखेज्जाणं णारग-चरिमसमए कदाचिदुवलंभादो । सिया णोकदी, चरिमसमए वट्टमाणणारयस्स कदाचि एक्क-स्सेव दंसणादो । सिया अवत्तव्वं, कदाचि तत्थ दोण्णं चेवुवलंभादो । णेरइया अचरिमा णियमा कदी, तत्थ सुद्धेग-दोजीवाणमभावादो । एवं जधा पढमाणुगमो परूविदो तथा परूवे-दव्वो । णवरि भवसिद्धिया अचक्खुदंसणी च चरिमसमए सिया, कदी सिया णोकदी, सिया अवत्तव्वं । कुदो ? एदेसिं चरिमस्स सांतरत्तुवलंभादो । अचरिमसमए णियमा कदी । खइय-सम्माइट्ठि-केवलणाणि-णेवभवसिद्धि-णेवअभवसिद्धि-णेवसण्णि-णेवअसण्णीणं चरिमाचरिमविसे-सणं णत्थि, सिद्धाणमसिद्धत्तपरिणामाभावादो । एवं चरिमाणुगमो समत्तो ।

संचयाणुगमं वत्तइस्सामो— एत्थ संतपरूवणा दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो

परिणमन नहीं होता । क्षायिकसम्यग्दृष्टि, केवलज्ञानी, केवलदर्शनी, न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक तथा न संज्ञी न असंज्ञी जीवोंके प्रथमाप्रथम भंग है । कारण सुगम है । इस प्रकार प्रथमानुगम समाप्त हुआ ।

चरमानुगमको कहते हैं— चरमानुगमको अचरमानुगमके साथ कहना चाहिये, क्योंकि, दोनोंके परस्पर अविनाभाव है । नारकी जीव चरम समयमें कथंचित् कृति हैं, क्योंकि, तीनको आदि लेकर संख्यात व असंख्यात नारकी अन्तिम समयमें कदाचित् पाये जाते हैं । कथंचित् नोकृति हैं, क्योंकि, कदाचित् चरम समयमें वर्तमान नारकी एक ही देखा जाता है । कथंचित् अवक्तव्य हैं, क्योंकि, कदाचित् वहां दो ही नारकी पाये जाते हैं ।

अचरम समयवर्ती नारकी नियमसे कृति हैं, क्योंकि, अचरम समयमें शुद्ध एक दो जीवोंका अभाव है । इस प्रकार जैसे प्रथमानुगमकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार प्ररूपणा करना चाहिये । विशेषता इतनी है कि भव्यसिद्धिक और अचक्षुदर्शनी चरम समयमें कथंचित् कृति, कथंचित् नोकृति और कथंचित् अवक्तव्य हैं: क्योंकि, इनके चरम समयके सान्तरता पायी जाती है । अचरम समयमें नियमसे कृति हैं । क्षायिकसम्यग्दृष्टि, केवलज्ञानी, न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक और न संज्ञी न असंज्ञी जीवोंके चरमा-चरम विशेषण नहीं है, क्योंकि, सिद्ध जीवोंके असिद्धत्ता रूप परिणमन करनेका अभाव है । इस प्रकार चरमानुगम समाप्त हुआ ।

संचयानुगमको कहते हैं— इस संचयानुगमकी प्ररूपणामें सत्प्ररूपणा, द्रव्य-

पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि अट्ठ अणिओगद्दाराणि हवंति। तत्थ संतपरूवणदाए अत्थि णिरयगदीए णेरइया कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा। एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेव-मणुसअपज्जत्तवदिरित्तसव्वमणुस-एइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-सव्वतस-पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-तिण्णिवेद-अवगदवेद-अकसाय-अट्ठणाण-सुहुमसांपराइयवदिरित्तसव्वसंजम-चक्खुदंसणि-ओहिदंसणि-केवलदंसणि-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सा-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठि-वेदगसम्मादिट्ठि-मिच्छादिट्ठि-सण्णि-असण्णीणं वत्तव्वं, एदेसु सांतरुवक्कमणदंसणादो। आहारदुग-वेउव्वियमिस्स-सुहुमसांपराइय-उवसमसम्मत्त-मणुसअपज्जत्त-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठी कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा सिया अत्थि सिया णत्थि। अवसेसासु मग्गणासु अत्थि कदिसंचिदा, णोकदि-अवत्तव्वेहि एदेसु पवेसाभावादो[1]। एवं संतपरूवणा समत्ता।

दव्वपरूवणाणुगमं वत्तइस्सामो— णिरयगदीए णेरइया कदिसंचिदा दव्वपमाणेण

प्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम, ये आठ अनुयोगद्वार हैं। उनमें सत्प्ररूपणाकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकी जीव कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यंच, सब देव, मनुष्य अपर्याप्तोंको छोड़कर शेष सब मनुष्य, एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सब त्रस, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीन वेद, अपगतवेद, अकषाय, आठ ज्ञान, सूक्ष्म साम्परायिकको छोड़ सब संयम, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, केवलदर्शनी, तेज, पद्म व शुक्ल लेश्या, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि, इनमें सान्तर उपक्रमण देखा जाता है। आहारद्विक, वैक्रियिकमिश्र, सूक्ष्मसाम्परायिक, उपशमसम्यक्त्व, मनुष्य अपर्याप्त, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित कथंचित् हैं और कथंचित् नहीं हैं। शेष मार्गणाओंमें कृतिसंचित हैं, क्योंकि, इनमें नोकृतिसंचित और अवक्तव्यसंचितोंके प्रवेशका अभाव है। इस प्रकार सत्प्ररूपणा समाप्त हुई।

द्रव्यप्रमाणानुगमको कहते हैं— नरकगतिमें नारकी जीव द्रव्यप्रमाणसे कृति-

---

१ प्रतिषु 'पदेसाभावादो' इति पाठः।

केवडिया ? असंखेज्जा पदरस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ सेडीओ। णोकदि-अवत्तव्व-संचिदा केवडिया ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। तं कधं ? वुच्चदे— संखेज्जा-वलियाओ अंतरिदूण एगो वा दो वा तिण्णि वा जा उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदि-भागमेत्तो वा णिरंतरुवक्कमणकालो लब्भदि त्ति कट्टु णिरयाउवपढमसमयप्पहुडि संखेज्जा-वलियमेत्तमुवक्कमणंतरं ठाइदूण तस्सुवरि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तणिरंतरउवक्कमण-कालरयणा कायव्वा। एवं पुणो पुणो कायव्वो जाव अप्पिदाउअसंवुत्तमिदि। संपदि एदेसिमंतराणं विच्चालेसु ट्ठिदउवक्कमणकालाणमाणयणं वुच्चदे— सगुवक्कमणकालसहिदं संखेज्जावलियमेत्तंतरम्हि जदि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालो लब्भदि तो अप्पिदाउअम्मि मिस्सीभूद[1]उवक्कमणाणुवक्कमणकालम्मि केत्तियमुवक्कमणकालं लभामो त्ति आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणिदसंखेज्जपलिदोवमेसु संखेज्जावलियमेत्तेणोवट्टिदेसु सव्वो-वक्कमणकालो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो आगच्छदि। एसो कदि-णोकदि-अवत्तव्वाणं तिण्णं पि कालो। एत्थ सव्वत्थोवो अवत्तव्वुवक्कमणकालो। णोकदिउवक्कमणकालो विसेसाहिओ। कदिउवक्कमणकालो असंखेज्जगुणो। पुणो णोकदिकालमेगरूवेण गुणिदे

संचित कितने हैं ? असंख्यात हैं जो कि जगप्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात जगश्रेणी रूप हैं। नोकृतिसंचित और अवक्तव्यकृतिसंचित नारकी कितने हैं ? पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण कैसे हैं ?

समाधान—इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि संख्यात आवलियोंका अन्तर करके एक दो तीन [समय] अथवा उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र निरन्तर उपक्रमण काल प्राप्त होता है, ऐसा जानकर नारकायुके प्रथम समयको लेकर संख्यात आवली मात्र उपक्रमणके अन्तरको स्थापित कर उसके ऊपर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र निरन्तर उपक्रमणकालकी रचना करना चाहिये। इस प्रकार विवक्षित आयुके समाप्त होने तक वार वार करना चाहिये। अब इन अन्तरालोंके बीचमें स्थित उपक्रमणकालोंके लानेके विधानको कहते हैं— यदि अपने उपक्रमणकाल सहित संख्यात आवली मात्र अन्तरमें आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र उपक्रमण काल प्राप्त होता है तो विवक्षित आयुमें मिले हुए उपक्रमण और अनुपक्रमण कालमें कितना उपक्रमणकाल प्राप्त होगा, इस प्रकार त्रैराशिक विधानसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित संख्यात पल्यो-पमोंमें संख्यात आवली मात्रका भाग देनेपर सर्व उपक्रमणकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र आता है। यह कृति, नोकृति और अवक्तव्यकृति तीनोंका ही काल है। इसमें सबसे स्तोक अवक्तव्य उपक्रमणकाल है। नोकृति उपक्रमणकाल इससे विशेष अधिक है। इससे कृति उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा है। पुनः नोकृतिकालको एक रूपसे गुणित

१ प्रतिषु 'मिस्सिभूद-' इति पाठः।

णोकदिसंचिदजीवपमाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं होदि । अवत्तव्वकालं दोहि रूवेहि गुणिदे अवत्तव्वसंचयपमाणं होदि । कदिसंचयकालं तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि गुणिदे कदिसंचिदपमाणं होदि । एवं सत्तसु पुढवीसु वत्तव्वं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवडिया ? अणंता । एत्थ णोकदि-अवत्तव्वाणमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टेहिंतो उवक्कमणकाले पुव्वं व जीवसंचए आणिदे अणंता णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा जीवा होंति । सामण्णुवक्कमणकालेण संचिदजीवेहिंतो णोकदि-अवत्तव्वसंचिदजीवेसु अवणिदेसु सेसा तिरिक्खा कदिसंचिदा होंति । ण णिच्च-णिगोदाणमेत्थ गहणं, कदि-णोकदि-अवत्तव्वसरूवेण असंचिदत्तादो ।

पंचिंदियतिरिक्खचउक्कम्मि कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केत्तिया ? असंखेज्जा । पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तादीणं संखेज्जासंखेज्जवासाउआण अपज्जत्ताणं च अंतोमुहुत्तआउआणं णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा आवलियाए असंखेज्जदिभागो, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तफल-गुणिदसंखेज्जवासेसु अंतोमुहुत्तब्भंतरसंखेज्जावलियासु च संखेज्जावलियाहि ओवट्टिदेसु आव-लियाए असंखेज्जदिभागुवक्कमणकालुवलंभादो । णोकदि-अवत्तव्वसंचिदजीवेहिंतो[1] कदि-

---

करनेपर नोकृतिसंचित जीवोंका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है। अवक्तव्यकालको दो रूपोंसे गुणित करनेपर अवक्तव्यसंचित जीवोंका प्रमाण होता है। कृतिसंचयकालको उसके योग्य असंख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर कृतिसंचित जीवोंका प्रमाण होता है।

इस प्रकार सात पृथिवियोंमें कहना चाहिये।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्यसंचित जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। यहां नोकृति और अवक्तव्योंके असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनोंमेंसे उपक्रमण-कालमें पूर्वके समान जीवसंचयके निकालनेपर नोकृति और अवक्तव्यसंचित जीव अनन्त होते हैं। सामान्य उपक्रमणकालसे संचित जीवोंमेंसे नोकृति और अवक्तव्यकृति संचित जीवोंके कम कर देनेपर शेष तिर्यंच कृतिसंचित होते हैं। यहां नित्यनिगोद जीवोंका ग्रहण नहीं है, क्योंकि, वे कृति, नोकृति और अवक्तव्य स्वरूपसे संचित नहीं है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदिक चारमें कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित कितने हैं ? असंख्यात हैं। संख्यात व असंख्यात वर्षकी आयुवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त आदिक तथा अन्तर्मुहूर्त आयुवाले अपर्याप्तोंमें नोकृति और अवक्तव्य संचित आवलीके असंख्यातवें भाग हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र फल राशिसे गुणित संख्यात वर्षों और अन्तर्मुहूर्तके भीतर संख्यात आवलियोंको संख्यात आवलियोंसे अपवर्तित करनेपर आवलीके असंख्यातवें भाग उपक्रमणकाल प्राप्त होता है। नोकृति और अवक्तव्य संचित

---

[1] प्रतिषु ' -जीवेहि तेसिं ' इति पाठः ।

रित्तो कदिसंचिदरासी होदि । एसो तेरासियकमेण णाणेदव्वो । एत्थ णोकदि-अवत्तव्वसंचिद-रासी असंखेज्जवासाउएसु घेत्तव्वो, तत्थ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणमुवलंभादो । कदिसंचिदा पुण संखेज्जवासाउएसु घेत्तव्वो । कारणं सुगमं ।

मणुस-मणुसअपज्जत्तएसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केत्तिया ? असंखेज्जा । तत्थ संचयाणयणविहाणं जाणिय वत्तव्वं । एवं देव-भवणवासियप्पहुडि जाव अवराइददेव सव्व-विगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिपत्तेय-सरीरपज्जत्त-तसतिण्णि-पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-वेउव्वियदुगित्थि-पुरिसवेद-विहंगणाणि-आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणि-संजदासंजद-चक्खुदंसण-ओहिदंसण-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सिय-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठि-वेदगसम्मादिट्ठि-उवसमसम्मादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छा-दिट्ठि-सण्णीणं वत्तव्वं, भेदाभावादो ।

मणुसपज्जत्त-मणुसिणी-सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेव-आहारदुग-अवगदवेद-अकसाय-संजद-सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-जहाक्खाद-विहारसुद्धिसंजदेसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केत्तिया ? संखेज्जा । कुदो ? संखेज्ज-

---

जीवोंसे भिन्न कृतिसंचित राशि है । इसे त्रैराशिक क्रमसे नहीं लाया जा सकता । यहां नोकृति और अवक्तव्यसंचित राशिका असंख्यात वर्ष आयुवालोंमें ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि; उनमें पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र जीव पाये जाते हैं । परन्तु कृतिसंचित राशिका संख्यात वर्ष आयुवालोंमें ग्रहण करना चाहिये । कारण सुगम है ।

मनुष्य व मनुष्य अपर्याप्तोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । वहांपर संचय लानेके विधानको जानकर कहना चाहिये ।

इसी प्रकार देव व भवनवासियोंको आदि लेकर अपराजित विमानवासी देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक व प्रत्येकशरीर पर्याप्त, त्रस तीन, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, वैक्रियिकद्विक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि-ज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्या-दृष्टि और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि, उनके कोई विशेषता नहीं है ।

मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव, आहारद्विक, अपगत-वेदी, अकषायी, संयत, सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्म-साम्परायिकशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित कितने हैं ? संख्यात हैं, क्योंकि, ये राशियां संख्यात हैं ।

रासित्तादो । एइंदिय-कायजोगि-णवुंसयवेद-मदि-सुदअण्णाणि-असंजद-मिच्छाइट्ठि-असण्णीसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केत्तिया ? अणंता । कारणं सुगमं । बादरेइंदिय-सुहुमेइंदिय-तप्पज्जत्तापज्जत्त-सव्ववणप्फदि-णिगोदजीव-सुहुमणिगोदे-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्स-काय-जोगि-कम्मइयकायजोगि-चत्तारिकसाय-किण्ण-णील-काउलेस्सिय-आहारि-अणाहारीसु कदि-संचिदा केत्तिया ? अणंता, अंतरेण विणा गंगापवाहो व्व अणंतजीवप्पवेसादो । पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइया तेसिं बादरा तेसिं चेव अपज्जत्ता तेसिं सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता कदिसंचिदा केवडिया ? असंखेज्जा, असंखेज्जलोगरासित्तादो । एवं दव्वाणुगमो समत्तो ।

खेत्ताणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वदेव-मणुसअपज्जत्ता सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-बादरपुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्त-तसअपज्जत्त-पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-वेउव्वियदुग-आहारदुग-इत्थि-पुरिस-वेद-विभंगणाणि-आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओहिणाणि-मणपज्जवणाणि-सामाइयछेदोवट्ठा-

....

एकेन्द्रिय, काययोगी, नपुंसकवेदी, मतिअज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित कितने हैं ? अनन्त हैं । इसका कारण सुगम है । बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, उनके पर्याप्त व अपर्याप्त, सब वनस्पति, निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, चार कषाय, कृष्ण, नील व कापोत लेश्यावाले, आहारी तथा अनाहारी जीवोंमें कृतिसंचित जीव कितने हैं ? अनन्त हैं, क्योंकि, इनमें अन्तरके विना गंगाप्रवाहके समान अनन्त जीवोंका प्रवेश है । पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, उनके बादर, उनके ही अपर्याप्त, उनके सूक्ष्म पर्याप्त व अपर्याप्त जीव कृतिसंचित कितने हैं ? असंख्यात हैं, क्योंकि, ये असंख्यात लोक प्रमाण राशियां हैं । इस प्रकार द्रव्यानुगम समाप्त हुआ ।

क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकियोंमें कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? उक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । इस प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सब देव, मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक व प्रत्येक-शरीर पर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, वैक्रियिकद्विक, आहारद्विक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यय-

....

१ प्रतिषु ' बादरेइंदिए ' इति पाठः ।　　　२ प्रतिषु ' -सुहुम० ' इति पाठः ।

वणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-संजदासंजद-चक्खुदंसण-ओहिदंसण-तेउ-पम्मलेस्सिय-वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-सण्णीणं वत्तव्वं, लोगस्स असंखेज्जदिभागत्तणेण भेदाभावादो।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। कुदो ? आणंतियादो। एवं सव्वेइंदिय-कायजोगि-णवुंसयवेद-मदि-सुदअण्णाण-असंजद-मिच्छाइट्ठि-असण्णीणं वत्तव्वमाणंतियं पडि भेदाभावादो। मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। एवं पंचिंदिय-तसाणं तेसिं पज्जत्ताणं अवगदवेद-अकसाय-केवलणाणि-जहाक्खाद-विहारसुद्धिसंजद-केवलदंसण-सुक्कलेस्सिय-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीणं वत्तव्वं, केवलिपदस्स सव्वत्थुवलंभादो। बादरेइंदिय-सुहुमेइंदिया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइया[1] तेसिमपज्जत्ता वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा तेसिं पज्जत्तापज्जत्ता कदिसंचिदा केवडि-

---

ज्ञानी, सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, तेज व पद्म लेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि, लोकके असंख्यातवें भागकी अपेक्षा इनमें नारकियोंसे कोई भेद नहीं है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, काययोगी, नपुंसकवेद, मतिअज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि, अनन्तताकी अपेक्षा इनमें कोई भेद नहीं है। मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सब लोकमें रहते हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, त्रस, उनके पर्याप्त, अपगतवेदी, अकषाय, केवलज्ञानी, यथाख्यातविहार-शुद्धिसंयत, केवलदर्शन, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि, इन सबमें केवली पद पाया जाता है। बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, उनके पर्याप्त व अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, उनके अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव और उनके पर्याप्त अपर्याप्त जीव कृति

---

१ अ आप्रत्योः ' तेउकाइय-वाउकाइया ' इति पाठः ।

खेत्ते ? सव्वलोए । कारणं सुगमं । एवमोरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइय-कायजोगि-चत्तारिकसाय-किण्ण-णील-काउलेस्सिय-आहार-अणाहाराणं वत्तव्वं, भेदाभावादो । बादरवाउकाइयपज्जत्ता कदिसंचिदा केवडिखेत्ते ? लोगस्स संखेज्जदिभागे । णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा लोगस्स संखेज्जदिभागे, बादरवाउपज्जत्तट्ठिदीए संखेज्जवाससहस्सपमाणाए णोकदि-अवत्तव्वेहि संचिदजीवाणमावलियाए असंखेज्जदिभागपमाणाणुवलंभादो । एवं खेत्ताणु-गमो समत्तो ।

पोसणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा । पढमाए पुढवीए खेत्तभंगो । बिदियादि जाव सत्तमि त्ति णेरइएसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छचोद्दस-भागा वा देसूणा ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । एवमेइंदिय-कायजोगि-णवुंसयवेद-मदि-सुदअण्णाण-असंजद-मिच्छा-इट्ठिअसण्णीणं पि वत्तव्वमविसेसादो । पंचिंदियतिरिक्खचउक्कम्मि कदि-णोकदि-अवत्तव्व-

---

संचित कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । कारण सुगम है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, चार कषाय, कृष्ण, नील, व कापोत लेश्यावाले, आहारक व अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि, इनके कोई विशेषता नहीं है । बादर वायुकायिक पर्याप्त कृतिसंचित कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं । नोकृति व अवक्तव्य संचित वे लोकके संख्यातवें भागमें पाये जाते हैं, क्योंकि, संख्यात हजार वर्ष प्रमाण बादर वायुकायिक पर्याप्तोंकी स्थितिमें नोकृति और अवक्तव्यसे संचित जीव आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण पाये जाते हैं । इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

स्पर्शानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकियोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । प्रथम पृथिवीमें स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । द्वितीयसे लेकर सप्तम पृथिवी तक नारकियोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा क्रमसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पांच और छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? सर्व लोक स्पृष्ट है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, काययोगी, नपुंसकवेद, मति-अज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके भी कहना चाहिये, क्योंकि, इनके कोई विशेषता नहीं है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदिक चारमें कृति, नोकृति और

संचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । एवं मणुस-अपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-बादरपुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-पत्तेय-सरीरपज्जत्त-तसअपज्जत्तकदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदाणं वत्तव्वमविसेसादो ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा । एवमवगदवेद-अकसाय-संजद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजद-केवलणाणि-केवलदंसणीणं वत्तव्वं ।

देवगदीए देवेसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा । भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो फोसिदो अद्धुट्ठ-अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा । सोहम्मीसाणे देवोघभंगो । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारदेवेसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठभागा वा देसूणा ।

....

अवक्तव्य संचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सब लोक स्पृष्ट है ।

इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक व प्रत्येकशरीर पर्याप्त और त्रस अपर्याप्त, कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि, इनके कोई विशेषता नहीं है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें कृति, नोकृति एवं अवक्तव्य-संचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, संयत, यथाख्यातविहार-शुद्धिसंयत, केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंके कहना चाहिये ।

देवगतिमें देवोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्यसंचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ व नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम साढ़े तीन, आठ व नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । सौधर्म व ईशान कल्पमें देवोघके समान प्ररूपणा है । सनत्कुमार कल्पको आदि लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्यसंचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

आणदादि जाव अच्चुदा त्ति तिपदसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा । णवगेवज्जादि जाव सव्वट्ठे त्ति खेत्तभंगो ।

एवमाहारदुग-सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धि-संजद-मणपज्जवणाणीणं पि वत्तव्वमविसेसादो । बादरेइंदिय-सुहुमेइंदियाणं तेसिं पज्जत्ता-पज्जत्ताणं च खेत्तभंगो । पंचिंदियदुगेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा सव्वलोगो केवलिभंगो वा ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइयाणं तेसिं चेव बादराणं [तेसिं] चेव अपज्जत्ताणं सव्वसुहुम-तप्पज्जत्तापज्जत्ताणं वणप्फदि-णिगोद-बादरवणप्फदि-बादरणि-गोदाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरवणप्फदिपत्तेयसरीराणं तेसिमपज्जत्ताणं च कदिसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो [वा] । बादरवाउपज्जत्तएहि कदिसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । णोकदि-अवत्तव्वसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । तस-

---

आनत आदिसे लेकर अच्युत कल्प तक उक्त तीन पदोंमें संचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । नौ ग्रैवयकोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक क्षेत्रके समान प्ररूपणा है ।

इसी प्रकार आहारद्विक, सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके भी कहना चाहिये, क्योंकि, इनमें कोई विशेषता नहीं है । बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त व अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्तों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग, आठ बटे चौदह भाग या सर्व लोक स्पृष्ट है; अथवा इनकी प्ररूपणा केवली जीवोंके समान है ।

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक और उनके ही बादर व उनके ही अपर्याप्त, सब सूक्ष्म व उनके पर्याप्त अपर्याप्त, वनस्पति-कायिक, निगोद जीव, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, उनके पर्याप्त अपर्याप्त तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर व उनके अपर्याप्तोंके कृतिसंचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है । कृतिसंचित बादर वायुकायिक पर्याप्तों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका संख्यातवां भाग अथवा सब लोक स्पृष्ट है । नोकृति और अवक्तव्य संचित बादर वायुकायिक पर्याप्तों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है । त्रस व त्रस

दुगस्स पंचिंदियभंगो । पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु तिण्णिपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा । कुदो ? मुक्कमारणंतियस्स वि मण-वचिजोगसंभवादो । ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइयकायजोगीणं खेत्तभंगो । वेउव्वियकायजोगीसु तिण्णिपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-तेरहचोद्दसभागा वा देसूणा । वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं खेत्तभंगो । इत्थि-पुरिसवेदाणं मणजोगिभंगो । चत्तारिकसायाणं कदिसंचिदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । विभंगणाणितिपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-तेरहचोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा । आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणिसु तिण्णिपदेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा । संजदासंजदतिण्णिपदेहि[1] लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा [वा] देसूणा । चक्खुदंसणीणं मणपज्जवभंगो । ओहिदंसणीणं ओहिणाणिभंगो । किण्ण-णील-काउलेस्सियाणं ओरालियकायजोगिभंगो । तेउलेस्सियाणं सोहम्मभंगो । पम्मलेस्सियाणं सणक्कुमारभंगो । सुक्काए छचोद्दसभागा केवलिभंगो वा । भवसिद्धियाणं ओघभंगो । एवमभवसिद्धियाणं ।

पर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रियोंके समान है । पांच मनोयोगी व पांच वचनयोगियोंमें उक्त तीन पदों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है । इसका कारण मुक्तमारणन्तिकके भी मनोयोग व वचनयोगकी सम्भावना है । औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । वैक्रियिककाययोगियोंमें उक्त तीन पदों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ व तेरह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

स्त्रीवेदी व पुरुषवेदियोंकी प्ररूपणा मनोयोगियोंके समान है । चार कषायवालोंमें कृतिसंचित जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? सर्व लोक स्पृष्ट है । विभंगज्ञानियोंमें तीन पदों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ व तेरह बटे चौदह भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें उक्त तीन पदों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । संयतासंयत तीन पदों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । चक्षुदर्शनियोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । अवधिदर्शनियोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है । कृष्ण, नील व कापोत लेश्यावालोंकी प्ररूपणा औदारिककाययोगियोंके समान है । तेजलेश्यावालोंकी प्ररूपणा सौधर्म कल्पके समान है । पद्मलेश्यावालोंकी प्ररूपणा सनत्कुमार कल्पके समान है । शुक्ललेश्यावालोंमें उक्त तीन पदों द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, अथवा उनकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है । भव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । इसी प्रकार अभव्यसिद्धिक जीवोंकी भी प्ररूपणा है। विशेषता केवल इतनी है कि उनके केवलि-

१ अप्रतौ संजदासंजदा तिण्णिपदाणि ', आप्रतौ ' संजदासंजदा तिण्णिप० ', काप्रतौ ' संजदासंजदा तिण्णि पलिदो० ' इति पाठः ।

णवरि केवलिभंगो णत्थि । सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा केवलिभंगो वा । वेदगसम्मादिट्ठि-उवसमसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीहि लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा [देसूणा] । सासणसम्मादिट्ठीहि [लोगस्स असंखेज्जदिभागो] अट्ठ-बारहचोद्दसभागा वा देसूणा । सण्णीणं पुरिसवेदभंगो । आहारि-अणाहारीणं खेत्तभंगो । एवं फोसणाणुगमो समत्तो ।

कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवाससहस्साणि, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं पढमाए [पुढवीए] । णवरि एगजीवं पडुच्च उक्कस्सेण सागरोवमं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेणेक्क-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीससागरोवमाणि समयाहियाणि, उक्कस्सेण तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीस-तेत्तीससागरोवमाणि संपुण्णाणि ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा तिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च

भंग नहीं है । सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं; अथवा इनकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें उक्त तीन पदों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा [कुछ कम] आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा [लोकका असंख्यातवां भाग] अथवा कुछ कम आठ व बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । संज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । आहारी व अनाहारी जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

कालानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी कृति, नोकृति व अवक्तव्यसंचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा वे सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे दश हजार वर्ष और उत्कर्षसे तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें कहना चाहिये । विशेष इतना है कि वहां एक जीवकी अपेक्षा उत्कर्षसे एक सागरोपम काल तक रहते हैं । द्वितीयसे लेकर सप्तम पृथिवी तक नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्रमशः एक समय अधिक एक, तीन, सात, दश, सत्तरह और बाईस सागरोपम, तथा उत्कर्षसे सम्पूर्ण तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं ।

तिर्यंचगतिमें कृतिसंचित आदि तीन पदवाले तिर्यंच कितने काल तक रहते

सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा। पंचिंदियतिरिक्खतिग-तिपदा णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्वहियाणि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

मणुस्सतियतिण्णिपदाणं पंचिंदियतिरिक्खतिगभंगो। मणुसअपज्जत्ता तिण्णिपदा णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

देवगदीए देवेसु तिण्णिपदा णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवाससहस्साणि[1], उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि। भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिया तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण

हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन रूप अनन्त काल तक रहते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीन तीनों पदवाले नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम प्रमाण काल तक रहते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा वे जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं।

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें तीनों पदोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीन तिर्यंचोंके समान है। मनुष्य अपर्याप्त तीन पदवाले नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।

देवगतिमें देवोंमें तीनों पदवाले नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे दश हजार वर्ष और उत्कर्षसे तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं। भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्रमशः दश हजार

---

१ काप्रतावतोऽग्रे 'पलिदोवमस्स अट्ठमभागो' इत्यधिकः पाठः समुपलभ्यते।

दसवाससहस्साणि [दसवाससहस्साणि] पलिदोवमस्स अट्ठमभागो, उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदो-वमं पलिदोवमं सादिरेयं[1]। सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सहस्सारे त्ति तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण [पलिदोवमं बे-सत्त-दस-चोद्दस-सोलससागरोवमाणि सादिरेयाणि, उक्कस्सेण बे-सत्त-दस-चोद्दस-सोलस-अट्ठारससागरोवमाणि सादिरेयाणि। आणद-पाणदप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासिय त्ति तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण] अट्ठारस-बीस-बावीस-तेवीस-चउवीस-पणुवीस-छवीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगूणतीस-तीससागरोवमाणि सादि-रेयाणि, उक्कस्सेण बीस-बावीस-तेवीस-चउवीस-पणुवीस-छवीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगूणतीस-तीस-एक्कत्तीससागरोवमाणि। अणुद्दिसादि जाव अवराजिद त्ति तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कत्तीस-बत्तीस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि, उक्कस्सेण बत्तीस-तेत्तीससागरोवमाणि। सव्वट्ठसिद्धिविमाण-वासियतिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।

वर्ष, [दश हजार वर्ष] और पल्योपमके आठवें भाग प्रमाण काल तक; तथा उत्कर्षसे कुछ अधिक सागरोपम, पल्योपम और पल्योपम प्रमाण काल तक रहते हैं। सौधर्म व ईशान कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक तीनों पदवाले देव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे [साधिक पल्योपम व साधिक दो, सात, दश, चौदह और सोलह सागरोपम प्रमाण काल तक; तथा उत्कर्षसे दो, सात, दश, चौदह, सोलह और अठारह सागरोपम प्रमाण काल तक रहते हैं। आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयकों तक तीनों पदवाले देव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे] साधिक अठारह, बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस सागरोपम काल तक; तथा उत्कर्षसे बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम काल तक रहते हैं। अनुदिशोंसे लेकर अपराजित विमान तक तीनों पदवाले देव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे कुछ अधिक इकतीस और बत्तीस सागरोपम काल तक तथा उत्कर्षसे बत्तीस और तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं। सर्वार्थसिद्धि विमानवासी तीनों पदवाले देव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं।

---

१ आप्रतौ ' सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं ' इति पाठः।

एइंदियाणं तिरिक्खभंगो । बादरेइंदिया कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । बादरेइंदियपज्जत्ता कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तेसिं चेव अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । सुहुमेइंदिया णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । तेसिं चेव पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । तेसिं चेव अपज्जत्ता णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया तेसिं चेव पज्जत्ता तिण्णिपदा णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तेसिं चेव अपज्जत्ता तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं

एकेन्द्रियोंकी प्ररूपणा तिर्यंच जीवोंके समान है । बादर एकेन्द्रिय कृतिसंचित कितने काल तक रहते हैं । नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण रहते हैं । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त कृतिसंचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे संख्यात हजार वर्ष तक रहते हैं । उनके ही अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्र-भवग्रहण और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं । सूक्ष्म एकेन्द्रिय नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात लोक प्रमाण काल तक रहते हैं । उनके ही पर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं । उनके ही अपर्याप्त नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व उनके ही पर्याप्त जीव तीनों पदवाले नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण मात्र अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे संख्यात हजार वर्ष तक रहते हैं । उनके ही अपर्याप्त तीनों पदवाले कितने

पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । पंचिंदियदुगस्स तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियं सागरोवमसदपुधत्तं ।

सोधम्मे माहिंदे पढमपुढवीए होदि चदुगुणिदं ।
बम्हादि आरणच्चुद पुढवीणं होदि पंचगुणं ॥ १२२ ॥

एसा गाहा पंचिंदियट्ठिदिं परूवेदि । सोधम्म-माहिंद-पढमपुढवीसु चदुक्खुत्तमुप्पण्णस्स बिदियादिछपुढवीसु बम्हलोगादिआरणच्चुददेवेसु च पंचवारमुप्पण्णस्स पंचिंदियट्ठिदी सागरोवमसहस्समेत्ता ।१०००। पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहिया ।९६। । पंचिंदियट्ठिदिं भमंतस्स एसा दिसा परूविदा, ण पुण एसो णियमो, अण्णेण वि पयारेण पंचिंदियट्ठिदी हिंडणं पडि संभवदंसणादो ।

....

काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं । पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा वे क्रमशः जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण व अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपम व सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक रहते हैं ।

सौधर्म, माहेन्द्र और प्रथम पृथिवीमें चार वार और ब्रह्म कल्पसे लेकर आरण-अच्युत कल्पों तथा द्वितीयादि पृथिवियोंमें पांच वार उत्पन्न होनेपर उक्त पंचेन्द्रिय काल पूर्ण होता है ॥ १२२ ॥

यह गाथा पंचेन्द्रिय कालकी प्ररूपणा करती है— सौधर्म, माहेन्द्र और प्रथम पृथिवीमें चार चार वार उत्पन्न हुए तथा द्वितीयादिक छह पृथिवियों व ब्रह्मलोकको आदि लेकर आरण-अच्युत कल्प तकके देवोंमें पांच वार उत्पन्न हुए जीवका पंचेन्द्रियकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व (९६) से अधिक एक हजार (सात पृथिवियोंमें — ४ + १५ + ३५ + ५० + ८५ + ११० + १६५ = ४६४; सौधर्मादि कल्पोंमें — ८ + २८ + ५० + ७० + ८० + ९० + १०० + ११० = ५३६; ५३६ + ४६४ = १०००) सागरोपम मात्र होता है । पंचेन्द्रियस्थितिको लेकर भ्रमण करनेवाले जीवके यह एक रीति बतलायी है, किन्तु सर्वथा ऐसा नियम नहीं हैं; क्योंकि, अन्य प्रकारसे भी पंचेन्द्रियस्थिति तक भ्रमण करना सम्भव है ।

पढमपुढवीए[1] चदुरो पण [पण] सेसासु होंति पुढवीसु ।
चदु चदु देवेसु भवा बावीसं ति सदपुधत्तं ॥ १२३ ॥

पढमपुढवीए चत्तारिवारमुप्पज्जिय सेसासु पुढवीसु पंच-पंचवारमुप्पज्जिय सोहम्मादि जाव आरणच्चुददेवेसु चत्तारि-चत्तारिवारमुप्पण्णस्स सागरोवमसदपुधत्तं पंचिंदियपज्जत्तट्ठिदी होदि | ९०० | ।

पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइया कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं [पडुच्च] जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । तेसिं चेव बादरा कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी । एवं बादरवणप्फदिपत्तेयसरीराणं च वत्तव्वं । एदेसिं चेव पज्जत्ताणं तिण्णिपद केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि । तेसिं चेव अपज्जत्ताणं बादरेइंदियअपज्जत्तभंगो ॥

प्रथम पृथिवीमें चार भव और शेष पृथिवियोंमें पांच पांच भव होते हैं । बाईस सागरोपम स्थिति तकके देवोंमें चार भव होते हैं । इस प्रकार पंचेन्द्रिय पर्याप्त काल सागरोपमशतपृथक्त्व प्रमाण होता है ॥ १२३ ॥

प्रथम पृथिवीमें चार वार उत्पन्न होकर और शेष पृथिवियोंमें पांच पांच वार उत्पन्न होकर सौधर्म कल्पको आदि लेकर आरण अच्युत कल्प तकके देवोंमें चार चार वार उत्पन्न हुए जीवके सागरोपमशतपृथक्त्व प्रमाण पंचेन्द्रिय पर्याप्त स्थिति पूर्ण होती है । (सात पृथिवियोंमें ४६४, सौधर्मादि कल्पोंमें ४३६; ४३६+४६४=९०० सागरोपम) ।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक और वायुकायिक, कृतिसंचित जीव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात लोक प्रमाण काल तक रहते हैं । उनके ही बादर कृतिसंचित जीव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे कर्मस्थिति प्रमाण काल तक रहते हैं । इसी प्रकार बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके भी कहना चाहिये । इनके ही पर्याप्त तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे संख्यात हजार वर्ष तक रहते हैं । उनके ही अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय

---

१ प्रतिषु ' पुढवीसु ' इति पाठः ।

सव्वसुहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो। वणप्फदिकाइया कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंत-कालमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता पोग्गलपरियट्टा। तेसिं चेव बादरपज्जत्तापज्जत्ताणं बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्तभंगो। णिगोदजीवा कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणा-जीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अड्ढाइज्ज-पोग्गलपरियट्टा। तेसिं चेव बादराणं कदिसंचिदा बादरपुढविभंगो। तेसिं चेव पज्जत्ताणं बादरपुढविपज्जत्तभंगो। तेसिं चेव अपज्जत्ताणं बादरपुढविअपज्जत्तभंगो। तसदुगस्स तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि, बेसागरोवमसहस्साणि।

अपर्याप्तोंके समान है। सब सूक्ष्म जीवोंकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है। वनस्पतिकायिक कृतिसंचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक रहते हैं। उनके ही बादर, पर्याप्त व अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है।

निगोद जीव कृतिसंचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अढ़ाई पुद्गल-परिवर्तन प्रमाण काल तक रहते हैं। उनके ही बादर कृतिसंचितोंकी प्ररूपणा बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। उनके ही पर्याप्तोंकी प्ररूपणा बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तोंके समान है। उनके ही अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंके समान है।

त्रस व त्रस पर्याप्त तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण व अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम एवं केवल दो हजार सागरोपम प्रमाण काल तक रहते हैं।

सोहम्मे माहिंदे पढमपुढवीसु होदि चदुगुणिदं ।
बम्हादिआरणच्चुद पुढवीणं अट्ठगुणं ॥ १२४ ॥
गेवज्जेसु च बिगुणं उवरिमगेवज्जएगवज्जेसु ।
दोण्णि सहस्साणि भवे कोडिपुधत्तेण अहियाणि ॥ १२५ ॥

एदाहि दोहि गाहाहि तसट्ठिदी उप्पादेदव्वा । तिस्से पमाणमेदं |२०००| । |९६| एदं पुव्वकोडिपुधत्तं । तसअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंजवचिजोगितिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । कायजोगीसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गल-परियट्टा । ओरालियकायजोगीसु कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि । ओरालियमिस्सकायजोगीसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं

सौधर्म, माहेन्द्र और प्रथम पृथिवीमें चार वार उत्पन्न होता है । ब्रह्म कल्पसे आरण-अच्युत कल्पों और द्वितीयादि शेष पृथिवियोंमें आठ वार उत्पन्न होता है । एक उपरिम ग्रैवेयकको छोड़कर सब ग्रैवेयकोंमें दो वार उत्पन्न होता है । इस प्रकार त्रस पर्यायका काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम प्रमाण होता है ॥ १२४-१२५ ॥

इन दो गाथाओंसे त्रस पर्यायकी स्थितिको उत्पन्न कराना चाहिये । उसका प्रमाण यह है । (कल्पोंमें ८३६, प्रथमादिक आठ ग्रैवेयकोंमें ४२४, सात पृथिवियोंमें ७४०; ८३६ + ४२४ + ७४० = २००० सागरोपम) यह (९६) पूर्वकोटिपृथक्त्व है । त्रस अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है ।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी तीन पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं । काययोगियोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीव कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक रहते हैं । औदारिककाययोगियोंमें कृतिसंचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे कुछ कम बाईस हजार वर्ष तक रहते हैं । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित जीव कितने काल तक रहते हैं ? नाना

पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । वेउव्विय-कायजोगीणं मणजोगिभंगो । वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो एगमंतोमुहुत्तं; पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवक्कमणवारसलागाहि पदुप्पण्णे समुप्पत्तीदो । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । आहारकायजोगीसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । आहारमिस्सकाय-जोगीसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । कम्मइयकायजोगीसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णिसमया ।

इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं, एगसमओ; उक्कस्सेण पलिदोवम-सदपुधत्तं, सागरोवमसदपुधत्तं, अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।

जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल रहते हैं । वैक्रियिककाययोगियोंकी प्ररूपणा मनोयोगियोंके समान है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें तीन पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र एक अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं; क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र उपक्रमणवार-शलाकाओंसे उत्पन्न होनेपर यह काल प्राप्त होता है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं । आहारकाययोगियोंमें तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं । आहारमिश्रकाययोगियोंमें तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं । कार्मण-काययोगियोंमें कृति, नोकृति व अवक्तव्य संचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय तक रहते हैं ।

स्त्री, पुरुष व नपुंसक वेदियोंमें तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्रमशः एक समय, अन्तर्मुहूर्त व एक समय तथा उत्कर्षसे पल्योपमशतपृथक्त्व, सागरोपमशतपृथक्त्व व असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन मात्र अनन्त काल तक रहते हैं ।

सोहम्मे सत्तगुणं तिगुणं जाव दु सुसुक्ककप्पो त्ति ।
सेसेसु भवे बिगुणं जाव दु आरणच्चुदो कप्पो ॥ १२६ ॥

पणगादी दोहि जुदा सत्तावीसा त्ति पल्ल देवीणं ।
तत्तो सत्तुत्तरियं जाव दु आरणच्चुओ[1] कप्पो[2] ॥ १२७ ॥

एदमाउअं ठवेदूण सोहम्माउअं सत्तगुणं, ईसाणादि जाव महासुक्के त्ति तिगुणं, तत्तो जाव आरणच्चुदे त्ति बिगुणं काऊण मेलिदे त्थिवेदुक्कस्सट्ठिदी पलिदोवमसदपुधत्तमेत्ता होदि । तिस्से पमाणमेदं | ९०० | ।

पुरिसेसु सदपुधत्तं असुरकुमारेसु होदि तिगुणेण ।
तिगुणे णवगेवज्जे सग्गठिदी[3] छग्गुणं होदि ॥ १२८ ॥

स्त्रीवेदी सौधर्म कल्पमें सात वार, ईशानसे लेकर महाशुक्र कल्प तक तीन वार, और आरण-अच्युत कल्प तक शेष कल्पोंमें दो वार उत्पन्न होता है ॥ १२६ ॥

देवियोंकी आयु सत्ताईस पल्य तक दोसे युक्त पांच आदि पल्य प्रमाण अर्थात् सौधर्म स्वर्गमें पांच, ईशानमें सात, सनत्कुमारमें नौ, माहेन्द्रमें ग्यारह, इस प्रकार दो पल्यकी उत्तरोत्तर वृद्धि होकर सहस्रार कल्पमें सत्ताईस पल्य प्रमाण है । इसके आगे आरण-अच्युत कल्प तक उत्तरोत्तर सात पल्य अधिक होते गये हैं ॥ १२७ ॥

इस आयुको स्थापित कर सौधर्म कल्पकी आयुको सातगुणी, ईशान कल्पको आदि लेकर महाशुक्र तक तिगुणी और इससे आगे आरण-अच्युत कल्प तक दुगुणी करके मिलानेपर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति पल्योपमशतपृथक्त्व मात्र होती है । उसका प्रमाण यह है—३५ + २१ + २७ + ३३ + ३९ + ४५ + ५१ + ५७ + ६३ + ६९ + ५० + ५४ + ६८ + ८२ + ९६ + ११० = ९०० पल्योपम ।

पुरुषवेदियोंमें रहनेका काल शतपृथक्त्व [सागरोपम] प्रमाण है । असुरकुमारोंमें तीन वार उत्पन्न होता है । नौ ग्रैवेयकोंमें तीन वार उत्पन्न होता है । स्वर्गोंकी स्थिति छहगुणी होती है ॥ १२८ ॥

---

१ प्रतिषु ' अरसप्पओ ' इति पाठः ।

२ जे सोलस कप्पाणि केई इच्छंति ताण उवएसे । अट्ठसु आउपमाणं देवीणं दक्खिणिंदेसुं ॥ पलिदोवमाणि पण णव तेरस सत्तरस एक्कवीसं च । पणवीसं चउतीसं अट्ठत्तालं कमेणेव ॥ पल्ला सत्तेक्कारस पण्णरसेक्कोणवीस-तेवीसं । सगवीसमेक्कतालं पणवण्णं उत्तरिंददेवीणं ॥ ति. प. ८, ५२७–२९. साहियपल्लं अवरं कप्पदुगित्थीण पणग पढमवरं । एक्कारसे चउक्के कप्पे दो-सत्तपरिवड्ढी ॥ त्रि. सा. ५४२.

३ अप्रतौ ' -गेवज्जेसु सगट्ठिदि ', आ-काप्रत्योः ' गेवज्जे सगट्ठिदी ' इति पाठः ।

कप्पेसु एदेसिं पमाणमेदं |९००| ।

एगं पोग्गलपरियट्टं ठविय आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे णवुंसयवेदुक्कस्स-ट्ठिदी होदि । अवगदवेदा तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।

चत्तारिकसायाणं मणजोगिभंगो[1] । अकसायाणमवगदवेदभंगो । मदि-सुदअण्णाणि-तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । विभंगणाणितिण्णिपदा णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । आभिणिवोहिय-सुद-ओहिणाणितिण्णिपदा णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । मणपज्जवणाणीसु तिण्णि-

---

कल्पोंमें इनका प्रमाण यह है — असुर. १ × ३ = ३, स्वर्ग २ × ६ = १२, ७ × ६ = ४२, १० × ६ = ६०, १४ × ६ = ८४, १६ × ६ = ९६, १८ × ६ = १०८, २० × ६ = १२०, २२ × ६ = १३२, अ. म. ग्रै. २४ × ३ = ७२, म. म. ग्रै. २७ × ३ = ८१, उ. म. ग्रै. ३० × ३ = ९०; ३ + १२ + ४२ + ६० + ८४ + ९६ + १०८ + १२० + १३२ + ७२ + ८१ + ९० = ९०० सागरोपम ।

एक पुद्गलपरिवर्तनको स्थापित करके आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । अपगतवेदी तीन पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा वे सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक रहते हैं ।

चार कषायवाले जीवोंकी प्ररूपणा मनोयोगियोंके समान है । अकषायी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ।

मति अज्ञानी व श्रुताज्ञानी तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल तक रहते हैं । विभंगज्ञानी तीनों पदवाले नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे कुछ कम तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधि-ज्ञानी तीनों पदवाले नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे छ्यासठ सागरोपमसे कुछ अधिक काल तक रहते हैं ।

---

१ अप्रतौ ' मणपज्जवभंगो ' इति पाठः ।

पदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । एवं केवलणाणि-संजद-सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धि-संजद-परिहारसुद्धिसंजद-जहाक्खादाणं पि वत्तव्वं । णवरि सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं जहण्णेण एगसमओ । सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । संजदासंजदाणं मणपज्जवभंगो । असंजदाणं मदिअण्णाणिभंगो । चक्खुदंसणीणं तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदंसणीणं णत्थि कालणिद्देसो । अधवा अणादिअपज्जवसिदो अणादिसपज्जवसिदो । ओधिदंसणी ओहिणाणीणं भंगो । केवलदंसणी केवलणाणीणं भंगो ।

किण्ण-णील-काउलेस्सिया कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि । तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सिया तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बे-अट्ठारस-तेत्तीस-

---

मनःपर्ययज्ञानियोंमें तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक रहते हैं ।

इसी प्रकार केवलज्ञानी, संयत, सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धि-संयत और यथाख्यातसंयतोंके भी कहना चाहिये । विशेष केवल इतना है कि सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका जघन्यसे एक समय काल है । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं । संयतासंयतोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । असंयत जीवोंकी प्ररूपणा मतिअज्ञानियोंके समान है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा त्रसपर्याप्तोंके समान है । अचक्षुदर्शनी जीवोंके कालका निर्देश नहीं है । अथवा अचक्षुदर्शनी जीवोंका काल अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित है । अवधिदर्शनियोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है । केवल-दर्शनियोंकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले कृतिसंचित कितने काल तक रहते हैं । नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपमसे कुछ अधिक काल तक रहते हैं ? तेज, पद्म व शुक्ल लेश्या युक्त तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे दो, अठारह एवं

सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

भवसिद्धियाणं अभवसिद्धियाणं च णत्थि कालणिद्देसो, भवसिद्धियाणमभवसिद्धिय-सरूवेण, अभवसिद्धियाणं पि भवसिद्धियभावेण परिणामाभावादो । अधवा अभवसिद्धियाण-मणादिओ अपज्जवसिदो । एवं भवसिद्धियाणं पि वत्तव्वं । णवरि अणादिसपज्जवसिदभंगो वि अत्थि, णिव्वुदाणं भव्वत्ताभावादो । सम्माइट्ठीणमाभिणिबोहियभंगो । खइयसम्माइट्ठीसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि । वेदगसम्मादिट्ठीसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि । उवसमसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं वेउव्वियमिस्सभंगो । सासणसम्मादिट्ठीसु तिण्णिपदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छावलियाओ । मिच्छादिट्ठीणमसंजदभंगो ।

तेतीस सागरोपमसे कुछ अधिक काल तक रहते हैं ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंके कालका निर्देश नहीं है, क्योंकि भव्यसिद्धिक अभव्यसिद्धिक रूपसे और अभव्यसिद्धिक भी भव्यसिद्धिक रूपसे परिणमन नहीं करते । अथवा अभव्यसिद्धिकोंका काल अनादि-अपर्यवसित है । इसी प्रकार भव्य-सिद्धिकोंके भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उनके अनादि-सपर्यवसित भंग भी है, क्योंकि, मुक्त होनेपर उनके भव्यत्वका अभाव हो जाता है ।

सम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । क्षायिकसम्य-ग्दृष्टियोंमें तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे तेतीस सागरोपमसे कुछ अधिक रहते हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे छयासठ सागरोपम काल तक रहते हैं । उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी प्ररूपणा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें तीनों पदवाले कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल तक रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवली तक रहते हैं । मिथ्यादृष्टियोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ।

सण्णीणं पंचिंदियपज्जत्तभंगो । असण्णीणमेइंदियभंगो । आहारा कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । अणाहारा कदिसंचिदा केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं कालाणुगमो समत्तो ।

अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । सव्वासु मग्गणासु कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदाणं णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । णवरि मणुसअपज्जत्त-वेउव्वियमिस्स-आहारदुग--सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-उवसमसम्मादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठी वज्जिदूण[१] । पढमादि जाव सत्तमपुढवि त्ति णिरयोघभंगो । तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिग-पंचिं-

संज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है । असंज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा एकेन्द्रिय जीवोंके समान है । आहारक जीव कृतिसंचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तक रहते हैं । अनाहारक कृतिसंचित कितने काल तक रहते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं । इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

अन्तरानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकियोंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ।

सब मार्गणाओंमें कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है । विशेष इतना है कि मनुष्य अपर्याप्त; वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक व आहारकमिश्र काययोगी, सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंको छोड़कर, अर्थात् इनको छोड़कर शेष सब मार्गणाओंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । प्रथम पृथिवीसे लेकर सप्तम पृथिवी तक अन्तरकी प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान है ।

तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीन और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त तीनों पद-

१ प्रतिषु 'वड्डिदूण' इति पाठः ।

दियतिरिक्खअपज्जत्ताणं तिण्णिपदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । होदु एदमंतरं पंचिंदियतिरिक्खाणं, ण तिरिक्खाणं; सेसतिगदिदीए आणंतियाभावादो ? ण, अप्पिदपद-जीवं सेसतिगदीसु हिंडाविय अणप्पिदपदेण तिरिक्खेसु पवेसिय तत्थ अणंतकालमच्छिय णिप्पिदिदूण पुणो अप्पिदपदेण तिरिक्खेसुवक्कंतस्स अणंततरुवलंभादो ।

एवं मणुसतिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदियाणं च वत्तव्वमविसेसादो । मणुसअपज्जत्तेसु तिण्णिपदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ।

देवगदीए देवाणं भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवाणं सोहम्मीसाणाणं च णारगभंगो । एवं सणक्कुमार-माहिंददेवाणं पि अंतरं परूवेदव्वं । णवरि मुहुत्तपुधत्तमेत्तमेत्थ

वालोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है ।

शंका—यह अन्तर पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका भले ही हो, किन्तु वह सामान्य तिर्यंचोंका नहीं हो सकता; क्योंकि, शेष तीन गतियोंका काल अनन्त नहीं है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, विवक्षित पद (कृतिसंचित आदि) वाले जीवको शेष तीन गतियोंमें घुमाकर अविवक्षित पदसे तिर्यंचोंमें प्रवेश कराकर वहां अनन्त काल रह कर और फिर निकल कर विवक्षित पदसे तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेपर अनन्त काल अन्तर पाया जाता है ।

इसी प्रकार मनुष्य आदि तीन, सब विकलेन्द्रिय और सब पंचेन्द्रियोंके भी कहना चाहिये, क्योंकि, इनके उनसे कोई विशेषता नहीं हैं । मनुष्य अपर्याप्तोंमें तीनों पदवालोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग अन्तर होता है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल अन्तर होता है ।

देवगतिमें देवों, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी देवों और सौधर्म-ईशान कल्पके देवोंकी अन्तरप्ररूपणा नारकियोंके समान है । इसी प्रकार सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पके देवोंके भी अन्तरकी प्ररूपणा करना चाहिये । विशेषता इतनी है कि इनमें जघन्य अन्तर

जहण्णंतरं होदि । कुदो ? सणक्कुमार-माहिंददेवेहिंतो तिरिक्ख-मणुस्सेसु गब्भोवक्कंतिएसु उप्पज्जिय मुहुत्तपुधत्तमच्छिय आउअं बंधिय सणक्कुमार-माहिंददेवेसु पुणो उप्पण्णस्स मुहुत्तपुधत्तमेत्तंतरुवलंभादो । एदम्हादो थोवमंतरं किण्ण लब्भदे ? ण, सणक्कुमार-माहिंद-देवाणं तिरिक्ख-मणुसगब्भोवक्कंतिएसु आउअं बंधंताणं मुहुत्तपुधत्तादो हेट्ठा बंधाभावादो । भुंजमाणाउअं[1] घादिय मुहुत्तपुधत्तादो हेट्ठा कादूण घादियसेसं जीविय सणक्कुमार-माहिंदेसु उप्पण्णस्स जहण्णंतरं किण्ण कीरदे ? ण, देवेहि बद्धाउअस्स घादाभावादो । एस अत्थो उवरि सव्वत्थ वत्तव्वो । बम्हबम्होत्तर-लंतवकाविट्ठदेवेसु जहण्णाउअबंधो दिवसपुधत्तं । सुक्क-महासुक्क-सदर-सहस्सारकप्पेसु पक्खपुधत्तं । आणद-पाणद-आरणच्चुदकप्पेसु मास-पुधत्तं । णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु वासपुधत्तं । अणुदिसादि जाव अवराइदे त्ति वासपुधत्तं । एदाणि जहण्णायुगाणि बंधिय तिरिक्ख-मणुस्सेसुप्पज्जिय अप्पिददेवेसु उप्पण्णाणं जहण्णमंतरं

मुहूर्तपृथक्त्व मात्र होता है, क्योंकि, सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंमेंसे गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर मुहूर्तपृथक्त्व काल रहकर आयुको बांधकर पुनः सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके मुहूर्तपृथक्त्व मात्र अन्तर पाया जाता है ।

शंका — इससे स्तोक अन्तर क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, तिर्यंच व मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंमें आयुको बांधनेवाले सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंके मुहूर्तपृथक्त्वसे नीचे आयुका बन्ध नहीं होता ।

शंका — भुज्यमान आयुका घात करके मुहूर्तपृथक्त्वसे नीचे कर घातनेसे शेष रही आयुके प्रमाण जीवित रहकर सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके जघन्य अन्तर क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, देवों द्वारा बांधी गई आयुका घात नहीं होता । यह अर्थ आगे सब जगह कहना चाहिये ।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ देवोंमें जघन्य आयुका बन्ध दिवसपृथक्त्व मात्र होता है । शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार कल्पोंमें जघन्य आयुका बन्ध पक्षपृथक्त्व मात्र होता । आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पोंमें जघन्य आयुका बन्ध मासपृथक्त्व मात्र होता है । नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें जघन्य आयुका बन्ध वर्षपृथक्त्व मात्र होता है । अनुदिशोंसे लेकर अपराजित विमानवासी देवोंमें जघन्य आयुका बन्ध वर्ष-पृथक्त्व मात्र होता है । इन जघन्य आयुओंको बांधकर तिर्यंच व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पुनः विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके जघन्य अन्तर होता है । विशेषता इतनी है कि

---

१ प्रतिषु ' भंजमाणाउअं ' इति पाठः ।

होदि। णवरि आणद-पाणद-आरणच्चुददेवाणं जहण्णंतरे भण्णमाणे मणुस्सेसु मासपुधत्त-मेत्ताउअं बंधिय मणुस्सेसुप्पज्जिय तत्थ मासपुधत्तं जीविय पुणो सम्मुच्छिमम्मि उप्पज्जिय अंतोमुहुत्तेण संजमासंजमं घेत्तूण कालं करिय आणद-पाणद-आरणच्चुददेवेसु उप्पण्णस्स जहण्णंतरं वत्तव्वं। कुदो? संजमासंजमेण संजमेण वा विणा तत्थ उववादाभावादो। सम्मत्तं चेव गेण्हाविय किण्ण उप्पादिदो? ण, मणुस्सेसु वासपुधत्तेण विणा मासपुधत्तब्भंतरे सम्मत्त-संजम-संजमासंजमाणं गहणाभावादो। सम्मुच्छिमेसु सम्मत्तं चेव गेण्हाविय किण्ण देवेसु उप्पाइदो? होदु णामेदं, संजमासंजमेण विणा तिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठीणमाणदादिसु उप्पत्तिदंसणादो। एदं कुदो णव्वदे? तिरिक्खासंजदसम्मादिट्ठीणं मारणंतियस्स छचोद्दस-भागमेत्तपोसणपरूवणादो। दव्वलिंगी मिच्छाइट्ठी किण्ण उप्पादिदो? ण, वासपुधत्तेण विणा

....

आनत-प्राणत और आरण-अच्युत देवोंके जघन्य अन्तरकी प्ररूपणा करते समय मनुष्योंमें मासपृथक्त्व मात्र आयुको बांधकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर और वहां मासपृथक्त्व काल जीवित रहकर पुनः सम्मूर्च्छिममें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तसे संयमासंयमको ग्रहण करके मृत्युको प्राप्त हो आनत-प्राणत और आरण-अच्युत देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके जघन्य अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि, संयमासंयम अथवा संयमके विना उन देवोंमें उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

शंका — सम्यक्त्वको ही ग्रहण कराकर क्यों नहीं उत्पन्न कराया?

समाधान—नहीं कराया, क्योंकि, मनुष्योंमें वर्षपृथक्त्वके विना मासपृथक्त्वके भीतर सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयमके ग्रहणका अभाव है।

शंका — सम्मूर्च्छिमोंमें सम्यक्त्वको ही ग्रहण कराकर देवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया?

समाधान—यह भी सम्भव है, क्योंकि, संयमासंयमके विना तिर्यंच असंयत-सम्यग्दृष्टियोंकी आनतादिकोंमें उत्पत्ति देखी जाती है।

शंका—यह कहांसे जाना जाता है?

समाधान—यह तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंके मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा छह बटे चौदह भाग मात्र स्पर्शनकी प्ररूपणा करनेसे जाना जाता है।

शंका—द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टिको क्यों नहीं वहां उत्पन्न कराया?

समाधान—नहीं कराया, क्योंकि, वर्षपृथक्त्वके विना मासपृथक्त्वके भीतर द्रव्य-

मासपुधत्तब्भंतरे दव्वलिंगग्गहणाभावादो। सम्माइट्ठी आणदादिदेवेहिंतो मणुस्सेसु किण्ण ओदारिदो? ण[1], वासपुधत्तादो हेट्ठा सम्माइट्ठीणमाउअबंधाभावादो। एवं सव्वेसिं देवाणं जहण्णंतरपरूवणा कदा।

उवरिमगेवज्जादिहेट्ठिमदेवाणमुक्कस्संतरमणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा। अणुदिस-अणुत्तरदेवेसु बेसागरोवमाणि सादिरेयाणि उक्कस्संतरं, अप्पिददेवेहिंतो मणुस्सेसुप्पज्जिय पुव्वकोडिं जीविदूण सोहम्मीसाणदेवेसु बेसागरोवमाउएसु उप्पज्जिय पुणो वि पुव्वकोडाउओ मणुसो होदूण कालं कादूण अप्पिददेवेसुप्पण्णे दोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि बेसागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि।

अणुद्दिसदेवेसु समयाहियएक्कत्तीससागरोवमाउएसु उप्पज्जिय तत्तो भविय मणुस्सेसुप्पज्जिय पुणो भुत्त-भुंजमाण[2]-भुंजिस्समाणेहि य चदुहि मणुस्साउएहि ऊणचत्तारि-

---

लिंगका ग्रहण करना सम्भव नहीं है।

शंका—आनतादि देवोंमेंसे सम्यग्दृष्टियोंको मनुष्योंमें अवतार लिवाकर जघन्य अन्तर क्यों नहीं बतलाया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वर्षपृथक्त्वके नीचे सम्यग्दृष्टियोंके आयुका बन्ध नहीं होता; अतः उनके उक्त प्रकारसे अन्तर बन नहीं सकता था।

इस प्रकार सब देवोंके जघन्य अन्तरकी प्ररूपणा की गई है।

उपरिम ग्रैवेयको आदि लेकर अधस्तन देवोंके उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गल-परिवर्तन प्रमाण अनन्त काल होता है। अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देवोंमें उत्कृष्ट अन्तर दो सागरोपमोंसे कुछ अधिक होता है, क्योंकि, विवक्षित देवोंमेंसे मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पूर्वकोटि काल जीवित रहकर दो सागरोपम आयुवाले सौधर्म-ईशान कल्पके देवोंमें उत्पन्न होकर फिर भी पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाला मनुष्य होकर मरकर विवक्षित देवोंमें उत्पन्न होनेपर दो पूर्वकोटियोंसे अधिक दो सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है।

शंका—एक समय अधिक इकतीस सागरोपम प्रमाण आयुवाले अनुदिश देवोंमें उत्पन्न होकर वहांसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पुनः भुक्त, भुंजमान और भविष्यमें भोगी जानेवाली चार मनुष्यायुओंसे कम चार सागरोपम प्रमाण आयुवाले

---

१ प्रतिषु 'किण्ण ओदारिदूण' इति पाठः।   २ प्रतिषु 'भंजमाण-' इति पाठः।

सागरोवमाउएसु सणक्कुमारदेवेसुप्पज्जिय पुणो मणुसगइमागंतूण समयाहियएक्कत्तीससागरोवमाउएसु अणुद्दिसदेवेसुप्पण्णे अंतरकालो चत्तारिसागरोवममेत्तो देसूणो लब्भदि । वेदगसम्मत्तकालो वि छावट्ठिसागरोवममेत्तो संपुण्णो होदि । तदो एसो उक्कस्संतरकालो घेत्तव्वो त्ति ? ण, एत्थ वेदगसम्मत्तेण एक्केण चेव होदव्वमिदि णियमाभावादो । णियमे वा सादिरेयबेसागरोवममेत्तो अणुत्तरदेवाणमंतरकालो विरुज्झदे वेदगसम्मत्तस्स सादिरेयछावट्ठिसागरोवमकालप्पसंगादो[1] च । तदो तिण्णि वि सम्मत्ताणि एत्थ ण विरुज्झंति त्ति घेत्तव्वं । जदि एवं घेप्पदि तो समयाहियएक्कत्तीससागरोवमाणि आउवदेवं मणुस्सेसुप्पाइय पुणो एक्कत्तीससागरोवमाउएसु उवरिमगेवज्जदेवेसु उप्पाइय मणुसगइमाणेदूण दंसणमोहणीयं खविय खइयसम्मत्तेण अणुद्दिसदेवेसु उप्पाइदे सादिरेयएक्कत्तीससागरोवममेत्तंतरकालो लब्भदे ? ण, अणुद्दिसाणुत्तरदेवाणं तत्तो चविय पुणो तत्थेव उप्पज्जमाणाणं सादिरेयबेसागरोवमे मोत्तूण अहियं-

सनत्कुमार देवोंमें उत्पन्न होकर पुनः मनुष्यगतिको प्राप्त होकर एक समय अधिक इकतीस सागरोपम प्रमाण आयुवाले अनुदिश देवोंमें उत्पन्न होनेपर अन्तरकाल कुछ कम चार सागरोपम प्रमाण प्राप्त होता है। और इस प्रकार वेदकसम्यक्त्वका काल भी छयासठ सागरोपम मात्र सम्पूर्ण होता है। अत एव इस उत्कृष्ट अन्तरकालको ग्रहण करना चाहिये ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, यहां एक वेदकसम्यक्त्व ही होना चाहिये, ऐसा नियम नहीं है। अथवा ऐसा नियम माननेपर अनुत्तरविमानवासी देवोंका कुछ अधिक दो सागरोपम मात्र अन्तरकाल विरोधको प्राप्त होगा, तथा वेदकसम्यक्त्वके कुछ अधिक छयासठ सागरोपम प्रमाण कालका प्रसंग भी आवेगा। इस कारण तीनों ही सम्यक्त्व यहां विरोधको प्राप्त नहीं होते, ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

शंका—यदि इस प्रकार ग्रहण करते हैं तो एक समय अधिक इकतीस सागरोपम प्रमाण आयुवाले देवको मनुष्योंमें उत्पन्न कराकर पुनः इकतीस सागरोपम आयुवाले उपरिम ग्रैवेयकविमानवासी देवोंमें उत्पन्न कराकर मनुष्यगतिमें लाकर दर्शनमोहनीयका क्षयकर क्षायिक सम्यक्त्वके साथ अनुदिशविमानवासी देवोंमें उत्पन्न करानेपर कुछ अधिक इकतीस सागरोपम मात्र अन्तरकाल पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अनुदिश व अनुत्तर विमानवासी देवोंके वहांसे च्युत होकर फिरसे वहांपर ही उत्पन्न होनेपर कुछ अधिक दो सागरोपमोंको छोड़कर अधिक

१ अ-आप्रत्योः ' कालप्पसंगो च ' इति पाठः ।

तरकालाणुवलंभादो । एदं कुदो णव्वदे ? ' अणुदिसाणुत्तरदेवाणमुक्कस्संतरं बेसागरोवमाणि सादिरेयाणि ' त्ति खुद्दाबंधसुत्तादो णव्वदे । ण जुत्तीए सुत्तविरुद्धाए बहुवमंतरं वोत्तुं सक्किज्जदे, अणवत्थापसंगादो । कधमणवत्था ? अणुदिसाणुत्तरदेवस्स मणुस्सेसुप्पज्जिय मिच्छत्तं गदस्स अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तंतरप्पसंगादो । तत्तो चुदा मिच्छत्तं ण गच्छंति त्ति उवड्ढपोग्गलपरियट्टमेत्तंतरं ण लब्भदि त्ति जदि उच्चदि तो अणुदिसाणुत्तरेहिंतो भविय पुणो तत्थुप्पज्जमाणाणं सादिरेयबेसागरोवमे मोत्तूण अहिओ अंतरकालो ण लब्भदि त्ति सुत्तबलेण किण्ण इच्छिज्जदे । सव्वट्ठसिद्धिम्हि जहण्णुक्कस्संतरं णत्थि, तत्तो च्चुदाणं[1] पुणो तत्थुववादाभावादो ।

अन्तरकाल नहीं पाया जाता ।

शंका — यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान — अनुदिश व अनुत्तर विमानवासी देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक दो सागरोपम प्रमाण है, इस क्षुद्रकबन्धके सूत्र (देखिये पु. ७, पृ. १९६) से जाना जाता है। सूत्रविरुद्ध युक्तिसे बहुत अन्तर कहना शक्य नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेसे अनवस्थाका प्रसंग आता है ।

शंका — अनवस्था कैसे आती है ?

समाधान — अनुदिश व अनुत्तर विमानवासी देवके मनुष्योंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र अन्तरका प्रसंग आनेसे अनवस्था आती है ।

शंका — अनुदिश व अनुत्तर विमानोंसे च्युत हुए देव चूंकि मिथ्यात्वको प्राप्त होते नहीं हैं अतः उनके उपार्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र अन्तर नहीं प्राप्त हो सकता ?

समाधान — यदि ऐसा कहते हो तो अनुदिश व अनुत्तर विमानोंसे च्युत होकर फिरसे वहां उत्पन्न होनेपर कुछ अधिक दो सागरोपमोंको छोड़कर अधिक अन्तरकाल नहीं पाया जाता, ऐसा सूत्रबलसे क्यों नहीं स्वीकार करते; यह भी उत्तर दिया जा सकता है ।

सर्वार्थसिद्धि विमानमें जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर नहीं है, क्योंकि, वहांसे च्युत जीवोंकी फिरसे वहां उत्पत्ति सम्भव नहीं है ।

१ अप्रतौ ' उच्चुदाणं ' इति पाठः ।

एइंदिय-बि-ति-चदु-पंचिंदिएसु[1] तिरिक्खभंगो। बादरेइंदियाणं तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ताणं कदिसंचिदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। सुहुमाणं तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ताणं कदिसंचिदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ।

चत्तारिकायाणं तेसिं चेव बादराणं तेसिमपज्जत्ताणं तेसिं सुहुमाणं तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ताणं कदिसंचिदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा। बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ताणं तसकाइयपज्जत्तापज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणं तेसिमपज्जत्ताणं च एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टा। वणप्फदिकाइयणिगोदजीवाणं बादर-सुहुमाणं च तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ताणं च कदिसंचिदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियोंमें कृतिसंचित जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। बादर एकेन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त कृतिसंचितोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात लोक प्रमाण काल उक्त जीवोंका अन्तर होता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त कृतिसंचितोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? उक्त जीवोंका अन्तर जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल होता है।

चार काय अर्थात् पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक व वायुकायिक और उनके ही बादर व उनके अपर्याप्त, उनके सूक्ष्म व उनके ही पर्याप्त-अपर्याप्त कृतिसंचितोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण व उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक होता है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त तथा त्रसकायिक पर्याप्त व अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर व उनके अपर्याप्तोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। वनस्पतिकायिक निगोद जीव उनके बादर व सूक्ष्म तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त कृतिसंचितोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? उक्त जीवोंका

---

१ अ-आप्रत्योः 'एइंदिए एइंदिएसु', काप्रतौ 'एइंदिय एइंदिएसु' इति पाठः।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं णेरइयभंगो। कायजोगीणमेइंदियभंगो। णवरि जहण्ण-मंतरं एगसमओ। ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगीणं कदिसंचिदाणं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि। वेउव्वियकाय-जोगीणं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा। वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ, उक्कस्सेण बारस मुहुत्ताणि। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवाससहस्साणि सादिरेयाणि, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणं तिण्णिपदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। कम्मइय-कायजोगीणं कदिसंचिदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभव-ग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ।

अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात लोक प्रमाण काल तक होता है।

पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है। काययोगियोंकी प्ररूपणा एकेन्द्रियोंके समान है। विशेषता इतनी है कि इनका जघन्य अन्तर एक समय होता है। औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी कृतिसंचित जीवोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तेतीस सागरो-पमोंसे कुछ अधिक है। वैक्रियिककाययोगियोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल है। वैक्रियिक-मिश्रकाययोगियोंका अन्तर कितने काल तक होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे बारह मुहूर्त प्रमाण अन्तर होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे दश हजार वर्षोंसे कुछ अधिक और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल तक होता है। आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगी तीनों पदवालोंका अन्तर कितने काल तक होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व प्रमाण उक्त जीवोंका अन्तर होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। कार्मणकाययोगी कृतिसंचितोंका अन्तर कितने काल तक होता है? एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तक होता है।

इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदाणं तिण्णिपदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, एगसमओ, अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, [सागरोवमसदपुधत्तं]। अवगदवेदतिण्णं पदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

चत्तारिकसायकदिसंचिदाणं अंतरं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अकसायाणं अवगदवेदभंगो ।

णाणाणुवादेण मदि-सुदअण्णाणि-आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणितिण्णि-पदाणमंतरं[1] केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[2] । विभंगणाणीणं णारगभंगो, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टंतरेण साम-ण्णादो । केवलणाणीणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ।

सव्वसंजदाणं संजदासंजदाणमसंजदाणं च मदिणाणिभंगो । णवरि सुहुमसांपराइएसु

....

स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदी तीनों पदवालोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? उक्त तीनों वेदवालोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्रमशः क्षुद्रभवग्रहण, एक समय और अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कर्षसे स्त्री व पुरुषवेदियोंका असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल [तथा नपुंसकवेदियोंका सागरोपमशतपृथक्त्व काल] होता है। अपगतवेदी तीन पदोंका अन्तर कितने काल तक होता हैं ? एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल तक अन्तर होता है ।

चार कषायवाले कृतिसंचितोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त होता है। अकषायी जीवोंकी अन्तरप्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ।

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी, श्रुताज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानियोंमें तीन पदोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल उक्त जीवोंका अन्तर होता है। विभंगज्ञानियोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अन्तरसे इनकी नारकियोंके साथ समानता है। केवल-ज्ञानियोंका नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता ।

सब संयत, संयतासंयत और असंयत जीवोंकी प्ररूपणा मतिज्ञानियोंके समान है। विशेषता इतनी है कि सूक्ष्मसाम्परायिकसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक

....

१ प्रतिषु ' -णाणीपदाणमन्तरं ' इति पाठः । २ अ-काप्रत्योः ' देसूणं ' पदं नोपलभ्यते ।

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं।

चक्खुदंसणीणं णारगभंगो। अचक्खुदंसणीणं णत्थि अंतरं, केवलदंसणीणं पुणो अचक्खुदंसणपरिणामाभावादो। ओहिदंसणीणं ओहिणाणिभंगो। केवलदंसणीणं केवलणाणिभंगो।

किण्ण-णील-काउलेस्सियाणं कदिसंचिदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि। तेउ-पम्म-सुक्क-लेस्सियाणं णारगभंगो। भवसिद्धियाणं णत्थि अंतरं, सिद्धाणं भवियपरिणामाभावादो। अभव-सिद्धियाणं णत्थि अंतरं। कारणं सुगमं।

सम्मादिट्ठि-वेदगसम्मादिट्ठि-मिच्छादिट्ठीणमाभिणिबोहियभंगो। खइयसम्मादिट्ठीणं णत्थि अंतरं, सम्मत्तंतरगमणाभावादो। उवसमसम्मादिट्ठीणं तिण्णं पदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। एगजीवं पडुच्च सम्मादिट्ठिभंगो। सम्मामिच्छा-इट्ठीणं तिण्णिपदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स

समय और उत्कर्षसे छह मास तक अन्तर होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्त-र्मुहूर्त और उत्कर्षसे अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल तक अन्तर होता है।

चक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है। अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर नहीं होता, क्योंकि, केवलदर्शनी जीव पुनः अचक्षुदर्शनी रूपसे परिणमन नहीं करते। अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है। केवलदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले कृतिसंचितोंका अन्तर कितने काल तक होता है? एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे तेतीस सागरोपमोंसे कुछ अधिक अन्तर होता है। तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है।

भव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर नहीं होता, क्योंकि, सिद्ध जीवोंका पुनः भव्य स्वरूपसे परिणमन नहीं होता। अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर नहीं होता। इसका कारण सुगम है।

सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिक-ज्ञानियोंके समान है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर नहीं होता, क्योंकि, क्षायिक-सम्यक्त्व अन्य सम्यक्त्व स्वरूप परिणत नहीं होता। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके तीन पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे सात रात्रि-दिन होता है। एक जीवकी अपेक्षा उनकी प्ररूपणा सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है। सम्यग्मिथ्या-दृष्टियोंके तीन पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे

असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च आभिणिबोहियभंगो। सासणसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च सम्मामिच्छत्तभंगो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

सण्णि-असण्णीणमेइंदियभंगो। आहारएसु तिण्णिपदाणं जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णिसमया। अणाहारएसु जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ। एवमंतराणुगमो समत्तो।

भावाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणं कदि-णोकदि-अवत्तव्वसंचिदाणं को भावो? ओदइओ भावो। अणेगेसु भावेसु संतेसु कधमोदइयत्तं चेव जुज्जदे? ण, णेरइय-भावप्पणादो; इदरेहि भावेहिंतो णेरइयभावाणुप्पत्तीदो। एवं सव्वगदीणं वत्तव्वं। इंदियमग्गणाए वि ओदइओ भावो, एग-बि-ति-चदु-पंचिंदियजादिकम्मेहिंतो तस्सुप्पत्तीदो। एवं कायमग्गणाए

पल्योपमके असंख्यातवें भाग होता है। एक जीवकी अपेक्षा उनकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके समान है। एक जीवकी अपेक्षा वह जघन्यसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग और उत्कर्षसे कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है।

संज्ञी और असंज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा एकेन्द्रिय जीवोंके समान है। आहारक जीवोंमें तीनों पदोंका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय तक होता है। अनाहारकोंमें वह अन्तर जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है। इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

भावानुगमकी अपेक्षा गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी कृति, नोकृति और अवक्तव्य संचित जीवोंके कौनसा भाव होता है? उक्त जीवोंके औदयिक भाव होता है।

शंका — उनके अनेक भावोंके होते हुए केवल एक औदयिक भाव कहना कैसे उचित है?

समाधान — नहीं, क्योंकि यहां नारक भाव (पर्याय) की विवक्षा है और वह नारक पर्याय अन्य भावोंसे उत्पन्न होती नहीं है।

इसी प्रकार सब गतियोंके औदयिक भाव कहना चाहिये। इन्द्रियमार्गणामें भी औदयिक भाव है, क्योंकि, वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जाति नामकर्मोंके उदयसे होती है। इसी प्रकार कायमार्गणामें भी औदयिक भाव कहना

वि वत्तव्वं, पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-तसकाइयणामकम्मेहिंतो तदुप्पत्तीदो। जोगमग्गणा वि ओदइया, णामकम्मस्स उदीरणोदयजणिदत्तादो। एवं वेद-कसायमग्गणाओ वि वत्तव्वाओ, वेद-कसायाणमुदएण तदुप्पत्तीदो। णाणमग्गणा सिया खइया, णाणावरणक्खएण केवलणाणुप्पत्तीदो। सिया खओवसमिया, मदि-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणावरणक्खओवसमेण मदि-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणुप्पत्तीदो।

संजममग्गणा सिया ओदइया, चारित्तावरणोदएण असंजमुप्पत्तीदो। सिया खओवसमिया, चारित्तावरणक्खओवसमेण संजमासंजम-सामाइयच्छेदोवट्ठावण-परिहारसुद्धिसंजमाणमुप्पत्तिदंसणादो। सिया खइया, चारित्तावरणक्खएण जहाक्खादसंजमुप्पत्तीदो। सिया उवसमिया, चारित्तमोहोवसमेण उवसंतकसाय-उवसामएसु संजमुवलंभादो।

दंसणमग्गणा सिया खइया, दंसणावरणक्खएण केवलदंसणुप्पत्तीदो। सिया खओवसमिया, चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणावरणक्खओवसमेण चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणाणुप्पत्तिदंसणादो।

चाहिये, क्योंकि, पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक नामकर्मोंके उदयसे उन उन भावोंकी उत्पत्ति होती है।

योगमार्गणा भी औदयिक है, क्योंकि, वह नामकर्मकी उदीरणा व उदयसे उत्पन्न होती है। इसी प्रकार वेद व कषाय मार्गणाओंको भी कहना चाहिये, क्योंकि, उनकी उत्पत्ति वेद व कषायके उदयसे होती है। ज्ञानमार्गणा कथंचित् क्षायिक है, क्योंकि, ज्ञानावरणके क्षयसे केवलज्ञानकी उत्पत्ति होती है। कथंचित् वह क्षायोपशमिक है; क्योंकि, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे क्रमशः मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञानोंकी उत्पत्ति होती है।

संयममार्गणा कथंचित् औदयिक है, क्योंकि, चारित्रावरणके उदयसे असंयम भाव उत्पन्न होता है। कथंचित् वह क्षायोपशमिक है, क्योंकि, चारित्रावरणके क्षयोपशमसे संयमासंयम, सामायिक-छेदोपस्थापना और परिहारशुद्धिसंयमकी उत्पत्ति देखी जाती है। कथंचित् वह क्षायिक है, क्योंकि, चारित्रावरणके क्षयसे यथाख्यात संयम उत्पन्न होता है। कथंचित् वह औपशमिक है, क्योंकि, उपशान्तकषाय व उपशामकोंमें चारित्रमोहनीयके उपशमसे संयम भाव पाया जाता है।

दर्शनमार्गणा कथंचित् क्षायिक है, क्योंकि, दर्शनावरणके क्षयसे केवलदर्शनकी उत्पत्ति होती है। कथंचित् क्षायोपशमिक है, क्योंकि, चक्षु, अचक्षु और अवधि दर्शनावरणके क्षयोपशमसे क्रमशः चक्षु, अचक्षु व अवधि दर्शनकी उत्पत्ति देखी जाती है।

लेस्सामग्गणा ओदइया, कसायाणुविद्धजोगं मोत्तूण लेस्साभावादो । भवियमग्गणा पारिणामिआ, कम्माणमुदयक्खय-खओवसमुवसमेहि भव्वाभव्वत्ताणमणुप्पत्तीदो । सम्मत्तमग्गणा सिया ओदइया, दंसणमोहोदएण मिच्छत्तुप्पत्तीदो । सिया उवसमिया, तस्सेव उवसमेण उवसमसम्मत्तुप्पत्तिदंसणादो । सिया खओवसमिया[1] सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं खओवसमेण वेदग-सम्मामिच्छत्ताणमुप्पत्तीए । सिया खइया, दंसणमोहक्खएण खइयसम्मत्तस्सुप्पत्ति-दंसणादो । सिया पारिणामिया, दंसणमोहणीयस्स उदय-उवसमक्खय-खओवसमेहि विणा सासणसम्मत्तुप्पत्तीदो ।

सण्णिमग्गणा सिया खओवसमिया, णोइंदियावरणक्खओवसमेण सण्णित्तुप्पत्तीदो । सिया ओदइया, णोइंदियावरणोदएण असण्णित्तुवलंभादो । आहारमग्गणा[2] ओदइया, ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीराणमुदएण आहारित्तस्सुप्पत्तीदो[3] कम्मइयसरीरमेत्तोदएण अणाहारित्तुप्पत्तीदो च । एवं भावाणुगमो समत्तो ।

लेश्या मार्गणा औदयिक है, क्योंकि, कषायानुविद्ध योगको छोड़कर लेश्याका अभाव है, अर्थात् कषायानुरंजित योगप्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं । अत एव वह औदयिक है । भव्य मार्गणा पारिणामिक है, क्योंकि, कर्मोंके उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशमसे भव्यत्व व अभव्यत्वकी उत्पत्ति नहीं होती ।

सम्यक्त्व मार्गणा कथंचित् औदयिक है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदयसे मिथ्यात्वकी उत्पत्ति होती है । कथंचित् वह औपशमिक है, क्योंकि, उसीके उपशमसे उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति देखी जाती है । कथंचित् क्षायोपशमिक है, क्योंकि, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके क्षयोपशमसे वेदकसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्पत्ति होती है । कथंचित् वह क्षायिक है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति देखी जाती है । कथंचित् पारिणामिक है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमके विना सासादनसम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है ।

संज्ञी मार्गणा कथंचित् क्षायोपशमिक है, क्योंकि, नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे संज्ञित्वकी उत्पत्ति होती है । कथंचित् औदयिक है, क्योंकि, नोइन्द्रियावरणके उदयसे असंज्ञित्व पाया जाता है । आहार मार्गणा औदयिक है, क्योंकि, औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरके उदयसे आहारित्वकी उत्पत्ति होती है और कार्मण शरीर मात्रके उदयसे अनाहारित्वकी उत्पत्ति होती है । इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

---

१ प्रतिषु ' खओवसमियाओ ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' आहारदुग्गणा ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' आहारेत्तस्सुप्पत्तीदो ' इति पाठः ।

अप्पाबहुगाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा णोकदिसंचिदा। अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया। कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ सेडीओ। एवं पढमादि जाव सत्तमपुढवी त्ति पत्तेगं पत्तेगं णोकदि-अवत्तव्व-कदिसंचिदाणं सत्थाणप्पाबहुगं वत्तव्वं। एवं चेव असंखेज्जाणंतरासीणं पि वत्तव्वं। णवरि सिद्धेसु सव्वत्थोवा कदिसंचिदा, तिप्पहुडीणं जीवाणं सिज्झंताणं पाएण अभावादो। अवत्तव्वसंचिदा संखेज्जगुणा, दोण्णं दोण्णं जीवाणं पाएण णिव्वुइगमणुवलंभादो। णोकदिसंचिदा संखेज्जगुणा, एक्केक्कजीवाणं पाएण सिद्धिसंभवादो। एदमप्पाबहुगं सोलसवदिय-अप्पाबहुएण सह विरुज्झदे, सिद्धकालादो सिद्धाणं संखेज्जगुणत्तं फिट्टिदूण विसेसाहियत्तप्पसंगादो। तेणेत्थ उवएसं लहिय एगदरणिण्णओ कायव्वो। संतकम्मपयडिपाहुडं मोत्तूण सोलसवदियअप्पाबहुअदंडए[1] पहाणे कदे मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं एत्तो संचयं पडिवज्जमाण-सिद्धाणं आणदादिदेवरासीणं च अप्पाबहुए भणमाणे सव्वत्थोवा णोकदिसंचिदा, अवत्तव्व-संचिदा विसेसाहिया, कदिसंचिदा संखेज्जगुणा त्ति वत्तव्वं। मणुसिणीसु सव्वत्थोवा कदिसंचिदा,

---

अल्पबहुत्वानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकियोंमें नोकृतिसंचित जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवक्तव्यसंचित जीव विशेष अधिक हैं। उनसे कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं। गुणकार यहां क्या है ? जगप्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात जगश्रेणी गुणकार है। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीसे लेकर सप्तम पृथिवी तक प्रत्येक प्रत्येक नोकृति, अवक्तव्य और कृतिसंचित जीवोंके स्वस्थान अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

इसी प्रकार ही असंख्यात और अनन्त राशियोंके भी कहना चाहिये। विशेष इतना है कि सिद्धोंमें कृतिसंचित सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, तीन आदि सिद्ध होनेवाले जीवोंका प्रायः अभाव है। उनसे अवक्तव्यसंचित असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, दो दो जीवोंका प्रायः मुक्तिगमन पाया जाता है। उनसे नोकृतिसंचित संख्यातगुणे हैं, क्योंकि, एक एक जीवोंके सिद्ध होनेकी अधिक सम्भावना है।

यह अल्पबहुत्व षोडशपदिक अल्पबहुत्वके साथ विरोधको प्राप्त होता है, क्योंकि, सिद्धकालकी अपेक्षा सिद्धोंके संख्यातगुणत्व नष्ट होकर विशेषाधिकपनेका प्रसंग आता है। इस कारण यहां उपदेश प्राप्तकर दोमेंसे किसी एकका निर्णय करना चाहिये। सत्कर्मप्रकृतिप्राभृतको छोड़कर षोडशपदिक अल्पबहुत्वदण्डकको प्रधान करनेपर मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, इनसे संचयको प्राप्त होनेवाले सिद्ध और आनतादिक देवराशियोंके अल्पबहुत्वको कहनेपर — नोकृतिसंचित सबमें स्तोक हैं, इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष हैं, इनसे कृतिसंचित संख्यातगुणे हैं, ऐसा कहना चाहिये। मनुष्यनियोंमें कृतिसंचित

---

१ प्रतिषु ' पलिय- ' इति पाठः।

बहूणं जीवाणमक्कमेण मणुसिणीसु पविट्ठवाराणमइत्थोवत्तादो । अवत्तव्वसंचिदा संखेज्जगुणा, मणुसिणीसु दोण्णं दोण्णं जीवाणं पाएणुप्पत्तिदंसणादो । णोकदिसंचिदा संखेज्जगुणा, एक्केक्कजीवपवेसस्स पउरमुवलंभादो । एवं मणुसपज्जत्त-मणपज्जवणाणि-खइयसम्माइट्ठि-संजद-सामाइयछेदोवट्ठावण-परिहार-सुहुम-जहाक्खादसंजद-आणदादिमणुसोववादियदेवाणण्णेसिं च संखेज्जरासीणं वत्तव्वं । एवं सत्थाणप्पाबहुगं सम्मत्तं ।

परत्थाणे सव्वत्थोवा सत्तमाए पुढवीए णोकदिसंचिदा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । छट्ठीए णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । पंचमीए णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । चउत्थीए णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । तदियाए णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । बिदियाए णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । पढमाए णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । सत्तमाए कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । छट्ठीए कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । पंचमीए कदिसंचिदा

सबमें स्तोक हैं, क्योंकि, बहुत जीवोंके एक साथ मनुष्यनियोंमें प्रविष्ट होनेके वार अत्यन्त स्तोक हैं । अवक्तव्यसंचित संख्यातगुणे हैं, क्योंकि, मनुष्यनियोंमें दो दो जीवोंकी प्रायः करके उत्पत्ति देखी जाती है । नोकृतिसंचित संख्यातगुणे हैं, क्योंकि, एक एक जीवका प्रवेश उनमें अधिकतासे पाया जाता है ।

इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त, मनःपर्ययज्ञानी, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संयत, सामायिक छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, आनतादि विमानोंसे मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देव तथा अन्य भी संख्यात राशियोंके कहना चाहिये । इस प्रकार स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

परस्थान अल्पबहुत्वमें सातवीं पृथिवीके नोकृतिसंचित जीव सबमें स्तोक हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे छट्ठी पृथिवीके नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे पांचवीं पृथिवीके नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । चतुर्थ पृथिवीके नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे तृतीय पृथिवीके नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे द्वितीय पृथिवीके नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे प्रथम पृथिवीके नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे सातवीं पृथिवीके कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे छठी पृथिवीके कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे पांचवीं पृथिवीके कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे चतुर्थ

असंखेज्जगुणा । चउत्थीए कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । तदियाए कदिसंचिदा असंखेज्ज-गुणा । बिदियाए कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । पढमाए कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । एवं परत्थाणप्पाबहुगं जाणिदूण सव्वमग्गणासु णेयव्वं ।

सव्वपरत्थाणे सव्वत्थोवाओ मणुसिणीओ कदिसंचिदाओ । अवत्तव्वसंचिदाओ संखेज्जगुणाओ । णोकदिसंचिदाओ संखेज्जगुणाओ । मणुसा णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । तिरिक्खजोणिणीओ णोकदिसंचिदाओ असंखेज्जगुणाओ । अवत्तव्वसंचिदाओ विसेसाहियाओ । णेरइया णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । देवा णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । देवीओ णोकदिसंचिदाओ संखेज्जगुणाओ । अवत्तव्वसंचिदाओ विसेसाहियाओ । मणुसा कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । णेरइया कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । तिरिक्खजोणिणीओ कदिसंचिदाओ असंखेज्जगुणाओ । देवा कदिसंचिदा संखेज्जगुणा । देवीओ कदिसंचिदाओ संखेज्जगुणाओ । तिरिक्खणोकदिसंचिदा अणंतगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । कदिसंचिदा असंखेज्ज-गुणा । कुदो ? असंखेज्जपोग्गलपरियट्टकालब्भंतरसंचिदरासिग्गहणादो । सिद्धा कदिसंचिदा अणंतगुणा । अवत्तव्वसंचिदा संखेज्जगुणा । णोकदिसंचिदा संखेज्जगुणा त्ति ।

पृथिवीके कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे तृतीय पृथिवीके कृतिसंचित असंख्यात-गुणे हैं । इनसे द्वितीय पृथिवीके कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे प्रथम पृथिवीके कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इस प्रकार परस्थान अल्पबहुत्वको जानकर सब मार्गणाओंमें ले जाना चाहिये ।

सर्व परस्थान अल्पबहुत्वमें— मनुष्यनियां कृतिसंचित सबसे स्तोक हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित संख्यातगुणी हैं । इनसे नोकृतिसंचित संख्यातगुणी हैं । इनसे मनुष्य नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे तिर्यंच योनिमती नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे नारकी नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे देव नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे देवियां नोकृतिसंचित संख्यातगुणी हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे मनुष्य कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे नारकी कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे तिर्यंच योनिमती कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे देव कृतिसंचित संख्यातगुणे हैं । इनसे देवियां कृतिसंचित संख्यातगुणी हैं । इनसे तिर्यंच नोकृतिसंचित अनन्तगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, यहां असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन कालके भीतर संचित राशिका ग्रहण है । इनसे सिद्ध कृतिसंचित अनन्तगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित संख्यातगुणे हैं । इनसे नोकृति-संचित संख्यातगुणे हैं ।

संपहि इंदियमग्गणाए वुच्चदे । तं जहा— सव्वत्थोवा चउरिंदिया णोकदिसंचिदा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । तेइंदिया णोकदिसंचिदा विसेसाहिया । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । बेइंदिया णोकदिसंचिदा विसेसाहिया । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । पंचिंदिया णोकदिसंचिदा असंखेज्जगुणा, असंखेज्जवाससंचिदत्तादो । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । चउरिंदिया कदिसंचिदा विसेसाहिया । तेइंदिया कदिसंचिदा विसेसाहिया । बेइंदिया कदिसंचिदा विसेसाहिया । एइंदिया णोकदिसंचिदा अणंतगुणा । अवत्तव्वसंचिदा विसेसाहिया । कदिसंचिदा असंखेज्जगुणा । एवं जे जहा भवंति ते तहा णेदव्वा । एवं गणणकदी समत्ता ।

जा सा गंथकदी णाम सा लोए वेदे समए सद्दपबंधणा अक्खर-कव्वादीणं जा च गंथरचणा कीरदे सा सव्वा गंथकदी णाम ॥ ६७ ॥

अब इन्द्रिय मार्गणामें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है— चतुरिन्द्रिय नोकृतिसंचित सबसे स्तोक हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे त्रीन्द्रिय नोकृतिसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे द्वीन्द्रिय नोकृतिसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे पंचेन्द्रिय नोकृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे असंख्यात वर्षोंमें संचित हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित पंचेन्द्रिय विशेष अधिक हैं । इनसे कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इनसे चतुरिन्द्रिय कृतिसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे त्रीन्द्रिय कृतिसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे द्वीन्द्रिय कृतिसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे एकेन्द्रिय नोकृतिसंचित अनन्तगुणे हैं । इनसे अवक्तव्यसंचित विशेष अधिक हैं । इनसे कृतिसंचित असंख्यातगुणे हैं । इस प्रकार जो जिस प्रकार होते हैं उन्हें उसी प्रकार ले जाना चाहिये ।

इस प्रकार गणनकृति समाप्त हुई ।

जो वह ग्रन्थकृति है वह लोकमें, वेदमें व समयमें शब्दसन्दर्भ रूप अक्षरात्मक काव्यादिकोंके द्वारा जो ग्रन्थरचना की जाती है वह सब ग्रन्थकृति कहलाती है ॥ ६७ ॥

---

१ अप्रतौ 'चउरिंदिया कदि० पंचिंदिया विसेसाहिया', आप्रतौ 'चउरिंदिया कदि० संचिंदिया विसेसाहिया' इति पाठः ।

गंथकदी चउव्विहा णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावगंथकदिभेएण। णाम-ट्ठवणाओ सुगमाओ। दव्वगंथकदी दुविहा आगम-णोआगमभेएण। आगमदव्वगंथकदी णोआगमजाणुगसरीर-भवियगंथकदीओ च सुगमाओ, बहुसो उत्तत्तादो। जा सा तव्वदिरित्तदव्वगंथकदी सा गंथिम-वाइम-वेदिम-पूरिमादिभेएण अणेयविहा। कधमेदेसिं गंथसण्णा? ण, एदे जीवो बुद्धीए अप्पाणम्मि गुंथदि[1] त्ति तेसिं गंथत्तसिद्धीदो। जा सा भावगंथकदी सा दुविहा आगम-णोआगमभावगंथकइभेएण। गंथकइपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावगंथकई णाम। णोआगम-भावगंथकई दुविहा सुद-णोसुदभावगंथकइभेएण। तत्थ सुदं तिविहं — लोइयं वेदिमं सामाइयं चेदि। तत्थ एक्केक्कं दुविहं दव्व-भावसुदभेएण। तत्थ दव्वसुदस्स सद्दप्पयस्स तव्वदि-[2] दिरित्तणोआगमदव्वगंथकदीए परूवणा कायव्वा, भावाहियारे दव्वेण पओजणाभावादो। हस्त्यश्व-तंत्र-कौटिल्य-वात्स्यायनादिबोधो लौकिकभावश्रुतग्रन्थः। द्वादशांगादिबोधो वैदिक-

....

नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे ग्रन्थकृति चार प्रकारकी है। इनमेंसे नाम व स्थापना ग्रन्थकृतियां सुगम हैं। द्रव्यग्रन्थकृति आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारकी है। आगमद्रव्यग्रन्थकृति, नोआगम-ज्ञायकशरीर-द्रव्यग्रन्थकृति और नोआगम-भावि द्रव्यग्रन्थकृति सुगम हैं, क्योंकि, उनका अर्थ बहुत वार कहा जा चुका है। जो तद्व्यतिरिक्त द्रव्यग्रन्थकृति है वह गूंथना, बुनना, वेष्टित करना और पूरना आदिके भेदसे अनेक प्रकारकी है।

शंका — इनकी ग्रन्थ संज्ञा कैसे सम्भव है?

समाधान — नहीं, क्योंकि, जीव इन्हें बुद्धिसे आत्मामें गूंथता है अतः उनके ग्रन्थपना सिद्ध है।

भावग्रन्थकृति आगम और नोआगम भावग्रन्थकृतिके भेदसे दो प्रकारकी है। ग्रन्थकृतिप्राभृतका जानकार उपयुक्त जीव आगमभावग्रन्थकृति कहलाता है। नोआगम-भावग्रन्थकृति श्रुत और नोश्रुत भावग्रन्थकृतिके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमेंसे श्रुत तीन प्रकारका है— लौकिक, वैदिक और सामायिक। इनमेंसे प्रत्येक द्रव्य और भाव श्रुतके भेदसे दो प्रकारकी है। उनमेंसे शब्दात्मक द्रव्यश्रुतकी तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यग्रन्थ-कृतिमें प्ररूपणा करनी चाहिये, क्योंकि, भावके अधिकारमें द्रव्यसे कोई प्रयोजन नहीं है।

हाथी, अश्व, तन्त्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र और वात्स्यायन कामशास्त्र आदि विषयक ज्ञान लौकिक भावश्रुत ग्रन्थकृति है। द्वादशांगादि विषयक बोध वैदिक भावश्रुत ग्रन्थकृति

....

१ काप्रतौ 'गंथदि' इति पाठः। २ प्रतिषु '-प्पयस्स कारणं तव्वदि-' इति पाठः।

भावश्रुतग्रन्थः। नैयायिक-वैशेषिक-लोकायत-सांख्य-मीमांसक-बौद्धादिदर्शनविषयबोधः सामायिकभावश्रुतग्रन्थः। एदेसिं सद्दपबंधणा[1] अक्खरकव्वादीणं जा च गंथरयणा अक्षरकाव्यैः ग्रन्थरचना प्रतिपाद्यविषया सा सुदगंथकदी णाम। जा सा णोसुदगंथकदी सा दुविहा अब्भंतरिया बाहिरा चेदि। तत्थ अब्भंतरिया मिच्छत्त-तिवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-कोह-माण-माया-लोहभेएण चोद्दसविहा। बाहिरिया खेत्त-वत्थु-धण-धण्ण-दुवय-चउप्पय-जाण-सयणासण-कुप्प-भंडभेएण दसविहा[2]। कधं खेत्तादीणं भावगंथसण्णा? कारणे कज्जोवयारादो। ववहारणयं पडुच्च खेत्तादी गंथो, अब्भंतरगंथकारणत्तादो। एदस्स परिहरणं णिग्गंथत्तं। णिच्छयणयं पडुच्च मिच्छत्तादी गंथो, कम्मबंधकारणत्तादो। तेसिं परिच्चागो

....

है। तथा नैयायिक, वैशेषिक, लोकायत, सांख्य, मीमांसक और बौद्ध, इत्यादि दर्शनोंको विषय करनेवाला बोध सामायिक भावश्रुत ग्रन्थकृति है। इनकी शब्दसन्दर्भ रूप अक्षरकाव्यों द्वारा प्रतिपाद्य अर्थको विषय करनेवाली जो ग्रन्थरचना की जाती है वह श्रुतग्रन्थकृति कही जाती है।

नोश्रुतग्रन्थकृति दो प्रकारकी है — आभ्यन्तर और बाह्य। उनमेंसे आभ्यन्तर नोश्रुतग्रन्थकृति मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चौदह प्रकारकी है। बाह्य नोश्रुतग्रन्थकृति क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, यान, शयन, आसन, कुप्य और भाण्डके भेदसे दस प्रकारकी है।

शंका — क्षेत्रादिकोंकी भावग्रन्थ संज्ञा कैसे हो सकती है?

समाधान — कारणमें कार्यका उपचार करनेसे क्षेत्रादिकोंकी भावग्रन्थ संज्ञा बन जाती है। व्यवहारनयकी अपेक्षा क्षेत्रादिक ग्रन्थ हैं, क्योंकि, वे अभ्यन्तर ग्रन्थके कारण हैं और इनका त्याग करना निर्ग्रन्थता है। निश्चय नयकी अपेक्षा मिथ्यात्वादिक ग्रन्थ हैं, क्योंकि, वे कर्मबन्धके कारण हैं और इनका त्याग करना निर्ग्रन्थता है। नैगम नयकी

....

१ प्रतिषु ' सैत्थपबंधणा ग्रन्थरचना अक्खर- ' इति पाठः।

२ मिच्छत्त-वेदरागा तहेव हस्सादिया य छद्दोसा। चत्तारि तह कसाया चोद्दस अब्भंतरा गंथ॥ खेत्तं वत्थु धण-धण्णगदं दुपद-चदुप्पदगदं च। जाण-सयणासणाणि य कुप्पे भंडेसु दस होंति। मूला. ५, २१०-११.

णिग्गंथत्तं । णइगमणएण तिरयणाणुवजोगी बज्झब्भंतरपरिग्गहपरिच्चाओ णिग्गथत्तं । एवं गंथकदी समत्ता ।

जा सा करणकदी णाम सा दुविहा मूलकरणकदी चेव उत्तरकरणकदी चेव । जा सा मूलकरणकदी णाम सा पंचविहा– ओरालियसरीरमूलकरणकदी वेउव्वियसरीरमूलकरणकदी आहारसरीरमूलकरणकदी तेयासरीरमूलकरणकदी कम्मइयसरीरमूलकरणकदी चेदि ॥ ६८ ॥

'जा सा करणकदी णाम' इति पुव्वुद्दिट्ठअहियारसंभालणट्ठं भणिदं । सा दुविहा,

---

अपेक्षा तो रत्नत्रयमें उपयोगी पड़नेवाला जो भी बाह्य व अभ्यन्तर परिग्रहका परित्याग है उसे निर्ग्रन्थता समझना चाहिये ।

विशेषार्थ — यहां नामादि निक्षेपों द्वारा ग्रन्थकृतिका विचार करते हुए मुख्यतया तद्व्यतिरिक्त द्रव्यग्रन्थकृति और भावग्रन्थकृतिके स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है । जैसा कि ग्रन्थकृतिका निर्देश करते हुए सूत्रमें उसे लौकिक, वैदिक और सामायिक भेदसे तीन प्रकारका बतलाया है। तदनुसार जिन निमित्तोंके आधारसे इन ग्रन्थोंकी रचना होती है वे सब तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यग्रन्थकृति कहलाते हैं । प्रकृतमें टीकाकारने गूंथना, बुनना आदि द्वारा लौकिक ग्रन्थकृतिके निमित्तोंका निर्देश किया है । इसी प्रकार अन्य ग्रन्थकृतियोंकी रचनाके निमित्त जानने चाहिये । भावग्रन्थकृतिका निर्देश करते हुए नोआगमभावग्रन्थकृति श्रुत और नोश्रुत भेदसे दो प्रकारकी बतलाई है । श्रुतमें लौकिक, वैदिक और सामायिक सब प्रकारके श्रुतका ग्रहण लिया गया है और नोश्रुतमें बाह्य तथा अभ्यन्तर परिग्रह लिया गया है । अभ्यन्तर परिग्रह तो आत्माके परिणाम हैं, इसलिये इनका भाव निक्षेपमें अन्तर्भाव हो जाता है इसमें सन्देह नहीं; किन्तु बाह्य परिग्रहका भावनिक्षेपमें अन्तर्भाव नहीं होता । फिर भी यहां कारणमें कार्यका उपचार करके भावनिक्षेपके प्रकरणमें बाह्य परिग्रहका भी ग्रहण किया है, ऐसा यहां समझना चाहिये ।

इस प्रकार ग्रन्थकृति समाप्त हुई ।

करणकृति दो प्रकारकी है— मूलकरणकृति और उत्तरकरणकृति । मूलकरणकृति पांच प्रकारकी है— औदारिकशरीरमूलकरणकृति, वैक्रियिकशरीरमूलकरणकृति, आहारकशरीरमूलकरणकृति, तैजसशरीरमूलकरणकृति और कार्मणशरीरमूलकरणकृति ॥ ६८ ॥

'जो वह करणकृति' यह वचन पूर्वमें उद्दिष्ट अधिकारका स्मरण करानेके लिये

---

१ आप्रतौ 'तिरिय-' इति पाठः ।

मूलुत्तरकरणेहिंतो वदिरित्तकरणाभावादो । तं जहा — करणेसु जं पढमं करणं पंचसरीरप्पयं तं मूलकरणं । कधं सरीरस्स मूलत्तं ? ण, सेसकरणाणमेदम्हादो पउत्तीए सरीरस्स मूलत्तं पडि विरोहाभावादो । जीवादो कत्तारादो अभिण्णत्तणेण कत्तारत्तमुपगयस्स कधं करणत्तं ? ण, जीवादो सरीरस्स कधंचि भेदुवलंभादो । अभेदे वा चेयणत्त-णिच्चत्तादिजीवगुणा सरीरे वि होंति । ण च एवं, तहाणुवलंभादो । तदो सरीरस्स करणत्तं ण विरुज्झदे । सेसकारयभावे[1] सरीरम्मि संते सरीरं करणमेवेत्ति किमिदि उच्चदे ? ण एस दोसो, सुत्ते करणमेवे त्ति अवहारणाभावादो ।

सा च मूलकरणकदी ओरालिय-वेउव्विय-आहार-तेया-कम्मइयसरीरभेएण पंचविहा

....

कहा है । वह दो प्रकारकी है, क्योंकि, मूल और उत्तर करणको छोड़कर अन्य करणोंका अभाव है । यथा — करणोंमें जो पांच शरीर रूप प्रथम करण है वह मूल करण है ।

शंका — शरीरके मूलपना कैसे सम्भव है ?

समाधान — चूंकि शेष करणोंकी प्रवृति इस शरीरसे होती है अतः शरीरको मूल करण माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका — कर्ता रूप जीवसे शरीर अभिन्न है, अतः कर्तापनेको प्राप्त हुए शरीरके करणपना कैसे सम्भव है ?

समाधान — यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, जीवसे शरीरका कथंचित् भेद पाया जाता है । यदि जीवसे शरीरको सर्वथा अभिन्न स्वीकार किया जावे तो चेतनता और नित्यत्व आदि जीवके गुण शरीरमें भी होने चाहिये । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, शरीरमें इन गुणोंकी उपलब्धि नहीं होती । इस कारण शरीरके करणपना विरुद्ध नहीं है ।

शंका — शरीरमें शेष कारक भी सम्भव हैं । ऐसी अवस्थामें शरीर करण ही है, ऐसा क्यों कहा जाता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सूत्रमें ' शरीर करण ही है ' ऐसा नियत नहीं किया गया है ।

यह मूलकरणकृति औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरके

....

१ प्रतिषु ' सेसकारियभावे ' इति पाठः ।

चेव, छट्ठादिसरीराभावादो। एदेसिं मूलकरणाणं कदी कज्जं संघादणादी तं मूलकरणकदी णाम, क्रियते कृतिरिति व्युत्पत्तेः; अथवा मूलकरणमेव कृतिः; क्रियते अनया इति व्युत्पत्तेः। कधं संघादणादीणं सरीरत्तं ? ण एस दोसो, तेसिं तत्तो भेदाभावादो।

एवं मूलकरणकदीए सरूवत्तं भेदं च परूविय तत्थ एक्केक्किस्से भेदपरूवणट्ठमुत्तर-सुत्तं भणदि—

जा सा ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरमूलकरणकदी णाम सा तिविहा—संघादणकदी परिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी चेदि। सा सव्वा ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरमूलकरणकदी णाम ॥६९॥

तत्थ अप्पिदसरीरपरमाणूण णिज्जराए विणा जो संचओ सा संघादणकदी णाम।

....

भेदसे पांच प्रकारकी ही है, क्योंकि, छठे आदि शरीर नहीं पाये जाते हैं। इन मूल करणोंकी कृति अर्थात् संघातनादि कार्य मूलकरणकृति कही जाती है, क्योंकि, जो किया जाता है वह कृति है, ऐसी कृति शब्दकी व्युत्पत्ति है; अथवा मूलकरण ही कृति है, क्योंकि, जिसके द्वारा किया जाता है वह कृति है, ऐसी कृति शब्दकी व्युत्पत्ति है।

शंका—संघातन आदिके शरीरपना कैसे सम्भव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, वे शरीरसे अभिन्न हैं।

विशेषार्थ—कृतिका अर्थ कार्य है। पांच शरीर संघातन आदि कार्योंके प्रति अत्यन्त साधक होते हैं, इसलिये इन्हें करण कहा है। और ये शेष कार्योंकी प्रवृत्तिके मूल हैं इसलिये इन्हें मूलकरण कहा है। इनसे संघातन आदि कार्य होते हैं, इसलिये ये मूल-करणकृति कहलाते हैं। संघातन आदि कार्योंको पांचों शरीरोंसे पृथक् मान कर यह अर्थ किया गया है। यदि संघातन आदि कार्योंको पांचों शरीरोंसे अभिन्न माना जाता है तो स्वयं पांच शरीर मूलकरणकृति ठहरते हैं। यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार मूलकरणकृतिके स्वरूप और भेदकी प्ररूपणा करके उनमें एक एकके भेद बतलानेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

औदारिकशरीरमूलकरणकृति, वैक्रियिकशरीरमूलकरणकृति और आहारकशरीरमूल-करणकृति तीन तीन प्रकारकी है— संघातनकृति, परिशातनकृति और संघातन-परिशातन-कृति। वह सब औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरमूलकरणकृति है ॥ ६९ ॥

इनमेंसे विवक्षित शरीरके परमाणुओंका निर्जराके विना जो संचय होता है उसे

तेसिं चेव अप्पिदसरीरपोग्गलक्खंधाणं संचएण विणा जा णिज्जरा सा परिसादणकदी णाम। अप्पिदसरीरस्स पोग्गलक्खंधाणमागम-णिज्जराओ संघादण-परिसादणकदी णाम। तत्थ तिरिक्ख-मणुस्सेसुप्पण्णपढमसमए ओरालियसरीरस्स संघादणकदी चेव, तत्थ तक्खंधाणं णिज्जराभावादो। बिदियसमयप्पहुडि संघादण-परिसादणकदी होदि, बिदियादिसमएसु अभवसिद्धिएहि अणंतगुणाणं सिद्धेहिंतो अणंतगुणहीणाणं ओरालियसरीरक्खंधाणमागमण-णिज्जराणमुवलंभादो। तिरिक्ख-मणुस्सेहि उत्तरसरीरे उट्ठाविदे ओरालियपरिसादणकदी होदि, तत्थोरालियसरीरक्खंधाणमागमाभावादो।

देव-णेरइएसुप्पण्णपढमसमए वेउव्वियरीरस्स संघादणकदी, तत्थ तक्खंधाणं णिज्जराभावादो। बिदियादिसमएसु संघादण-परिसादणकदी, तत्थ तक्खंधाणमागमण-णिज्जराणं दंसणादो। उत्तरसरीरमुट्ठाविय मूलसरीरं पविट्ठस्स परिसादणकदी, तत्थ तक्खंधाणमागमाभावादो।

कधं तिरिक्ख-मणुस्सेसु विविहगुणिद्धिविरहिदसरीरेसु वेउव्वियसरीरसंभवो? णत्थि

संघातनकृति कहते हैं। उन्हीं विवक्षित शरीरके पुद्गलस्कन्धोंकी संचयके विना जो निर्जरा होती है वह परिशातनकृति कहलाती है। तथा विवक्षित शरीरके पुद्गलस्कन्धोंका आगमन और निर्जराका एक साथ होना संघातन-परिशातनकृति कही जाती है।

उनमेंसे तिर्यंच और मनुष्योंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें औदारिक शरीरकी संघातनकृति ही होती है, क्योंकि, उस समय उक्त शरीरके स्कन्धोंकी निर्जरा नहीं पायी जाती। द्वितीय समयसे लेकर आगेके समयोंमें औदारिक शरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है, क्योंकि, द्वितीयादिक समयोंमें अभव्यसिद्धिकोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन औदारिक शरीरके स्कन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों पाये जाते हैं। तथा तिर्यंच और मनुष्यों द्वारा उत्तर शरीरके उत्पन्न करनेपर औदारिक शरीरकी परिशातनकृति होती है, क्योंकि, उस समय औदारिक शरीरके स्कन्धोंका आगमन नहीं होता।

देव व नारकियोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति होती है, क्योंकि, उस समय वैक्रियिक शरीरके स्कन्धोंकी निर्जरा नहीं होती। द्वितीयादिक समयोंमें उसकी संघातन-परिशातनकृति होती है, क्योंकि, उस समय उक्त शरीरके स्कन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों एक साथ देखे जाते हैं। तथा उत्तर शरीरका उत्पादन कर मूल शरीरमें प्रविष्ट हुए देव व नारकीके मूलशरीरकी परिशातनकृति होती है, क्योंकि, उस समय उक्त शरीरके स्कन्धोंका आगमन नहीं होता।

शंका— विविध प्रकारके गुण व ऋद्धिसे रहित शरीरवाले तिर्यंच व मनुष्योंके वैक्रियिकशरीर कैसे सम्भव है?

तिरिक्ख-मणुस्सेसु वेउव्वियसरीरं, एदेसु वेउव्वियसरीरणामकम्मोदयाभावादो। किंतु दुविह-मोरालियसरीरं विउव्वणप्पयमविउव्वणप्पयमिदि। तत्थ विउव्वणप्पयं जमोरालियसरीरं तं वेउव्वियमिदि एत्थ घेत्तव्वं।

आहारसरीरमुट्ठाविदपढमसमए आहारसरीरसंघादणकदी, तत्थ तक्खंधाणं परिसदणाभावादो। तत्तो उवरि संघादण-परिसादणकदी होदि, आगम-णिज्जराणं तत्थुवलंभादो। मूलसरीरं पविट्ठे परिसादणकदी, तत्थागमाभावादो। एवं तिण्णं सरीराणं तिण्णि तिण्णि कदीओ परूविदाओ। एदाओ सव्वाओ ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीरमूलकरणकदीओ त्ति भणंति।

जा सा तेजा-कम्मइयसरीरमूलकरणकदी णाम सा दुविहा— परिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी चेदि। सा सव्वा तेजा-कम्मइयसरीरमूलकरणकदी णाम ॥ ७० ॥

अजोगिम्मि जोगाभावेण बंधाभावादो एदासिं दोण्णं सरीराणं परिसादणकदी होदि। अण्णत्थ सव्वत्थ वि तदुभयकदी चेव संसारे सव्वत्थ एदासिं आगम-णिज्जरुवलंभादो।

समाधान—तिर्यंच व मनुष्योंके वैक्रियिकशरीर सम्भव नहीं है, क्योंकि, इनके वैक्रियिकशरीरनामकर्मका उदय नहीं पाया जाता। किन्तु औदारिकशरीर विक्रियात्मक और अविक्रियात्मकके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें जो विक्रियात्मक औदारिकशरीर है उसे यहां वैक्रियिक रूपसे ग्रहण करना चाहिये।

आहारकशरीरको उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें आहारकशरीरकी संघातनकृति होती है, क्योंकि, उस समय उक्त शरीरके परिशातनका अभाव है। इससे ऊपरके समयोंमें संघातन-परिशातनकृति होती है, क्योंकि, उस समय उक्त शरीरके स्कन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों पाये जाते हैं। मूलशरीरमें प्रविष्ट होनेपर आहारकशरीरकी परिशातनकृति होती है, क्योंकि, उस समय उक्त शरीरस्कन्धोंका आगमन नहीं होता।

इस प्रकार तीन शरीरोंके तीन तीन कृतियां कही गई हैं। ये सब औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर मूलकरणकृतियां कही जाती हैं।

तैजसशरीर और कार्मणशरीर मूलकरणकृति दो प्रकारकी है— परिशातनकृति और संघातन-परिशातनकृति। यह सब तैजसशरीर और कार्मणशरीर मूलकरणकृति है ॥ ७० ॥

अयोगकेवलीके योगका अभाव हो जानेके कारण बन्ध नहीं होता, इसलिये इनके इन दो शरीरोंकी परिशातनकृति होती है। तथा अन्य सब जगह उक्त दोनों शरीरोंकी संघातन-परिशातनकृति ही होती है, क्योंकि, संसारमें सर्वत्र उनका आगमन और निर्जरा

एदासिं संघादणकदी णत्थि, बंध-संतोदयविरहिदसिद्धाणं बंधकारणाभावादो । एदाओ सव्वाओ तेजा-कम्मइयसरीरमूलकरणकदीओ त्ति भणंति ।

एदेहि सुत्तेहि तेरसण्हं मूलकरणकदीणं संतपरूवणा कदा ॥ ७१ ॥

पुणो एदेण देसामासियसुत्तेण सूइदअहियाराणं परूवणा कीरदे । तं जहा— पदमीमांसा-सामित्तमप्पाबहुअं चेदि तिण्णि अहियारा होंति, एदेहि विणा संताणुववत्तीदो । तत्थ पदमीमांसा उच्चदे । तं जहा— ओरालियसरीरस्स संघादणकदी अत्थि उक्कस्सा अणुक्कस्सा जहण्णा अजहण्णा च । एवं परिसादण-तदुभयकदीयो उक्कस्साओ अणुक्कस्साओ जहण्णाओ अजहण्णाओ च अत्थि । एवं सेससरीराणं पि वत्तव्वं । पदमीमांसा गदा ।

सामित्तं उच्चदे— ओरालियसरीरस्स उक्कस्ससंघादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स मणुसस्स मणुसणीए वा तिरिक्खस्स तिरिक्खजोणिणीए वा पंचिंदियस्स पज्जत्तस्स सण्णिस्स

....

दोनों पाये जाते हैं । इन दोनों शरीरोंकी संघातनकृति नहीं होती, क्योंकि बन्ध, सत्त्व और उदयसे रहित सिद्ध जीवोंके बन्धके कारणोंका अभाव है । अतः उनके इन शरीरोंका नवीन बन्ध सम्भव नहीं है । ये सब तैजसशरीर और कार्मणशरीर मूलकरणकृतियां हैं, ऐसा जानना चाहिये ।

इन सूत्रों द्वारा तेरह मूल करणकृतियोंकी सत्प्ररूपणा की गई है ॥ ७१ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्र द्वारा सूचित होनेवाले अधिकारोंकी प्ररूपणा की जाती है । यथा— पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ये तीन अधिकार और हैं, क्योंकि, इनके बिना सत्प्ररूपणा नहीं बनती । उनमेंसे सर्व प्रथम पदमीमांसा अधिकारका कथन करते हैं । वह इस प्रकार है— औदारिकशरीरकी संघातनकृति उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य चारों प्रकारकी होती है । इसी प्रकार परिशातन और तदुभय कृतियां भी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यके भेदसे चार प्रकारकी होती हैं । इसी प्रकार शेष शरीरोंकी पदमीमांसाका भी कथन करना चाहिये । पदमीमांसा समाप्त हुई ।

विशेषार्थ—पदमीमांसा प्रकरणमें उत्कृष्ट आदि पदोंका विचार किया जाता है । पहले औदारिकशरीर संघातनकृति आदि जिन तेरह कृतियोंका निर्देश कर आये हैं उनमेंसे प्रत्येकके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य, ये चारों पद सम्भव हैं; ऐसा यहां जानना चाहिये ।

अब स्वामित्व अधिकारका कथन करते हैं— औदारिक शरीरकी उत्कृष्ट संघातनकृति किसके होती है ? जो कोई मनुष्य या मनुष्यनी अथवा तिर्यंच या तिर्यंचयोनिनी

संखेज्जवासाउअस्स तिसमयतब्भवत्थस्स पढमसमयआहारयस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सिया संघादणकदी। तव्वदिरित्तस्स अणुक्कस्सा। एत्थ पंचिंदियणिद्देसो विगलिंदियपडिसेहफलो। अपज्जत्तजोगपडिसेहट्ठं पज्जत्तगहणं। असण्णिजोगपडिसेहट्ठो सण्णिणिद्देसो। णेरइएहिंतो आगंतूण तिरिक्ख-मणुस्सेसु उप्पण्णस्स उक्कस्ससामित्तं होदि त्ति जाणावणट्ठं संखेज्जवासाउअस्से त्ति उत्तं। तदियसमयउक्कस्सएगंताणुवड्ढिजोगग्गहणट्ठं तिसमयतब्भवत्थादिवयणं[1]। उक्कस्सिया संघादणकदी केत्तिया? एगसमयपबद्धमेत्ता।

ओरालियसरीरस्स उक्कस्सिया परिसादणकदी कस्स? अण्णदरस्स मणुसस्स मणुसिणीए वा पंचिंदियतिरिक्खस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीए वा सण्णिस्स पज्जत्तयस्स पुव्वकोडिआउअस्स कम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा। जेण पढमसमयतब्भवत्थप्पहुडि उक्कस्सेण जोगेण आहारिदं, उक्कस्सियाए वड्ढीए वड्ढिदं, जो उक्कस्साइं जोगट्ठाणाइं बहुसो बहुसो गच्छदि, जहण्णाइं ण गच्छदि; तप्पाओग्गउक्कस्सजोगी बहुसो बहुसो होदि,

---

पंचेन्द्रिय है, पर्याप्त है, संज्ञी है, संख्यात वर्षकी आयुवाला है, तीसरे समयमें तद्भवस्थ हुआ है, तद्भवस्थ होनेके प्रथम समयवर्ती आहारक है एवं उत्कृष्ट योगवाला है, उसके उत्कृष्ट संघातनकृति होती है। इससे भिन्न जीवके अनुत्कृष्ट संघातनकृति होती है। यहां पंचेन्द्रिय पदका निर्देश विकलेन्द्रिय जीवोंका प्रतिपेध करनेके लिये किया है। अपर्याप्त योगका प्रतिपेध करनेके लिये पर्याप्त पदका ग्रहण किया है। असंज्ञियोगका प्रतिषेध करनेके लिये संज्ञी पदका निर्देश किया है। नारकियोंमेंसे आकर तिर्यंच व मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ जीव उत्कृष्ट स्वामी होता है, इस बातके बतलानेके लिये 'संख्यातवर्षायुष्कके' ऐसा कहा है। तृतीय समयवर्ती जीवके होनेवाले उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धियोगका ग्रहण करनेके लिये 'तृतीय समयवर्ती तद्भवस्थ' आदि पदका ग्रहण किया है। उत्कृष्ट संघातनकृति कितनी होती है? एक समयप्रबद्ध प्रमाण होती है।

औदारिक शरीरकी उत्कृष्ट परिशातनकृति किसके होती है? जो कोई मनुष्य या मनुष्यनी अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच या पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी संज्ञी है, पर्याप्त है, पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाला है, कर्मभूमिज है अथवा कर्मभूमिप्रतिभागमें उत्पन्न हुआ है। जिसने विवक्षित भवमें स्थित होनेके प्रथम समयसे लेकर उत्कृष्ट योगके द्वारा आहार ग्रहण किया है, जो उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जो उत्कृष्ट योगस्थानोंको बहुत बहुत बार प्राप्त होता है, जघन्य योगस्थानोंको प्राप्त नहीं होता; जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट-

---

१ अ-आप्रत्योः 'तच्चवत्थादि', काप्रतौ तत्त्ववत्थादि' इति पाठः।

तप्पाओग्गजहण्णजोगी बहुसो बहुसो ण होदि; जस्स हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्ण-पदं, उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदं, अंतरे ण विउव्विदो, अंतरे छविच्छेदो[1] ण उप्पाइदो, अप्पाओ[2] भासद्धाओ, अप्पाओ मणअद्धाओ, रहस्साओ भासद्धाओ, रहस्साओ मणअद्धाओ, अंतोमुहुत्ते जीविदावसेसे जोगट्ठाणाणमुवरिल्ले[3] अद्धे अंतोमुहुत्तमच्छिदो, चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो[4], तिचरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो, चरिमसमए उत्तरसरीरं विउव्विदो, तस्स पढमसमयउत्तराविउव्विदस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सिया परिसादणकदी । तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा ।

तिण्णिपलिदोवमाउअं मोत्तूण किमट्ठं पुव्वकोडिआउएसु सामित्तं दिण्णं ? ण एस दोसो, णेरइएहिंतो आगदस्स भोगभूमिसु उप्पत्तीए अभावादो । ण च णिरयभवपच्चयदं मोत्तूण अण्णत्थ ओरालियसरीरस्स उक्कस्ससंचओ होदि, अण्णत्थ सुहेण जीविदस्स तिरिक्ख-

योगी बहुत बहुत बार होता है, तत्प्रायोग्य जघन्ययोगी बहुत बहुत बार नहीं होता; जिसके अधस्तन स्थितियोंके निषेकका जघन्य पद होता है और उपरिम स्थितियोंके निषेकका उत्कृष्ट पद होता है, जो मध्य कालमें विक्रियाको प्राप्त नहीं होता, जिसने मध्य कालमें शरीरका छेद नहीं किया है, जिसका भाषाकाल स्तोक है, मनोयोगकाल स्तोक है, भाषा-काल ह्रस्व है, मनोयोगकाल ह्रस्व है, जो जीवितके अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रहने पर योगस्थानोंके उपरिम भागमें अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित है, जो अन्तिम जीवगुणहानि-स्थानके मध्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक स्थित है, त्रिचरम और द्विचरम समयमें जो उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ है तथा जो अन्तिम समयमें उत्तर शरीरकी विक्रिया करता है; उसके उत्तर शरीरकी विक्रिया करनेके प्रथम समयमें उत्कृष्ट योगयुक्त होनेपर उत्कृष्ट परिशातनकृति होती है । उससे भिन्न अनुत्कृष्ट परिशातनकृति होती है ।

शंका—तीन पल्योपम प्रमाण आयुवाले तिर्यंच व मनुष्यको छोड़कर पूर्वकोटि मात्र आयुवालोंमें स्वामित्व किस लिये दिया है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, नारकियोंमेंसे आये हुए जीवकी भोगभूमियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है । यदि कहा जाय कि नारक भवनिमित्तक पर्यायके सिवा अन्यत्र औदारिक शरीरका उत्कृष्ट संचय हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि, अन्यत्र सुखपूर्वक जीवन बिताकर जो जीव तिर्यंच व मनुष्योंमें उत्पन्न होता है उसके

१ छवी सरीरं, तस्स ... किरियाविसेसेहिं खंडणं छेदो णाम । धवला पत्र १०४० सरसावा.

२ प्रतिषु ' उप्पाइदो अप्पाबहुसद्धाओ अप्पाओ ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' जोगट्ठाणाण- ' इति पाठः ।   ४ प्रतिषु '-भागमुवरिल्ले अद्धे अच्छिदो' इति पाठः ।

मणुस्सेसुप्पज्जिय अणुप्पण्णसंतोसस्स[1] बहुओरालियपदेसग्गहणाभावादो । अवसेसं सुत्तट्ठं वग्गणाए परूवइस्सामो । एत्थ परिसदमाणउक्कस्सदव्वं दिवड्ढसमयपबद्धमेत्तं होदि, समयपबद्धस्स बिदियणिसेयप्पहुडि सव्वणिसेयाणं तत्थुवलंभादो ।

ओरालियसरीरस्स उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी कस्स ? एदस्स एसो चेव आलावो वत्तव्वो । तस्स चरिमसमयतब्भवत्थस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सिया । तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा ।

सुगमं । एत्थ संचओ दिवड्ढसमयपबद्धमेत्तो असंखेज्जसमयपबद्धमेत्तो वा

ओरालियसरीरस्स जहण्णिया संघादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स सुहुमस्स अपज्जत्तस्स पत्तेयसरीरस्स अणादियलंभे पदिदस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स पढमसमयआहारयस्स सव्वजहण्णजोगस्स ओरालियसरीरस्स जहण्णिया संघादणकदी । तव्वदिरित्ता अजहण्णा । अणा-

....

असंतोष उत्पन्न न होनेसे बहुत औदारिक प्रदेशोंका ग्रहण नहीं होता ।

शेष सूत्रार्थ वर्गणा खण्डमें कहेंगे । यहां निर्जराको प्राप्त होनेवाला उत्कृष्ट द्रव्य डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र होता है, क्योंकि, समयप्रबद्धके द्वितीय निषेकसे लेकर सब निषेक वहां पाये जाते हैं ।

औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति किसके होती है ? इसके यही आलाप कहना चाहिये । यह जीव जब विवक्षित भवके अन्तिम समयमें स्थित होता है और उत्कृष्ट योगवाला होता है तब उसके औदारिक शरीरकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति होती है । इससे भिन्न अनुत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति होती है ।

यह कथन सुगम है । यहां संचय डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र अथवा असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र होता है ।

औदारिक शरीरकी जघन्य संघातनकृति किसके होती है ? जो कोई जीव सूक्ष्म है, अपर्याप्त है, प्रत्येकशरीरी है, अनादिलम्भमें पतित है, अर्थात् जिसने अनेक वार इस पर्यायको ग्रहण किया है, प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुआ है, प्रथम समयसे आहारक है और सबसे जघन्य योगवाला है; उसके औदारिक शरीरकी जघन्य संघातनकृति होती है । इससे भिन्न अजघन्य संघातनकृति होती है ।

....

१ अप्रतौ ' संतोपरस ', आप्रतौ ' संतोपस्स ', काप्रतौ ' संतापस्स ', 'मप्रतौ तु स्वीकृतपाठः ।

दियलंभे पदिदस्से त्ति किमट्ठं उच्चदे[1] ? ण, पढमलंभे सव्वजहण्णुववादजोगाणुवलंभादो ।

पत्तेयसरीरस्से त्ति संतकम्मपयडिपाहुडवयणं पुव्वकोडाउगचरिमसमए उक्कस्स-सामित्तणिद्देसो च सुत्तविरुद्धो त्ति[2] णाणायरो कायव्वो, दोण्णं सुत्ताणं विरोहे संते त्थप्पाव-लंबणस्स णाइयत्तादो । सेसं सुगमं ।

ओरालियसरीरस्स जहण्णिया परिसादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स बादरवाउजीवस्स, जेण पढमसमयतब्भवत्थप्पहुडि जहण्णएण जोगेण आहारिदं, जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदं, जहण्णाइं जोगट्ठाणाइं बहुसो बहुसो जो गच्छदि[3], उक्कस्साइं ण गच्छदि; तप्पाओग्गजहण्ण-जोगी बहुसो बहुसो होदि, तप्पाओग्गउक्कस्सजोगी बहुसो बहुसो ण होदि; हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेगस्स उक्कस्सपदं, उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदं, जो सव्वलहुं पज्जत्तिं गदो, सव्वलहुं उत्तरं विउव्विदो, सव्वचिरेण कालेण जीवपदेसे णिछुहदि, सव्वचिरेण

शंका — ' अनादिलम्भमें पतित ' यह किसलिये कहा जाता है ?

समाधान — यह ठीक नहीं है, चूंकि प्रथम लम्भमें सर्व जघन्य उपपादयोग नहीं पाया जाता अतः ' अनादिलम्भमें पतित ' ऐसा कहा गया है ।

' प्रत्येकशरीरके ' यह सत्कर्मप्रकृतिप्राभृतका वचन और पूर्वकोटि प्रमाण आयुके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट स्वामित्वका निर्देश, ये दोनों वचन चूंकि सूत्रविरुद्ध हैं; इसलिये इनका अनादर नहीं करना चाहिये, क्योंकि, दो सूत्रोंके मध्यमें विरोध होनेपर चुप्पीका अवलम्बन करना ही न्याय्य है । शेष प्ररूपणा सुगम है ।

औदारिक शरीरकी जघन्य परिशातनकृति किसके होती है ? जिस बादर वायु-कायिक जीवने उस भवमें स्थित होनेके प्रथम समयसे लेकर जघन्य योगके द्वारा आहार ग्रहण किया है, जो जघन्य वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जो जघन्य योगस्थानोंको बहुत बहुत बार प्राप्त होता है, उत्कृष्ट योगस्थानोंको नहीं प्राप्त होता; उसके योग्य जघन्ययोगी बहुत बहुत बार होता है, उसके योग्य उत्कृष्टयोगी बहुत बहुत बार नहीं होता; अधस्तन स्थितियोंके निषेकके उत्कृष्ट पदको करता है, उपरितन स्थितियोंके निषेकके जघन्य पदको करता है, जो सर्वलघु कालमें पर्याप्तिको प्राप्त होता है, सर्वलघु कालमें उत्तर शरीरकी विक्रियाको समाप्त कर लेता है, सर्वचिर कालसे जीवप्रदेशोंका निक्षेपण करता है, सर्व-

१ अप्रतौ ' -उच्चदे णापढम ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' -णिद्देसा च सुत्तविरोधा त्ति ' इति पाठः ।

३ काप्रतौ ' जो गच्छदि ' इत्येतस्य स्थाने ' आगच्छदि ' इति पाठः ।

कालेण उत्तरसरीरं विउव्विदो, तस्स चरिमसमयअणियट्टिस्स ओरालियस्स जहण्णिया परिसादणकदी। तव्वदिरित्ता अजहण्णा।

सुगममेदं।

जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी कस्स? अण्णदरस्स सुहुमस्स अपज्जत्तस्स पत्तेयसरीरस्स अणादिगलंभे पदिदस्स दुसमयतब्भवत्थस्स दुसमयआहारयस्स तप्पाओग्गजहण्णजोगिस्स जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी। तव्वदिरित्ता अजहण्णा।

सुगमं।

वेउव्वियसरीरस्स उक्कस्सिया संघादणकदी कस्स? अण्णदरस्स वेमाणियदेवस्स सव्वमहंतमसंबद्धरूवं[1] विउव्वमाणस्स तस्स पढमसमयउत्तरविउव्विदस्स उक्कस्सजोगिस्स वेउव्वियस्स उक्कस्ससंघादणकदी। तव्विवरीदा अणुक्कस्सा। मूलसरीरादो पुधभूदसरीरविउव्विदे वि मूलसरीरस्स उत्तरसरीरस्सेव वेउव्वियणामकम्मोदएण आगच्छंता पोग्गलखंधा

चिर कालसे उत्तर शरीरकी विक्रियाको प्राप्त होता है, उस अन्तिम समयवर्ती अनिवृत्ति किसी भी बादर वायुकायिक जीवके औदारिक शरीरकी जघन्य परिशातनकृति होती है। इससे भिन्न अजघन्य परिशातनकृति होती है।

यह कथन सुगम है।

औदारिक शरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति किसके होती है? जो कोई सूक्ष्म अपर्याप्त प्रत्येकशरीरी जीव अनादिलम्भमें पतित है, दूसरे समयमें तद्भवस्थ हुआ है, आहारक होनेके दूसरे समयमें स्थित है और उसके योग्य जघन्य योगसे युक्त है, उसके औदारिक शरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति होती है। उससे भिन्न अजघन्य संघातन-परिशातनकृति है।

यह कथन सुगम है।

वैक्रियिक शरीरकी उत्कृष्ट संघातनकृति किसके होती है? जो कोई वैमानिक देव सबसे बड़े असंबद्ध रूपकी विक्रिया करनेवाला है, उस उत्तर शरीरकी विक्रिया करनेके प्रथम समयमें स्थित रहनेवाले और उत्कृष्ट योगवाले जीवके वैक्रियिक शरीरकी उत्कृष्ट संघातनकृति होती है। इससे विपरीत अनुत्कृष्ट संघातनकृति है।

शंका—मूल शरीरसे पृथग्भूत शरीरकी विक्रिया करनेपर भी उत्तर शरीरके समान मूल शरीरके लिये भी वैक्रियिक नामकर्मके उदयसे पुद्गलस्कन्ध आते हैं और

---

१ प्रतिषु '-मसंबंधरूवं' इति पाठः।

अत्थि, परिसदंता वि अत्थि; उभयत्थ जीवपदेससंभवादो। तदो एत्थ संघादणकदी ण जुज्जदे, किंतु संघादण-परिसादणकदी चेव एत्थ होदि; दोण्णं पि उवलंभादो त्ति? ण एस दोसो, मूलसरीरादो पुधभूदसरीरम्मि विउव्वमाणम्मि परिसादणकदीए विणा संघादणकदी चेवे त्ति कट्टु संघादणत्तब्भुवगमादो। सेसं सुगमं।

वेउव्वियसरीरस्स उक्कस्सिया परिसादणकदी कस्स? अण्णदरस्स मणुसस्स मणुस्सिणीए वा पंचिंदियतिरिक्खस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीए वा सण्णिस्स पज्जत्तयस्स पुव्वकोडाउअस्स कम्मभूमियस्स वा कम्मभूमिपडिभागस्स वा। जेण पढमसमयउत्तरविउव्विदप्पहुडि उक्कस्सेण जोगेण आहारिदं, उक्कस्सियाए वड्ढीए वड्ढिदं, हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदमुवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदं, अंतोमुहुत्तजीविदावसेसे जोगट्ठाणाणमुवरिल्ले अद्धे अंतोमुहुत्तमच्छिदो, चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो, दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो, चरिमे समए उत्तरं विउव्विदो, सव्वलहुं जीवपदेसे णिच्छुभदि, सव्वचिरं उत्तरं विउव्विदो; तस्स पढमसमयणियत्तस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सिया परिसादणकदी। तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा।

उनकी निर्जरा भी होती है, क्योंकि, दोनों शरीरोंमें जीवप्रदेशोंकी सम्भावना है। इस कारण वैक्रियिक शरीरकी संघातनकृति नहीं बनती। किन्तु इसकी संघातन-परिशातनकृति ही होती है, क्योंकि, दोनों ही एक साथ पायी जाती हैं।

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मूल शरीरसे पृथग्भूत शरीरकी विक्रिया करनेपर परिशातनकृतिके विना संघातनकृति ही होती है, ऐसा मानकर संघातनता स्वीकार की गई है। शेष प्ररूपणा सुगम है।

वैक्रियिक शरीरकी उत्कृष्ट परिशातनकृति किसके होती है? जो कोई मनुष्य या मनुष्यनी अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यंच या पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी संज्ञी है, पर्याप्त है, पूर्वकोटि प्रमाण आयुसे संयुक्त है, कर्मभूमिज है अथवा कर्मभूमिके प्रतिभागमें रहनेवाला है। जिसने उत्तर शरीरकी विक्रिया करनेके प्रथम समयसे लेकर उत्कृष्ट योगके द्वारा आहार ग्रहण किया है, उत्कृष्ट वृद्धिसे जो वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जो अधस्तन स्थितियोंके निषेकका जघन्य पद करता है, उपरिम स्थितियोंके निषेकका उत्कृष्ट पद करता है, अन्तर्मुहूर्त मात्र जीवितके शेष रहनेपर योगस्थानोंके उपरिम भागमें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है, अन्तिम जीवगुणहानिस्थानके मध्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक रहता है, द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त होता है, चरम समयमें उत्तर शरीरकी विक्रिया करता है, सर्वलघु कालमें जीवप्रदेशोंका निक्षेपण करता है, तथा जो सर्वचिर कालमें उत्तर शरीरकी विक्रिया करता है; उस प्रथम समय निवृत्त उत्कृष्ट योगीके उत्कृष्ट परिशातनकृति होती है। इससे विपरीत अनुत्कृष्ट परिशातनकृति है।

सुगमं ।

उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स आरणच्चुददेवस्स बावीस-सागरोवमाउअस्स । जेण पढमसमयतब्भवत्थप्पहुडि उक्कस्सएण जोगेण आहारिदं, उक्कस्सियाए वड्ढीए वड्ढिदं, हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदं, उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदमप्पाओ भासद्धाओ, अप्पाओ मणजोगद्धाओ, रहस्साओ भासद्धाओ, रहस्साओ मणजोगद्धाओ, अंतोमुहुत्ते जीविदावसेसे ण विउव्विदो, अंतोमुहुत्ते जीविदावसेसे जोगट्ठाणाणमुवरिल्ले अद्धे अंतोमुहुत्तमच्छिदो, चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो, चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो, तस्स चरिमसमए तब्भवत्थस्स उक्कस्सा तदुभयकदी । तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा ।

सुगमं ।

वेउव्वियस्स जहण्णिया संघादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स णेरइयस्स असण्णिपच्छायदस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स पढमसमयआहारयस्स तप्पाओग्गजहण्णजोगस्स जहण्णिया

यह कथन सुगम है ।

वैक्रियिकशरीरकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति किसके होती है ? जो कोई आरण-अच्युत कल्पवासी देव बाईस सागरोपम आयुवाला है। जिसने उस भवमें स्थित होनेके प्रथम समयसे लेकर उत्कृष्ट योगके द्वारा आहार ग्रहण किया है, जो उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है, अधस्तन स्थितियोंके निषेकका जघन्य पद करता है, उपरिम स्थितियोंके निषेकका उत्कृष्ट पद करता है, जिसका भाषाकाल अल्प है, मनोयोगकाल अल्प है, भाषाकाल ह्रस्व है, मनोयोगकाल ह्रस्व है, अन्तर्मुहूर्त मात्र जीवितके शेष रहने पर जो विक्रियाको नहीं प्राप्त हुआ है, अन्तर्मुहूर्त मात्र जीवितके शेष होनेपर जो योगस्थानोंके उपरिम भागमें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है, चरम जीवगुणहानिस्थानके मध्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक रहता है, तथा जो चरम व द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त है, उस भवमें स्थित उसके चरम समयमें उत्कृष्ट तदुभय कृति होती है । इससे विपरीत अनुत्कृष्ट कृति होती है ।

यह कथन सुगम है ।

वैक्रियिक शरीरकी जघन्य संघातन कृति किसके होती है ? जो कोई नारकी जीव असंज्ञी पर्यायसे वापिस आकर नारकी हुआ है, प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुआ है, प्रथम समयमें आहारक हुआ है, तथा उसके योग्य जघन्य योगसे संयुक्त है; उसके

वेउव्वियसंघादणकदी । तव्वदिरित्ता अजहण्णा । असण्णिपच्छायदग्गहणं किमट्ठं ? देव-णेरइएसु असण्णिपच्छायदपाओग्गजहण्णुववादजोगग्गहणट्ठं । सेसं सुगमं ।

वेउव्वियस्स जहण्णिया परिसादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स बादरवाउजीवस्स । जो[1] सव्वलहुं पज्जत्तिं गदो, सव्वलहुमुत्तरसरीरं विउव्विदो, पढमसमयउत्तराविउव्विदप्पहुडि जहण्णएण जोगेण आहारिदो, जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो, जहण्णाइं जोगट्ठाणाइं बहुसो बहुसो गदो, उक्कस्साणि ण गदो; तप्पाओग्गजहण्णजोगो त्ति हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदमुवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदं, सव्वत्थोवं कालमुत्तरं विउव्विदो, सव्वचिरेण कालेण जीवपदेसे णिच्छुहदि, तस्स चरिमसमयअणिल्लेविदस्स जहण्णिया वेउ-व्वियपरिसादणकदी । तव्वदिरित्ता अजहण्णा । सुगमं ।

जघन्य वैक्रियिक शरीरकी संघातनकृति होती है । इससे भिन्न अजघन्य संघातनकृति होती है ।

शंका—यहां ' असंज्ञी पर्यायसे वापिस आया हुआ ' इस पदका ग्रहण किसलिये किया है ?

समाधान—जो असंज्ञी पर्यायमेंसे वापिस आकर देव और नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके योग्य जघन्य उपपाद योगका ग्रहण करनेके लिये उक्त पदका ग्रहण किया है ।

शेष प्ररूपणा सुगम है ।

वैक्रियिक शरीरकी जघन्य परिशातनकृति किसके होती है ? जिस किसी बादर वायुकायिक जीवने सर्वलघु कालमें पर्याप्तिको प्राप्त किया है, सर्वलघु कालमें उत्तर शरीरकी विक्रिया की है, उत्तर शरीरकी विक्रियाके प्रथम समयसे लेकर जघन्य योगसे आहार ग्रहण किया है, जघन्य वृद्धिसे जो वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जो जघन्य योगस्थानोंको बहुत बहुत बार प्राप्त कर चुका है, उत्कृष्ट योगस्थानोंको बहुत बहुत बार नहीं प्राप्त हुआ है; उसके योग्य जघन्य योग होनेसे जो अधस्तन स्थितियोंके निषेकके उत्कृष्ट पदको और उपरिम स्थितियोंके निषेकके जघन्य पदको करता है, अति स्वल्प काल तक जिसने उत्तर शरीरकी विक्रिया की है तथा जो सर्वचिर कालसे जीवप्रदेशोंका निक्षेपण करता है, उस चरम समय अनिर्लेपितके वैक्रियिकशरीरकी जघन्य परिशातनकृति होती है । उससे भिन्न अजघन्य परिशातनकृति है ।

यह कथन सुगम है ।

---

१ अप्रतौ ' -जीवस्स वा जो ' इति पाठः ।

वेउव्वियस्स जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स बादरवाउ-जीवस्स। जो सव्वलहुं पज्जत्तिं गदो, सव्वलहुमुत्तरं विउव्विदो, जेण पढमसमयउत्तरं विउव्विद-प्पहुडि जहण्णएण जोगेण आहारिदं, जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदं, हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदं, उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं [णिसेयस्स] जहण्णपदं, तस्स दुसमयविउव्विदस्स जह-ण्णिया वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी। तव्वदिरित्ता अजहण्णा। सुगमं।

आहारसरीरस्स उक्कस्सिया संघादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स संजदस्स आहारय-सरीरस्स पढमसमयआहारयस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सा आहारसरीरस्स संघादणकदी। तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा। सुगमं।

तस्सेव उक्कस्सिया परिसादणकदी कस्स ? अण्णदरस्स संजदस्स आहारसरीरस्स। जेण पढमसमयआहारयप्पहुडि उक्कस्सेण जोगेण आहारिदं, उक्कस्सियाए वड्ढीए वड्ढिदं, उक्कस्साइं

वैक्रियिकशरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति किसके होती है ? अन्यतर बादर वायुकायिक जीवके। जो सर्वलघु कालमें पर्याप्तिको प्राप्त हुआ है, जिसने सर्व-लघु कालमें उत्तर शरीरकी विक्रिया की है, जिसने उत्तर शरीरकी विक्रिया करनेके प्रथम समयसे लेकर जघन्य योगसे आहारको ग्रहण किया है, जो जघन्य वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है, तथा जो अधस्तन स्थितियोंके निषेकके उत्कृष्ट पदको और उपरिम स्थितियोंके निषेकके जघन्य पदको करता है, उस किसी एक बादर वायुकायिक जीवके विक्रिया करनेके दूसरे समयमें जघन्य वैक्रियिक शरीरकी संघातन-परिशातन कृति होती है। इससे भिन्न अजघन्य संघातन-परिशातन कृति है।

यह कथन सुगम है।

आहारकशरीरकी उत्कृष्ट संघातनकृति किसके होती है ? आहारकशरीरवाले अन्यतर संयतके आहारक होनेके प्रथम समयमें उत्कृष्ट योगसे संयुक्त होनेपर उत्कृष्ट आहारकशरीरकी संघातनकृति होती है। इससे भिन्न अनुत्कृष्ट संघातनकृति है।

यह कथन सुगम है।

आहारकशरीरकी उत्कृष्ट परिशातनकृति किसके होती है ? अन्यतर आहारक-शरीरी संयतके। जिसने आहारकशरीर युक्त होनेके प्रथम समयसे लेकर उत्कृष्ट योगके द्वारा आहार ग्रहण किया है, जो उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जो उत्कृष्ट योग-

---

१ प्रतिषु ' विउव्विदो अच्छिदो सव्व- ' इति पाठः।

२ प्रतिषु ' -दीणं जह ' इति पाठः।

जोगट्ठाणाइं बहुसो बहुसो जो गदो, जहण्णाइं जोगट्ठाणाइं ण गदो; हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदं, उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदं; अंतोमुहुत्ते जीवियावसेसे जोगट्ठाणाणमुवरिल्ले अद्धे अंतोमुहुत्तमच्छिदो, चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो, दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो, सव्वलहुं जीवपदेसे णिच्छुहदि, सव्वचिरमुत्तरं विउव्विदो, तस्स पढमसमयणियत्तस्स उक्कस्सिया आहारयस्स परिसादणकदी। तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा। सुगमं।

संघादण-परिसादणकदीए एसेव आलावो। णवरि चरिमसमयअणियट्टिस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सा। तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा। सुगमं।

आहारयस्स जहण्णिया संघादणकदी कस्स? अण्णदरस्स संजदस्स आहारसरीरस्स पढमसमयआहारयस्स जहण्णजोगिस्स जहण्णिया आहारसंघादणकदी। तव्वदिरित्ता अजहण्णा। इदरासिं दोण्हं जहण्णकदीणं जहा वेउव्वियस्स दोण्णं जहण्णकदीणं परूवणा कदा तहा कायव्वा।

....

स्थानोंको बहुत बहुत वार प्राप्त हुआ है, जघन्य योगस्थानोंको नहीं प्राप्त हुआ है, अधस्तन स्थितियोंके निषेकके जघन्य पदको और उपरिम स्थितियोंके निषेकके उत्कृष्ट पदको करता है, जो आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर योगस्थानोंके उपरिम भागमें अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित रहा है, अन्तिम जीवगुणहानिस्थानके मध्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग तक स्थित रहा है, द्विचरम समयमें जो उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ है, सर्वलघु कालमें जो जीवप्रदेशोंका निक्षेपण करता है, तथा सर्वचिर कालमें जिसने उत्तर शरीरकी विक्रिया की है, उस प्रथम समयवर्ती निवृत्तके आहारक शरीरकी उत्कृष्ट परिशातनकृति होती है। इससे भिन्न अनुत्कृष्ट संघातनकृति है।

यह कथन सुगम है।

संघातन-परिशातनकृतिका यही आलाप है। केवल इतनी विशेषता है कि चरमसमयवर्ती अनिवृत्ति उत्कृष्ट योगीके उत्कृष्ट आहारक शरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है। इससे भिन्न अनुत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति है।

यह कथन सुगम है।

आहारक शरीरकी जघन्य संघातनकृति किसके होती है? आहारकशरीरी अन्यतर संयतके आहारशरीर होनेके प्रथम समयमें जघन्य योग युक्त होनेपर आहारक शरीरकी जघन्य संघातनकृति होती है। इससे भिन्न अजघन्य संघातनकृति होती है। अन्य दो जघन्य कृतियोंकी प्ररूपणा, जैसे वैक्रियिक शरीरकी दो जघन्य कृतियोंकी प्ररूपणा की है, वैसे करना चाहिये।

तेजइयस्स उक्कस्सिया परिसादणकदी कस्स ? जो जीवो अंतोमुहुत्तंतरिदाइं चेव णेरइयभवग्गहणाइं पकरेदि तेत्तीसंसागरोवमट्ठिदियाइं, तम्हि तम्हि पढमसमयतब्भवत्थप्पहुडि उक्कस्सएण[1] जोगेण आहारिदो, उक्कस्सियाए वड्ढीए वड्ढिदो, उक्कस्साइं जोगट्ठाणाइं बहुसो बहुसो गदो, जहण्णाइं ण गदो; हेट्ठिल्लट्ठिदिट्ठाणेहि णिसेयस्स जहण्णपदं, उवरिल्ल-ट्ठिदिट्ठाणेहि णिसेयस्स उक्कस्सपदं, अंतोमुहुत्ते जीविदावसेसे जोगट्ठाणाणमुवरिल्ले अद्धे अंतोमुहुत्तमच्छिदो, चरिमगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो, दुचरिम-चरिमेसु समएसु उक्कस्सजोगं गदो, चरिमसमए तदो उव्वट्टिदो जल-थलचरपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएसु उववण्णो, तम्हि पढमसमयप्पहुडि सो चेव आलाओ, पुणो णिरयगदिं गंतूण उव्वट्टिदो, जल-थलचरपंचिंदिएसु उववण्णो, तम्हि अंतोमुहुत्तं जीविदूण मदो, गब्भोवक्कंतिएसु मणुस्सेसु उववण्णो, सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण[2] जादो, सव्वलहुं सम्मत्तं पडिवण्णो, अट्ठवस्सियो संजमं पडिवण्णो, सव्वलहुं णाणमुप्पादेदि, सव्वलहुं सेलेसिं पडिवण्णो, तस्स पढमसमयअजोगिस्स उक्कस्सिया तेजइयस्स परिसादणकदी । तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा ।

तैजस शरीरकी उत्कृष्ट परिशातनकृति किसके होती है ? जो जीव मध्यमें अन्तर्मुहूर्त कालका अन्तर देकर ही तेतीस सागरोपम स्थितिवाले नारक भवोंको प्राप्त करता है, ऐसा करते हुए जिसने उस उस भवमें तद्भवस्थ होनेके प्रथम समयसे लेकर उत्कृष्ट योगके द्वारा आहारको ग्रहण किया है, जो उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है, उत्कृष्ट योगस्थानोंको बहुत बहुत बार प्राप्त हुआ है, जघन्य योगस्थानोंको बहुत बहुत बार नहीं प्राप्त हुआ है; अधस्तन स्थितिस्थानोंके निषेकके जघन्य पदको और उपरिम स्थिति-स्थानोंके निषेकके उत्कृष्ट पदको करता है, आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर योग-स्थानोंके उपरिम भागमें स्थित रहा है, अन्तिम गुणहानिस्थानके मध्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक स्थित रहा है, द्विचरम व चरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ है, अन्तिम समयमें उक्त पर्यायसे निकलकर जलचर व थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें उत्पन्न हुआ है, उस भवमें प्रथम समयसे लेकर वही आलाप कहना चाहिये, तत्पश्चात् फिरसे नरकगतिको प्राप्त हो व वहांसे निकलकर जलचर व थलचर पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है, फिर उस भवमें अन्तर्मुहूर्त काल तक जीवित रहकर मरणको प्राप्त हो गर्भज मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है, उसमें भी जो सर्वलघु कालमें योनिनिष्क्रमण रूप जन्मसे उत्पन्न हुआ है, सर्वलघु कालमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है, आठ वर्षका होकर संयमको प्राप्त हो सर्वलघु कालमें केवल ज्ञानको उत्पन्न करता है, तथा सर्वलघु कालमें जो शैलेशी अवस्थाको प्राप्त हुआ है, उस प्रथम समयवर्ती अयोगकेवलीके तैजस शरीरकी उत्कृष्ट परिशातनकृति होती है । इससे भिन्न अनुत्कृष्ट परिशातनकृति होती है ।

---

१ अप्रतौ ' उक्कस्सुक्कस्सएण ' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः ' जोणिणिक्खवण ' इति पाठः।

अट्ठवस्सादो हेट्ठा चेव सम्मत्तं पडिवज्जदि त्ति जाणावणट्ठं सव्वलहुं सम्मत्तं पडिवण्णो त्ति उत्तं। संजमं पुण अट्ठवस्सेहिंतो हेट्ठा ण होदि त्ति जाणावणट्ठमट्ठवस्सीओ संजमं पडिवण्णो त्ति भणिदं। जेण तेजइयसरीरणोकम्मट्ठिदी छासट्ठिसागरोवममेत्ता तेण बिदियं णेरइयभवग्गहणमंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरट्ठिदीयमिदि वत्तव्वं। सेसं सुगमं।

तेजइयसंघादण-परिसादणकदी उक्कस्सिया कस्स ? बिदियणेरइयभवग्गहणे चरिमसमयतब्भवत्थस्स उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी। तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा। सुगमं।

तेजइयस्स जहण्णा परिसादणकदी कस्स ? जो जीवो छावट्ठिसागरोवमाणि[1] सुहुमेसु अच्छिदो, तम्हि पज्जत्तापज्जत्ताणं भवग्गहणाणि करेदि, बहुवाइमपज्जत्तयाइं, थोवाइं पज्जत्तयाइं, दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ, रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ, जहण्णएण जोगेण आहारिदो, जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो, जहण्णाइं जोगट्ठाणाइं बहुसो बहुसो गदो, उक्कस्साइं ण गदो; हेट्ठिल्लट्ठिदि-

---

आठ वर्षसे पहिले ही सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, इस बातको जतलानेके लिये 'सर्वलघु कालमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है' ऐसा कहा है। परन्तु संयम आठ वर्षके नीचे नहीं होता, इस बातेको जतलानेके लिये 'आठ वर्षका होकर संयमको प्राप्त हुआ है' ऐसा कहा है। चूंकि तैजस शरीर नोकर्मकी स्थिति छयासठ सागरोपम प्रमाण है अतः दूसरी बार नारक पर्यायका ग्रहण अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर स्थिति प्रमाण होता है, ऐसा कहना चाहिये। शेष प्ररूपणा सुगम है।

तैजस शरीरकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति किसके होती है ? दूसरी बार नारक भवके ग्रहण करनेपर उस भवमें स्थित रहनेके अन्तिम समयको प्राप्त हुए जीवके तैजस शरीरकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति होती है। इससे भिन्न अनुत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति है।

यह कथन सुगम है।

तैजस शरीरकी जघन्य परिशातनकृति किसके होती है ? जो जीव छयासठ सागरोपम काल तक सूक्ष्म जीवोंमें रहा है और वहां रहते हुए जो पर्याप्त व अपर्याप्त भवोंको ग्रहण करता है, इनमें जिसके अपर्याप्त भव बहुत हुए हैं और पर्याप्त भव थोड़े हुए हैं, अपर्याप्त काल दीर्घ रहा है और पर्याप्त काल थोड़ा रहा है, जिसने जघन्य योगसे आहार ग्रहण किया है, जघन्य वृद्धिसे जो वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जो जघन्य योगस्थानोंको बहुत बहुत बार प्राप्त हुआ है, उत्कृष्ट योगस्थानोंको बहुत बहुत बार प्राप्त नहीं हुआ है,

---

१ प्रतिषु 'बासट्ठि-' इति पाठः।

ट्ठाणेहि णिसेयस्स उक्कस्सपदं, उवरिल्लट्ठिदिट्ठाणेहि णिसेयस्स जहण्णपदं, तदो उव्वट्टिदो तिरिक्खेसुववण्णो, अंतोमुहुत्तं जीविदूण उव्वट्टिदो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववण्णो, सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो, सव्वलहुं सम्मत्तं पडिवण्णो, अट्ठवस्साउओ संजमं पडिवण्णो, सव्वलहुं [केवल] णाणमुप्पादेदि, उप्पण्णणाण-दंसणहरो जिणो केवली देसूणं पुव्वकोडिं विहरिदो, अंतोमुहुत्ते जीवियावसेसे सेलेसिं पडिवण्णो, तस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स खविदकम्मंसियस्स जहण्णिया परिसादणकदी । तव्वदिरित्ता अजहण्णा । सुगमं ।

तेजइयस्स जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी कस्स? [जो] जीवो छावट्ठिसागरोवमाणि सुहुमेसु अच्छिदो । एवं णीदं जाव[1] उवरिल्लट्ठिदिट्ठाणेहि णिसेयस्स जहण्णपदं त्ति । तदो सुहुमेहि पज्जत्तएहि उववण्णो, तस्स तम्हि पज्जत्तीहि पज्जत्तापज्जत्तीहि एयंतवड्ढमाणस्स अभिक्खवड्ढीए अपज्जत्तयस्स जम्हि समए बहुओ बंधो णिज्जरा च ण तम्हि समयम्हि ट्ठिदो[2], तस्स तेजइयस्स जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी । तव्वदिरित्ता अजहण्णा । एयंताणुवड्ढीए

जो अधस्तन स्थितिस्थानोंके निषेकका उत्कृष्ट पद करता है और उपरिम स्थितिस्थानोंके निषेकका जघन्य पद करता है, पश्चात् सूक्ष्म पर्यायसे निकलकर जो तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त काल तक जीवित रहकर वहांसे निकल पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें आकर अति शीघ्र योनिनिष्क्रमण रूप जन्मसे उत्पन्न हुआ है, जिसने अति शीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त किया है, जो आठ वर्षका होकर संयमको प्राप्त हो अति शीघ्र केवलज्ञानको उत्पन्न करता है, फिर उत्पन्न हुए केवलज्ञान व केवलदर्शनसे सहित होकर केवली जिन होता हुआ कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक विहार करता है, तथा 'अन्तर्मुहूर्त मात्र आयुके शेष रहनेपर शैलेशी भावको प्राप्त होता है, ऐसे उस चरम समयवर्ती भव्यसिद्धिक और क्षपितकर्मांशिक जीवके जघन्य -परिशातनकृति होती है । इससे भिन्न अजघन्य परिशातनकृति है । यह कथन सुगम है ।

तैजस शरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति किसके होती है? जो जीव छ्यासठ सागरोपम काल तक सूक्ष्म जीवोंमें रहा है । इस प्रकार उपरिम स्थितिस्थानोंके निषेकके जघन्य पदके प्राप्त होने तक आलाप ले जाना चाहिये । पश्चात् जो सूक्ष्म पर्याप्तकोंसे उत्पन्न हुआ है उसके उस भवमें पर्याप्तियों पर्याप्ति-अपर्याप्तियोंसे आभीक्ष्ण्य वृद्धि द्वारा एकान्तवृद्धिसे बढ़ते हुए अपर्याप्तक जीवके जिस समयमें बन्ध बहुत होता है, पर निर्जरा नहीं देखी जाती है, उस समयमें जो स्थित है, उसके तैजस शरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति होती है । इससे भिन्न अजघन्य संघातन-परिशातनकृति होती है ।

---

१ प्रतिषु '-अच्छिदो एदेणेदं जाव' इति पाठः ।　　२ प्रतिषु 'ट्ठिदा' इति पाठः ।

सामित्तं किमट्ठं दिण्णं ? परिणामजोगेहि संचिदपोग्गलक्खंधग्गलणट्ठं ।

कम्मइयस्स उक्कस्सपरिसादणकदी कस्स ? जो जीवो तीससागरोवमकोडाकोडीओ बेहि-सागरोवमसहस्सेहि य ऊणियाओ बादरेसु अच्छिदो, तम्हि पज्जत्तापज्जत्तयाइं भवग्गहणाइं करेदि, तत्थ बहुआइं पज्जत्तयाइं, [थोवाइं अपज्जत्तयाइं], दीहाओ पज्जत्तद्धाओ, रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ, उक्कस्सेण जोगेण आहारिदो, उक्कस्सियाए वड्ढीए वड्ढिदो, बहुसो बहुसो उक्कस्साइं जोगट्ठाणाइं गदो, जहण्णाइं ण गदो; संकिलेसं बहुसो जाओ, बहुसो तप्पाओग्गउक्कस्ससंकिलेसो, विसुज्झंतो, तप्पाओग्गजहण्णविसोहिसहियो, हेट्ठिल्लट्ठिदिट्ठाणेहि णिसेयस्स जहण्णपदमुवरिल्लट्ठिदिट्ठाणेहि णिसेयस्स उक्कस्सपदं, तदो उव्वट्टिदो बादरतसेसु उववण्णो । तसेसु किं सुहुमा संति[1] ? ण, तम्हि पज्जत्तापज्जत्ता इदि भेदोवलंभादो । बादरवयणेण तसपज्जत्ताणं गहणं । तत्थ वि उवरिल्ले हेट्ठिल्लट्ठिदिट्ठाणेहि णिसेयस्स उक्कस्सपदं, सम्मत्तं

शंका—एकान्तानुवृद्धिसे स्वामित्व किसलिये दिया है ?

समाधान—परिणामयोगोंसे संचित पुद्गलस्कन्धोंके गलानेके लिये एकान्तानुवृद्धिसे स्वामित्व कहा है ।

कार्मण शरीरकी उत्कृष्ट परिशातनकृति किसके होती है ? जो जीव दो हजार सागरोपमोंसे हीन तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल तक बादर जीवोंमें रहा है, वहां रहते हुए जो पर्याप्त व अपर्याप्त भवग्रहणोंको करता है, वहां पर्याप्त भव अधिक और अपर्याप्त भव थोड़े होते हैं, पर्याप्त भवोंका काल दीर्घ और अपर्याप्त भवोंका काल ह्रस्व होता है, जो उत्कृष्ट योगसे आहारको ग्रहण करता है, उत्कृष्ट वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है, जो बहुत बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानोंको प्राप्त होता है, जघन्य योगस्थानोंको बहुत बहुत बार नहीं प्राप्त होता है, संक्लेशको बहुत बार प्राप्त होता है, इस प्रकार बहुत बार उसके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे युक्त होकर विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ उसके योग्य जघन्य विशुद्धिसे सहित होता है; अधस्तन स्थितिस्थानोंके निषेकका जघन्य पद व उपरिम स्थितिस्थानोंके निषेकका उत्कृष्ट पद करता है, पश्चात् उस पर्यायसे निकलकर बादर त्रसोंमें उत्पन्न होता है ।

शंका—क्या त्रसोंमें सूक्ष्म होते हैं ?

समाधान—नहीं होते । हां उनमें पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद अवश्य होते हैं । इसलिये यहां ‘ बादर ’ इस वचनसे त्रस पर्याप्तोंका ग्रहण करना चाहिये ।

वहां भी जो ऊपरके स्थितिस्थानमें अधस्तन स्थितिस्थानोंकी अपेक्षा निषेकका

---

१ प्रतिषु ‘ संते ’ इति पाठः ।

संजमं वा ण किं चि गुण पडिवज्जदि, तदो पच्छिमेसु भवग्गहणेसु तेत्तीसं सागरोवमिएसु णेरइएसु उववण्णो। उवरि जधा तेजइयस्स उक्कस्साए परिसादणकदीए परूविदं तधा परूवेदव्वं। णवरि बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसं गदो त्ति वत्तव्वं। दुचरिम-तिचरिमसमए उक्कस्ससंकिलेसं गदो, चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो त्ति वत्तव्वं। एवं विधाणेणागदपढमसमयअजोगिस्स उक्कस्सिया परिसादणकदी। तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा। सुगमं। संघादणपरिसादणकदीए उक्कस्सियाए एवं चेव वत्तव्वं। णवरि सत्तमपुढवीणेरइयचरिमसमए उक्कस्सा। तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा। सुगमं।

कम्मइयस्स जहण्णिया परिसादणकदी कस्स ? जो जीवो तीसं सागरोवमाणं कोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ सुहुमेसु अच्छिदो, तत्थ थोवा पज्जत्तभवा बहुवा अपज्जत्तभवा, दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ, रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ, पढमसमयतब्भवत्थप्पहुडि जहण्णजोगेण आहारिदो, जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो, बहुसो बहुसो मंदसंकिलेसं गदो, एवं तत्थ परियट्टिदूण उव्वट्टिदो बादरेसुववण्णो, अंतोमुहुत्तं जीविदूण उव्वट्टिदो पुव्वकोडाउएसु

उत्कृष्ट पद करता है, सम्यक्त्व या संयम किसी भी गुणको नहीं प्राप्त होता है, पश्चात् जो अन्तिम भवग्रहणोंमें तेतीस सागरोपम स्थिति युक्त नारकियोंमें उत्पन्न हुआ है, इसके आगे जैसे तैजस शरीरकी उत्कृष्ट परिशातनकृतिमें प्ररूपणा की है वैसे ही प्ररूपणा करनी चाहिये। विशेष इतना है कि यहां बहुत संक्लेशको बहुत बहुत बार प्राप्त हुआ, ऐसा कहना चाहिये। तथा द्विचरम व त्रिचरम समयमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त हुआ और चरम व द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ, ऐसा कहना चाहिये। इस प्रकार इस विधानसे आये हुए प्रथम समयवर्ती अयोगिजिनके उत्कृष्ट परिशातनकृति होती है। इससे भिन्न अनुत्कृष्ट परिशातनकृति है। यह सब कथन सुगम है। इसी प्रकार उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृतिके भी कहना चाहिये। विशेष इतना है कि सप्तम पृथिवीके नारकीके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति होती है। इससे भिन्न अनुत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति है।

यह कथन सुगम है।

कार्मण शरीरकी जघन्य परिशातनकृति किसके होती है ? जो जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन तीस कोडाकोडी सागरोपम काल तक सूक्ष्म जीवोंमें रहा है, वहां रहते हुए जिसने पर्याप्त भव थोड़े व अपर्याप्त भव बहुत ग्रहण किये हैं, अपर्याप्त भवोंका काल दीर्घ और पर्याप्त काल ह्रस्व रहा है, जिनसे उस भवमें स्थित होनेके प्रथम समयसे लेकर जघन्य योगके द्वारा आहार ग्रहण किया है, जघन्य वृद्धिसे जो वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जो बहुत बहुत बार मन्द संक्लेशको प्राप्त हुआ है, इस प्रकार भ्रमण करके वहांसे निकला और बादर जीवोंमें उत्पन्न हुआ, अन्तर्मुहूर्त जीवित रहकर वहांसे निकला

मणुसेसु उववण्णो, सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो, सव्वलहुं सम्मत्तं पडिवण्णो, अट्ठवस्सादीदो संजमं पडिवण्णो, दो वारे कसाए उवसामेदि, अंतोमुहुत्ते जीविदसेसे मिच्छत्तं गदो, तदो दसवाससहस्सट्ठिदिएसु देवेसुववण्णो, सम्मत्तं पडिवण्णो, अणंताणुबंधी विसंजोएदि, दसवाससहस्साणि सम्मत्तमणुपालेदि, तदो मिच्छत्तं गंतूण बादरेसु उववण्णो, तत्थ अंतोमुहुत्तं जीविदूण सुहुमेसु साहारणकाइएसु उववण्णो, तत्थ खविदकम्मंसियलक्खणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं कालमच्छिय उव्वट्टिदो बादरेसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववट्टिय दो वारे कसाए उवसामिय दसवाससहस्सिएसु देवेसु उववज्जिय पुणो थावरेसु[1] उप्पज्जिय सुहुमेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमच्छिय बादरेसु अंतोमुहुत्तं पुणरवि पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो, सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो, सव्वलहुं सम्मत्तं पडिवण्णो, अट्ठवस्सादीदो संजमं पडिवण्णो, सव्वलहुं णाणमुप्पादेदि, उप्पण्णणाण-दंसणहरो देसूणपुव्वकोडिं विहरदि, अंतोमुहुत्तं जीविदावसेसे सेलेसिं पडिवण्णो, तस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स खविदकम्मंसियस्स जहण्णिया परिसादणकदी। तव्वदिरित्ता अजहण्णा। संघादण-

---

और पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ, सर्वलघु कालमें योनिनिष्क्रमण रूप जन्मसे उत्पन्न हो सर्वलघु कालमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, आठ वर्ष विताकर संयमको प्राप्त हो दो बार कषायोंको उपशमाता है, पुनः अन्तर्मुहूर्त जीवितके शेष रहनेपर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, पश्चात् दश हजार वर्ष आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हो अनन्तानुबन्धिचतुष्टयका विसंयोजन करता है और दश हजार वर्ष तक सम्यक्त्वका पालन करता है, पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त हो बादर जीवोंमें उत्पन्न हुआ, वहां अन्तर्मुहूर्त जीवित रहकर सूक्ष्म साधारणकायिकोंमें उत्पन्न हुआ, वहां क्षपितकर्मांशिक स्वरूपसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक रहकर निकला व बादर जीवोंमें उत्पन्न हुआ, पुनः वहां अन्तर्मुहूर्त रहकर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हो दो बार कषायोंको उपशमाकर दश हजार वर्ष आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ, पुनः स्थावरोंमें उत्पन्न होकर सूक्ष्मोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भाग व बादरोंमें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हो सर्वलघु कालमें योनिनिष्क्रमण रूप जन्मसे उत्पन्न हुआ, वहां सर्वलघु कालमें सम्यक्त्वको प्राप्त कर आठ वर्ष वीतनेपर संयमको प्राप्त होता हुआ सर्वलघु कालमें केवलज्ञानको उत्पन्न करता है, पुनः उत्पन्न हुए केवलज्ञान व केवलदर्शनको धारण कर कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक विहार करता है, पश्चात् आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर शैलेश्य भावको प्राप्त करता है; उस चरम समयवर्ती भव्यसिद्धिक क्षपितकर्मांशिक जीवके कार्मण शरीरकी जघन्य परिशातनकृति होती है। इससे भिन्न अजघन्य परिशातनकृति होती है। संघातन-परिशातनकृतिके विषयमें इसी प्रकार ही

---

[1] प्रतिषु 'बादरेसु' इति पाठः।

परिसादणकदीए एवं चेव वत्तव्वं। णवरि एइंदिएसु जहण्णं दादव्वं। एवं सामित्तपरूवणा गदा।

अप्पाबहुगं वत्तइस्सामो। तं जहा—सव्वत्थोवा[1] ओरालियसरीरस्स जहण्णिया संघादणकदी, सुहुमेइंदियजहण्णुववादजोगेणाहारिदओरालियपोग्गलक्खंधपमाणत्तादो। संघादण-परिसादणकदी जहण्णिया असंखेज्जगुणा, एइंदियसुहुमस्स बिदियसमयतब्भवत्थस्स जहण्ण-एगंताणुवड्ढीए गहिदएगसमयपबद्धेण सह तक्कालियजहण्णुववादद्व्वस्स पढमणिसेगेणूणस्स गहणादो। परिसादणकदी जहण्णिया असंखेज्जगुणा, बादरवाउजीवस्स पज्जत्तयस्स सव्व-लहुमुत्तरसरीरमुट्ठाविदस्स दीहाए[2] विउव्वणद्धाए चरिमसमए वट्टमाणस्स एइंदियपरिणाम-जोगेणाहारिदओरालियपोग्गलक्खंधग्गहणादो[3]। विउव्वमाणकालब्भंतरे संचएण विणा परिसदिद-ओरालियसरीरस्स उदयगदपोग्गलक्खंधा कधमेगसमयपबद्धादो असंखेज्जगुणा होंति? ण,

कहना चाहिये। विशेष इतना है कि एकेन्द्रियोंमें जघन्य देना चाहिये; अर्थात् कार्मण शरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति एकेन्द्रियोंके होती है, ऐसा कहना चाहिये; इस प्रकार स्वामित्वप्ररूपणा समाप्त हुई।

अल्पबहुत्वको कहते हैं। वह इस प्रकार है—औदारिक शरीरकी जघन्य संघातनकृति सबसे स्तोक है, क्योंकि, वह सूक्ष्म एकेन्द्रियके जघन्य उपपादयोगसे ग्रहण किये गये औदारिक पुद्गलस्कन्धोंके बराबर है। उससे जघन्य संघातन-परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, इसमें एकेन्द्रिय सूक्ष्मके उस भवमें स्थित होनेके द्वितीय समयमें जघन्य एकान्तानुवृद्धिसे ग्रहण किये गये एक समयप्रबद्धके साथ प्रथम निषेकको छोड़ तात्कालिक जघन्य उपपाद द्रव्यका ग्रहण किया गया है। उससे जघन्य परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, इसमें पर्याप्त, सर्वलघु कालमें उत्तर शरीरको उत्पन्न करनेवाले और दीर्घ विक्रिया कालके अन्तिम समयमें रहनेवाले बादर वायुकायिक जीवके एकेन्द्रिय सम्बन्धी परिणामयोगसे ग्रहण किये गये औदारिक पुद्गलस्कन्धोंका ग्रहण किया है।

शंका—विक्रियाकालके भीतर संचयके विना पृथक् होनेवाले औदारिक शरीरके उदयको प्राप्त हुए पुद्गलस्कन्ध एक समयप्रबद्धसे असंख्यातगुणे कैसे हैं?

१ प्रतिषु 'सव्वद्धावा' इति पाठः। २ प्रतिषु 'दीसाए' इति पाठः।

३ अ-आप्रत्योः 'हारिसदंतओरालिय', काप्रतौ '-हारिदसंतओरालिय', 'मप्रतौ 'हारिदंतओरालिय' इति पाठः।

संखेज्जगुणहाणीसु गलिदासु वि दिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धाणं संखेज्जदिभागस्स एगंताणुवड्ढिजोगेगसमयपबद्धादो असंखेज्जगुणत्तदंसणादो । ओरालियस्स उक्कस्सिया संघादणकदी असंखेज्जगुणा, सण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसपज्जत्तस्स णिरयभवपच्छायदस्स संखेज्जवासाउअस्स तिसमयतब्भवत्थस्स पढमसमयआहारयस्स तदित्थउक्कस्सएगंताणुवड्ढिजोगस्स एगसमयपबद्धग्गहणादो । एइंदियपरिणामजोगेण पबद्धपरिसादणदव्वादो कधं पंचिंदियस्स एयंताणुवड्ढिजोगेण बद्धेगसमयपबद्धस्स असंखेज्जगुणत्तं ? ण, एइंदियउक्कस्सपरिणामजोगादो वि पंचिंदियजहण्णेगंताणुवड्ढिजोगस्स वि असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो । उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, पंचिंदियपज्जत्तमणुस्सस्स सण्णिपंचिंदियपज्जत्ततिरिक्खस्स वा पुव्वकोडिआउअस्स उक्कस्सजोगस्स अप्पभासा-मणद्धस्स[1] तिचरिम-दुचरिमसमएहि उक्कस्सजोगं गदस्स सगाउट्ठिदिचरिमसमए उत्तरसरीरं विउव्विदस्स चरिमसमए परिसदमाणणोकम्मपोग्गलक्खंधाणं

समाधान—नहीं, क्योंकि, संख्यात गुणहानियोंके गलित हो जानेपर भी डेढ़ गुणहानि प्रमाण समयप्रबद्धोंका संख्यातवां भाग एकान्तानुवृद्धियोग सम्बन्धी एक समयप्रबद्धकी अपेक्षा असंख्यातगुणा देखा जाता है ।

उससे औदारिक शरीरकी उत्कृष्ट संघातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, यहां जो नारक पर्यायसे पीछे आया है, संख्यात वर्षकी आयुवाला है, तीसरे समयमें तद्भवस्थ हुआ है, आहारक होनेके प्रथम समयमें स्थित है और वहांके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगसे संयुक्त है ऐसे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्तके एक समयप्रबद्धका ग्रहण किया है ।

शंका—एकेन्द्रियके परिणामयोगसे बांधे गये परिशातनद्रव्यकी अपेक्षा पंचेन्द्रियके एकान्तानुवृद्धियोगसे बांधा गया एक समयप्रबद्ध असंख्यातगुणा कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रियके उत्कृष्ट परिणामयोगकी अपेक्षा भी पंचेन्द्रियका जघन्य एकान्तानुवृद्धियोग भी असंख्यातगुणा पाया जाता है ।

उससे उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, जो पंचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य या संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच पूर्वकोटिकी आयुवाला है, उत्कृष्ट योगवाला है, भाषा व मनके अल्प कालसे युक्त है, त्रिचरम या द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ है, और जिसने अपनी आयुके अन्तिम समयमें उत्तर शरीरकी विक्रिया की है उसके उस समय जो नोकर्मपुद्गलस्कंध निर्जीर्ण होते हैं पचेन्द्रियके परिणामयोगके

१ प्रतिषु ' मणत्थस्स ' इति पाठः ।

पंचिंदियपरिणामजोगागददिवड्ढसमयपबद्धमेत्तत्तादो । उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । दोण्णं पि एक्कम्हि चेव ट्ठाणे सामित्तं जादं, तदो ण विसेसाहियत्तं ? ण एस दोसो, चरिमट्ठिदीए समऊणपुव्वकोडिसंचयं होदूण गलंतदव्वं परिसादणकदी णाम । तिस्से चेव चरिमट्ठिदीए पुव्वकोडिसंचिदणिसेगा संघादण-परिसादणकदी णाम । समऊणपुव्वकोडिसंचयं पेक्खिऊण संपुण्णपुव्वकोडिसंचओ जेण एगसमयपबद्धमेत्तेण अहिओ तेण विसेसाहियत्तं ण विरुज्झदे ।

सव्वत्थोवा वेउव्वियसरीरस्स जहण्णिया संघादणकदी, देवस्स णेरइयस्स वा असण्णिपच्छायदस्स पढमसमयतब्भवत्थस्स पढमसमयआहारयस्स जहण्णजोगिस्स उववादजोगेगसमयपबद्धग्गहणादो । एइंदिएसु जहण्णा वेउव्वियसंघादणकदी किण्ण गहिदा ? ण, एसो पंचिंदियजहण्णउववादजोगो एइंदियपरिणामजोगादो असंखेज्जगुणहीणो त्ति तदग्गहणादो ।

द्वारा प्राप्त हुए उनका परिमाण डेढ़गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । उससे उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति विशेष अधिक है ।

शंका — चूंकि इन दोनों कृतियोंका एक ही स्थानमें स्वामित्व होता है, अतः संघातन-परिशातनकृति विशेषाधिक नहीं हो सकती ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अन्तिम स्थितिमें एक समय कम पूर्वकोटि काल तक संचय होकर गलनेवाला द्रव्य परिशातनकृति कहलाता है । और उसी अन्तिम स्थितिमें पूर्वकोटि काल तक संचित निषेक संघातन-परिशातनकृति कहलाते हैं । अतएव एक समय कम पूर्वकोटि कालके संचयकी अपेक्षा सम्पूर्ण पूर्वकोटि कालका संचय चूंकि एक समयप्रबद्ध मात्रसे अधिक है इसलिये उसके विशेष अधिक होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

वैक्रियिक शरीरकी जघन्य संघातनकृति सबसे स्तोक है, क्योंकि, इसमें असंज्ञियोंमेंसे पीछे आये हुए, प्रथम समयमें तद्भवस्थ हुए, प्रथम समयवर्ती आहारक और जघन्य योगसे संयुक्त ऐसे देव अथवा नारकीके उपपादयोगसे ग्रहण किये गये एक समयप्रबद्धका ग्रहण किया गया है ।

शंका — एकेन्द्रियोंमें वैक्रियिक शरीरकी जघन्य संघातनकृतिका ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, यह पंचेन्द्रियका जघन्य उपपादयोग एकेन्द्रियके परिणामयोगसे असंख्यातगुणा हीन है, अतः वहां उसका ग्रहण नहीं किया ।

जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, बादरवाउपज्जत्तस्स सव्वलहुमुत्तरसरीरं विउव्विदस्स जहण्णजोगिस्स विउव्वणद्धाए बिदियसमए वट्टमाणस्स देसूणदोसमयपबद्धग्गहणादो। परिसादणकदी जहण्णिया असंखेज्जगुणा। कुदो? बादरवाउकाइयपज्जत्तयस्स जहण्णजोगेण उत्तरसरीरं विउव्विदस्स मूलसरीरं पविसिय दीहेण कालेण णिल्लेवयंतस्स अणिल्लेविदचरिमसमए एगचरिमणिसेगस्स गहणादो। ण च असंखेज्जगुणत्तमसिद्धं, चरिमणिसेगागमणणिमित्तसंखेज्जावलियाहि जोगगुणगारे ओवट्टिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जभागुवलंभादो। उक्कस्सिया संघादणकदी असंखेज्जगुणा। कुदो? वेमाणियदेवस्स पुधत्तेण सव्वमहंतरूवं विउव्वमाणस्स पढमसमयपंचिंदियउक्कस्सपरिणामजोगेगसमयपबद्धग्गहणादो। उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, मणुस्सस्स पज्जत्तयस्स सण्णिपंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तस्स वा पुव्वकोडाउअस्स पढमसमयविउव्वियप्पहुडि उक्कस्सजोगिस्स पुव्वुक्कस्सविउव्वणद्धस्स मूलसरीरपवेसपढमसमयादिवड्ढमेत्तसमयपबद्धग्गहणादो। पुधत्तेण विउव्विय मूलसरीरं पविट्ठपढमसमए ट्ठिददेवस्स उक्कस्सिया परिसादणकदी

वैक्रियिक शरीरकी जघन्य संघातनकृतिसे उसकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, इसमें सर्वलघु कालमें उत्तर शरीरकी विक्रियाको प्राप्त हुए, जघन्य योगसे संयुक्त, तथा विक्रियाकालके द्वितीय समयमें वर्तमान ऐसे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवके कुछ कम दो समयप्रबद्धोंका ग्रहण किया है। उससे जघन्य परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, इसमें जघन्य योगसे उत्तर शरीरकी विक्रियाको प्राप्त हुए तथा मूल शरीरमें प्रवेश करके दीर्घ काल तक निर्जरा करनेवाले ऐसे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवके अनिर्लेपित चरम समयमें एक अन्तिम निषेकका ग्रहण किया है। यदि कहा जाय कि यह कृति वैक्रियिक शरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृतिसे असंख्यातगुणी है, यह बात असिद्ध है; सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, अन्तिम निषेकके आनेमें निमित्तभूत संख्यात आवलियोंसे योगगुणकारको अपवर्तित करनेपर पल्योपमका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है। उससे उत्कृष्ट संघातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, इसमें सबसे महान् रूपकी पृथक् विक्रिया करनेवाले वैमानिक देवके प्रथम समयमें पंचेन्द्रियके उत्कृष्ट परिणामयोगसे ग्रहण किये गये एक समयप्रबद्धका ग्रहण किया है। उससे उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, पूर्वकोटि आयुवाले, विक्रिया करनेके प्रथम समयसे लेकर उत्कृष्ट योगसे संयुक्त और पहलेसे उत्कृष्ट विक्रियाकालसे सहित ऐसे मनुष्य पर्याप्तके अथवा संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तके मूल शरीरमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्यका ग्रहण किया है।

शंका—पृथक् विक्रिया करके मूल शरीरमें प्रविष्ट होनेके प्रथम समयमें स्थित

किण्ण होदि ? ण, तत्थ मूलसरीरं पविट्ठे वि संघडंतं-गलंतपरमाणू पेक्खिदूण संघादण-परिसादणं मोत्तूण परिसादणाभावादो । उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । कुदो ? आरणच्चुददेवस्स बावीससागरोवमियस्स अप्पभासा-मणद्धस्स अप्पविउव्वयस्स चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदस्स चरिमसमयभवत्थस्स चरिमसंचयग्गहणादो । णवगेवज्जप्पहुडि उवरिमदेवेसु उक्कस्सं किण्ण घेप्पदे ? ण, तत्थ पाएणुक्कड्डणाभावादो णिसेगमस्सिदूण असंखेज्जलोगेण खंडिदएगखंडेण अहियत्तुवलंभादो ।

आहारयस्स जहण्णिया संघादणकदी थोवा, उववादजोगेगसमयपबद्धमेत्तत्तादो । जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । कुदो ? एगंताणुवड्डिजोगेगसमयपबद्धस्स पाहाण्णियादो । उक्कस्सिया संघादणकदी असंखेज्जगुणा । कुदो ? जहण्णएगंताणुवड्डिजोगादो आहारसरीरमुट्ठावेंतस्स उक्कस्सुववादजोगस्स असंखेज्जगुणत्तादो । जहण्णिया परिसादणकदी

हुए देवके उत्कृष्ट परिशातनकृति क्यों नहीं होती ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, वहां मूल शरीरमें प्रविष्ट होनेपर भी आनेवाले व गलनेवाले परमाणुओंकी अपेक्षा संघातन-परिशातनको छोड़कर केवल परिशातनका अभाव है ।

उससे उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति विशेष अधिक है, क्योंकि, इसमें जिसकी बाईस सागरकी आयु है, जिसका वचनयोग और मनोयोगमें थोड़ा काल गया है, जिसने इस कालके भीतर विक्रिया अल्प की है, जो चरम और द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगको प्राप्त हुआ है और जो भवके अन्तिम समयमें स्थित है उस आरण और अच्युत कल्पवासी देवके अन्तमें प्राप्त होनेवाले संचयका ग्रहण किया है ।

शंका — नवग्रैवेयकसे लेकर आगेके देवोंमें उत्कृष्ट संचयका ग्रहण क्यों नहीं करते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, वहां प्रायः करके उत्कर्षणका अभाव है, इसलिये निषेककी अपेक्षा उसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो एक भाग प्राप्त होता है उतनी अधिकता पायी जाती है, अतः वहां उत्कृष्ट संचयका ग्रहण नहीं किया ।

आहारक शरीरकी जघन्य संघातनकृति स्तोक है, क्योंकि, वह उपपादयोगसे ग्रहण किये गये एक समयप्रबद्ध प्रमाण है । उससे जघन्य संघातन-परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, यहां एकान्तानुवृद्धियोगसे ग्रहण किये गये एक समयप्रबद्धकी प्रधानता है । उससे उत्कृष्ट संघातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, आहारक शरीरको उत्पन्न करनेवाले जीवका उत्कृष्ट उपपादयोग जघन्य एकान्तानुवृद्धियोगसे असंख्यात-

---

१ प्रतिषु 'संगलंत' इति पाठः ।

असंखेज्जगुणा, आहारसरीरमुट्ठाविय सव्वजहण्णकालेण मूलसरीरं पविसिय सव्वचिरेण कालेण आहारसरीरं णिल्लेवंतस्स चरिमसमयअणिल्लेविदस्स परिणामजोगागदएगसमयपबद्धणिसेगग्गहणादो। उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा। कुदो ? गुणिदकमेण आहारदव्वसंचयं काऊण मूलसरीरं पविट्ठपढमसमए वट्टमाणस्स उक्कस्सपरिणामजोगागददिवड्ढमेत्तसमयपबद्धग्गहणादो। उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। कुदो ? मूलसरीरं पविट्ठपढमसमए गलिददव्वस्स आहारसरीरमुट्ठावेंतस्स चरिमसमए उवलंभादो।

तेजइयस्स जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी थोवा, छावट्ठिसागरोवमाणि सुहुमेइंदिएसु खविदकम्मंसियलक्खणेणच्छिदस्स पुणो एयंताणुवड्ढीए बंधादो णिज्जराए अहिययरप्पदेसे दिवड्ढमेत्तसमयपबद्धग्गहणादो। जहण्णिया परिसादणकदी विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण ? सुहुमेइंदिएसु खविदकम्मंसियलक्खणेण छावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय जहण्णदव्वं काऊण तत्तो उव्वट्टिय मणुस्सेसुप्पाज्जिय अट्ठवस्सेसु कयसंचयमेत्तेण। केवली होदूण

गुणा है। उससे जघन्य परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, इसमें आहार शरीरको उत्पन्न कराकर और सर्वजघन्य काल द्वारा मूल शरीरमें प्रवेश करके जो सर्वचिर काल द्वारा आहारक शरीरको निर्लेपित करते हुए चरम समयमें अनिर्लेपित रहता है उस जीवके परिणामयोगसे आये हुए एक समयप्रबद्धके निषेकका ग्रहण किया है। उससे उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, इसमें गुणित क्रमसे आहार द्रव्यका संचय करके मूल शरीरमें प्रविष्ट होनेके प्रथम समयमें वर्तमान प्रमत्तसंयत जीवके उत्कृष्ट परिणामयोगसे आये हुए डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्यका ग्रहण किया है। उससे उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति विशेष अधिक है, क्योंकि, मूल शरीरमें प्रविष्ट होनेके प्रथम समयमें जो द्रव्य जीर्ण होता है वह आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवालेके अन्तिम समयमें पाया जाता है।

तैजसशरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति स्तोक है, क्योंकि जो छयासठ सागरोपम काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें क्षपितकर्मांशिक स्वरूपसे रहा है उस जीवके एकान्तानुवृद्धिसे हुए बन्धकी अपेक्षा निर्जराके अधिकतर प्रदेशमें डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र लिये गये हैं। उससे जघन्य परिशातनकृति विशेष अधिक है। कितने मात्रसे अधिक है ? सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें क्षपितकर्मांशिक स्वरूपसे छयासठ सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके और इस द्वारा द्रव्यको जघन्य करके वहांसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर आठ वर्षोंमें जितना संचय होगा उतने प्रमाणसे अधिक है।

शंका—केवली होकर कुछ कम पूर्वकोटि काल तक विहार करनेवाले जीवके

---

१ प्रतिषु 'पबद्धे णिसेग-' इति पाठः।

देसूणपुव्वकोडिं विहरमाणस्स अट्ठवस्ससंचिदस्स णिम्मूलक्खओ किण्ण जायदे ? ण, णोकम्मस्स गुणसेडीए णिज्जराभावादो। उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, गुणिदकम्मंसियलक्खणेण छावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय मणुस्सेसुप्पज्जिय अट्ठवस्साणमुवरि संजमं घेत्तूण अंतोमुहुत्तेण अजोगिगुणट्ठाणपढमसमए ट्ठिदस्स उक्कस्सपरिणामजोगेण बद्धदिवड्ढमेत्तपंचिंदियसमयपबद्धुवलंभादो। उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण ? मणुस्सेसु णिज्जरिदद्व्वमेत्तेण।

कम्मइयस्स जहण्णिया परिसादणकदी थोवा, अजोगिचरिमसमयदेसूणदिवड्ढमेत्तेइंदियसमयपबद्धग्गहणादो। जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा, चदुअघादिकम्मपोग्गलक्खंधादो सुहुमेइंदियअपज्जत्तअट्ठकम्मक्खंधस्स सादिरेयदुगुणत्तदंसणादो। उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, गुणिदकम्मंसियलक्खणेण कम्मट्ठिदिं भमिय सत्तमपुढवीणेरइएसु उक्कस्सं करिय तत्तो उव्वट्टिय अंतोमुहुत्ताहियअट्ठवस्सेहि अजोगिपढमसमए ट्ठिदस्स दिवड्ढमेत्तपंचिंदियसमयपबद्धुवलंभादो। उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी सादि-

---

आठ वर्षमें संचित हुए द्रव्यका निर्मूल क्षय क्यों नहीं होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, नोकर्मकी गुणश्रेणि रूपसे निर्जरा नहीं होती।

जघन्य परिशातनकृतिसे उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, गुणितकर्मांशिक स्वरूपसे छयासठ सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके मनुष्योंमें उत्पन्न हो आठ वर्षके बाद संयमको ग्रहणकर अन्तमुहूर्त काल द्वारा अयोगी गुणस्थानको प्राप्त हो उसके प्रथम समयमें स्थित जीवके उत्कृष्ट परिणामयोगसे बद्ध पंचेन्द्रिय सम्बन्धी डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य पाया जाता है। उससे उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति विशेष अधिक है। कितने मात्रसे विशेष अधिक है ? मनुष्योंमें जितना द्रव्य निर्जीर्ण हुआ है उतने मात्रसे अधिक है।

कार्मणशरीरकी जघन्य परिशातनकृति स्तोक है, क्योंकि, इसमें अयोगकेवलीके अन्तिम समयमें एकेन्द्रिय सम्बन्धी कुछ कम डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्यका ग्रहण किया है। उससे जघन्य संघातन-परिशातनकृति संख्यातगुणी है, क्योंकि, चार अघातिया कर्म-पुद्गलस्कन्धोंकी अपेक्षा सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तके आठ कर्मोंके स्कन्ध दुगुणेसे कुछ अधिक देखे जाते हैं। उससे उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है, क्योंकि, गुणितकर्मांशिक स्वरूपसे कर्मस्थिति काल तक भ्रमणकर सप्तम पृथिवीके नारकियोंमें गया और वहां इस द्रव्यको उत्कृष्ट करके वहांसे निकलकर अन्तमुहूर्त अधिक आठ वर्ष काल द्वारा अयोगी गुणस्थानको प्राप्त हो इसके प्रथम समयमें स्थित जीवके पंचेन्द्रिय सम्बन्धी डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य पाया जाता है। उत्कृष्ट

रेयदुगुणा, चदुअघादिकम्मपोग्गलखंधादो सत्तमपुढविणेरइयचरिमसमयअट्ठकम्मक्खंधस्स सादिरेयदुगुणत्तदंसणादो । सत्थाणप्पाबहुगं गदं ।

परत्थाणे पयदं । सव्वत्थोवा ओरालियस्स जहण्णिया संघादणकदी । संघादण-परिसादणकदी जहण्णिया असंखेज्जगुणा । परिसादणकदी जहण्णिया असंखेज्जगुणा । ओरालियस्स उक्कस्सिया संघादणकदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । वेउव्वियस्स जहण्णिया संघादणकदी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जदिभागो । जहण्णिया तस्सेव संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । परिसादणकदी जहण्णिया असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया संघादणकदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । आहारयस्स जहण्णिया संघादणकदी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जदिभागो । जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया[1] संघादणकदी असंखेज्जगुणा । जहण्णिया परिसादण-

---

संघातन-परिशातनकृति साधिक दूनी है, क्योंकि, चार अघातिया कर्मपुद्गलस्कन्धोंसे सातवीं पृथिवीके नारकीके अन्तिम समयमें प्राप्त आठ कर्मोंके स्कन्ध साधिक दूने देखे जाते हैं । इस प्रकार स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

परस्थानमें अल्प-बहुत्वका प्रकरण है— औदारिकशरीरकी जघन्य संघातनकृति सबमें स्तोक है । इससे इसीकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी जघन्य परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट संघातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति विशेष अधिक है । इससे वैक्रियिक शरीरकी जघन्य संघातनकृति असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे वैक्रियिकशरीरकी ही संघातन-परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी जघन्य परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट संघातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति विशेष अधिक है । इससे आहारकशरीरकी जघन्य संघातनकृति असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे इसीकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट संघातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी जघन्य

---

१ अप्रतौ '-कदी विसेसाहिया तेजइयस्स उक्कस्सिया ' इति पाठः ।

कदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । तेजइयस्स जहण्णिया संघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा । तस्सेव जहण्णिया परिसादणकदी विसेसाहिया । उक्कस्सिया परिसादण-कदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । कम्मइयस्स जहण्णिया परिसादणकदी अणंतगुणा । तस्सेव जहण्णिया संघादण-परिसदणकदी दुगुणा विसेसाहिया । उक्कस्सिया परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । उक्कस्सिया संघादणकदी सादिरेय-दुगुणा । एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

संपधि एत्थ अणियोगद्दाराणि देसामासियसुत्तसूइदाणि भणिस्सामो — तत्थ संतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । ओघेण ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीराणमत्थि संघादणकदी परिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी च [$\frac{1}{3}\ \frac{1}{3}\ \frac{1}{3}$] । तेजा-कम्मइय-सरीराणमत्थि परिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी च[1] $\frac{1}{2}\ \frac{1}{2}$ । णिरयगदीए

....

परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति विशेष अधिक है । इससे तैजस शरीरकी जघन्य संघातन-परिशातनकृति अनन्तगुणी है । इससे उसकी ही जघन्य परिशातन-कृति विशेष अधिक है । इससे इसीकी उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति विशेष अधिक है । इससे कार्मणशरीरकी जघन्य परिशातनकृति अनन्तगुणी है । इससे उसकी ही जघन्य संघातन-परिशातनकृति दुगुणी विशेष अधिक है । इससे इसीकी उत्कृष्ट परिशातनकृति असंख्यातगुणी है । इससे इसीकी उत्कृष्ट संघातन-परिशातनकृति कुछ अधिक दुगुणी है । इस प्रकार अल्प-बहुत्व समाप्त हुआ ।

अब यहां देशामर्शक सूत्रके द्वारा सूचित अनुयोगद्वारोंको कहते हैं—उनमें सत्प्ररूपणाके आश्रित निर्देश ओघ और आदेश रूपसे दो प्रकारका है । ओघकी अपेक्षा औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरोंके संघातनकृति, परिशातनकृति और संघातन-परिशातनकृति होती है । तैजस व कार्मण शरीरोंके परिशातनकृति और संघातन परि-शातनकृति होती है ।

विशेषार्थ—यहां ऐसा जान पड़ता है कि औदारिक आदि तीन शरीरोंकी तीन तीन कृतियां होती हैं, इसलिये इसका $\frac{1}{3}\ \frac{1}{3}\ \frac{1}{3}$ ऐसा चिन्ह रहा है । और शेष दो शरीरोंकी दो दो कृतियां होती हैं, इसलिये इसके लिये $\frac{1}{2}\ \frac{1}{2}$ ऐसा चिन्ह रहा है । मूलमें जो चिन्ह है वह

....

१ अ-आप्रत्योः (१ १ १ / ० ० ० ० ० / + + + + +) एवंविधा, काप्रतौ तु (१ १ १ / ० ० ० ० / + + + +) एवंविधा संदृष्टिरत्र ।

णेरइएसु अत्थि वेउव्वियसंघादणकदी संघादण-परिसादणकदी च [१/१/२], तेजा-कम्मइयाणं संघादण-परिसादणकदी च[१] १/२/१ । णेरइएसु वेउव्वियपरिसादणकदी णत्थि, पुधे-[२]विउव्वणाभावादो। एवं सत्तसु पुढवीसु । सव्वदेवाणं एवं चेव । देवेसु पुधे[२]विउव्वणसंभवादो वेउव्वियपरिसादणकदी किण्ण भण्णदे ? ण, मूलसरीरमछंडिय विउव्वमाणाणं देवाणं सुद्धपरिसादणाणुवलंभादो ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणं पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स य अत्थि ओरालिय-वेउव्विय-तिण्णि-तिण्णिपदा तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी च[३] ४/१/३ ४/१/३ ४/२/१ । पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तएसु अत्थि ओरालियसंघादणकदी संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी च ।

अशुद्ध प्रतीत होता है । आगे गति मार्गणामें ऊपरका अंक गतिसूचक, मध्यका अंक शरीर-सूचक और नीचेका अंक कृतियोंका सूचक रहा होगा ।

नरकगतिमें नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति और संघातन-परिशातनकृति होती है । तैजस और कार्मण शरीरोंके संघातन-परिशातनकृति होती है । नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती, क्योंकि, उनके पृथक् विक्रियाका अभाव है । इस प्रकार सात पृथिवियोंमें कहना चाहिये । सब देवोंके भी इसी प्रकार ही कहना चाहिये ।

शंका—देवोंमें पृथक् विक्रिया सम्भव होनेसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति क्यों नहीं कही जाती ?

समाधान— नहीं कही जाती, क्योंकि, मूल शरीरको न छोड़कर विक्रिया करने-वाले देवोंके शुद्ध परिशातनकृति नहीं पायी जाती ।

तिर्यग्गतिमें तिर्यंचोंके और तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके औदारिक व वैक्रियिक शरीरके तीनों तीनों पद हैं और तैजस व कार्मण शरीरके संघातन-परिशातनकृति है । पंचे-न्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति व संघातन-परिशातनकृति होती है और तैजस व कामण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है ।

---

१ अप्रतौ १/+++ एवंविधा संदृष्टिरत्र, आ-काप्रत्योस्तत्र न काचित्संदृष्टिः ।

२ प्रतिषु 'पुढ-' इति पाठः ।

३ प्रतिष्वत्र ४/०/++ ६/०/++ एवंविधा, मप्रतौ तु ६/०/++ ६/०/++ एवंविधा संदृष्टिः ।

मणुसगदीए मणुसतियस्स ओघभंगो। णवरि मणुसिणीसु आहारपदं णत्थि। मणुस-अपज्जत्ताणं तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। एइंदियाणं बादराणं तेसिं चेव पज्जत्ताणं च तिरिक्ख-भंगो। बादरेइंदियअपज्जत्ताणं सुहुमाणं तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ताणं सव्वविगलिंदियाणं पंचिंदिय-तसअपज्जत्ताणं च तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। पंचिंदियदोण्णिपदाणं[1] ओघभंगो। एवं तसदुवस्स। सव्वपुढवीकाइय-सव्वआउकाइय-सव्ववणप्फदिकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउ-काइयअपज्जत्ताणं सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइयाणं तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ताणं च पंचिं-दियअपज्जत्तभंगो। तेउकाइय-वाउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइयाणं तेसिं चेव पज्ज-त्ताणं च एइंदियभंगो।

पंचमणजोगीसु पंचवचिजोगीसु अत्थि ओरालिय-वेउव्विय-आहारपरिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी [च। संघादणकदी] किण्ण उत्ता? ण, संघादणकदीए कायजोगं मोत्तूण अण्णजोगाभावादो। तेजा-कम्मइयाणं संघादण-परिसादणकदी अत्थि। कायजोगीण-

मनुष्यगतिमें मनुष्यत्रिकके ओघके समान प्ररूपणा है। विशेष इतना है कि मनुष्यनियोंमें आहारपद नहीं होता। मनुष्य अपर्याप्तकोंकी तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान प्ररूपणा है। एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय बादर और उनके ही पर्याप्तोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म व उनके ही पर्याप्त-अपर्याप्त, सब विकले-न्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त, इन सबकी प्ररूपणा तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है। पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। इसी प्रकार त्रस व त्रस पर्याप्तोंकी भी प्ररूपणा ओघके समान है।

सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब वनस्पतिकायिक, बादर तेजकायिक व बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त, इनकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है। तेजकायिक, वायु-कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक और उनके ही पर्याप्तोंकी प्ररूपणा एके-न्द्रिय जीवोंके समान है।

पांच मनोयोगियों और पांच वचनयोगियोंमें औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरकी परिशातनकृति और संघातन-परिशातनकृति होती है।

शंका — इनके उक्त शरीरोंकी संघातनकृति क्यों नहीं कही?

समाधान — नहीं कही, क्योंकि, संघातनकृतिमें काययोगको छोड़कर दूसरा योग नहीं होता।

पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगियोंमें तैजस और कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है।

१ अ-आप्रत्योः 'पंचिं० दोण्णि०', काप्रती 'पंचिंदियदोण्णि' इति पाठः।

मोघभंगो । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणं णत्थि, अजोगिं मोत्तूण अण्णत्थ तस्साभावादो । ओरालियकायजोगीसु अत्थि ओरालियसरीरपरिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी वेउव्विय-तिण्णिपदा आहारपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी च । ओरालियमिस्सकाय-जोगीणं तसअपज्जत्तभंगो । वेउव्वियकायजोगीसु अत्थि वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-संघादण-परि-सादणकदी । वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु अत्थि वेउव्वियसंघादणकदी संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी च । आहारकायजोगीसु अत्थि ओरालियपरिसादणकदी आहार-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी च । एवं आहारमिस्सकायजोगीसु । णवरि आहार-संघादणं पि अत्थि । कम्मइयकायजोगीसु अत्थि ओरालियपरिसादणकदी, लोगमावूरिदकेवलीसु तदुवलंभादो । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी च अत्थि ।

इत्थि-णवुंसयवेदाणं तिरिक्खोघभंगो । पुरिसवेदाणमोघभंगो । णवरि तेजा-कम्मइय-

---

काययोगियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मण शरीरकी परिशातनकृति नहीं होती, क्योंकि, अयोगकेवलीको छोड़कर अन्य मार्गणाओंमें इस कृतिका अभाव है । औदारिककाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परि-शातनकृति व संघातन-परिशातनकृति, वैक्रियिकशरीरके तीनों पद, आहारकशरीरकी परिशातनकृति, तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है । औदा-रिकमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा त्रस अपर्याप्तोंके समान है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें वैक्रियिकशरीरकी तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघा-तनकृति व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातन-कृति होती है ।

आहारकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा आहारक, तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगियोंमें समझना चाहिये । विशेष केवल इतना है कि इनमें आहारकशरीरकी संघातनकृति भी होती है । कार्मणकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति होती है, क्योंकि, लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त हुए केवलियोंमें उक्त कृति पायी जाती है । उनमें तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति भी होती है ।

स्त्री और नपुंसक वेदियोंकी प्ररूपणा तिर्यंच ओघके समान है । पुरुषवेदियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि इनके तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातन-

---

१ अप्रतौ 'आहारसंकादणं', काप्रतौ 'आहारमिस्ससंघादणं' इति पाठः ।

परिसादणं णत्थि । अवगदवेदाणमत्थि ओरालिय-तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी च । एवमकसाइ-केवलणाणि केवलदंसणि-जहाक्खादाणं वत्तव्वं । चदुकसाईण-मोघं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । मदि-सुदअण्णाणीणं तिरिक्खोघं । एवं विभंग-मणपज्जवणाणीणं । णवरि ओरालियसंघादणं णत्थि । आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीणं कायजोगिभंगो । संजदाणमोघं । णवरि ओरालियसंघादणं णत्थि । एवं सामाइय-छेदोवट्ठावण-सुद्धिसंजदाणं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणं णत्थि । परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धि-संजदेसु अत्थि ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी । संजदासंजदाणं मणपज्जव-भंगो । असंजदाणं तिरिक्खभंगो । चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणि-ओहिदंसणीणं आभिणि-बोहियभंगो ।

किण्ण-णील-काउलेस्सियाणं असंजदभंगो । तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सियाणं आभिणि-बोहियभंगो । भवसिद्धिएसु ओघं । अभवसिद्धियाण असंजदभंगो । सम्माइट्ठी खइयसम्मा-

---

कृति नहीं होती । अपगतवेदियोंके औदारिक, तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति और संघातन-परिशातनकृति भी होती है । इसी प्रकार अकषायी, केवलज्ञानी, केवल-दर्शनी और यथाख्यातसंयमी जीवोंके कहना चाहिये । चार कषायवाले जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि उनके तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । मति व श्रुत अज्ञानियोंकी प्ररूपणा तिर्यंच ओघके समान है । इसी प्रकार विभंगज्ञानी व मनःपर्ययज्ञानियोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि इनके औदारिक-शरीरकी संघातनकृति नहीं होती । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा काययोगियोंके समान है । संयत जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेषता इतनी है कि उनके औदारिकशरीरकी संघातनकृति नहीं होती । इसी प्रकार सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उनके तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । परिहारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परा-यिकशुद्धिसंयतोंमें औदारिक, तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति होती है । संयतासंयत जीवोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । असंयत जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है ।

कृष्ण, नील व कापोत लेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है । तेजलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । भव्यसिद्धिकोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । अभव्यसिद्धिकोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ।

सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

इट्ठी ओघं। वेदगसम्मादिट्ठीणं चक्खुदंसणिभंगो। उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणं विभंगणाणिभंगो। सासणसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणं असंजदभंगो। एवमसण्णीणं। सण्णीणं पुरिसवेदभंगो। आहारएसु चक्खुदंसणिभंगो। अणाहारएसु अत्थि ओरालियपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी संघादण-परिसादणकदी च। एवं संताणुगमो समत्तो।

दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण ओरालिय-संघादणकदी संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी दव्व-पमाणेण केवडिया? अणंता। ओरालियपरिसादणकदी वेउव्वियतिण्णिपदा केत्तिया? असंखेज्जा पदरस्स असंखेज्जदिभागो। आहारतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी केत्तिया? संखेज्जा। कधं कदिसद्दो जीवाणं वाचओ? क्रियन्ते अस्यां पुद्गलपरिसादनादय इति कृतिशब्दनिष्पत्तिः, करणाणं मूलं कारणमिदि जीवा मूलकरणं।

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु वेउव्वियसंघादणकदी संघादण-परिसादणकदी

वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा चक्षुदर्शनी जीवोंके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा असंयतोंके समान है। इसी प्रकार असंज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा करना चाहिये। संज्ञियोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है। आहारक जीवोंकी प्ररूपणा चक्षुदर्शनियोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति और संघातन-परिशातनकृति भी होती है। इस प्रकार सत्प्ररूपणानुगम समाप्त हुआ।

द्रव्यप्रमाणानुगमसे ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकार निर्देश है। उनमें ओघकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी संघातनकृति, संघातन-परिशातमकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव द्रव्य प्रमाणसे कितने हैं? उक्त जीव अनन्त हैं। औदारिकशरीरकी परिशातनकृति और वैक्रियिकशरीरके तीनों पद युक्त जीव, कितने हैं? जगप्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात हैं। आहारकशरीरके तीनों पद युक्त तथा तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं? संख्यात हैं।

शंका—कृति शब्द जीवोंका वाचक कैसे हो सकता है?

समाधान—एक तो जिसमें पुद्गलोंके परिशातनादिक किये जाते हैं वह कृति है, ऐसी कृति शब्दकी व्युत्पत्ति है इसलिये कृति शब्दसे जीव लिये गये हैं। दूसरे करणोंका मूल अर्थात् कारण होनेसे जीव मूलकरण हैं इसलिये भी कृतिशब्दका उपयोग जीवोंके लिये किया गया है।

गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति,

तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं सत्तसु पुढवीसु । एवं देव-भवणवासियप्पहुडि जाव सहस्सारे त्ति ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणमोरालिय-वेउव्वियतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी ओघं । पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स ओरालिय-वेउव्वियतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? असंखेज्जा । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं ओरालियसंघादणकदी संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं मणुसअपज्जत्त-पंचिंदिय-तसअपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-सव्वपुढविकाइय-सव्वआउकाइय-बादर - तेउकाइय-बादरवाउकाइयअपज्जत्ताणं तेसिं चेव सुहुमाणं तप्पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरवणप्फदि-पत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ताणं च ।

मणुसगदीए मणुसेसु ओरालियसंघादणकदी संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? असंखेज्जा । सेसपदा संखेज्जा । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपदा संखेज्जा । णवरि मणुसिणीसु आहारपदं णत्थि ।

संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इस प्रकार सातों पृथिवियोंमें कहना चाहिये । इसी प्रकार देव और भवनवासी आदि सहस्रार कल्प तक देवोंमें कहना चाहिये ।

तिर्यग्गतिमें तिर्यंचोंमें औदारिक और वैक्रियिक शरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । पंचेन्द्रिय आदि तीन तिर्यंचोंके औदारिक व वैक्रियिक शरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? उक्त जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय व त्रस अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, बादर तेजकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त तथा उनके ही सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त एवं बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त व अपर्याप्तोंके कहना चाहिये ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति व संघातन-परिशातन-कृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? उक्त जीव असंख्यात हैं । मनुष्योंमें शेष पद युक्त जीव संख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सब पद युक्त जीव संख्यात हैं । विशेष इतना है कि मनुष्यनियोंमें आहारक पद नहीं होता ।

आणदादि जाव अवराइदा त्ति वेउव्वियसंघादणकदी केत्तिया ? संखेज्जा । कुदो ? मणुसपज्जत्तपडिभागेण तत्थुप्पत्तीए । सेसदोपदा असंखेज्जा । सव्वट्ठे तिण्णिपदा संखेज्जा ।

एइंदियाणं बादराणं तेसिं पज्जत्ताणं च तिरिक्खभंगो । बादरेइंदियअपज्जत्ताणं सुहुमेइंदियाणं तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ताणं ओरालियसंघादणकदी संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? अणंता । पंचिंदियदुगस्स ओरालिय-वेउव्विय-तिण्णिपदा तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? असंखेज्जा । सेसपदा संखेज्जा ।

तेउकाइय-वाउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइयाणं तेसिं चेव पज्जताणमोरालिय-वेउव्वियतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? असंखेज्जा । वणप्फदि-णिगोद-बादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणमेइंदियअपज्जत्तभंगो । तसदुगस्स पंचिंदियदुगभंगो ।

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं ओरालिय-वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? असंखेज्जा । आहारदोपदा संखेज्जा । काय-

---

आनतसे लेकर अपराजित विमान तक वैक्रियिक शरीरकी संघातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? संख्यात हैं, क्योंकि, वहां मनुष्य पर्याप्तोंके प्रतिभागसे उत्पत्ति है । शेष दो पद युक्त जीव असंख्यात हैं । सर्वार्थसिद्धि विमानमें तीनों पद युक्त जीव संख्यात हैं ।

एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उसके ही पर्याप्त-अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? उक्त जीव अनन्त हैं । पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंमें औदारिक और वैक्रियिक शरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? उक्त जीव असंख्यात हैं । इनमें शेष पद युक्त जीव संख्यात हैं ।

तेजकायिक, वायुकायिक, बादर तेजकायिक व बादर वायुकायिक तथा उनके ही पर्याप्तोंमें औदारिक व वैक्रियिक शरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? उक्त जीव असंख्यात हैं । वनस्पतिकायिक निगोद बादर सूक्ष्म पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है । त्रस व त्रस पर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है ।

पांच मनयोगी और पांच वचनयोगियोंमें औदारिक व वैक्रियिक शरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । उक्त जीवोंमें आहारशरीरके दो पद अर्थात् परि-

जोगी ओघं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणं णत्थि । [ओरालियकायजोगीसु] ओरालियसंघादण- [संघादण] परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? अणंता । ओरालियपरिसादणकदी वेउव्वियतिण्णिपदा असंखेज्जा । आहारपरिसादण-कदी संखेज्जा । ओरालियमिस्सकायजोगीणं सुहुमेइंदियभंगो । वेउव्वियकायजोगीसु दोण्णिपदा असंखेज्जा । एवं वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं । णवरि संघादण-कदी अत्थि । आहारकायजेगि-आहारमिस्सकायजोगीणं तिण्णि-चत्तारिपदा संखेज्जा । कम्मइयकायजोगीणं तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केत्तिया ? अणंता । ओरालिय-परिसादणकदी संखेज्जा ।

इत्थिवेदाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एवं पुरिसवेदाणं । णवरि आहारातिण्णिपदा संखेज्जा । णवुंसयवेदाणं तिरिक्खभंगो । अवगदवेदेसु चत्तारिपदा संखेज्जा । एवमकसाइ-केवलणाणि-केवलदंसणि-जहाक्खादसुद्धिसंजदाणं वत्तव्वं । चत्तारिकसायाणं कायजोगिभंगो ।

शातन व संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यात हैं । काययोगियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि इनमें तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । [औदारिककाययोगियोंमें] औदारिकशरीरकी [संघातन व] संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इनमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति व वैक्रियिकशरीरके तीनों पद युक्त जीव असंख्यात हैं । आहारकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यात हैं । औदारिकमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है । वैक्रियिककाययोगियोंमें दोनों पद युक्त जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके कहना चाहिये । विशेषता इतनी है कि इनके संघातनकृति होती है । आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगियोंमें तीन व चार पद युक्त जीव संख्यात हैं । कार्मणकाययोगियोंमें तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इनमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यात हैं ।

स्त्रीवेदियोंके द्रव्यप्रमाणकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदियोंकी प्ररूपणा है । विशेषता इतनी है कि आहारकशरीरके तीनों पद युक्त जीव संख्यात हैं । नपुंसकवेदियोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । अपगतवेदियोंमें चार पद युक्त जीव संख्यात हैं ।

इसी प्रकार अकषायी, केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और यथाख्यातशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

चार कषाय युक्त जीवोंकी प्ररूपणा काययोगियोंके समान है । मति और

मदि-सुदअण्णाणीणं तिरिक्खभंगो। विभंगणाणीणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि ओरालिय-संघादणकदी णत्थि। आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु ओरालियसंघादणकदी आहारतिण्णि-पदा संखेज्जा। सेसपदा असंखेज्जा[1]। मणपज्जवणाणीसु अप्पप्पणो पदा संखेज्जा।

संजदेसु ओरालियसंघादणकदी णत्थि। सेसपदा संखेज्जा। परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु दोपदा संखेज्जा। संजदासंजदाणं विभंगभंगो। असंजदाणं तिरिक्खभंगो। चक्खुदंसणीणं पुरिसवेदभंगो। अचक्खुदंसणीणं कोधभंगो। ओधिदंसणीणं ओहिणाणिभंगो। किण्ण-णील-काउलेस्सियाणं तिरिक्खभंगो। तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सियाणं ओहिणाणिभंगो। भवसिद्धियाणं ओघं। अभवसिद्धियाणं असंजदभंगो। सम्मादिट्ठि-खइय-सम्मादिट्ठीणं ओहिणाणिभंगो। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी अत्थि। वेदगसम्मादिट्ठीणं ओहिभंगो। उवसमसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं विभंगणाणिभंगो। सासणसम्मादिट्ठीणं

श्रुत अज्ञानियोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। विभंगज्ञानियोंकी प्ररूपणा पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। विशेष इतना है कि उनके औदारिक-शरीरकी संघातनकृति नहीं होती। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति और आहारकशरीरके तीनों पद युक्त जीव संख्यात हैं। शेष पद युक्त जीव असंख्यात हैं। मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपने अपने पद युक्त जीव संख्यात हैं।

संयत जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति नहीं होती। शेष पद युक्त जीव संख्यात हैं। परिहारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें दो पद युक्त जीव संख्यात हैं। संयतासंयतोंकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान है। असंयतोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। चक्षुदर्शनियोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है। अचक्षु-दर्शनियोंकी प्ररूपणा क्रोधकषायी जीवोंके समान है। अवधिदर्शनियोंकी प्ररूपणा अवधि-ज्ञानियोंके समान है। कृष्ण, नील व कापोत लेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है। भव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। अभव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है।

सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है। विशेष इतना है कि उनके तैजस और कार्मण शरीरकी परिशातनकृति होती है। वेदक-सम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी

---

१ प्रतिषु ' संखेज्जा ' इति पाठः।

पंचिंदियतिरिक्खभंगो। मिच्छाइट्ठीणं असंजदभंगो। सण्णीणं पुरिसवेदभंगो। असण्णीणं तिरिक्खभंगो। आहारएसु ओघं। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि। अणाहारएसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी संखेज्जा। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी अणंता। एवं दव्वपमाणाणुगमो समत्तो।

खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण ओरालियसंघादण-संघादणपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते? सव्वलोए। ओरालियपरिसादणकदी केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा। वेउव्विय-आहारतिण्णिपदा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं तेजा-कम्मइय-परिसादण[1]कदी।

णिरयगदीए णेरइएसु वेउव्वियसंघादण-संघादणपरिसादणकदी तेजा-कम्मइय-

---

प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। मिथ्यादृष्टियोंकी प्ररूपणा असंयतोंके समान है। संज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है। असंज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। आहारक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेष इतना है कि उनके तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति नहीं होती। अनाहारक जीवोंमें औदारिक, तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यात हैं। तैजस और कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव अनन्त हैं। इस प्रकार द्रव्यप्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

क्षेत्रानुगमसे ओघ और आदेशकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार है। उनमें ओघकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी संघातन व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? उक्त जीव सब लोकमें रहते हैं। औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें, असंख्यात बहुभागोंमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं। वैक्रियिक-शरीर और आहारकशरीरके तीनों पद युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं।

इसी प्रकार तैजसशरीर और कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिवाले जीवोंका कथन करना चाहिये।

नरकगतिमें नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति और संघातन-परि-

---

[1] काप्रतौ 'परिहार०' इति पाठः।

संघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्व-देवेसु च । तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु ओरालियसंघादण-संघादणपरिसादणकदी तेजा-कम्म-इयसंघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे । ओरालियपरिसादणकदी वेउव्वियतिण्णि-पदा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।

पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स ओरालिय-वेउव्वियतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयसंघादण-परि-सादणकदी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु ओरालिय-संघादणकदी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखे-ज्जदिभागे ।

मणुसतिगेसु ओरालियपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी ओघो । सेसपदा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । णवरि मणुसिणीसु आहारपदं णत्थि । मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

शातनकृतिवाले जीव तथा तैजस और कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें और सब देवोंमें जानना चाहिये ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति और संघातन-परिशातन-कृतिवाले जीव तथा तैजसशरीरकी और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । औदारिकशरीरकी परिशातनकृति-वाले और वैक्रियिकशरीरके तीन पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीनके औदारिक और वैक्रियिक शरीरके तीन पद तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? उक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें औदारिक-शरीरकी संघातनकृति तथा औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । शेष पद युक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेष इतना है कि मनुष्यनियोंमें आहारक पद नहीं होता । मनुष्य अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ।

एइंदियाणं तिरिक्खभंगो। बादरेइंदियाणं तेसिं पज्जत्ताणमोरालियसंघादणकदी लोगस्स संखेज्जदिभागे। सेसपदाणं तिरिक्खभंगो। एवं बादरेइंदियअपज्जत्ताणं। णवरि वेउव्वियपदं णत्थि। सुहुमेइंदियाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं च ओरालियसंघादणकदी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्ताणं पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। पंचिंदियदुगस्स मणुसभंगो।

पुढवीकाइय-आउकाइय-सुहुमपुढवीकाइय-सुहुमआउकाय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउ-काइय-वणप्फदि-णिगोद-सुहुमवणप्फदि-सुहुमणिगोदाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं सुहुमेइंदियभंगो। बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताणं बादरतेउकाइयअपज्जत्ताणं बादरवणप्फदि-बादरणिगोदाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं पत्तेयसरीर-तदपज्जत्ताणं च ओरालियसंघादणकदी केवडि-खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। सेसपदा सव्वलोगे। बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादर-वणप्फदिपत्तेगसरीरपज्जत्त-तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो। तेउ-वाउकाइयाणं तिरिक्खभंगो। बादरतेउकाइएसु ओरालियसंघादणकदी परिसादणकदी वेउव्वियतिण्णिपदा

एकेन्द्रिय जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं। शेष पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके कहना चाहिये। विशेष इतना है कि उनके वैक्रियिक पद नहीं होता। सूक्ष्म एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त-अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति और औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सब लोकमें रहते हैं। सब विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है। पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंकी प्ररूपणा मनुष्योंके समान है।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोद जीव तथा उनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके समान है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक व उनके अपर्याप्त, बादर तेजकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद व उनके पर्याप्त अपर्याप्त तथा प्रत्येकशरीर व उनके अपर्याप्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? उक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। शेष पदोंसे युक्त ये सब जीव सब लोकमें रहते हैं। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर वन-स्पतिकायिक व प्रत्येकशरीर पर्याप्त तथा त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है। तेजकायिक और वायुकायिक जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। बादर तेजकायिक जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति व परिशातनकृति तथा

केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । सेसपदा सव्वलोगे । बादरतेउकाइयपज्जत्ता पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो । बादरवाउकाइया बादरेइंदियभंगो । बादरवाउकाइयपज्जत्ताणमोरालियसंघादणकदी संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी लोगस्स संखेज्जदिभागे । सेस-पदा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । बादरवाउकाइयअपज्जत्ताणं बादरेइंदियअपज्जत्तभंगो । तस-दुगस्स पंचिंदियभंगो ।

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु ओरालिय-वेउव्विय-आहारपरिसादणकदी ओरालिय-वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदि-भागे । कायजोगीसु ओघो । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । ओरालियकाय-जोगीसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे । वेउव्विय-तिण्णिपदा ओरालिय-आहारपरिसादणकदी केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । ओरालियमिस्सकायजोगीणं सुहुमेइंदियभंगो । वेउव्वियकायजोगीसु अप्पणो दोपदा

वैक्रियिकशरीरके तीनों पद युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । शेष पद युक्त ये जीव सब लोकमें रहते हैं । बादर तेजकायिक पर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । बादर वायुकायिक जीवोंकी प्ररूपणा बादर एके-न्द्रियोंके समान है । बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं । शेष पदोंसे युक्त वे ही जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । बादर वायुकायिक अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है । त्रस व त्रस पर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय जीवोंके समान है ।

पांच मनयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंमें औदारिक, वैक्रियिक व आहारक-शरीरकी परिशातनकृति तथा औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? उक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । काययोगी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि इनमें तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । औदारिककाययोगी जीवोंमें औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? उक्त जीव सब लोकमें रहते हैं । औदारिककाययोगियोंमें वैक्रियिकशरीरके तीनों पद तथा औदारिक व आहारकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? उक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । औदारिकमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है । वैक्रियिककाययोगियोंमें अपने दो पद युक्त जीव लोकके

लोगस्स असंखेज्जदिभागे । वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं देवभंगो । आहार-आहारमिस्स-ति-चत्तारिपदा[1] लोगस्स असंखेज्जदिभागे । कम्मइयकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदी केवलिभंगो । तेजा-कम्मइय-संघादणपरिसादणकदी सव्वलोगे ।

इत्थिवेदस्स पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एवं पुरिसवेदस्स । णवरि अत्थि आहारतिण्णि-पदा । णउंसयवेदस्स तिरिक्खभंगो । अवगदवेदेसु ओरालियपरिसादणकदी तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा । ओरालिय-संघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवमकसाय-केवलणाण-केवलदंसण-जहाक्खादाणं । चदुकसायाणं कायजोगिभंगो । णवरि ओरालियपरिसादणं लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।

मदि-सुदअण्णाणीणं तिरिक्खभंगो । एवमसंजद-किण्ण-णील-काउलेस्सिय-अभवसिद्धिय-

---

असंख्यातवें भागमें रहते हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा देवोंके समान है । आहारकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति और आहारक, तैजस व कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति, इस प्रकार तीन पद; तथा आहारकमिश्रकाययोगियोंमें इन तीन पदोंके साथ आहारकशरीरकी संघातनकृति, इस प्रकार चार पद युक्त जीव असंख्यातवें भागमें रहते हैं । कार्मणकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा केवली जीवोंके समान है । इनमें तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव सब लोकमें रहते हैं ।

स्त्रीवेदियोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदियोंके भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि इनके आहारकशरीरके तीनों पद होते हैं । नपुंसकवेदियोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । अपगतवेदियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें, असंख्यात बहुभागोंमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं । उक्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । इसी प्रकार अकषायी, केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और यथाख्यातशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिये । चार कषाय युक्त जीवोंकी प्ररूपणा काययोगियोंके समान है । विशेष इतना है कि उनमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

मति और श्रुत अज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । इसी प्रकार असंयत, कृष्ण, नील व कापोतलेश्यावाले, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी

---

१ अप्रतौ ' -आहारमि० चिचचत्तारि ' इति पाठः ।

मिच्छाइट्ठि-असण्णीणं वत्तव्वं । विभंगणाणीणमित्थिवेदभंगो । णवरि ओरालियसंघादणं णत्थि । एवं मणपज्जवणाणि-संजदासंजदाणं । आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीणं पुरिसवेदभंगो । संजदाणं मणुसभंगो । णवरि ओरालियसंघादणं णत्थि । सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदाणं पुरिसवेदभंगो । णवरि ओरालियसंघादणं णत्थि । परिहार-सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु अप्पप्पणो दोपदा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । चक्खुदंसणीणं आभिणिबोहियभंगो । एवं तेउ-पम्मलेस्सिय-वेदगसम्मादिट्ठि-सण्णीणं वत्तव्वं । एवं ओहिदंसणीणं । अचक्खुदंसणीणं कायजोगिभंगो । णवरि ओरालियपरिसादणं लोगस्स असंखेज्जदिभागे । सुक्कलेस्सिएसु मणुसभंगो । णवरि तेजा-कम्मइय-परिसादणं णत्थि । भवसिद्धियाणं ओघो । सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीणं मणुसभंगो । उवसमसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं विभंगभंगो । सासणसम्मादिट्ठीणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । आहारएसु कायजोगिभंगो । णवरि ओरालियपरिसादणं लोगस्स असंखेज्जदिभागे । अणा-

....

जीवोंके कहना चाहिये । विभंगज्ञानियोंकी प्ररूपणा स्त्रीवेदियोंके समान है । विशेष इतना है कि उनके औदारिकशरीरकी संघातनकृति नहीं होती । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी और संयतासंयत जीवोंके कहना चाहिये । आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानियोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । संयत जीवोंकी प्ररूपणा मनुष्योंके समान है । विशेष इतना है कि उनके औदारिकशरीरकी संघातनकृति नहीं होती । सामायिक व छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । विशेष इतना है कि उनके औदारिकशरीरकी संघातनकृति नहीं होती । परिहारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें अपने अपने दो पद युक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

चक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । इसी प्रकार तेज व पद्म लेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये । इसी प्रकार अवधिदर्शनी जीवोंके कहना चाहिये । अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा काययोगियोंके समान है । विशेष इतना है कि इनमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । शुक्ललेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा मनुष्योंके समान है । विशेष इतना है कि उनके तैजस और कार्मण शरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । भव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा मनुष्योंके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । आहारक जीवोंकी प्ररूपणा काययोगियोंके समान है । विशेष इतना है कि इनमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । अनाहारक जीवोंमें औदारिकशरीरकी

हाराणं ओरालियपरिसादणकदीए केवलिभंगो। तेजा-कम्मइयपरिसादणं लोगस्स असंखेज्जदिभागे। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी सव्वलोगे। एवं खेत्ताणुगमो समत्तो।

पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण ओरालियसंघादण-संघादणपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। ओरालियपरिसादणकदीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा। वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। वेउव्वियसंघादणपरिसादणकदीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। आहारतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु वेउव्वियसंघादणकदीए खेत्तभंगो। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीहि लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा।

परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है। इनमें तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं। इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

स्पर्शनानुगमसे ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकार निर्देश है। उनमें ओघसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग, अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। आहारकशरीरके तीनों पद युक्त जीवों द्वारा तथा तैजस व कार्मण शरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया गया है।

आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे

पढमपुढवीए खेत्तभंगो। बिदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए वेउव्वियसंघादणकदीए खेत्तभंगो। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छ-चोद्दसभागा वा देसूणा।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु ओरालियसंघादणकदीए ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए खेत्तभंगो। ओरालियपरिसादणकदी वेउव्वियतिण्णिपदा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। पंचिंदियतिरिक्खएसु ओरालियसंघादणकदीहि लोगस्स असंखेज्जदिभागो। सेसपदेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं एवं चेव। णवरि वेउव्वियतिण्णिपदा ओरालिय-परिसादणं च णत्थि।

मणुसतियस्स ओरालियसंघादणकदीए आहारतिण्णिपदेहि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदीए च केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। ओरालियपरिसादणकदीए तेजा-

---

चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। प्रथम पृथिवीमें स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है। द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है। उक्त पृथिवियोंमें वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है? उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पांच और छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति तथा औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है। तिर्यंचोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरके तीनों पद युक्त जीवोंने लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है। शेष पद युक्त जीवोंने लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और योनिमत् तिर्यंचोंके कहना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा भी इसी प्रकार ही है। विशेषता केवल इतनी है कि उनके वैक्रियिकशरीरके तीनों पद और औदारिकशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती।

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति, आहारकशरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया गया है। इनमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघा-

कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। णवरि मणुसिणीसु आहारपदं णत्थि। मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

देवगदीए देवेसु वेउव्वियसंघादणकदीए णारगभंगो। संघादण-परिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा। भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियाणं वेउव्वियसंघादणकदीए देवभंगो। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धुट्ठ-अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा। सोहम्मीसाणदेवाणं देवभंगो। सणक्कुमारादि जाव सहस्सार-देवाणं वेउव्वियसंघादणकदीए देवभंगो। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। आणदादि जाव अच्चुदा त्ति वेउव्विय-संघादणकदीए देवभंगो। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखे-

....

तन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिक-शरीरके तीनों पद युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है? लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। विशेष इतना है कि मनुष्यनियोंमें आहार पद नहीं होता। मनुष्य अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है।

देवगतिमें देवोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है। देवोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ और नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा देवोंके समान है। इनमें वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। सौधर्म व ईशान कल्पके देवोंकी प्ररूपणा सामान्य देवोंके समान है। सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातन-कृति युक्त देवोंकी प्ररूपणा सामान्य देवोंके समान है। इनमें वैक्रियिक, तैजस व कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तक वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त देवोंकी प्ररूपणा सामान्य देवोंके समान है। इनमें वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा

ज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा । णवगेवज्जादि सव्वट्ठा त्ति खेत्तभंगो ।

एइंदियाणं तिरिक्खभंगो । बादरेइंदियाणं तेसिं पज्जत्ताणं ओरालियसंघादणकदीए लोगस्स संखेज्जदिभागो । सेसपदाणं तिरिक्खभंगो । बादरेइंदियअपज्जत्ताणं सव्वसुहुमाणं खेत्तभंगो । सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । पंचिंदिय-दुगस्स ओरालियसंघादणकदी आहारतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी खेत्तभंगो । ओरालियपरिसादणकदीए केवलिभंगो । ओरालियसंघादणपरिसादणकदी वेउव्वियसंघादणकदी परिसादणकदी लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा [वा देसूणा] सव्वलोगो वा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा [वा देसूणा] असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा ।

पुढवीकाइय-आउकाइय-[सव्वसुहुम-] पुढवीकाइय-सव्वसुहुमआउकाय-सव्वसुहुम-

---

लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। नौ ग्रैवेयकोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तकके देवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

एकेन्द्रिय जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंने लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। शेष पद युक्त जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त और सब सूक्ष्म जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। सब विकलेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंके समान है। पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति, आहारशरीरके तीनों पद युक्त जीव तथा तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति व परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, [कुछ कम] आठ बटे चौदह भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, [कुछ कम] आठ बटे चौदह भाग, असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, [सर्व सूक्ष्म] पृथिवीकायिक, सर्व सूक्ष्म जलकायिक,

तेउकाइय-सव्वसुहुमवाउकाइय-सव्वसुहुमवणप्फदिकाइय-णिगोद-सुहुमवणप्फदि-सुहुमणिगोदाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताणं बादर-वणप्फदि-बादरणिगोदाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरवणप्फदिपत्तेयसरीराणं तेसिमपज्जत्ताणं खेत्तभंगो। बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो। तेउकाइय-वाउकाइयाणं एइंदियभंगो। बादरतेउकाइयाणं ओरालियसंघादणकदीए खेत्तभंगो। सेसपदाणं तिरिक्खभंगो। बादरतेउकाइयपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। बादरवाउकाइयाणं बादरएइंदियभंगो। बादरवाउकाइयपज्जत्ताणं ओरालियसंघादणकदीए लोयस्स संखेज्जदिभागो। ओरालियपरिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं तिरिक्खभंगो। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। बादरवाउकाइयअपज्जत्ताणं बादरेइंदियअपज्जत्तभंगो। तसकाइयतिण्णिपदाणं पंचिंदियतिगभंगो।

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखे-

---

सब सूक्ष्म तेजकायिक, सर्व सूक्ष्म वायुकायिक, सर्व सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म निगोद जीव, उनके पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, उनके अपर्याप्त, बादर वनस्पति, बादर निगोद, उनके पर्याप्त व अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा उनके अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है। तेजकायिक और वायुकायिक जीवोंकी प्ररूपणा एकेन्द्रियोंके समान है। बादर तेजकायिक जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। शेष पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। बादर तेजकायिक पर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। बादर वायुकायिक जीवोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय जीवोंके समान है। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया गया है। औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरके तीनों पद युक्त जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है। तीन त्रसकायिक जीवोंमें तीनों पदोंकी प्ररूपणा तीनों पंचेन्द्रियोंके समान है।

पांच मनयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातन-

ज्जदिभागो सव्वलेगो वा । एवं वेउव्वियपरिसादणकदीए वि । वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदीए लेगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलेगो वा । आहारदोण्णिपदाणं खेत्तभंगो । कायजोगीणमोघो । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणं णत्थि । ओरालियकायजोगीसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए सव्वलेगो । ओरालिय-परिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं तिरिक्खभंगो । आहारपरिसादणकदीए खेत्तभंगो । ओरालियमिस्सकायजोगीसु अप्पणो तिण्णिपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलेगो । वेउव्विय-कायजोगीसु अप्पणो पदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? अट्ठ-तेरह-चोद्दसभागा वा देसूणा । वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं खेत्तभंगो । आहारदुगस्स खेत्तभंगो । कम्मइयकायजोगीणं ओरालियपरिसादणकदीए केवलिभंगो । तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदीए केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलेगो ।

इत्थिवेदस्स ओरालियसंघादणकदीए खेत्तभंगो । परिसादण-संघादणपरिसादणकदीहि

परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है । इसी प्रकार वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी भी प्ररूपणा करना चाहिये । वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है । आहारकशरीरके दो पद युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

काययोगियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि इनके तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । औदारिककाययोगियोंमें औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया गया है । औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरके तीनों पद युक्त जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । आहारकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्र-प्ररूपणाके समान है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें अपने तीनों पद युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया गया है । वैक्रियिक-काययोगियोंमें अपने पदों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ व तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा क्षेत्र-प्ररूपणाके समान है । आहारक और आहारमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । कार्मणकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है । इनमें तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया गया है ।

स्त्रीवेदियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । उक्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति व संघातन-

वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। एवं पुरिसवेदस्स। णवरि आहारतिण्णिपदा अत्थि। णवुंसयवेदस्स तिरिक्खभंगो । अवगदवेदा ओरालियपरिसादण-कदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए केवलिभंगो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए तेजा-कम्मइयपरिसादणकदीए खेत्तभंगो । एवमकसाय-केवलणाणि-जहाक्खादसुद्धिसंजद-केवलदंसणि त्ति वत्तव्वं । चत्तारिकसायाणं कायजोगिभंगो । णवरि केवलिभंगो णत्थि ।

मदि-सुदअण्णाणीणमप्पप्पणो पदाणमोघो । णवरि ओरालियपरिसादणकदीए तिरिक्ख-भंगो । विभंगणाणीसु ओरालियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदीणं वेउव्वियपरिसादणकदीए पंचिंदियतिरिक्खभंगो । वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा । आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु ओरालियसंघादण-आहारतिण्णि-पदाणं खेत्तं । ओरालियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदीहि वेउव्वियसंघादणकदि-परिसादण-

---

परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है । वैक्रियिक, तैजस और कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि इनके आहारकशरीरके तीन पद होते हैं। नपुंसकवेदी जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है । इनमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मण शरीरकी परि-शातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। इसी प्रकार अकषाय, केवलज्ञानी, यथाख्यातशुद्धिसंयत और केवलदर्शनी जीवोंके कहना चाहिये। चार कषाय युक्त जीवोंकी प्ररूपणा काययोगियोंके समान है । विशेष इतना है कि उनके केवलिभंग नहीं होता।

मति और श्रुत अज्ञानी जीवोंके अपने अपने पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेष इतना है कि इनके औदारिकशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। विभंगज्ञानियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग अथवा सर्व लोक स्पर्श किया गया है। आभिनिबोधिक, श्रुत व अवधि-ज्ञानी जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति तथा आहारकशरीरके तीनों पद युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्र प्ररूपणाके समान है। इनमें औदारिकशरीरकी परिशातन व संघा-तन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा

कदीहि छचोद्दसभागा देसूणा । वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठचोद्दस-भागा वा देसूणा । मणपज्जवणाणीसु अप्पणो सव्वपदाणं खेत्तं । संजदेसु ओरालियपरिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए केवलिभंगो । सेसपदा खेत्तं । सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धि-संजद-परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु अप्पप्पणो पदा खेत्तं । संजदासंजदा अप्पप्पणो पदाणं मणपज्जवभंगो[1] । असंजदाणं मदि-अण्णाणिभंगो । चक्खुदंसणीणं पुरिसवेद-भंगो । अचक्खुदंसणीणं कोहभंगो । ओहिदंसणीणं ओहिणाणिभंगो ।

किण्ण-णील-काउलेस्सिएसु ओरालियसंघादण-संघादणपरिसादणकदीए तेजा-कम्मइय-संघादणपरिसादणकदीए सव्वलोगो । ओरालियपरिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं तिरिक्ख-भंगो[2] । तेउलेस्सिएसु ओरालियसंघादणकदी आहारतिण्णिपदा खेत्तं । ओरालियपरिसादण-संघादण-

कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपने सब पदोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

संयत जीवोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघादन-परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है । शेष पदोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें अपने अपने पदोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । संयतासंयत जीवोंमें अपने अपने पदोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । असंयत जीवोंकी प्ररूपणा मतिअज्ञानियोंके समान है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा क्रोधकषायी जीवोंके समान है । अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानी जीवोंके समान है ।

कृष्ण, नील व कापोत लेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातन व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातनपरिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया गया है । इनमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति व वैक्रियिक-शरीरके तीनों पद युक्त जीवोंकी परूपणा तिर्यंचोंके समान है । तेज लेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति तथा आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । औदारिकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों

१ प्रतिषु 'मणभंगो' इति पाठः ।

२ अप्रतौ 'तिरि० वेउव्विय०', आप्रतौ 'तिरि० वेउ०', काप्रतौ 'तिरिक्ख० वेउव्विय०' इति पाठः ।

परिसादणकदीहि वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? दिवड्ढचोद्दस-भागा देसूणा । वेउव्वियसंघादणपरिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठ-णवचोद्दसभागा देसूणा । पम्मलेस्साए ओरालियसंघादणकदी आहारतिगं खेत्तं। ओरालिय-दोपद-वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? पंचचोद्दसभागा देसूणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। सुक्कलेस्साए ओरालियसंघादणकदी आहारतिगं खेत्तं । ओरालियपरिसादणकदी ओघो। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? छचोद्दस-भागा देसूणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए छचोद्दसभागा देसूणा केवलिभंगो वा ।

भवसिद्धिया ओघं । अभवसिद्धियाणमसंजदभंगो । सम्मादिट्ठीसु ओरालियसंघादण-

---

द्वारा तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पर्श किया गया है । वैक्रियिक-शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिवाले तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ व कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किया गया है । पद्मलेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति तथा आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । इनमें औदारिकशरीरके दो पद व वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है ? कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किया गया है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति तथा आहा-रकशरीरके तीनों पद युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परि-शातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरके तीनों पद युक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श किया गया है? उक्त जीवों द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। तैजस व कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । अथवा इनकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है ।

भव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । अभव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररू-पणा असंयत जीवोंके समान है। सम्यग्दृष्टियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति, आहारक-

---

१ प्रतिषु 'तेउ०' इति पाठः ।

कदी आहारतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी खेत्तभंगो । ओरालियपरिसादणकदी ओघो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीणं छचोद्दसभागा देसूणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठचोद्दसभागा देसूणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठचोद्दसभागा देसूणा केवलिभंगो वा । खइयसम्मादिट्ठीसु ओरालियसंघादण-संघादणपरिसादणकदी[1] वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदि-आहारतिण्णिपदा तेजा-कम्मइय-परिसादणकदीणं खेत्तभंगो । ओरालियपरिसादणकदी ओघो । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठचोद्दसभागा देसूणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए अट्ठचोद्दसभागा देसूणा केवलिभंगो वा । वेदगसम्मादिट्ठीणं ओहिभंगो । उवसमसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीसु ओरालिय-परिसादण-संघादणपरिसादणकदीणं वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीणं खेत्तं । वेउव्विय-तेजा-

---

शरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह भाग क्षेत्र स्पर्श किया गया है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । अथवा इनकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिकशरीरकी संघातन व संघातन-परिशातनकृति, वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृति, आहारकशरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं । अथवा इनकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें औदारिकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृतिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

---

१ अ-आप्रत्योः ' ओरालिय० संघा० संधादणकदी परि० ', काप्रतौ ' ओरालिय० संघादण० परि० ' इति पाठः ।

कम्मइयसंघादणपरिसादणकदीहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। सासणसम्मादिट्ठीसु ओरालिय-संघादणकदीए खेत्तं। ओरालियदोण्णिपद-वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीहि सत्तचोद्दसभागा देसूणा। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीहि अट्ठ-बारहचोद्दसभागा देसूणा। मिच्छाइट्ठीणं असंजदभंगो। असण्णीणं तिरिक्खभंगो। आहारा अचक्खुभंगो। अणाहाराणं ओरालियपरिसादणकदीए केवलिभंगो। तेजा-कम्मइयदोपदाणमोघो। एवं पोसणाणुगमो समत्तो।

कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण ओरालियसरीर-संघादणकदी केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णु-क्कस्सेण एगसमओ। ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदी केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ओरालिय-संघादण-परिसादणकदी केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि समऊणाणि। वेउव्वियसंघा-

---

वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिवाले जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। औदारिकशरीरके दो पद तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ व कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये गये हैं। मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा असंयतोंके समान है।

असंज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। आहारक जीवोंकी प्ररूपणा अचक्षुदर्शनी जीवोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंकी प्ररूपणा केवलियोंके समान है। तैजस और कार्मणशरीरके दोनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

कालानुगमसे ओघ और आदेशकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार है। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्पसे एक समय काल है। औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहुर्त काल है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय कम तीन पल्योपम काल है।

दणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बेसमया। वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि समऊणाणि। आहारसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जा समया। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। संघादण-परिसादणकदी णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु वेउव्वियसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं

....

वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे दो समय काल है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय कम तेतीस सागरोपम काल है।

आहारकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे संख्यात समय काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे एक समय काल है। आहारकशरीरकी परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। आहारकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है।

तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। इनकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित काल है।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे एक समय काल है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल

पडुच्च जहण्णेण दसवाससहस्साणि तिसमऊणाणि, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि समऊणाणि। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवाससहस्साणि, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि। पढमाए पुढवीए वेउव्वियसंघादणकदी णारगभंगो। एवं सव्वपुढवीसु। वेउव्वियसंघादणं-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवाससहस्साणि तिसमऊणाणि, उक्कस्सेण सागरोवमं समऊणं। तेजा कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण णारगभंगो। उक्कस्सेण सागरोवमं।

बिदियादि जाव सत्तमि त्ति वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीससागरोवमाणि दुसमऊणाणि। उक्कस्सेण तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीस-तेत्तीससागरोवमाणि समऊणाणि। तेजा-

है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम दश हजार वर्ष और उत्कर्षसे एक समय कम तेतीस सागरोपम काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे दश हजार वर्ष और उत्कर्षसे तेतीस सागरोपम काल है।

प्रथम पृथिवीमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी कालप्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान है। इसी प्रकार सर्व पृथिवियोंमें समझना चाहिये। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम दश हजार वर्ष और उत्कर्षसे एक समय कम एक सागरोपम काल है। तैजस और कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य कालकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है। उत्कृष्ट काल एक सागरोपम है।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्रमशः दो समय कम एक सागर, दो समय कम तीन सागर, दो समय कम सात सागर, दो समय कम दस सागर, दो समय कम सत्तरह सागर और दो समय कम बाईस सागर काल है। उत्कर्षसे एक समय कम तीन सागर, एक समय कम सात सागर, एक समय कम दस सागर, एक समय कम सत्तरह सागर, एक समय कम बाईस सागर और एक समय कम तेतीस सागर काल है। तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-

१ प्रतिषु 'वेउव्वियसंघादणं संघादण-' इति पाठः।

कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्क-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीससागरोवमाणि समयाहियाणि। उक्कस्सेण तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीस-तेत्तीससागरोवमाणि।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु ओरालियसंघादण-संघादणपरिसादणकदी ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदी ओघो। वेउव्वियसंघादणकदी णारगभंगो। संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। पंचिंदियतिरिक्खतिगम्मि ओरालिय-वेउव्वियसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। ओरालियपरिसादणकदी वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी तिरिक्खभंगो। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी ओघो। तेजा-कम्मइयसंवादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एजजीवं पडुच्च जह-

---

कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्रमशः एक समय अधिक एक सागर, एक समय अधिक तीन सागर, एक समय अधिक सात सागर, एक समय अधिक दस सागर, एक समय अधिक सत्तरह सागर और एक समय अधिक बाईस सागर काल है। उत्कर्षसे तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम काल है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति व संघातन-परिशातनकृति तथा औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिकी कालप्ररूपणा ओघके समान है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनपरिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदिक तीनमें औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे एक समय काल है। औदारिकशरीरकी परिशातनकृति और वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा

ण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु ओरालियसंघादणकदी पंचिंदियतिरिक्खभंगो । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

मणुसगदीए मणुसेसु ओरालियतिण्णिपदा वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी पंचिंदियतिरिक्खभंगो । वेउव्विय-आहारसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जा समया । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । आहार-तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी आहारसंघादण-परिसादणकदी ओघो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ओरालिय-वेउव्विय-आहारसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जा समया । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । सेसपदाणं मणुसभंगो । णवरि तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी जहण्णेण अंतो-

---

जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण व अन्तर्मुहूर्त काल है, तथा उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य प्रमाण काल है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल तथा उत्कर्षसे एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल है । तैजस व कार्मण शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें औदारिकशरीरके तीनों पद, वैक्रियिकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी कालप्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। वैक्रियिक व आहारकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे संख्यात समय काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे एक समय काल है । आहारक, तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति तथा आहारकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियोंमें औदारिक, वैक्रियिक और आहारकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे संख्यात समय काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे एक समय काल है । शेष पदोंकी प्ररूपणा मनुष्योंके समान है । विशेष इतना है कि तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परि-

मुहुत्तं। मणुसिणीसु आहारपदं णत्थि। मणुसअपज्जत्तेसु ओरालियसंघादणकदी पंचिंदियतिरिक्ख-भंगो। संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

देवगदीए देवा णारगभंगो। भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु वेउव्वियसंघादणकदीए देवभंगो। संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवाससहस्साणि दसवाससहस्साणि तिसमऊणाणि पलिदोवमट्ठमभागो तिसमऊणो। उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं पलिदोवमं सादिरेयं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च सग-सगजहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ।

सोहम्मीसाणादि जाव सहस्सारे त्ति वेउव्वियसंघादणं देवभंगो। वेउव्वियसंघादण-

---

तनकृतिका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल है। मनुष्यनियोंमें आहारक पद नहीं होता।

मनुष्य अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिकी कालप्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है।

देवगतिमें देवोंकी कालप्ररूपणा नारकियोंके समान है। भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिके कालकी प्ररूपणा देवोंके समान है। संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्रमशः तीन समय कम दस हजार वर्ष, तीन समय कम दस हजार वर्ष और तीन समय कम पल्योपमका आठवां भाग काल है; तथा उत्कर्षसे साधिक एक सागरोपम, साधिक एक पल्योपम और साधिक एक पल्योपम काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा अपनी अपनी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण काल है।

सौधर्म व ईशान कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी कालप्ररूपणा देवोंके समान है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी

परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवम-बे-सत्त-दस-चोद्दस-सोलससागरोवमाणि सादिरेयाणि । उक्कस्सेणं बे-सत्त-दस-चोद्दस-सोलस-अट्ठारससागरोवमाणि सादिरेयाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च सग-सगजहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ ।

आणदादि जाव णवगेवज्जे त्ति वेउव्वियसंघादणकदी मणुसपज्जत्तभंगो । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अट्ठारससागरोवमाणि सादिरेयाणि, वीस-बावीस-तेवीस-चदुवीस-पणुवीस-छव्वीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगुणतीस-तीस-सागरोवमाणि बिसमऊणाणि। उक्कस्सेण वीस-बावीस-तेवीस-चदुवीस-पणुवीस-छव्वीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगुणतीस-तीस-एक्कत्तीससागरोवमाणि समऊणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च सग-सगजहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ वत्तव्वाओ ।

अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति वेउव्वियसंघादणकदी मणुसभंगो । संघादण-परि-

---

अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक पल्योपम तथा दो, सात, दस, चौदह और सोलह सागरोपमसे कुछ अधिक काल है। उत्कर्षसे दो, सात, दस, चौदह, सोलह और अठारह सागरोपमसे कुछ अधिक काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा अपने अपने कल्पकी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण काल है।

आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तक वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका काल मनुष्य पर्याप्तोंके समान है। इसी शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे आनत-प्राणत कल्पमें अठारह सागरोपमसे कुछ अधिक तथा इसके आगे क्रमशः दो समय कम वीस, दो समय कम बाईस, दो समय कम तेईस, दो समय कम चौबीस, दो समय कम पच्चीस, दो समय कम छब्वीस, दो समय कम सत्ताईस, दो समय कम अट्ठाईस, दो समय कम उनतीस और दो समय कम तीस सागरोपम काल है। उत्कर्षसे क्रमशः एक समय कम बीस, एक समम कम बाईस, एक समय कम तेईस, एक समय कम चौबीस, एक समय कम पच्चीस, एक समय कम छब्बीस, एक समय कम सत्ताईस, एक समय कम अट्ठाईस, एक समय कम उनतीस, एक समय कम तीस और एक समय कम इकतीस सागरोपम काल है। तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा उसका काल अपनी अपनी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये।

अनुदिशोंसे लेकर अपराजित विमान तक वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिके कालकी प्ररूपणा मनुष्योंके समान है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका

सादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कत्तीस-बत्तीस-सागरोवमाणि बिसमऊणाणि । उक्कस्सेण बत्तीस-तेत्तीससारोवमाणि समऊणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च सग-सग-जहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ ।

सव्वट्ठे वेउव्वियसंघादणकदी मणुसपज्जत्तभंगो । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण तेत्तीसं सागरोवमाणि तिसमऊणाणि । उक्क-स्सेण तेत्तीससागरोवमाणि समऊणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च सगट्ठिदी ।

एइंदियाणं तिरिक्खभंगो । णवरि ओरालियसंघादण-परिसादणकदी एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बावीसवस्ससहस्साणि समऊणाणि । बादरेइंदियाणं एइंदिय-भंगो । णवरि तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ । एवं बादरेइंदियपज्जत्ताणं । णवरि तेजा-कम्मइयसंघादण-

---

नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे दो समय कम इक-तीस व दो समय कम बत्तीस सागरोपम काल है । उत्कर्षसे एक समय कम बत्तीस और एक समय कम तेतीस सागरोपम काल है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा उसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अपनी अपनी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

सर्वार्थसिद्धि विमानमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी कालप्ररूपणा मनुष्य पर्याप्तोंके समान है । संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम तेतीस सागरोपम तथा उत्कर्षसे एक समय कम तेतीस सागरोपम काल है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है और एक जीवकी अपेक्षा अपनी स्थिति प्रमाण काल है ।

एकेन्द्रिय जीवोंमें औदारिकादि शरीरोंकी कृतियोंके कालकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । विशेष इतना है कि उनमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक कम बाईस हजार वर्ष काल है । बादर एकेन्द्रिय जीवोंमें कालकी प्ररूपणा एकेन्द्रियोंके समान है । विशेषता केवल इतनी है कि इनमें तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र काल है, जो काल असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल प्रमाण है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि तैजस व कार्मण-

परिसादणकदी जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि। बादरेइंदियअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। णवरि ओरालियसंघादणकदी ओघो। सुहुमेइंदिएसु ओरालियसंघादणकदी तिरिक्खभंगो। संघादण-परिसादणकदी केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। सुहुमेइंदियपज्जत्तेसु ओरालियसंघादणकदीए तिरिक्खभंगो। संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सुहुमेइंदियअपज्जत्ताणं बादरेइंदियअपज्जत्तभंगो। णवरि ओरालियसंघादण-परिसादणकदी जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं।

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं तेसिं पज्जत्ताणं ओरालियसंघादणकदीए पंचिंदियतिरिक्ख-

---

शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे संख्यात हजार वर्ष काल है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंमें कालप्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है। विशेष इतना है कि इनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिके कालकी प्ररूपणा ओघके समान है।

सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिके कालकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण तथा उत्कर्षसे एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात लोक प्रमाण काल है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है। विशेष इतना है कि औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका जघन्य काल चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंकी औदारिकशरीर सम्बन्धी संघातनकृतिकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। संघातन-परिशातन-

भंगो । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं, उक्कस्सेण बारसवासाणि एगुणवण्णरादिंदियाणि छम्मासा समऊणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि । तेसिमपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

पंचिंदियदुगोरालियसंघादणकदीए पंचिंदियतिरिक्खभंगो । सेसपदाणमोघो । णवरि तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सगट्ठिदी । पंचिंदियअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

पुढवीकाइय-आउकाइएसु ओरालियसंघादणकदीए तिरिक्खभंगो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण बावीससहस्साणि सत्तवाससहस्साणि समऊणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।

कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र व अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे क्रमशः एक समय कम बारह वर्ष, एक समय कम उनंचास रात्रिदिन और एक समय कम छह मास काल है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण मात्र व अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे संख्यात हजार वर्ष काल है । उक्त अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । शेष पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि इनमें तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण मात्र व अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे अपनी स्थिति प्रमाण काल है । पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ।

पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें औदारिकशरीर सम्बन्धी संघातनकृतिकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे क्रमशः एक समय कम बाईस हजार और एक समय कम सात हजार वर्ष काल है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात लोक प्रमाण काल है ।

बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरेसु ओरालियसंघादणकदीए बादरेइंदियभंगो । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण बावीस-सत्त-दसवाससहस्साणि समऊणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए बादरेइंदियपज्जत्तभंगो ।

बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-बादरणिगोद-बादरवणप्फदिपत्तेगसरीरअपज्जत्ताणं बादेरइंदियअपज्जत्तभंगो । तेउकाइय-वाउकाइएसु ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं तिरिक्खभंगो । ओरालिय-संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि रादिंदियाणि तिण्णि वाससहस्साणि समऊणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए सुहुमेइंदियभंगो ।

एवं बादरतेउ-वाऊणं । णवरि तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी । एवं तेसिं पज्जत्ताणं । णवरि ओरा-

---

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय जीवोंके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे एक समय कम बाईस हजार वर्ष, एक समय सात हजार वर्ष और एक समय कम दस हजार वर्ष काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है।

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है। तेजकायिक व वायुकायिक जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे क्रमशः एक समय कम तीन रात्रि-दिन व एक समय कम तीन हजार वर्ष काल है। तैजस व कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है।

इसी प्रकार बादर तेजकायिक व वायुकायिक जीवोंके कहना चाहिये। विशेष इतना है कि तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे कर्मस्थिति प्रमाण काल है। इसी प्रकार उनके पर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये। विशेष इतना है कि इनमें औदारिकशरीरकी संघातन-परि-

लियसंघादण-परिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं एइंदियभंगो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए जहण्णुक्कस्सेण तेउ-वाऊणं भंगो । तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।

बादरवणप्फदिकाइयाण बादरवणप्फदिपत्तेगभंगो । णवरि तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदीए बादरेइंदियभंगो । तस्सेव पज्जत्तेसु ओरालियसंघादणकदीए तिरिक्खभंगो । संघादण-परिसादणकदीए पत्तेगसरीरपज्जत्तभंगो । एवं तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी । णिगोदजीवेसु ओरालियदोपदाणं सुहुमेइंदियभंगो । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टा । बादरणिगोदजीवेसु ओरालियदोपदाणं[1] बादरेइंदियअपज्जत्तभंगो । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए बादरपुढविकाइयभंगो । बादरणिगोदपज्जत्ताणं बादरेइंदियपज्जत्त-

---

शातनकृति और वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा एकेन्द्रियोंके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके जघन्य व उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा तेज व वायुकायिक जीवोंके समान है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे संख्यात हजार वर्ष प्रमाण काल है ।

बादर वनस्पतिकायिक जीवोंकी प्ररूपणा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके समान है । विशेष इतना है कि उनमें तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रियोंके समान है । बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंमें औदारिकशरीर सम्बन्धी संघातनकृतिकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा प्रत्येकशरीर पर्याप्तोंके समान है । इसी प्रकार तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके कालकी प्ररूपणा करना चाहिये ।

निगोद जीवोंमें औदारिकशरीरके दो पदोंकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल है ।

बादर निगोद व बादर निगोद अपर्याप्त जीवोंमें औदारिकशरीरके दो पदोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है । बादर निगोद पर्याप्तोंकी

---

१ अप्रतौ ' ओरालिय० ण पदाणं ', काप्रतौ ' ओरालिय० पदाणं ' इति पाठः ।

भंगो। णवरि ओरालियसंघादण-परिसादणकदी उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं। सव्वसुहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो।

तसदुगस्स पंचिंदियदुगभंगो। णवरि तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बेसागरोवमसहस्साणि। तसअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदी ओरालिय-वेउव्वियतेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारदोपदाणमोघो।

कायजोगीसु ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदीणं तिरिक्खभंगो। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बावीसवाससहस्साणि समऊणाणि। वेउव्वियसंघादणकदी ओघो। आहारसंघादणकदी ओघो। सेसदोपदाणं मणजोगिभंगो। तेजा-कम्मइय-

....

प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है। विशेष इतना है कि औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका उत्कर्षसे एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल है। सब सूक्ष्म जीवोंकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है।

त्रस व त्रस पर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है। विशेष इतना है कि तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण मात्र व अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कर्षसे क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम व केवल दो हजार सागरोपम काल है। त्रस अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है।

पांच मनयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंमें औदारिक, व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। आहारकशरीरके दो पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है।

काययोगियोंमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृतियोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। इनमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय कम बाईस हजार वर्ष काल है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। आहारकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। इसके शेष दो पदोंकी प्ररूपणा मनयोगियोंके समान है।

संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।

ओरालियकायजोगीसु ओरालियसंघादण-परिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बावीसवाससहस्साणि देमूणाणि। वेउव्वियसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारपरिसादणकदीए मणजोगिभंगो।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु ओरालियसंघादणकदी ओघो। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

....

तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्त काल है।

औदारिककाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे कुछ कम बाईस हजार वर्ष काल है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे आवलीका असंख्यातवां भाग काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे एक समय काल है। वैक्रियिकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। आहारकशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा मनयोगियोंके समान है।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय कम अन्तमुहूर्त काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है।

वेउव्वियकायजोगीसु वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए मणजोगिभंगो। वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु वेउव्वियसंघादणकदीए देवभंगो। वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

आहारकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदी आहार-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारमिस्सकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदी आहार-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी-णाणाजीवं पडुच्च एगजीवं[1] पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारसंघादणकदी ओघो।

कम्मइयकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया, उक्कस्सेण संखेज्जा समया। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समया। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-

---

वैक्रियिककाययोगियोंमें वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीर सम्बन्धी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा मनयोगियोंके समान है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा देवोंके समान है। वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है।

आहारककाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा आहारक, तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा और एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। आहारकमिश्रकाय-योगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा आहारक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी व एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। आहारकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है।

कार्मणकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय और उत्कर्षसे संख्यात समय काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे तीन समय काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और

---

१ प्रतिषु 'पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं' इति पाठः।

समओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु ओरालियतिण्णिपदा वेउव्वियपरिसादणकदी पंचिंदियतिरिक्ख-भंगो । वेउव्वियसंघादणकदीए ओघो । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि समऊणाणि । तेजा-कम्मइय-संघादणपरिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ।

पुरिसवेदेसु ओरालियसंघादणकदीए इत्थिवेदभंगो । ओरालियदोण्णिपदा वेउव्विय-आहारतिण्णिपदा ओघं । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।

णउंसयवेदेसु ओरालियसंघादण-परिसादणकदी[1] वेउव्वियतिण्णिपदा ओघं । ओरालिय-संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ,

....

उत्कर्षसे तीन समय काल है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदियोंमें औदारिकशरीरके तीनों पद तथा वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय कम पचवन पल्योपम प्रमाण काल है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमशतपृथक्त्व काल है ।

पुरुषवेदियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा स्त्रीवेदियोंके समान है । औदारिकशरीरके शेष दो पद तथा वैक्रियिक व आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे सागरोपमशतपृथक्त्व काल है ।

नपुंसकवेदियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति और परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक

....

१ काप्रतौ 'पुरिस०' इति पाठः ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी समऊणा। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गल-परियट्टा।

अवगतवेदेसु ओरालियपरिसादणकदी णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण[1] पुव्वकोडी देसूणा। परिसादणकदी ओघं।

चत्तारिकसायाणं ओरालिय-वेउव्विय-आहारसंघादणकदी ओघं। सेसपदाणं मणजोगि-भंगो। अकसायाणं अवगदवेदभंगो।

एवं केवलणाणि-केवलदंसणीणं वत्तव्वं। मदि-सुदअण्णाणीसु ओरालिय-वेउव्विय-तिण्पिदा ओघं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं

समय और उत्कर्षसे एक समय कम पूर्वकोटि काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन काल प्रमाण है।

अपगतवेदियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल व उत्कर्षसे कुछ कम पूर्वकोटि काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है।

क्रोधादि चार कषाय युक्त जीवोंमें औदारिक, वैक्रियिक व आहारकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। शेष पदोंकी प्ररूपणा मनयोगियोंके समान है। कषाय रहित जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है।

इसी प्रकार केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंके कहना चाहिये। मति व श्रुत अज्ञानियोंमें औदारिक और वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल

१ अ-आप्रत्योः 'जह० उक्क०', काप्रतौ 'जहण्णुक्क०' इति पाठः।

पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो सो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

विभंगणाणीसु ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए वेउव्वियसंघादणकदीए तिरिक्खभंगो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु ओरालिय-आहारतिण्णिपदाणं मणुसपज्जत्तभंगो । वेउव्वियतिण्णिपदा ओघं । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

मणपज्जवणाणीसु ओरालियपरिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं मणुसभंगो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ,

---

है । एक जीवकी अपेक्षा अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित काल है । इनमें जो सादि-सपर्यवसित काल है वह जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ।

विभंगज्ञानियोंमें औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है । वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे कुछ कम तेतीस सागरोपम काल है ।

आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें औदारिक और आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा मनुष्य पर्याप्तोंके समान है । वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ अधिक छ्यासठ सागरोपम प्रमाण काल है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति और वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा मनुष्योंके समान है । इनमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।

संजदाणं मणपज्जवभंगो । णवरि आहारतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी ओघं । एवं सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदाणं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । संघादणपरिसादणकदी जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तं चेव । परिहारसुद्धिसंजदेसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं केवलणाणिभंगो । णवरि ओरालिय-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदीणं जहण्णेण एगसमओ । संजदासंजदेसु ओरालियपरिसादणकदीए ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदीए मणपज्जवभंगो । वेउव्वियतिण्णिपदाणं

....

उत्कर्षसे कुछ कम एक पूर्वकोटि काल है। तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम पूर्वकोटि काल है।

संयत जीवोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है। विशेष इतना है कि उनमें आहारकशरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। इसी प्रकार सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंकी प्ररूपणा करना चाहिये। विशेष इतना है कि उनमें तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका जघन्यसे एक समय काल है और उत्कर्षसे भी वही पूर्वोक्त आलाप जानना चाहिये।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम एक पूर्वकोटि काल है।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है। यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है। विशेष इतना है कि इनमें औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतियोंका काल जघन्यसे एक समय है।

संयतासंयत जीवोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा औदारिक, तैजस व कार्मणशरीर सम्बन्धी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है। इनमें वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। असंयत जीवोंमें अपने

तिरिक्खभंगो । असंजदेसु अप्पप्पणो पदा ओघं ।

चक्खुदंसणीसु ओरालियसंघादणकदीए पुरिसवेदभंगो । सेसपदा ओघं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि । अचक्खुदंसणी ओघं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । ओहिदंसणीणं ओहिणाणिभंगो ।

तिण्णिलेस्साणं ओरालियसंघादणकदी ओघं । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदी ओरालियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । वेउव्वियसंघादणकदी ओघं । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि समऊणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

अपने पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है।

चक्षुदर्शनी जीवोंमें औदारिकशरीर सम्बन्धी संघातनकृतिकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है। शेष पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेष इतना है कि उनमें तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे दो हजार सागरोपम काल है। अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेष इतना है कि उनमें तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती। अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है।

प्रथम तीन लेश्या युक्त जीवोंमें औदारिकशरीर सम्बन्धी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। औदारिक व वैक्रियिकशरीर सम्बन्धी परिशातनकृति तथा औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा इनका काल जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त मात्र है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे क्रमशः एक समय कम तेतीस, एक समय कम सत्तरह और एक समय कम सात सागरोपम काल है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे क्रमशः कुछ अधिक तेतीस, कुछ अधिक सत्तरह व कुछ अधिक सात सागरोपम काल है।

तेउ-पम्मलेस्सिएसु ओरालिय-आहारसंघादणकदीए ओहिभंगो। ओरालिय-वेउव्विय-परिसादणकदीए ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए किण्णभंगो। वेउव्वियसंघादणकदी ओघं। वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बे-अट्ठारससागरोवमाणि सादिरेयाणि। आहारपरिसादण-संघादणपरिसादण-कदीणं मणजोगिभंगो। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बे-अट्ठारससागरोवमाणि सादिरेयाणि।

सुक्कलेस्सिएसु ओरालिय-आहारसंघादणकदीए ओहिभंगो। ओरालिय-वेउव्विय-परिसादणकदी ओघं। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एग-जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा। वेउव्वियसंघादणकदी ओघं। वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जह-ण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि समऊणाणि। आहारपरिसादण-संघादण-

तेज व पद्म लेश्यावालोंमें औदारिक और आहारकशरीर सम्बन्धी संघातन-कृतिकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है। औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातन-कृति तथा औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा कृष्णलेश्यावाले जीवोंके समान है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। वैक्रियिक-शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे क्रमशः कुछ अधिक दो और कुछ अधिक अठारह सागरोपम काल है। आहारकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा मनयोगियोंके समान है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ अधिक दो और कुछ अधिक अठारह सागरोपम प्रमाण है।

शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें औदारिक और आहारकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है। औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे कुछ कम एक पूर्वकोटि काल है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय कम तेतीस सागरोपम काल है। आहारकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा मनयोगियोंके

परिसादणकदीणं मणजोगिभंगो । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

भवसिद्धियाणं ओघं । अभवसिद्धियाणं असंजदभंगो । णवरि तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी अणादि-अपज्जवसिदा । सम्माइट्ठीणमोहिभंगो । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादण-कदी ओघं । एवं खइयसम्माइट्ठीणं । णवरि तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी तेत्तीस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि । वेदगसम्माइट्ठीणं ओहिभंगो । णवरि ओरालियसंघादण-परिसादण-कदी तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी छावट्ठिसागरो-वमाणि । उवसमसम्माइट्ठीसु ओरालिय-वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । वेउव्वियसंघादणकदीए[1] विभंगणाणिभंगो । णवरि

समान है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ अधिक तेतीस सागरोपम काल है ।

भव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । अभव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा असंयतोंके समान है । विशेष इतना है कि तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृति अनादि-अपर्यवसित है ।

सम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है । विशेष इतना है कि इनमें तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है । इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि इनमें तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका कुछ अधिक तेतीस सागरोपम काल है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है । विशेष इतना है कि इनमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका कुछ कम तीन पल्योपम काल है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका छ्यासठ सागरोपम काल है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान

---

१ प्रतिपु ' तेउ० ' इति पाठः ।

एगजीवस्स उक्कस्सेण बेसमया । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं सम्मामिच्छाइट्ठीणं । णवरि वेउव्वियसंघादणस्स एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । सासणसम्माइट्ठीसु ओरालियसंघादणकदीए पंचिंदियभंगो । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए उवसमसम्माइट्ठिभंगो । ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छावलियाओ । मिच्छाइट्ठीणमसंजदभंगो ।

सण्णीणं पुरिसवेदभंगो । असण्णीसु ओरालियपरिसादणकदी वेउव्वियतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए तिरिक्खभंगो ।

आहाराणुवादेण आहारी ओघं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणं णत्थि । संघादण-

---

है । विशेष इतना है कि एक जीवकी अपेक्षा उसका उत्कृष्ट काल दो समय है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल है ।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे एक समय काल है ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिकी प्ररूपणा पंचेन्द्रियोंके समान है । औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है । औदारिक, वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलि काल है । मिथ्यादृष्टियोंकी प्ररूपणा असंयतोंके समान है ।

संज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । असंज्ञी जीवोंमें औदारिक-शरीरकी परिशातनकृति, वैक्रियिकशरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघा-तन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है ।

आहारमार्गणानुसार आहारी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि उनमें तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । इन दोनों शरीरोंकी

परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ। अणाहारीसु ओरालियपरिसादणकदीए अवगदवेदभंगो। तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी ओघं। तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया। एवं कालाणुगमो समत्तो।

अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण ओरालियसरीर-संघादणकदीए अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। एग-जीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि समयाहिय-पुव्वकोडीए सादिरेयाणि। ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गल-परियट्टा। एवं वेउव्वियसंघादणपरिसादणकदीए। णवरि जहण्णेण एगसमओ। ओरालिय-

---

संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल है।

अनाहारी जीवोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है। तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय काल है। इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

अन्तरानुगमसे ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर कितने काल तक होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कर्षसे एक समय अधिक पूर्वकोटिसे संयुक्त तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है।

औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे अनन्त काल प्रमाण होता है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर कहना चाहिये। विशेष इतना है कि उसका अन्तर जघन्यसे एक समय है।

संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि तिसमयाहियअंतोमुहुत्ताहियाणि। वेउव्वियसंघादण-कदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।

आहारतिण्णिपदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। परिसादणकदीए णाणा-जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण चउवीसमुहुत्ता। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। पढमादि

औदारिकशरीरकी संघातन परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय व अन्तर्मुहूर्तसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है।

वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अनन्त काल प्रमाण होता है जो असंख्यात पुद्गल-परिवर्तन प्रमाण है।

आहारकशरीरके तीनों पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल प्रमाण होता है।

तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, वह निरन्तर है। परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह मास प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे चौबीस मुहूर्त प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना व एक जीवकी अपेक्षा नहीं होता।

जाव सत्तमि त्ति वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अडदालीसमुहुत्ता पक्खो मासो बेमासा चत्तारिमासा छम्मासा बारहमासा। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। सेसपदाणं णत्थि अंतरं।

तिरिक्खेसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी समयाहिया। ओरालिय-वेउव्विय-परिसादणकदीए वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा। एवं वेउव्विय-संघादणकदीए। णवरि णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ओरा-लियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, तिसमयाहियं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णारगभंगो।

पंचिंदियतिरिक्खतिगम्मि ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, चदुवीसमुहुत्ता। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं

प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे क्रमशः अड़तालीस मुहूर्त, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास, छह मास और बारह मास होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। शेष पदोंका अन्तर नहीं होता।

तिर्यंचोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कर्षसे एक समय अधिक पूर्वकोटि काल प्रमाण होता है। औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातन-कृतिका तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे अनन्त काल होता है जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर कहना चाहिये। विशेष इतना है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। औदारिक-शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त व चौबीस मुहूर्त होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण व तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त,

अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं, उक्कस्सेण तिरिक्खभंगो। ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए वेउव्वियसंघादणपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। एवं वेउव्वियसंघादणकदीए। णवरि णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए तिरिक्खभंगो। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णत्थि अंतरं।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समयाहियं। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए तिरिक्खोघं।

मणुसतिगस्स पंचिंदियतिरिक्खतिगभंगो। णवरि आहारतिण्णिपदाणं णाणाजीवं

है, और उत्कर्षसे उसकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल प्रमाण होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा करना चाहिये। विशेष इतना है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन परिशातनकृतिका अन्तर नहीं होता।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कर्षसे एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय होता है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा सामान्य तिर्यंचोंके समान है।

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके समान है। विशेष इतना है कि

पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण[1] वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए ओघं। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदीए मणुसिणीसु उक्कस्सेण वासपुधत्तं।

मणुसअपज्जत्ताणं ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समयाहियं। संघादणपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

देवाणं णारगभंगो। भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठ त्ति वेउव्वियसंघादणकदीए

आहारकशरीरके तीनों पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेष इतना है कि तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिका अन्तर मनुष्यनियोंमें उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है।

मनुष्य अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय प्रमाण होता है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता।

देवोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है। भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे

---

१ अ-आप्रत्योः 'उक्कस्सेण' इत्येतत्पदं नास्ति।

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियाणं पादेक्कं अडदालीस मुहुत्ता । सोहम्मीसाणे पक्खो । सणक्कुमार-माहिंदे मासो । बम्हबम्होत्तर-लांतवकाविट्ठे बेमासा । सुक्कमहासुक्क-सदार-सहस्सारम्मि चत्तारि मासा । आणद-पाणद-आरण-अच्चुदेसु छम्मासा । णवगेवज्जेसु बारसमासा । अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति वासपुधत्तं । सव्वट्ठे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । सेसपदाणं देवभंगो ।

एइंदिएसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण बावीसवाससहस्साणि समयाहियाणि । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए तिरिक्खभंगो । वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च तिरिक्खभंगो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी ओघं ।

एक समय है । उत्कर्षसे भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषियोंमें पृथक् पृथक् अड़तालीस मुहूर्त, सौधर्म ईशान कल्पमें एक पक्ष, सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पमें एक मास, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर व लांतव-कापिष्ठ कल्पोंमें दो मास, शुक्र-महाशुक्र व शतार-सहस्रार कल्पोंमें चार मास, आनत-प्राणत व आरण-अच्युत कल्पोंमें छह मास, नौ ग्रैवेयकोंमें बारह मास, अनुदिशोंसे लेकर अपराजित विमान तक वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धि विमानमें पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण होता है । शेष पदोंकी प्ररूपणा सामान्य देवोंके समान है ।

एकेन्द्रियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कर्षसे एक समय अधिक बाईस हजार वर्ष प्रमाण होता है । औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा तिर्यंचोंके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण होता है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

एवं बादरेइंदियाणं । णवरि ओरालियसंघादणकदीए जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं । एवं बादरेइंदियपज्जत्ताणं । णवरि ओरालियसंघादणकदीए जहण्णेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं । एवं सेसपदाणं । णवरि जम्हि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो तम्हि संखेज्जाणि वाससहस्साणि । बादरेइंदियअपज्जत्तेसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । सेसस्स पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

सुहुमेइंदिएसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं दुसमयाहियं । ओरालिय-संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ, उक्कस्सेण चत्तारि समया । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णत्थि अंतरं । एवं पज्जत्तापज्जत्ताणं । णवरि पज्जत्तएसु ओरालियसंघादणकदीए एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं चदुसमऊणं ।

बेइंदिय-तेइंदिय-चदुरिंदियाणं तेसिं पज्जत्ताणं च ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं

इसी प्रकार बादर एकेन्द्रियोंकी प्ररूपणा है । विशेष इतना है कि औदारिक-शरीरकी संघातनकृतिका अन्तर जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि इनमें औदारिक-शरीरकी संघातनकृतिका अन्तर जघन्यसे तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है । इसी प्रकार शेष पदोंकी प्ररूपणा करना चाहिये । विशेष इतना है कि जहांपर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कहा गया है वहांपर संख्यात हजार वर्ष कहना चाहिये । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । शेष पदोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कर्षसे दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे चार समय होता है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका अन्तर नहीं होता । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा करना चाहिये । विशेष इतना है कि पर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी

पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं चदुवीसमुहुत्ता। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं बिसमऊणं, उक्कस्सेण बारसवासाणि एगूणवण्णरादिंदियाणि छम्मासा समयाहियाणि। ओरालिय-तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदीए पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो। बेइंदिय-तेइंदिय-चदुरिंदियअपज्जत्ताणं तिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

एवं पंचिंदियअपज्जत्ताणं। पंचिंदियदुगोरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं चउवीसमुहुत्ता। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं। उक्कस्सेण ओघं। ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवम-सहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियसागरोवमसदपुधत्तं। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए ओघं। वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। संघादण-

---

संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्त-मुहूर्त व चौबीस मुहूर्त काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे दो समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और दो समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण तथा उत्कर्षसे क्रमशः एक समय अधिक बारह वर्ष, एक समय अधिक उनंचास रात्रि-दिवस व एक समय अधिक छह मास होता है। औदारिक, तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है। द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तोंके अन्तरकी प्ररूपणा तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके कहना चाहिये। पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त व चौबीस मुहूर्त होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण मात्र व तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है। उत्कर्षसे उसकी प्ररूपणा ओघके समान है। औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे एक हजार सागरोपम प्रमाण और पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तेतीस सागरोपम व पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल प्रमाण होता है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-

परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । आहारतिगस्स णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडि-पुधत्तेणब्भहियं सागरोवमसदपुधत्तं । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी ओघं ।

पुढवीकाइय-आउकाइएसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण बावीस-सत्तवाससहस्साणि समयाहियाणि । संघादण-परिसादणकदीए सुहुमेइंदियभंगो । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादण-कदी ओघं । तेसिं बादराणमोरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण बावीस-सत्तवाससहस्साणि समया-हियाणि । संघादण-परिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए बेइंदियभंगो । एवं तेसिं पज्जत्ताणं पि । णवरि ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ,

परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल प्रमाण होता है । आहारकशरीरके तीनों पदोंकी अन्तरप्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे एक हजार सागरोपम व पूर्वकोटि-पृथक्त्वसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व काल प्रमाण होता है । तैजस और कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभव-ग्रहण प्रमाण तथा उत्कर्षसे एक समय अधिक बाईस हजार व एक समय अधिक सात हजार वर्ष प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातन-कृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कर्षसे एक समय अधिक बाईस हजार व एक समय अधिक सात हजार वर्ष प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातन-कृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा द्वीन्द्रिय जीवोंके समान है । इसी प्रकार उनके पर्याप्तोंकी भी प्ररूपणा करना चाहिये । विशेष इतना है कि उनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं। एवं बादरवणप्फदि-पत्तेगाणं। णवरि ओरालियसंघादणकदीए [एगजीवं पडुच्च उक्कस्सेण] दसवाससहस्साणि समयाहियाणि।

तेउकाइय-वाउकाइउसु ओरालियसंघादणकदीए पुढवीभंगो। णवरि उक्कस्सेण तिण्णि रादिंदियाणि तिण्णि वाससहस्साणि समयाहियाणि। ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए वेउव्वियसंघादण-संघादणपरिसादणकदीणं एइंदियभंगो। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं तिसमयाहियं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णत्थि अंतरं। एवं बादरतेउकाइय-बादर-वाउकाइयाणं। णवरि ओरालियसंघादणकदीए एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसम-ऊणं। तेसिं पज्जत्ताणमोरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्क-स्सेण चदुवीसमुहुत्ता। एगजीवं[1] पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं। उक्कस्सेण बादर-

और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा वह जघन्यसे तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। इसी प्रकार बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके कहना चाहिये। विशेष इतना है कि उनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर [एक जीवकी अपेक्षा उत्कर्षसे] एक समय अधिक दस हजार वर्ष प्रमाण होता है।

तेजकायिक और वायुकायिक जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा पृथिवीकायिकोंके समान है। विशेष इतना है कि एक जीवकी अपेक्षा उत्कर्षसे क्रमशः एक समय अधिक तीन रात्रि-दिन व एक समय अधिक तीन हजार वर्ष प्रमाण होता है। औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा एकेन्द्रियोंके समान है। औदारिक-शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नहीं होता।

इसी प्रकार बादर तेजकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंके कहना चाहिये। विशेष इतना है कि उनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण काल प्रमाण होता है। उनके पर्याप्तोंमें औदा-रिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय व उत्कर्षसे चौबीस मुहूर्त होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा बादर तेजकायिक व बादर वायुकायिकोंके

१ अ-आप्रत्योः '-मुहुत्ता। तेउवाऊणमंतोमुहुत्तं एग-', काप्रतौ '-मुहुत्ता। तेऊणं वाऊणमंतोमुहुत्तं एग-' इति पाठः।

तेउकाइय-वाउकाइयभंगो । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए वेउव्वियसंघादण-परिसादण-कदीए एइंदियभंगो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए तिरिक्खभंगो । वेउव्वियसंघादण-कदीए एइंदियपज्जत्तभंगो । तेजा-कम्मइयसंघादणकदी ओघं ।

बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदि-काइय-बादरणिगोदजीव-बादरवणप्फदिपत्तेगसरीरअपज्जत्ताणं बादेरइंदियअपज्जत्तभंगो । वण-प्फदिकाइएसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण दसवाससहस्साणि समयाहियाणि । ओरालिय-संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ, उक्कस्सेण चत्तारि समया । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी ओघं ।

बादरवणप्फदिकाइयाणं बादरवणप्फदिपत्तेगसरीरभंगो । णिगोदजीवाणं वणप्फदि-भंगो । णवरि ओरालियसंघादणकदीए उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समयाहियं । एवं बादरणिगोदाणं ।

समान है । औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा एकेन्द्रियोंके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर तिर्यंचोंके समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-कृतिका अन्तर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर तेजकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद जीव अपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ।

वनस्पतिकायिक जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कर्षसे एक समय अधिक दस हजार वर्ष प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे चार समय प्रमाण होता है । तैजस और कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

बादर वनस्पतिकायिकोंकी प्ररूपणा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके समान है । निगोद जीवोंकी प्ररूपणा वनस्पतिकायिकोंके समान है । विशेष इतना है कि उनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर उत्कर्षसे एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । इसी प्रकार बादर निगोद जीवोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि

णवरि जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं । एवं पज्जत्ताणं । णवरि ओरालियसंघादणकदीए जहण्णेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं ।

सव्वसुहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो । तसदोण्णि पंचिंदियदुगभंगो । णवरि ओरालिय-परिसादणकदीए वेउव्वियपरिसादणकदीए आहारतिण्णिपदाणमेगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं, उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बेसागरोवमसहस्साणि देसूणाणि । तसअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ।

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु ओरालिय-वेउव्वियपरिसादण-संघादणपरिसादणकदीणं तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आहारपरिसादण-संघादणपरिसादणकदीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ।

कायजोगीसु ओरालिय-वेउव्वियतिण्णिपदाणं एइंदियभंगो । णवरि वेउव्वियसंघादण-संघादणपरिसादणकदीणं जहण्णेण एगसमओ । आहारतिगस्स णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं

उनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण काल प्रमाण होता है । इसी प्रकार बादर निगोद पर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा है । विशेष इतना है कि उनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर जघन्यसे तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है ?

सब सूक्ष्म जीवोंकी प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है । त्रस और त्रस पर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है । विशेष इतना है कि औदारिकशरीरकी परिशातनकृति, वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा आहारक-शरीरके तीनों पदोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण तथा उत्कर्षसे क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम व दो हजार सागरोपमसे कुछ कम है । त्रस अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है ।

पांच मनयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंमें औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातन व संघातन-परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । आहारकशरीरकी परिशातन और संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता ।

काययोगियोंमें औदारिक और वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा एकेन्द्रियोंके समान है । विशेष इतना है कि वैक्रियिकशरीरकी संघातन व संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है । आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा नाना

पडुच्च णत्थि अंतरं । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णत्थि अंतरं ।

ओरालियकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदीए वेउव्वियतिण्णिपदाणं णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णिवाससहस्साणि देसूणाणि । णवरि वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । आहारपरिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । तेजा-कम्मइयएगपदमोघं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु ओरालियसंघादणकदी णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एग-जीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं समऊणं । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एग-समओ । तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी ओघं ।

वेउव्वियकायजोगीसु सगपदाणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । वेउव्वियमिस्स-

---

जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नहीं होता ।

औदारिककाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम तीन हजार वर्ष प्रमाण होता है । विशेष इतना है कि वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । आहारकशरीरकी परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । तैजस व कार्मणशरीरके एक पद अर्थात् संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर ओघके समान है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कर्षसे एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे एक समय है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें अपने पदोंका नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं

कायजोगीसु सगपदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बारसमुहुत्ता। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु सगपदाणं[1] णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

कम्मइयकायजोगीसु ओरालियपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। तेजा-कम्मइयएगपदस्स णत्थि अंतरं।

इत्थिवेदेसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च पंचिंदियपज्जत्तभंगो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं, उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि पुव्वकोडीए समएण च अहियाणि। ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि अंतोमुहुत्तेण तिसमयाहिएण अब्भहियाणि। वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च

होता। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अपने पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे बारह मुहूर्त प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगियोंमें अपने अपने पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता।

कार्मणकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। तैजस व कार्मणशरीरके एक पदका अन्तर नहीं होता।

स्त्रीवेदी जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे एक समय और पूर्वकोटिसे अधिक पचवन पल्य प्रमाण होता है। औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण और उत्कर्षसे पल्योपमशतपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय और अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पचवन पल्य प्रमाण होता है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और

---

१ मप्रतिपाठोऽयम्, प्रतिष्वत्र 'अप्पप्पणो पदाणं' इति पाठः।

जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अट्ठावण्णपलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । तेजा-कम्मइयएगपदमोघं[1] ।

पुरिसवेदाणमोरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च इत्थिवेदभंगो । एगजीवं पडुच्च ओघं । णवरि जहण्णेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए ओघं । वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि समयाहियपुव्वकोडीए अहियाणि । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण उक्कस्सेण इत्थिवेदभंगो । आहारतिण्णिपदा ओघं । णवरि एगजीवं

उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक अट्ठावन पल्योपम काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल प्रमाण होता है । तैजस व कार्मणशरीरके एक पदकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

पुरुषवेदियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा स्त्रीवेदियोंके समान है । एक जीवकी अपेक्षा ओघके समान है । विशेष इतना है कि जघन्य अन्तर तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा वह जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे सागरोपमशतपृथक्त्व काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर ओघके समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय व पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे व उत्कर्षसे स्त्रीवेदियोंके समान है । आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे

---

१ प्रतिषु ' -पदमोघं ' इति पाठः ।

पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादण-कदीए णत्थि अंतरं।

णउंसयवेदाणमप्पणो पदा ओघं। अवगदवेदेसु ओरालियपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णिसमया। तेजा-कम्मइयदोपदा ओघं।

कोधादिचदुक्कस्स ओरालियसंघादणकदीए ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। ओरालियसंघादणपरिसादण-कदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एयजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। वेउव्वियसंघादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारतिण्णिपदाणं मणजोगिभंगो।

अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे सागरोपमशतपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नहीं होता।

नपुंसकवेदियोंमें अपने पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। अपगतवेदियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह मास होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य व उत्कर्षसे तीन समय प्रमाण होता है। तैजस और कार्मणशरीरके दो पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है।

क्रोधादि चार कषाय युक्त जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति, औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। आहारकशरीरके तीनों पदोंकी अन्तरप्ररूपणा मनयोगियोंके समान है।

अकसाईणमवगदवेदभंगो । मदि-सुदअण्णाणीसु सगपदा ओघं । विभंगणाणीसु सगपदाणं[1] णत्थि अंतरं। णवरि वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण मासपुधत्तं । ओहिणाणीसु वासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमं सादिरेयं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि समयाहियपुव्वकोडीए सादिरेयाणि । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि तिसमयाहियअंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि । वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि समयाहियपुव्वकोडीए सादिरेयाणि । संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।

अकषायी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है । मत्यज्ञानी व श्रुताज्ञानियोंमें अपने पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विभंगज्ञानियोंमें अपने पदोंका अन्तर नहीं होता । विशेष इतना है कि वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है ।

आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे प्रारम्भके दो ज्ञानोंमें मासपृथक्त्व काल प्रमाण तथा अवधिज्ञानियोंमें वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे कुछ अधिक एक पल्योपम तथा उत्कर्षसे एक समय और पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ अधिक छयासठ सागरोपम काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय व अन्तर्मुहूर्तसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय व पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा

---

१ प्रतिषु 'सगपदा ' इति पाठः ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेण देसूणेण सादिरेयाणि । आहारतिगं णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादण-कदीए णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण उक्कस्सेण णत्थि अंतरं ।

मणपज्जवणाणीसु ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए वेउव्वियसंघादण-परिसादण-कदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एग-जीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । केवलणाणीणमवगदवेदभंगो ।

एवं जहाक्खादसंजदाणं पि वत्तव्वं । संजदाणं[1] मणपज्जवभंगो । णवरि ओरालिय-

ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे कुछ कम एक पूर्वकोटिके तृतीय भागसे अधिक तीन पल्योपम काल प्रमाण होता है । आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ अधिक छयासठ सागरोपम काल प्रमाण होता है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कर्षसे अन्तर नहीं होता ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिका तथा वैक्रि-यिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम एक पूर्वकोटि काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम एक पूर्वकोटि काल प्रमाण होता है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । केवलज्ञानियोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ।

इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये । संयत जीवोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । विशेष इतना है कि औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातन-

[1] प्रतिषु ' जहाक्खादसंघादाणं पि वत्तव्वं । संघादाणं ' इति पाठः ।

संघादण-परिसादणकदीए एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा। [आहारतिण्णिपदाणं ओघं। णवरि एगजीवं पडुच्च उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।] तेजा-कम्मइयदोण्णिपदा ओघं।

सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदाणं मणपज्जवभंगो। णवरि आहारतिगस्स संजदभंगो। परिहारसुद्धिसंजदेसु सव्वपदाणं णत्थि अंतरं। सुहुमसांपराइयाणं सगपदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। संजदासंजदाणं मणपज्जवभंगो। असंजदाणमोरालिय-वेउव्वियतिण्णिपदाणं तेजा-कम्मइयएगपदमोघं।

चक्खुदंसणीणं तसपज्जत्तभंगो। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि। अचक्खुदंसणीसु ओघं। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि। ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो। केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।

किण्ण-णील-काउलेस्सिएसु ओरालियसंघादणकदीए ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च

....

कृतिका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम पूर्वकोटि काल प्रमाण होता है। [आहारकशरीरके तीनों पदोंका अन्तर ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है।] तैजस और कार्मणशरीरके दोनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है।

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है। विशेष इतना है कि आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा संयतोंके समान है।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें सब पदोंका अन्तर नहीं होता। सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें अपने पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह मास प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता। संयतासंयतोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है। असंयत जीवोंमें औदारिक और वैक्रियिकशरीरके तीनों पद तथा तैजस व कार्मणशरीरके एक पदकी प्ररूपणा ओघके समान है।

चक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा त्रस पर्याप्तोंके समान है। विशेष इतना है कि उनमें तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती। अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती। अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है। केवलदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका तथा औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना

ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि अंतोमुहुत्त-तिसमयाहियाणि । वेउव्वियसंघादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं तिसमयाहियं ।

तेउ-पम्मलेस्सासु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण मासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दिवड्ढपलिदोवमं सादिरेयबेसागरोवमाणि, उक्कस्सेण बे-अट्ठारससागरोवमाणि सादिरेयाणि अद्धसागरोवमेण तिसमयाहियअंतोमुहुत्तेण च । वेउव्वियसंघादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] । संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च

जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय व अन्तर्मुहूर्तसे अधिक क्रमशः तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपम काल प्रमाण है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण है ।

तेज व पद्म लेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे मासपृथक्त्व काल प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर नहीं होता । औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे क्रमशः डेढ़ पल्योपम व कुछ अधिक दो सागरोपम तथा उत्कर्षसे अर्ध सागरोपम व तीन समय सहित अन्तर्मुहूर्तसे अधिक दो और अठारह सागरोपम काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना व एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे

---

१ प्रतिषु 'अंतोमुहुत्तं' इति पाठः ।

जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारतिगस्स णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

सुक्कलेस्सिएसु ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि तिसमयाहिय-अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि। ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। ओरालिय-वेउव्विय-परिसादणकदीए तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए तेउभंगो। वेउव्वियसंघादण-संघादण-परिसादणकदीए काउलेस्सियभंगो। आहारतिण्णिपदाणं मणजोगिभंगो।

भवसिद्धिएसु ओघं। अभवसिद्धिएसु सगपदा ओघं।

सम्मादिट्ठीणमाभिणिबोहियभंगो। णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी ओघं। खइयसम्मादिट्ठीसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण

एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। आहारकशरीरके तीनों पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता।

शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे तीन समय और उत्कर्षसे तीन समय और अन्तर्मुहूर्तसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है। औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर नहीं होता। औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा तेजलेश्यावाले जीवोंके समान है। वैक्रियिक-शरीरकी संघातन व संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा कापोतलेश्यावाले जीवोंके समान है। आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा मनयोगियोंके समान है।

भव्यसिद्धिक जीवोंमें अपने पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। अभव्यसिद्धिक जीवोंमें अपने पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है।

सम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है। विशेष इतना है कि तैजस व कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व काल प्रमाण होता है। एक जीवकी

मासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमं सादिरेयं, उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए आहारतिगस्स णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि । ओरालिय-संघादणपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि । [वेउव्विय-] संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेण सादिरेयाणि । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी ओघं ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण मासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमं सादिरेयं[1], उक्कस्सेण ओघं । दोण्णं परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण

अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे कुछ अधिक पल्योपम और उत्कर्षसे पल्योपमशतपृथक्त्व काल प्रमाण होता है । औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा आहारकशरीरके तीनों पदोंके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । [वैक्रियिकशरीरकी] संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पूर्वकोटिके तृतीय भागसे अधिक तीन पल्योपम काल प्रमाण होता है । तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे मासपृथक्त्व काल प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे कुछ अधिक पल्योपम काल प्रमाण होता है । उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है । दोनों शरीरोंकी परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त

---

१ प्रतिषु ' पलिदो० सादिरेयाणि ' इति पाठः ।

छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । एवं आहारतिगस्स वि । णवरि णाणाजीवं पडुच्च ओघं । ओरालिय-संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । [एगजीवं पडुच्च] जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि तिसमयाहियअंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि । वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि समयाहियपुव्वकोडीए सादिरेयाणि । संघादण-परिसादणकदी णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि । तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदीए णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए ओरालिय-तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ[1], उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । वेउव्वियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण

और उत्कर्षसे कुछ कम छ्यासठ सागरोपम काल प्रमाण होता है । इसी प्रकार आहारकशरीरके तीनों पदोंके भी अन्तरको कहना चाहिये । विशेष इतना है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका अन्तर ओघके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । [एक जीवकी अपेक्षा] अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे तीन समय व अन्तर्मुहूर्तसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय व पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे कुछ कम तीन पल्योपम काल प्रमाण होता है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति तथा औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे सात रात्रि-दिन प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे सात रात्रि-दिन प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है ।

---

१ अप्रतौ ' समओ एगो ' इति पाठः ।

अंतोमुहुत्तं। संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अथवा, उक्कस्सेण एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

सम्मामिच्छादिट्ठीसु अप्पप्पणो पदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

सासणसम्मादिट्ठीसु ओरालियसंघादणकदीए दोण्हं परिसादणकदीए तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए वेउव्वियसंघादण-संघादणपरिसादणकदीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

मिच्छादिट्ठीसु ओरालिय-वेउव्वियतिण्णिपदा तेजा-कम्मइयएगपदो च ओघं।

वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे सात रात्रि-दिन प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा उसका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है। अथवा, एक जीवकी अपेक्षा उत्कर्षसे अन्तर नहीं होता।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अपने अपने पदोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति, दोनों अर्थात् औदारिक व वैक्रियिकशरीरोंकी परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। औदारिक-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व संघातन-परिशातन-कृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा उनका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण होता है।

मिथ्यादृष्टियोंमें औदारिक और वैक्रियिकशरीरके तीनों पदों तथा तैजस व कार्मणशरीरके एक पदके अन्तरकी प्ररूपणा ओघके समान है।

सण्णीसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण चउवीसमुहुत्ता । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि समयाहियपुव्वकोडीए सादिरेयाणि । ओरालिय-वेउव्विय-परिसादणकदीए पुरिसवेदभंगो । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए पुरिसवेदभंगो। वेउव्विय-संघादणकदीए तसकाइयभंगो । वेउव्वियसंघादणपरिसादणकदीए पुरिसवेदभंगो । आहार-तिण्णिपदाणं पुरिसवेदभंगो । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी ओघं ।

असण्णीसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी चदुसमयाहिया । ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदीए वेउव्वियसंघादण-संघादणपरिसादणकदीणं तिरिक्खभंगो। ओरालिय-संघादण-परिसादणकदीए पंचिंदियतिरिक्खभंगो । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी ओघं ।

आहारएसु ओरालियसंघादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जह-

---

संज्ञी जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे चौबीस मुहूर्त प्रमाण होता है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे एक समय व पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है। औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातन-कृतिके अन्तरकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है। औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिके अन्तरकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा त्रसकायिकोंके समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा पुरुष-वेदियोंके समान है । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

असंज्ञी जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे चार समय अधिक एक पूर्वकोटि काल प्रमाण होता है । औदारिक और वैक्रि-यिकशरीरकी परिशातनकृतिका तथा वैक्रियिकशरीरकी संघातन व संघातन-परिशातन-कृतिके अन्तरकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातन-कृतिकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परि-शातनकृतिकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

आहारकोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे चार समय कम क्षुद्रभव-

ण्णेण खुद्दाभवग्गहणं चदुसमऊणं, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि समऊणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि । ओरालियपरिसादणकदी वेउव्वियतिण्णिपदा ओघं । णवरि जम्हि अणंतो कालो तम्हि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ । ओरालियसंघादण-परिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि । आहारतिगमोघं । णवरि उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ । तेजा-कम्मइयएगपदमोघं ।

अणाहारएसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयपरिसादणकदीए णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण उक्कस्सेण णत्थि अंतरं । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदीए णाणेगजीवं णत्थि अंतरं । एवमंतराणुगमो समत्तो ।

भावाणुगमेण सव्वपदाणं सव्वमग्गणासु ओदइओ भावो । कुदो ? सरीरणामकम्मोदएण सव्वपदसमुप्पत्तीदो । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी खइया । कुदो ? अजोगिम्हि सरीरणामोदयक्खएण तेसिं परिसदणुवलंभादो । एवं भावाणुगमो समत्तो ।

ग्रहण और उत्कर्षसे एक समय कम पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । औदारिकशरीरकी परिशातनकृति और वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि जहांपर अनन्त काल कहा है वहांपर अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण काल कहना चाहिये । औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिके अन्तरकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्तसे अधिक तेतीस सागरोपम काल प्रमाण होता है । आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि उनका अन्तर उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल प्रमाण होता है । तैजस व कार्मणशरीरके एक पदकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

अनाहारकोंमें औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृतिका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह मास प्रमाण होता है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्य व उत्कर्षसे नहीं होता । तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृतिका नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता। इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

भावानुगमकी अपेक्षा सब पदोंके सब मार्गणाओंमें औदयिक भाव होता है, क्योंकि, सब पद शरीरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न होते हैं । विशेष इतना है कि तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति क्षायिक है, क्योंकि, अयोगकेवली जिनमें शरीरनामकर्मके उदयक्षयसे उन दोनों शरीरोंकी क्षीणता पायी जाती है । इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

अप्पाबहुआणुगमो सत्थाण-परत्थाणप्पाबहुगभेदेण दुविहो । तत्थ सत्थाणप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसा ओघेणादेसेण य । तत्थोघेण सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी । कुदो ? असंखेज्जसेडिमेत्तादो । संघादणकदी अणंतगुणा, सव्वजीवरासीए असंखेज्जदिभागत्तादो । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, सव्वजीवरासीए असंखेज्जाभागत्तादो[1] ।

सव्वत्थोवा वेउव्वियपरिसादणकदी, असंखेज्जघणंगुलमेत्तसेडिपरिमाणादो । संघादणकदी असंखेज्जगुणा, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तसेडिपमाणत्तादो । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, सगुवक्कमणकालसंचिदासेसरासिग्गहणादो ।

सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी, एगसमयसंचिदत्तादो । परिसादणकदी संखेज्जगुणा, अंतोमुहुत्तसंचिदत्तादो । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया मूलसरीरमपविस्सिय कालं करेमाणजीवमेत्तेण ।

सव्वत्थोवा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी, संखेज्जअजोगिजीवग्गहणादो । संघादण-

---

अल्पबहुत्वानुगम स्वस्थान और परस्थान अल्पबहुत्वके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे स्वस्थान अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे असंख्यात जगश्रेणी मात्र हैं। इनसे उक्त शरीरकी संघातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि, वे सब जीवराशिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उनसे उक्त शरीरकी संघातन परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे सब जीवराशिके असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।

वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे असंख्यात घनांगुल मात्र जगश्रेणियोंके बराबर हैं। इनसे उक्त शरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र जगश्रेणियोंके बराबर हैं। इनसे उक्त शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, इनमें अपने उपक्रमणकालमें संचित समस्त राशिका ग्रहण है।

आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे एक समयमें संचित हैं। इनसे उक्त शरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे अन्तर्मुहूर्तमें संचित हैं। इनसे उक्त शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव मूलशरीरमें प्रवेश न कर मृत्युको प्राप्त होनेवाले जीवों मात्रसे विशेष अधिक हैं।

तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, इनमें केवल संख्यात अयोगिकेवली जीवोंका ग्रहण है। इनसे उक्त दोनों शरीरोंकी संघातन-

---

१ प्रतिषु ' असंखेज्जभागत्तादो ' इति पाठः ।

परिसादणकदी अणंतगुणा, अणंतरासिग्गहणादो ।

आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी, णेरइयदव्वं सगु-वक्कमणकालेणोवट्टिदेगखंडपमाणत्तादो । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, णेरइयाण-मसंखेज्जाभागपमाणत्तादो । तेजा-कम्मइयकदीए[1] अप्पाबहुगं णत्थि, एगपदत्तादो । एवं सव्व-णेरइय-सव्वदेवाणं च वत्तव्वं । णवरि सव्वट्ठे सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी, संखेज्जजीवाणं चेव तत्थुववक्कम्मणुवलंभादो । संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा, संखेज्जरासित्तादो ।

तिरिक्खेसु ओरालियतिण्णिपदा ओघं, समाणकालत्तादो । सव्वत्थोवा वेउव्विय-संघादणकदी, सगोघरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण सगुवक्कमणकालेण खंडिदेगखंड-पमाणत्तादो । परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, अंतोमुहुत्तसंचिदत्तादो । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया मूलसरीरमपविस्सिय कयकालजीवेहि । तेजा-कम्मइयकदीए[1] णत्थि अप्पाबहुगं, एगपदत्तादो ।

परिशातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि, इनमें अनन्त राशिका ग्रहण है ।

आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे नारक द्रव्यको अपने उपक्रमणकालसे अपवर्तित करने पर प्राप्त हुए एक खण्डके बराबर हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे नारकियोंके असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं ।

तैजस व कार्मणशरीरकी अपेक्षा अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, उनका यहां संघातन--परिशातनकृति रूप एक ही पद है ।

इसी प्रकार सब नारकी और सब देवोंके भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धि विमानमें सबसे स्तोक वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव हैं, क्योंकि, वहां संख्यात जीवोंकी ही उत्पत्ति पायी जाती है । उनसे उक्त शरीरकी संघातन-परिशातन-कृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे संख्यात राशि स्वरूप हैं ।

तिर्यंचोंमें औदारिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है, क्योंकि, उनका काल समान है । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे अपनी ओघराशिको आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र अपने उपक्रमणकालसे खण्डित करनेपर प्राप्त हुए एक भाग प्रमाण हैं । इनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे अन्तर्मुहूर्तमें संचित हुए हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं, क्योंकि, मूल शरीरमें प्रवेश न कर मरणको प्राप्त हुए जीवोंकी अपेक्षा यह संख्या विशेष अधिक ही प्राप्त होती है । तैजस और कार्मणशरीरके आश्रित अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, यहां उनका संघातन-परिशातन-कृति रूप एक ही पद है ।

१ प्रतिषु 'तेजा-कम्मइय०' इति पाठः ।

पंचिंदियतिरिक्खतिगम्मि सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी, असंखेज्जघणंगुलमेत्त-सेडिपमाणत्तादो । संघादणकदी असंखेज्जगुणा, सग-सगुवक्कमणकालोवट्टिदसग-सगोघरासि-ग्गहणादो । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, सगरासिस्स असंखेज्जाणं भागाणं गहणादो । वेउव्वियतिगं तिरिक्खोघं, तत्थ पंचिंदियरासिस्स पाधण्णियादो ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु सव्वत्थोवा ओरालियसंघादणकदी । संघादण-परिसादण-कदी असंखेज्जगुणा । कारणं सुगमं ।

मणुस्सेसु सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी, संखेज्जत्तादो । संघादणकदी असंखेज्ज-गुणा, अपज्जत्तेसु उप्पज्जमाणासंखेज्जजीवग्गहणादो । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, सयलमणुस्सजीवग्गहणादो । सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी, संखेज्जत्तादो । परिसादणकदी संखेज्जगुणा, अंतोमुहुत्तसंचिदत्तादो । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया मूलसरीरमपविस्सिय मदजीवेहि । सव्वत्थोवा आहारयसंघादणकदी । परिसादणकदी संखेज्जगुणा । संघादण-

---

पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदिक तीनमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे असंख्यात घनांगुल मात्र जगश्रेणियोंके बराबर हैं । इनसे उसकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, अपने अपने उपक्रमणकालसे अपवर्तित अपनी अपनी ओघराशिका यहां ग्रहण है । इनसे उसकी संघातन-परिशातन-कृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, यहां अपनी राशिके असंख्यात बहुभागोंका ग्रहण है । वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंच ओघके समान है । क्योंकि, उनमें पंचेन्द्रिय राशिकी प्रधानता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । इसका कारण सुगम है ।

मनुष्योंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे संख्यात हैं । इनसे उसकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होनेवाले असंख्यात जीवोंका यहां ग्रहण है । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, इनमें समस्त मनुष्योंका ग्रहण है ।

वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे संख्यात हैं । इनसे उसकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे अन्तर्मुहूर्तमें संचित हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव मूल शरीरमें प्रवेश न कर मृत्युप्राप्त जीवोंसे विशेष अधिक हैं ।

आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उनकी परि-शातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव

परिसादणकदी विसेसाहिया । कारणं सुगमं । सव्वत्थोवा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी, संखेज्जत्तादो । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, अपज्जत्तजीवाणं पाधण्णियादो ।

मणुसपज्जत्त-मणुसणीसु सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी, विउव्वमाणजीवाणं बहुआणमसंभवादो । संघादणकदी संखेज्जगुणा, मणुसपज्जत्तएसु उप्पज्जमाणजीवाणं बहुसुवलंभादो । संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । सुगमं । वेउव्विय-आहारतिण्णिपदाणं मणुसभंगो ।

सव्वत्थोवा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी । संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । सुगमं । मणुसणीसु आहारतिगं णत्थि, अच्चंताभावादो । मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

एइंदिय-बादरेइंदियाणं तेसिं पज्जत्ताणं च तिरिक्खभंगो । बादरेइंदियअपज्जत्त-सव्वसुहुमेइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-सव्वपुढवीकाइय-सव्वआउकाइय-बादरतेउ-

....

विशेष अधिक हैं । कारण इसका सुगम है ।

तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे संख्यात हैं । इनसे संघातन परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, इनमें अपर्याप्त जीवोंकी प्रधानता है ।

मनुष्य पर्याप्तों और मनुष्यनियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, इनमें विक्रिया करनेवाले बहुत जीवोंकी सम्भावना नहीं है । इनसे उसकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि, मनुष्य पर्याप्तोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव बहुत पाये हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । [कारण] सुगम है ।

वैक्रियिक और आहारकशरीरके तीन पदोंकी प्ररूपणा सामान्य मनुष्योंके समान है ।

तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, इनसे उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । कारण सुगम है । मनुष्यनियोंमें आहारकशरीरके तीनों पद नहीं होते, क्योंकि, इनमें उनका अत्यन्ताभाव है ।

मनुष्य अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ।

एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्तोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, बादर तेजकायिक अपर्याप्त, सब सूक्ष्म तेजकायिक,

काइयअपज्जत्त-सव्वसुहुमतेउकाइय-वाउकाइय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-सव्वबादरवणप्फदि-पत्तेयसरीर-तसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

पंचिंदियदुगम्मि सव्वत्थोवा ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदी, तिरिक्खेसु विउव्वमाणाणं मूलसरीरं पविस्समाणाणं च गहणादो । संघादणकदी असंखेज्जगुणा, तिरिक्खदेवेसुप्पज्जमाणजीवग्गहणादो । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । सुगमं । आहारतिगमोघं । तेजा-कम्मइयदोपदाणं मणुसभंगो ।

तेउकाइय-वाउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइयाणं तेसिं पज्जत्ताणं च पंचिंदियतिरिक्खभंगो । तसदुगस्स पंचिंदियदुगभंगो ।

पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु सव्वत्थोवा ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदी । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, देवाणं संखेज्जभागत्तादो । सव्वत्थोवा आहारपरिसादणकदी । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । सुगमं ।

कायजोगीसु ओरालिय-वेउव्विय-आहारतिण्णिपदा ओघं । ओरालियकायजोगीसु

वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, सब बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और त्रस अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंमें औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवालों और मूल शरीरमें प्रवेश करनेवालोंका ग्रहण है । इनसे उक्त दोनों शरीरोंकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, यहां तिर्यंचों व देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका ग्रहण है । इनसे उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । कारण सुगम है । आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । तैजस और कार्मणशरीरके दो पदोंकी प्ररूपणा मनुष्योंके समान है ।

तेजकायिक, वायुकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक तथा उनके पर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । त्रस और त्रस पर्याप्तोंकी प्ररूपणा क्रमशः पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है ।

पांच मनयोगी और पांच वचनयोगियोंमें औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे देवोंके संख्यातवें भाग हैं । आहारकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । कारण सुगम है ।

काययोगियोंमें औदारिक, वैक्रियिक और आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । औदारिककाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव

सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी। संघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा। वेउव्वियतिण्णि-पदाणं तिरिक्खभंगो। आहारम्मि णत्थि अप्पाबहुगमेगपदत्तादो। ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा ओरालियसंघादणकदी, अपज्जत्तएसु एगसमयसंचिदत्तादो। संघादण-परिसादण-कदी असंखेज्जगुणा, संघादणजीववदिरित्तअसेसापज्जत्तजीवगहणादो[1]।

वेउव्विय-आहारकायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुगं, एगपदत्तादो। वेउव्वियमिस्सकाय-जोगीसु सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी। [संघादण-] परिसादणकदी असंखेज्जगुणा। सुगमं। आहारमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी। संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा। सेसपदाणं णत्थि[2] अप्पाबहुगं, एगपदत्तादो। कम्मइयकायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुगं, एगपदत्तादो।

इत्थि-पुरिसवेदाणं अप्पप्पणो पदाणं तसभंगो। णउंसयवेदेसु सगपदा तिरिक्खोघं। अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा ओरालिय-तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी। संघादण-परिसादणकदी

सबसे स्तोक हैं। इनसे उसकी संघातन परिशातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं। वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है। आहारकशरीरके आश्रित अल्पबहुत्व नहीं हैं, क्योंकि, उसका यहां एक ही पद है।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे अपर्याप्तोंमें एक समय मात्रमें संचित हैं। इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, इनमें संघातनकृति युक्त जीवोंको छोड़कर शेष समस्त अपर्याप्त जीवोंका ग्रहण है।

वैक्रियिक और आहारककाययोगियोंमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, वे एक एक पदसे सहित हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। यह सुगम है। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। शेष पदोंके अल्प-बहुत्व नहीं है, क्योंकि, वे एक एक पद हैं। कार्मणकाययोगियोंमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, उनमें एक ही पद है।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें अपने अपने पदोंकी प्ररूपणा त्रस जीवोंके समान है। नपुंसकवेदियोंमें अपने पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंच ओघके समान है। अपगतवेदियोंमें औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे

---

१ प्रतिषु ' गहणा ' इति पाठः। २ प्रतिषु ' णत्थि ' इति पाठः।

संखेज्जगुणा । सुगमं ।

कोधादिचदुक्कम्मि सगपदा ओघं । अकसाईणमवगदवेदभंगो । एवं केवलणाणि-केवलदंसणि-जहाक्खादसंजदाणं ।

मदि-सुदअण्णाणीसु सगपदा ओघं । एवमसंजद-अभवसिद्धि-मिच्छाइट्ठि-असण्णीणं च वत्तव्वं । विभंगणाणीसु सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, असंखेज्जघणंगुलमेत्तसेडीए पमाणत्तादो । सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी, देवेसु अपज्जत्तकाले विभंगणाणाभावेण विभंगणाणेण सह विउव्वमाणतिरिक्ख-मणुस्सग्गहणादो । परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, अंतोमुहुत्तसंचिदत्तादो । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, पहाणीकयदेवरासित्तादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु सव्वत्थोवा ओरालियसंघादणकदी, संखेज्जत्तादो । परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, सम्मादिट्ठीसु असंखेज्जाणं तिरिक्खेसु विउव्वमाणाणमुवलंभादो[1] ।

....

उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । यह कथन सुगम है ।

क्रोधादि चार कषाय युक्त जीवोंमें अपने पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । अकषायी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है । इसी प्रकार केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

मति व श्रुत अज्ञानियोंमें अपने पद ओघके समान हैं । इसी प्रकार असयंत, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके भी कहना चाहिये । विभंगज्ञानियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे असंख्यात घनांगुल मात्र जगश्रेणियोंके बराबर हैं । वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, देवोंमें अपर्याप्तकालमें विभंगज्ञानका अभाव होनेसे विभंगज्ञानके साथ विक्रिया करनेवाले तिर्यंच और मनुष्योंका यहां ग्रहण है । इनसे उसकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे अन्तर्मुहूर्त कालमें संचित हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, इनमें देवराशिकी प्रधानता है ।

आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे संख्यात हैं । इनसे उसकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यात जीव तिर्यंचोंमें विक्रिया करने-

....

१ प्रतिषु ' विउव्वणाण- ' इति पाठः ।

संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । सुगमं । वेउव्विय-आहारतिगमोघं ।

मणपज्जवणाणीसु सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी । संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । वेउव्वियतिगस्स मणुसपज्जत्तभंगो ।

संजदेसु ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीराणं सव्वत्थोवा परिसादणकदी । संघादण-परिसादण-कदी संखेज्जगुणा । वेउव्विय-आहारतिगस्स मणुसपज्जत्तभंगो । एवं सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धि-संजदाणं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धि-संजदेसु णत्थि अप्पाबहुगं, तत्थ वेउव्विय-आहारतिगाभावेण एगपदत्तादो । संजदासंजदेसु ओरालियदोण्णं पदाणं विभंगभंगो । वेउव्वियतिण्णिपदाणं तिरिक्खभंगो ।

चक्खुदंसणीणं तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदंसणी ओघं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादण-कदी णत्थि । ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो । किण्ण-णील-काउलेस्सिएसु ओरालियतिण्णमोघं ।

वाले पाये जाते हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । इसका कारण सुगम है । वैक्रियिक और आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा मनुष्य पर्याप्तोंके समान है ।

संयतोंमें औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक और आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा मनुष्य पर्याप्तोंके समान है । इसी प्रकार सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती ।

परिहारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, उनमें वैक्रियिक और आहारकशरीरके तीनों पदोंका अभाव होनेसे औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरका संघातन-परिशातन रूप केवल एक पद होता है । संयतासंयतोंमें औदारिकशरीरके दो पदोंकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान है । वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा त्रस पर्याप्तोंके समान है । अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मणशरीरकी परि-शातनकृति नहीं होती । अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरके तीनों पदोंकी

वेउव्वियसरीरस्स सव्वत्थोवा परिसादणकदी। संघादणकदी असंखेज्जगुणा। संघादण-परिसादण-कदी असंखेज्जगुणा। तेउलेस्सिएसु ओरालियतिण्णिपदाणमाहारतिण्णिपदाणं च आभिणिबोहिय-भंगो। वेउव्वियतिण्णिपदाणं विभंगभंगो। एवं पम्मलेस्साणं। णवरि[1] वेउव्वियतिण्णिपदाणं तिरिक्खभंगो, सणक्कुमार-माहिंददेवेहिंतो तिरिक्खपम्मलेस्सियजीवाणं पदरस्स असंखेज्जदि-भागाणं पाहण्णियादो। सुक्काए सगसव्वपदाणं तेउलेस्सियभंगो। भवसिद्धियाणं ओघभंगो।

सम्माइट्ठीणमाभिणिबोहियभंगो। णवरि तेजा-कम्मइयसरीराणं तसभंगो। वेदगसम्मा-दिट्ठीणं आभिणिबोहियभंगो। खइयसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा ओरालिय-वेउव्वियसंघादणकदी, संखेज्जत्तादो एगसमयसंचिदत्तादो। परिसादणकदी असंखेज्जगुणा, अंतोमुहुत्तसंचिदासंखेज्जरासित्तादो। संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा। सुगमं। आहार-तेजा-कम्मइयपदाणं सम्माइट्ठिभंगो।

....

प्ररूपणा ओघके समान है। वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उसकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे उसकी संघातन-परिशातन-कृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं।

तेजलेश्यावाले जीवोंमें औदारिकशरीरके तीनों पद तथा आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है। वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये। विशेष इतना है कि उनमें वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा तिर्यंचोंके समान है, क्योंकि, सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्पके देवोंकी अपेक्षा यहां जग-प्रतरके असंख्यातवें भाग मात्र तिर्यंच पद्मलेश्यावाले जीवोंकी प्रधानता है।

शुक्ललेश्यामें अपने सब पदोंकी प्ररूपणा तेजलेश्यावाले जीवोंके समान है। भव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है।

सम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है। विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मणशरीरके दोनों पदोंकी प्ररूपणा त्रस जीवोंके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिक व वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं, क्योंकि, वे संख्यात व एक समय संचित हैं। इनसे उनकी परिशातन कृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि, वे अन्तर्मुहूर्त संचित असंख्यात राशि रूप हैं। इनसे उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। कारण इसका सुगम है। आहारक, तैजस और कार्मणशरीरके पदोंकी प्ररूपणा सम्यग्दृष्टियोंके समान है।

....

१ प्रतिषु 'एवं पमाणेण णवरि' इति पाठः।

उवसमसम्माइट्ठीसु ओरालियदोपदाणं संजदासंजदभंगो । वेउव्वियतिण्णिपदाणं खइयसम्माइट्ठिभंगो । एवं सम्मामिच्छाइट्ठीणं । सासणे सव्वत्थोवा ओरालिय-वेउव्वियपरिसादणकदी । संघादणकदी असंखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा ।

सण्णीणं पुरिसभंगो । आहारएसु ओघं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । अणाहारएसु सव्वत्थोवा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी । संघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा । एवं सत्थाणप्पाबहुगं समत्तं ।

परत्थाणे पयदं । सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी । परिसादणकदी संखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी संखेज्जगुणा । वेउव्वियपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । वेउव्वियसंघादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियसंघादणकदी

....

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिकशरीरके दो पदोंकी प्ररूपणा संयतासंयतोंके समान है । वैक्रियिकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके समान है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें औदारिक और वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उनकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं ।

संज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । आहारक जीवोंमें अपने पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । अनाहारक जीवोंमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उनकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं । इस प्रकार स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

परस्थान अल्पबहुत्व प्रकृत है । आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे इसकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे इसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिक-

अणंतगुणा । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । केत्तियमेत्तो विसेसो ? वेउव्विय आहारतिण्णिपदसहिदओरालियसंघादण-ओरालिय-तेजा-कम्मइयपरिसादणमेत्तो[1] ।

आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । एवं सव्वणेरइय-सव्व-देवेसु । णवरि सव्वट्ठे संखेज्जगुणं कायव्वं ।

तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी । परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? वेउव्वियसंघादण-परिसादणमेत्तेण[2] । संघादणकदी अणंतगुणा । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्ज-

---

शरीरकी संघातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

शंका—वह विशेष कितना है ?

समाधान—वह विशेष वैक्रियिक व आहारकशरीरके तीनों पदोंसे सहित औदारिकशरीरकी संघातन तथा औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंके बराबर है ।

आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे इसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार सब नारकियों और सब देवोंमें कहना चाहिये । विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धि विमानमें संख्यातगुणा करना चाहिये ।

तिर्यंचोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

शंका—कितने मात्र विशेषसे अधिक हैं ?

समाधान—वैक्रियिकशरीरकी संघातन और परिशातनकृति युक्त जीवों मात्र विशेषसे वे अधिक हैं ।

औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीवोंसे उसकी संघातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे इसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं ।

---

१ प्रतिषु ' -सहिदओरालियसंघादणकम्मइयमेत्तो ' इति पाठः ।

२ अप्रतौ ' संघादण० मेत्तेण ', आ-काप्रत्योः ' संघादणमेत्तेण ' इति पाठः ।

गुणा। तेजा-कम्मइययसंघादणपरिसादणकदी विसेसाहिया। एवं पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स। णवरि जम्हि अणंतगुणं तम्हि असंखेज्जगुणमिदि वत्तव्वं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु सव्वत्थोवा ओरालियसंघादणकदी। संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया।

मणुसेसु सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी। परिसादणकदी संखेज्जगुणा। [संघादणपरिसादणकदी विसेसाहिया। तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी संखेज्जगुणा।] वेउव्विय-संघादणकदी संखेज्जगुणा। परिसादणकदी संखेज्जगुणा। संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया। संघादणकदी असंखेज्जगुणा। संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। एवं मणुसपज्जत्तस्स वि। णवरि जम्हि असंखेज्जगुणं तम्हि संखेज्जगुणं कादव्वं। मणुसिणीसु सव्वत्थोवा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी। वेउव्वियसंघादणकदी संखेज्जगुणा। परिसादणकदी

उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीनके कहना चाहिये। विशेष इतना है कि जहांपर अनन्तगुणा कहा है वहांपर असंख्यातगुणा ऐसा कहना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं।

मनुष्योंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उसकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। [उनसे उसकी संघातन-परिशातन-कृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं।] उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यात-गुणे हैं। उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। उनसे औदारिकशरीरकी परिशातन-कृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। उनसे उसीकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्तकके भी कहना चाहिये। विशेष इतना है कि जहां असंख्यातगुणा है वहां संख्यातगुणा करना चाहिये।

मनुष्यनियोंमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे

संखेज्जगुणा। संघादणपरिसादणकदी विसेसाहिया। ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया। संघादणकदी संखेज्जगुणा। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। मणुस-अपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो[1]।

एइंदिय-बादरेइंदियाणं तेसिं पज्जत्ताणं च तिरिक्खोघं। बादरेइंदियअपज्जत्त-सव्वसुहुम-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-सव्वपुढवीकाइय-सव्वआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादर-वाउकाइयअपज्जत्त[2]-सव्वसुहुमतेउकाइय-वाउकाइय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-सव्ववणप्फदि-पत्तेयसरीर-तसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। पंचिंदियाणं[3] ओघं। णवरि जम्हि अणंतगुणं तम्हि असंखेज्जगुणं कायव्वं। अथवा, वेउव्वियसंघादणादो ओरालियसंघादणकदी असंखेज्जगुणा। वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा।

पंचिंदियपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी। परिसादणकदी संखेज्जगुणा।

उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। उनसे उसीकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। मनुष्य अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है।

एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्तोंकी प्ररूपणा तिर्यंच ओघके समान है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, बादर तेजकायिक व बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सब सूक्ष्म तेजकायिक, सब सूक्ष्म वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, सब वनस्पति-कायिक प्रत्येकशरीर तथा त्रस अपर्याप्तोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है। पंचेन्द्रियोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। विशेष इतना है कि जहांपर अनन्तगुणा है वहांपर असंख्यातगुणा करना चाहिये। अथवा, उनमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीवोंसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं।

पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उसीकी परिशातनकृतियुक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे उसीकी संघातन-परि-

---

१ प्रतिषु ' मणुसअसण्णि० पंचिंदिय- ' इति पाठः। २ प्रतिषु ' वाउ० अप्प० ' इति पाठः।

३ अ-आप्रत्योः ' पंचिं० ', काप्रतौ ' पंचिंदिय० ' इति पाठः।

संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी संखेज्जगुणा । वेउव्विय-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । वेउव्वियसंघादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियसंघादणकदी संखेज्जगुणा । वेउव्विय-संघादणपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियसंघादणपरिसादणकदी संखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

तेउकाइय-वाउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइयपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्ख-भंगो । तसदुगस्स पंचिंदियदुगभंगो ।

पंचमणजोगि-तिण्णिवचिजोगीसु सव्वत्थोवा आहारपरिसादणकदी । संघादण-परिसादण-कदी विसेसाहिया । वेउव्वियपरिसादणकदी[1] असंखेज्जगुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसा-हिया । ओरालियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

शातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यात-गुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

तेजकायिक, वायुकायिक, बादर तेजकायिक और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । त्रस और त्रस पर्याप्तोंकी प्ररूपणा क्रमशः पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान है ।

पांच मनयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें आहारकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

---

१ प्रतिषु ' तेउ० ' इति पाठः ।

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीसु सव्वत्थोवा आहारपरिसादणकदी । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । वेउव्वियपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियसंघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

कायजोगी ओघं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । ओरालियकायजोगीसु सव्वत्थोवा आहारपरिसादणकदी । वेउव्वियसंघादणमसंखेज्जगुणं । परिसादणकदी असंखेज्ज-गुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालिय-संघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियमिस्सकायजोगीसु पंचिंदियअपज्जत्तभंगो । वेउव्वियकायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुगं, तिण्णिपदाणं सारिच्छियादो । वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं णारगभंगो ।

आहारकायजोगीसु णत्थि अप्पाबहुगं, चदुण्हं पदाणं सारिच्छियादो । आहारमिस्स-कायजोगीसु सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी । संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । ओरा-

---

वचनयोगी और असत्य-मृषावचनयोगी जीवोंमें आहारकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे इसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

काययोगी जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । औदारिककाययोगियोंमें आहारकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिक-शरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें अपने पदोंके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है । वैक्रियिककाययोगियोंमें अल्प-बहुत्व नहीं है, क्योंकि, उनमें तीनों पद सदृश हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंकी प्ररूपणा नारकियोंके समान है ।

आहारककाययोगियोंमें अल्पबहुत्व नहीं हैं, क्योंकि, उनमें चारों पद समान हैं । आहारमिश्रकाययोगियोंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी

लियपरिसादणकदी तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी तिण्णि वि सरिसा विसेसाहिया।

कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा ओरालियपरिसादणकदी। तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा।

इत्थिवेदेसु सव्वत्थोवा वेउव्वियपरिसादणकदी। ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया। ओरालियसंघादणकदी असंखेज्जगुणा। वेउव्वियसंघादणकदी संखेज्जगुणा। ओरालियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा। वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा। तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी विसेसाहिया।

पुरिसवेदेसु सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी। परिसादणकदी संखेज्जगुणा। संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया। वेउव्वियपरिसादणकदी संखेज्जगुणा। सेसस्स इत्थिवेदभंगो। णउंसयवेदा तिरिक्खोघं।

अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी। ओरालियपरिसादणकदी

परिशातनकृति तथा तैजस व कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति, इन तीनों पदोंसे युक्त जीव सदृश विशेष अधिक हैं।

कार्मणकाययोगियोंमें औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं।

स्त्रीवेदियोंमें वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। उनसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं।

पुरुषवेदियोंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। उनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं। शेष पदोंकी प्ररूपणा स्त्रीवेदियोंके समान है। नपुंसकवेदियोंकी प्ररूपणा सामान्य तिर्यंचोंके समान है।

अपगतवेदियोंमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं। उनसे

विसेसाहिया । संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । चदुण्हं कसायाणं कायजोगिभंगो । अकसाईणमवगदवेदभंगो ।

मदि-सुदअण्णाणीसु सव्वत्थोवा वेउव्वियपरिसादणकदी । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । सेसपदा ओघं । विभंगणाणीसु सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी । परिसादण-कदी असंखेज्जगुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । संघादणपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादणपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी । परिसादणकदी [संखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी] विसेसाहिया । ओरालियसंघादणकदी संखेज्ज-गुणा । वेउव्वियपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया ।

उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । चार कषाय युक्त जीवोंकी प्ररूपणा काययोगियोंके समान है । अकषायी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ।

मति व श्रुत अज्ञानी जीवोंमें वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । शेष पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है ।

विभंगज्ञानियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे इसीकी परिशातनकृति युक्त जीव [संख्यातगुणे हैं । उनसे इसकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव] विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष

वेउव्वियसंघादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियसंघादणपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादणपरिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी विसेसाहिया ।

मणपज्जवणाणीसु सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी । परिसादणकदी संखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । संघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादणपरिसादणकदी विसेसाहिया ।

केवलणाणीणमवगदवेदभंगो । एवं केवलदंसणि[२]-जहाक्खादसंजदाणं । संजदाणं मणुसपज्जत्तभंगो । णवरि ओरालियसंघादणं णत्थि । एवं सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदाणं । णवरि तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी णत्थि । परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु तिण्णि वि पदा सरिसा । संजदासंजदाणं मणपज्जवभंगो । णवरि विसेसो जम्हि संखेज्ज-

---

अधिक हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिक-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

केवलज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है । इसी प्रकार केवल-दर्शनी और यथाख्यातसंयत जीवोंकी प्ररूपणा करना चाहिये । संयत जीवोंकी प्ररूपणा मनुष्य पर्याप्तोंके समान है । विशेष इतना है कि उनमें औदारिकशरीरकी संघातनकृति नहीं होती । इसी प्रकार सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उनमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति नहीं होती । परि-हारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें तीनों ही पद सदृश हैं । संयता-संयत जीवोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । विशेष इतना है कि जहां संख्यात-

---

१ इतः प्रारभ्य विसेसाहिया-पर्यन्तोऽयमधस्तनः प्रबन्धः काप्रतौ नोपलभ्यते ।

२ प्रतिषु ' दंसणीओ ' इति पाठः ।

गुणं तम्हि असंखेज्जगुणं कायव्वं । असंजदाणं मदिअण्णाणिभंगो ।

चक्खुदंसणीणं तसपज्जत्तभंगो । अचक्खुदंसणीणं कोधभंगो । ओहिदंसणीणं ओहिणाणिभंगो । किण्ण-णील-काउलेस्सियाणं असंजदभंगो । तेउलेस्सिएसु[1] सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी । परिसादणकदी संखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियसंघादणकदी संखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादणकदी असंखेज्जगुणा । परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी संखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

पम्मलेस्सिएसु[2] सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी । परिसादणकदी संखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियसंघादणकदी संखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-

---

गुणा कहा गया है वहां असंख्यातगुणा करना चाहिये । असंयत जीवोंकी प्ररूपणा मति-अज्ञानियोंके समान है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा त्रस पर्याप्तोंके समान है । अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा क्रोधकषायी जीवोंके समान है । अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है । कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है । तेजलेश्यावालोंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

पद्मलेश्यावाले जीवोंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं ।

---

१ प्रतिषु ' वेउ० ' इति पाठः ।   २ प्रतिषु ' पम्मलेस्सीसु ' इति पाठः ।

कदी असंखेज्जगुणा । परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

सुक्कलेस्सिएसु[1] आहारतिगमोघं । तदो ओरालियसंघादणकदी संखेज्जगुणा । वेउव्विय-संघादणकदी असंखेज्जगुणा । परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

भवसिद्धिया ओघं । अभवसिद्धियाणं[2] मदिअण्णाणिभंगो ।

सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी । परिसादणकदी संखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी संखेज्जगुणा । ओरालिय-

....

उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें आहारकशरीरके तीनों पदोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । उनसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

भव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा ओघके समान है । अभव्यसिद्धिक जीवोंकी प्ररूपणा मतिअज्ञानियोंके समान है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यात-

....

१ प्रतिषु ' सुक्कलेस्सीसु ' इति पाठः ।

२ अप्रतौ ' भवसिद्धियाणं ' इति पाठः, आ-काप्रत्योस्तु नोपलभ्यते पदमिदम् ।

संघादणकदी संखेज्जगुणा । सेसस्स आभिणिबोहियभंगो ।

खइयसम्माइट्ठीसु सव्वत्थोवा आहारसंघादणकदी । परिसादणकदी संखेज्जगुणा । संघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया । तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी संखेज्जगुणा । ओरालिय-संघादणकदी संखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादणकदी असंखेज्जगुणा । परिसादणकदी असंखेज्ज-गुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । संघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

उवसमसम्माइट्ठीणं विभंगभंगो । सासणे सव्वत्थोवा वेउव्वियपरिसादणकदी । ओरा-लियपरिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियसंघादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-कदी असंखेज्जगुणा । ओरालियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

मिच्छादिट्ठीणं मदिअण्णाणिभंगो । वेदगसम्मादिट्ठीणमोहिभंगो । सम्मामिच्छाइट्ठीसु

गुणे हैं । शेष पदोंकी प्ररूपणा आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें आहारकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी संघातन-परि-शातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उसीकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा विभंगज्ञानियोंके समान है । सासादनसम्य-ग्दृष्टियोंमें वैक्रियिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे औदारिक-शरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-कृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यात-गुणे हैं । उनसे वैक्रियिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा मतिअज्ञानियोंके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें वैक्रियिकशरीरकी संघातन-

सव्वत्थोवा वेउव्वियसंघादणकदी । परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । ओरालियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । वेउव्वियसंघादण-परिसादणकदी असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइयसंघादण-परिसादणकदी विसेसाहिया ।

सण्णीसु पुरिसभंगो । असण्णी तिरिक्खोघं । आहारीणं कायजोगिभंगो । अणाहारएसु सव्वत्थोवा तेजा-कम्मइयपरिसादणकदी । ओरालियपरिसादणकदी विसेसाहिया । तेजा-कम्मइय-संघादण-परिसादणकदी अणंतगुणा । एवं परत्थाणप्पाबहुगं समत्तं । इदि मूलकरणकदी परूवणा कदा ।

जा सा उत्तरकरणकदी णाम सा अणेयविहा । तं जहा—असि-वासि-परसु-कुडारि-चक्क-दंड-वेम-णालिया-सलाग-मट्टियसुत्तोदयादीण-मुवसंपदसण्णिज्झे ॥ ७२ ॥

कधं मट्टियादीणमुत्तरकरणत्तं ? पंचसरीराणं जीवादो अपुधब्भूदत्तेण सकलकरणकारण-

---

कृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उसीकी परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे वैक्रियिक-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे तैजस और कार्मण-शरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं ।

संज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा पुरुषवेदियोंके समान है । असंज्ञी जीवोंकी प्ररूपणा तिर्यंच ओघके समान है । आहारक जीवोंकी प्ररूपणा काययोगियोंके समान है । अनाहारक जीवोंमें तैजस और कार्मणशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे औदारिकशरीरकी परिशातनकृति युक्त जीव विशेष अधिक हैं । उनसे तैजस और कार्मणशरीरकी संघातन-परिशातनकृति युक्त जीव अनन्तगुणे हैं । इस प्रकार परस्थान-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार मूलकरणकृतिकी प्ररूपणा की गई है ।

जो वह उत्तरकरणकृति है वह अनेक प्रकारकी है । यथा— असि, वासि, परशु, कुदारी, चक्र, दण्ड, वेम, नालिका, शलाका, मृत्तिका, सूत्र और उदकादिकका सामीप्य कार्योंमें होता है ॥ ७२ ॥

शंका — मृत्तिका आदि उत्तरकरण किस प्रकार हैं ?

समाधान — जीवसे अपृथक् होनेके कारण अथवा समस्त करणोंके कारण होनेसे

---

१ प्रतिषु ' ' मट्टियजसुत्तो- ' इति पाठः ।

भावेण वा उवलद्धमूलकरणववएसाणं करणत्तादो । उत्तरकरणकदी अणेयविहा त्ति पइज्जा । असि-वासियादीणमुवसंपदसण्णिज्झे इदि साहणमेयमण्णहाणुववत्तिगब्भत्तादो । द्रव्यमुपसंपद्यते आश्रीयते एभिरिति उपसंपदानि कार्याणि, तेषां सान्निध्यं उपसंपदसान्निध्यम् । तस्मादसि-वासि-परशु-कुडारि-चक्र-दण्ड-वेम-नालिका-शलाका-मृत्तिका-सूत्रोदकादीनामुपसंपदसान्निध्यादुत्तरकरण-कृतिरनेकविधा । न कार्यसान्निध्यं करणभेदस्यागमकम्, तद्विशेषाश्रयणे तदेकत्वानुपपत्तेः ।

जे चामण्णे एवमादिया सा सव्वा उत्तरकरणकदी णाम ॥७३॥

'जे च अमी अण्णे' एदेण करणाणमियत्तावहारणप्पडिसेहो कदो । सा सव्वा उत्तरकरणकदी णाम ।

जा सा भावकदी[1] णाम सा उवजुत्तो पाहुडजाणगो ॥ ७४ ॥

एत्थ पाहुडसद्दो कदीए विसेसिदव्वो, पाहुडसामण्णेण अहियाराभावादो । तदो कदि-पाहुडजाणओ उवजुत्तो भावकदि त्ति सिद्धं । णोआगमभावकदी किण्ण परूविदा ? ण,

---

मूलकरण संज्ञाको प्राप्त हुए पांच शरीरोंके चूंकि वे मृत्तिका आदि करण हैं, अतः वे उत्तर करण कहे जाते हैं ।

'उत्तरकरणकृति अनेक प्रकारकी है' यह प्रतिज्ञा है । 'असि, वासि आदिकोंकी कार्योंमें समीपता होनेपर', यह साधन है; क्योंकि, उसके गर्भमें अन्यथानुपपत्ति निहित है अर्थात् उक्त साधनोंके विना कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती । जो द्रव्यका आश्रय करते हैं वे उपसंपद अर्थात् कार्य कहलाते हैं, उनकी समीपता उपसंपदसानिध्य है । इसलिये असि, वासि, परशु, कुदारी, चक्र, दण्ड, वेम, नालिका, शलाका, मृत्तिका, सूत्र और उदक आदि कार्योंकी समीपतासे उत्तरकरणकृति कहलाते हैं । यह उत्तरकरणकृति अनेक प्रकारकी है । कार्यसान्निध्य करणभेदका अगमक नहीं है, अर्थात् गमक ही है; क्योंकि, करणभेदका आश्रय करनेपर उसका एकत्व नहीं बन सकता ।

इसी प्रकार और भी जो ये अन्य करण हैं वे सब उत्तरकरणकृति कहलाते हैं ॥७३॥

'और जो ये अन्य हैं' इससे करणोंकी संख्याके निश्चयका निषेध किया गया है । वह सब उत्तरकरणकृति है ।

प्राभृतका जानकर जो उपयोग युक्त जीव है वह सब भावकरणकृति है ॥ ७४ ॥

यहां सूत्रमें आये हुए प्राभृत पदको कृति विशेषणसे विशेषित करना चाहिये; क्योंकि, यहां प्राभृत सामान्यका अधिकार नहीं है । इस कारण कृतिप्राभृतका जानकार उपयोग सहित जीव भावकृति है, यह सिद्ध हुआ ।

शंका — यहां नोआगमभावकृतिकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

---

[1] प्रतिषु 'भावकरणकदी' इति पाठः ।

ओदइयादिपंचभाउवलक्खियणोआगमदव्वाणं सेसकदीसु अंतब्भावादो ।

सा सव्वा भावकदी णाम ॥ ७५ ॥

कधमेक्किस्से भावकदीए बहुत्तसंभवो ? ण, कदिपाहुडजाणएसु तत्थुवजुत्तजीवाणं बहुत्तदंसणादो ।

एदासिं कदीणं काए कदीए पयदं ? गणणकदीए पयदं ॥ ७६ ॥

गणणपरूवणा किमट्ठमेत्थ कीरदे ? गणणाए विणा सेसाणियोगद्दारपरूवणाणुववत्तीदो । उत्तं च—

जह चिय मोराण सिहा णायाणं लंछगं व सत्थाणं ।
मुक्खारूढं[1] गणियं तत्थब्भासं तदो कुज्जा ॥ १३३ ॥

एवं कदी त्ति सत्तममणियोगद्दारं ।

प्रसिद्धसिद्धान्तगभस्तिमाली समस्तवैयाकरणाधिराजः ।
गुणाकरस्तार्किकचक्रवर्ती प्रवादिसिंहो वरवीरसेनः ॥

समाधान—नहीं की गई, क्योंकि, औदयिक आदि पांच भावोंसे उपलक्षित नोआगमद्रव्योंका शेष कृतियोंमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

वह सब भावकृति है ॥ ७५ ॥

शंका—एक भावकृतिमें बहुत्व कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कृतिप्राभृतके जानकारोंमेंसे उसमें उपयोग युक्त जीव बहुत देखे जाते हैं ।

इन कृतियोंमें कौनसी कृति प्रकृत है ? गणनकृति प्रकृत है ॥ ७६ ॥

शंका—यहां गणनाकी प्ररूपणा किसलिये की जाती है ?

समाधान—चूंकि गणनाके विना शेष अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा नहीं बन सकती है, अतः उसकी प्ररूपणा की जाती है । कहा भी है—

जिस प्रकार मयूरोंकी शिखा उनका मुख्यतासे रूढ लक्षण है, उसी प्रकार न्याय शास्त्रोंका मुख्य लक्षण गणित है । अत एवं इसका अभ्यास करना चाहिये ॥ १३३ ॥

इस प्रकार कृतिअनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

---

१ प्रतिषु ' मुद्धारूढं ' इति पाठः ।

परिशिष्ट

१

कदिअणियोगद्दारसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४६	कदि त्ति सत्तविहा कदी — णामकदी ठवणकदी दव्वकदी गणणकदी गंधकदी करणकदी भावकदी चेदि।	२३७
४७	कदिणयविभासणदाए को णओ काओ कदीओ इच्छदि ?	२३८
४८	णइगम-ववहार-संगहा सव्वाओ।	२४०
४९	उजुसुदो ट्ठवणकदिं णेच्छदि।	२४३
५०	सद्दादओ णामकदिं भावकदिं च इच्छंति।	२४५
५१	जा सा णामकदी णाम सा जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, जीवस्स च अजीवस्स च, जीवस्स च अजीवाणं च, जीवाणं च अजीवस्स [च], जीवाणं च अजीवाणं च जस्स णामं कीरदि कदि त्ति सा सव्वा णामकदी णाम।	२४६
५२	जा सा ठवणकदी णाम सा कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेण्णकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया ठवणाए ठविज्जंति कदि त्ति सा सव्वा ठवणकदी णाम।	२४८
५३	जा सा दव्वकदी णाम सा दुविहा आगमदो दव्वकदी चेव णोआगमदो दव्वकदी चेव।	२५०
५४	जा सा आगमदो दव्वकदी णाम तिस्से इमे अट्ठाहियारा भवंति — ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोपगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं।	२५१
५५	जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेक्खणा वा थय-थुदि-धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया।	२६२
५६	णेगम-ववहाराणमेगो अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी अणेया वा अणुवजुत्ता आगमदो दव्वकदी।	२६४
५७	संगहणयस्स एयो वा अणेया वा अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी।	२६५
५८	उजुसुदस्स एओ अणुवजुत्तो आगमदो दव्वकदी।	,,
५९	सद्दणयस्स अवत्तव्वं।	२६६
६०	सा सव्वा आगमदो दव्वकदी णाम।	,,
६१	जा सा णोआगमदो दव्वकदी णाम सा तिविहा—जाणुगसरीरदव्वकदी भवियदव्वकदी जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वकदी चेदि।	२६७
६२	जा सा जाणुगसरीरदव्वकदी णाम तिस्से इमे अत्थाहियारा भवंति— ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं घोससमं णामसमं।	२६८
६३	तस्स कदिपाहुडजाणयस्स चुद-चइद-चत्तदेहस्स इमं सरीरमिदि सा सव्वा जाणुगसरीरदव्वकदी णाम।	२६९
६४	जा सा भवियदव्वकदी णाम—जे इमे कदि त्ति अणिओगद्दारा	

२ अवतरण-गाथा-सूची।

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ
१	अप्पिदपज्जायपढमसमयप्पहुडि आचरिमसमयादो एसो वट्टमाणकालो त्ति णायादो।	२४३
२	अर्थाभिधान-प्रत्ययास्तुल्यनामधेया इति न्यायात्तस्य ग्रहणं सिद्धम्।	२३७
३	जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो ठवणकदिपरूवणा चेव...।	२४८
४	न एकगमो नैगम इति न्यायात्...।	१८१
५	यदस्ति न तद्द्वयमतिलंघ्य वर्तत इति संग्रह-व्यवहारयोः परस्परविभिन्नोभयविषयावलम्बनो नैगमनयः।	१७१

४ ग्रन्थोल्लेख

१ खुद्दाबंध

१ अणुदिसाणुत्तरदेवाणमुक्कस्संतरं बेसागरोवमाणि सादिरेयाणि त्ति खुद्दाबंधसुत्तादो णव्वदे। ३१०

२ खेत्ताणिओगद्दार

१ खेत्ताणिओगद्दारे बादरेइंदियपज्जत्तएस्स...। २१

३ गाथासूत्र

१ जद्देही सुहुमणिगोदस्स जहण्णोगाहणा तद्देहिं चेव जहण्णोहिखेत्तमिदि भणंतेण गाहासुत्तेण सह विरोहादो। २२

२ जद्देहं सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणा तद्देहं जहण्णोहिक्खेत्तमिदि भणंतेण गाहासुत्तेण सह विरोहादो। २४

४ तत्त्वार्थसूत्र

१ प्रमाण-नयैर्वस्त्वधिगम इत्यनेन सूत्रेणापि नेदं व्याख्यानं विघटते। १६४

५ परिकर्म

१ तण्ण घडदे, परियम्मे वुत्तओहिणिबद्धखेत्ताणुप्पत्तीदो। ४८

२ जदि सुदणाणिस्स विसओ अणंतसंखा होदि तो जमुक्कस्ससंखेज्जं विसओ चोद्दसपुव्विस्से त्ति परियम्मे उत्तं तं कधं घडदे? ५६

६ महाकम्मपयडिपाहुड

१ महाकम्मपयडिपाहुडमुवसंहरिऊण छखंडाणि कयाणि। १३३

७ वर्गणासूत्र

८ वेदना

९ व्याकरण सूत्र

१० सन्मतिसूत्र

११ संतकम्मपयडिपाहुड

१२ सारसंग्रह

१३ सूत्र

१४ सूत्रगाथा

१५ अनिर्दिष्टनाम

५ ऐतिहासिक नाम-सूची।

६ भौगोलिक शब्द-सूची।

७ पारिभाषिक शब्द-सूची।

प्रकाशक–श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द, जैन साहित्य उद्धारक फंड, जूना-बजाजी, अमरावती.

मुद्रक–टी. एम्. पाटील, मॅनेजर, सरस्वती प्रेस, अमरावती.